मूल
रघुवीर चौधरी

अनुवाद
किरण माथुर

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

आचार्य हजारीप्रसादजी की अनुपस्थिति में
अकेले 'अज्ञेय' जी को; सादर
संकोच के साथ

अनुक्रम

●

अमृता

रघुवीर चौधरी

प्रथम सर्ग

प्रश्नार्थ

एक
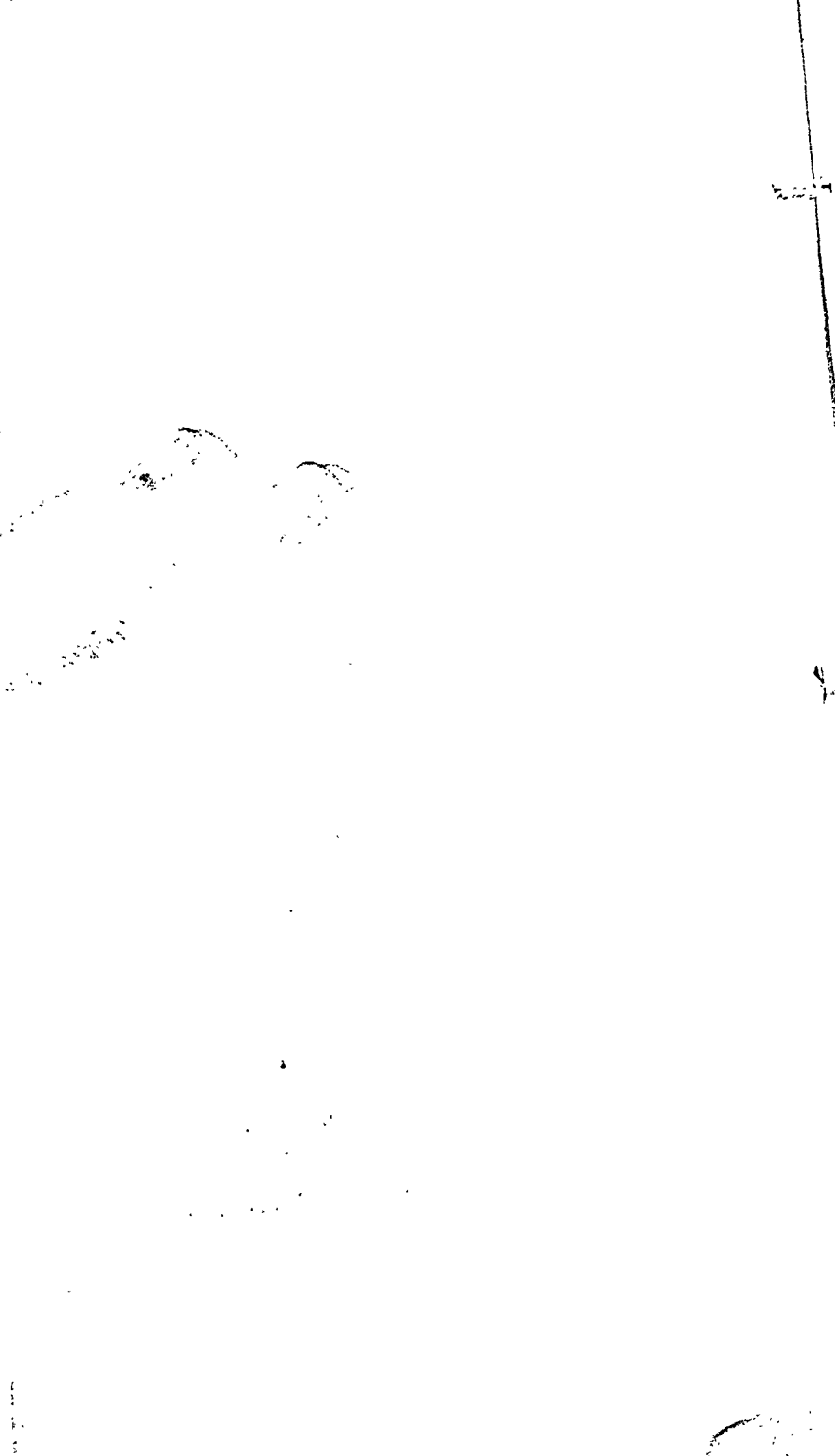
[illegible] धूम्रपट रचता [illegible] आकाश में अदृश्य हो गया और उदयन की दृष्टि वापस लौटी। धूम्रपट का आरम्भवाला सिरा आकाश में निराधार लटका हुआ लग रहा था। खालीपन में फैल जाने के लिए अपना व्यक्तित्व छोड़कर वह धूसर होने लगा। उदयन की आँखों में जगी धूम्ररेखा भी फैल गयी।

एक नाजुक पंखी अमृता के सामने बैठा पंख फड़फड़ा रहा था। इसे देखते-देखते अमृता की पलकें एक बार झपकी।

यहाँ एक तीसरी उपस्थिति भी थी—'समुद्र....बम्बई का?' ऐसा कहते हैं, पर असल में तो केवल किनारा ही बम्बई का! समुद्र तो व्यापक और अखण्ड है। जहाँ ऊपर नही दिखाई देता, वहाँ भीतर है। समुद्र के एक किनारे बम्बई नगर है, और इस नगर के प्रत्येक सिरे पर समुद्र, है और रहेगा। बम्बई जब समुद्र बन जायेगा तब भी समुद्र तो...।'

"क्या सोच रहे हो, अनिकेत?"

"समुद्र तो तब भी होगा—जैसे आकाश। हम जहाँ बैठे हैं; अर्थात् यहाँ, सम्भव है भविष्य में पानी घहराये।"

"अथवा हमारी दृष्टि के छोर पहुँचें, वहाँ तक रेगिस्तान फैल जाये।" उदयन बीच में कुछ इस तरह बोला मानो बोलने में उसे कोई दिलचस्पी नही थी, किन्तु जो बोला जा रहा था उसका कोई अर्थ उसके लिए नही था। पश्चिम की ओर दृष्टि स्थिर किये सूर्यास्त का समय होने के कारण हलकी-हलकी चमक लेकर जगे लाल-केशरी रंग का आस्वाद करने लगा। लिया जा सके उतना अपनी आँखों में ग्रहण कर लिया। बीच में उसके बोल उठने से अनिकेत अटक गया है, यह पाकर उसने अमृता की ओर देखा और अनिकेत से पूछा :

"*तू भविष्य को मानता है?*"

"अतीत और भविष्य दोनो को। कारण वर्तमान तो भ्रम है। क्षण से भी सूक्ष्म समय की कोई अविभाज्य इकाई लो और विचार कर देखो कि उतना-सा समय *भी वर्तमान है, ऐसा अनुभव किया जा सकता है क्या? जो आनेवाला है* उसका हमें पता नही होता, फिर भी 'वह' आनेवाला है ऐसा मानकर हम जीते हैं। शायद इसीलिए ही जीते हैं। किन्तु वह किस प्रकार तीव्र वेग से बह जाता

है—अतीत बन जाता है ? स्मृतिशेष हो जाता है। अतीत के सहारे
को प्रतीक्षा में ही जीना होता है। मानव के दो चरण—एक स्मृ
श्रद्धा की ओर।''

"मैं तो वर्तमान को मानता हूँ—अपूर्ण वर्तमान काल को—जो
मेरे लिए वह कभी पूर्ण नहीं होता। और जो मेरी पीठ-पीछे है
दिलचस्पी नहीं है। भूतकाल है, है ही। किन्तु जो मृत है उसके स
सम्बन्ध नहीं।" सिगरेट का धुआँ अमृता की ओर उड़ाते हुए उदयन

"मैं समय का विभाजन नहीं करती। ऐसा कर सकना सम्भव
समय तो शाश्वत है।"

शान्ति, नीरव शान्ति नहीं, केवल अशब्द शान्ति। क्योंकि ह
गुलाब का पौधा था। गुलाब के पौधे को हवा स्पर्श करे तो कैसी
होती है, यह जाननेवाले जानते हैं। अमृता जानती है। अमृता का
ओर था। उदयन और अनिकेत उसके सामने बैठे थे। गुलाब
पुरुषों के बीच की खाली जगह के कारण दिखाई देता था। पूर
देता था, अपने गमले सहित। गमले का रंग सिमेण्ट के ढेर-जैस
रंग प्रथम दृष्टि में ही आँखों को मसृणता का अनुभव कराते हैं। कु
अमृता के मन में प्रश्न हुआ। हाँ, सभी रंग नहीं। अन्यथा चयन
न हो।

पौधे के दो गुलाब अमृता की ओर झुके हुए थे। इतना ही
अपनी ओर उसका ध्यान भी खींच रहे थे। फिर भी दोनों के ब
अन्तर अवश्य था। एक केवल झुका हुआ ही लगता है, उसका मौन
है; दूसरा थोड़ा तिर्यक् लगता है। वातावरण की ओर से उदासीन
अपने लक्ष्य की ओर व्यंग्य की तीव्रता वह प्रकट करता था। अमृत
इस तरह एक गुलाब चुन ले, कि दूसरा हिले नहीं, पौधे को सँभ
तोड़ ले। दोनों में से यह, किन्तु फिर वह दूसरा ?...

सोचते-सोचते उसकी दृष्टि पौधे से गमले पर गयी। गमले क
पर एक अधखिला गुलाब औंधा पड़ा मुरझा रहा था। किसने तो
डाला होगा ? उसने स्वयं तो तोड़ा नहीं। यह पौधा उसी का ल
वही इसकी देखभाल करती है। तब....किसने तोड़ा यह फूल
बुलाकर पूछने का मन हुआ। प्रश्न होठों तक आया भी। तभी
उदयन ने सिगरेट का आखिरी कश खींचकर उसे नीचे डाला औ
दिया। छत पर से नौकर को पुकारने की आवाज़ नीचे तक प

न सुन पाये। शायद कोई और जाकर कहे, और वह दौड़ता आये!....ये सब ठीक नहीं। उसे बुलाने और उससे बात करते समय अनिकेत और उदयन का ध्यान बेमतलब खिंचे, इससे तो चुप रहना ही ठीक है। अमृता अशब्द रह सकती है।

उसकी दृष्टि उन दो गुलाबों के बीच एक से दूसरे पर सरकती रही। अनिर्णय की कठिनाई से बचने के लिए उसने पलकें नीची कर समुद्र की ओर मुँह किया।

सामने बैठी अमृता ने उसकी ओर देखा—यह देख तथा उसकी बंकिम ग्रीवा और कुछ खिंचे हुए वक्ष को देख उसने सन्ध्या के रंगों द्वारा अपने मनोजगत् में एक देहयष्टि की रचना कर ली। उसने अर्थात् अनिकेत ने। उसे लगा कि कल्पनामूर्ति जो उसने रची है इसलिए सुन्दर लगती है या कि वह स्वयं सुन्दर है। उसने फिर से अमृता की ओर देखा। वह कल्पना अदृश्य हो गयी। वक्ष-स्पर्श के लिए आतुर बनती दृष्टि को उसने समुद्र की ओर मोड़ा। समुद्र की लौटती लहरों के दूर से दिखाई देते अवरोह के साथ मिलकर अनिकेत की दृष्टि समुद्र में घुल गयी। उसकी आँखों में पूरा समुद्र उछलने लगा। बाह्याकर्षण से ही समुद्र में लहरें उठती हैं? या कि इस ज्वार में आन्तरिक बड़वानल का भी योग होगा!

अनिकेत तटस्थ होकर समुद्र की ओर देखने लगा। क्षितिज के एकदम पास उसे छोटी-छोटी नौकाएँ दिखाई देने लगीं। इनके पालों के साथ पवन के सम्पर्क से जगते शब्दों को चारों ओर की शान्ति सुनती होगी। आँखें मूँदकर उसने इस शान्ति को अनुभव करने का प्रयत्न किया।

उदयन अमृता के पास जाकर खड़ा हुआ। इतनी सहजता से वह खड़ा था कि देखनेवाले को लगे कि यह जगह उसके खड़े रहने के लिए ही है।

अपने एकदम नजदीक उदयन खड़ा है—यह देख अमृता को कुछ बोलना चाहिए था—

"क्या देख रहा है?"

"समुद्र! अनिकेत कह रहा था कि समुद्र बाद में भी होगा! बाद का तो मुझे पता नहीं किन्तु अभी तो देख लूँ कि समुद्र है या नहीं? और जो यह दिख रहा है वह समुद्र है या फिर उसका भ्रम पैदा करता कोई बड़ा गड्ढा?"

"समुद्र है मोशाय, समुद्र, इधर-उधर देखे बग़ैर ज़रा सामने देखो तो क्षितिज के उस पार भी फैला हुआ मालूम देगा।"

"क्षितिज के उस पार क्या है, इसका मुझे पता नहीं। [illegible] जानने की उत्सुकता नहीं। मुझे तो अपने आस-पासवालों में दिलचस्पी है।"

अमृता और अनिकेत को लक्षित करते हुए उदयन ने कहा।

"हम जिसे क्षितिज कहते हैं, वह क्या कोई यथार्थ है? या फिर हम कह
हैं इसलिए वह है? किन्तु अनन्त को हम देख नहीं सकते. इसलिए ऐसी कल्पि
सीमाएँ स्वीकार कर लेते हैं।" अमृता को लगा कि उसे उठना चाहिए।

"अमृता! तेरी कल्पित सीमा उर्फ़ क्षितिज, अभी सान्ध्य रंगों से भभ
उठी है। थोड़ी देर बाद यह समग्र भभक समुद्र के आभ्यन्तर अन्धकार में शमि
होगी। अन्धकार बाहर आयेगा। और जो अलग-अलग पदार्थ दिखाई देते
उनके अवकाश को भर देगा। फिर देखनेवाले को सब कुछ अन्धकार के स
में दिखाई देगा।"

"हमें अब चलना चाहिए उदयन!"

"चलते हैं। पर हाँ, अभी ही तो बात हुई है, भोजन का तो यहीं निश्चि
किया है न!"

"मैं तो भूल ही गया, माफ़ करना अमृता!"

"आप लोग जाने को तैयार हुए उस क्षण, आप लोग जा रहे हैं—यह दे
कर मैं भी भूल गयी थी। अच्छा हुआ, उदयन को याद आया। नहीं तो
आतिथ्य धर्म का क्या होता! माना कि इस बारे में आप दोनों में से कोई मु
शाप न देता परन्तु मैं जब अकेली खाने बैठती तब कैसी विचित्र स्थिति में होती
मैं ज़रा नीचे होकर आऊँ।"

अमृता की खाली हुई आरामकुरसी का कपड़ा सुन्दर लगा। कपड़े की बुन
वट में पुरातन शैली की डिज़ाइन थी। यह कपड़ा अभी अनियमित हवा के कार
यदा-कदा काँप उठता था। अनिकेत ने यह देखा। उदयन उठकर उस कुरसी
बैठा। अपनी खाली कुरसी को पैर से नज़दीक खींचा और आराम से दोनों
उसमें रख, जेब से सिगरेट केस बाहर निकाला।

"लेगा अनिकेत?"

"तू पीता है, उससे मुझे सन्तोष है।"

"त्याग के सन्तोष और अनुभव से प्राप्त सन्तोष में बहुत फ़र्क़ है दोस्त!"

"दो सन्तोषों की तुलना करने के लिए मैं सिगरेट-जैसी कड़वी चीज़
आज़माकर देखूँ?"

"तू कभी भी मेरा कहा नहीं करता अनिकेत! तू कैसा मित्र है।"

"जो करने में तेरा हित होगा वह करूँगा। नाहक़, मैं अपना अहित व
करूँ?"

"हित-अहित, अच्छा-बुरा ये सब सतही भेद क्या हमें स्वयं से दूर नहीं
जाते? ऐसा सब हिसाब करते समय मैं तो अपने को स्वार्थी लगता हूँ। अप

समग्र इस तरह बँट जाये यह उचित नही। हम अपने अस्तित्व के प्रति निष्ठावान रहें यह आवश्यक है।"

"मेरा लक्ष्य भी निष्ठा ही है। केवल अपने प्रति नही, समग्र के प्रति। बल्कि समग्र का ध्यान रहे तो स्वयं का उसमें समावेश हो जाता है।"

"मैंने भी यह सब पढा-सुना है। मुझे उससे कुछ लेना-देना नही है। तू क्या करता है आजकल ?"

"पढता हूँ।"

"वह तो करता ही है, दूसरा कुछ ?"

"अभी जो मैं पढ़ता हूँ, वह अपना लिखा हुआ। लिखता हूँ और पढता हूँ।"

"क्या, निबन्ध लिखा ?"

"ना, कहानी।"

"निबन्ध-जैसी होगी ?"

"कविता-जैसी भी हो सकती है। तू कल मेरे यहाँ आना, तुझे सुनाऊँगा।"

"कल तो मैं एक नृत्य देखने जानेवाला हूँ। एक अमरीकन नृत्य मण्डली आयी है। एब्सर्ड नृत्य के प्रयोग करती है।"

"तो आज ही चल। हालाँकि यह तो इसपर निर्भर करता है कि यहाँ से कब जा सकेंगे।"

"तुझे यहाँ से जाने की इच्छा होती है ?"

"तुझे पहले तो यह पूछना चाहिए कि यहाँ आने की इच्छा होती है ?"

"यह तो बिना पूछे भी समझ सकता हूँ।"

अमृता आयी। उदयन ने अपने पैर हटा लिये। अनिकेत खड़ा हुआ।

"क्यों खडे हो गये ?"

"घूमने जाने की इच्छा जगी। इस जुहू के किनारे घूमना मुझे अच्छा लगता है। किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम मिलते है।"

"अब अधिक मिलेंगे। मैं तेरे साथ आऊँगा।"

"कौन किसके साथ आता है, इससे कौन किस लिए आता है—अधिक महत्त्व का है। तो, तू बैठ। मैं ज़रा घूम आऊँ।"

अमृता असमंजस में पड गयी। उदयन बैठा है, उसे बैठने के लिए तो अनिकेत ने कहा भी है। अब उसे यही छोडकर अनिकेत के साथ जाना अजीब-सा लगेगा। शायद, यही मानकर उदयन बैठा रहा होगा कि मैं न जाऊँ।

अनिकेत सीढी उतर, मकान पार कर दरवाजे तक पहुँचता दिखाई दिया, तब तक तो वह एक कदम चल भी चुकी थी। उदयन ने यह देखा। अमृता

स्वयं के चल पड़ने से झेंप जाती, किन्तु उसने पैर दूसरी दिशा में मोः
उसने लाइट करने का विचार किया। जहाँ छत समाप्त होती थी औ
कमरे तथा एक दूसरे कमरे के बीच जहाँ सीढ़ी शुरू होती थी—वहाँ
लिए वह आगे बढ़ी। फिर लौटकर रुक गयी। उसने नौकर को बुला
थोड़ा पीछे आकर खड़ी हो गयी। 'डे-लाइट' बल्ब जगमगा उठा। अ
छाया ने उदयन के चेहरे को घेर लिया। दूसरा बल्ब जला। वह अधि
का दूधिया बल्ब था और उदयन के नज़दीक था। अमृता की छाया कि
से सरक गयी। फिर उसने देखा तो अपनी दो परछाइयाँ दिखाई दीं।

"अमृता! क्या अब बधाई दूँ; चलेगा?"

"मिल चुकी।"

"किन्तु अनिकेत को सबसे पहले कैसे पता चला?"

"प्रयत्न करने से।"

"यूनिवर्सिटी गया होगा।"

"हुँ।"

"उसकी सभी प्रोफ़ेसरों से अच्छी जान-पहचान है। किसी से कहा हो

"नहीं, ये कार्यालय गये थे। मालूम कर आये। वैसे भी मुझे पत्र इ
में मिल गया है।"

"परन्तु यह कैसा आदमी है। उसने मुझे बताया ही नहीं कि
पी-एच. डी. हो गयी है। मैंने तुझे फ़ोन किया तभी जाना। मैं जब उस
गया तो कहता है कि मैंने बधाई दे दी, तू जा। आग्रह किया तो कहने ल
आज मुझे पत्र लिखने हैं। कैसे-कैसे मूर्खों के साथ वह पत्र-व्यवहार करत
बहुत आग्रह किया तब कहीं शाम को आने के लिए तैयार हुआ। मुझे ल
कि मुझे अकेले ही आना चाहिए था। सचमुच आज मैं बहुत ही खुश हूँ।
है आज इस बधाई का अधिकारी मैं ही हूँ।"

"मेरे विकास में तेरा भाग है ही।"

"विकास शब्द का प्रयोग तो मैं नहीं करूँगा। सम्भव है, तेरी जा
निमित्त बना होऊँ। एकदम अस्वीकार करने की नम्रता मुझमें होती तो मैं अ
जितना प्रभाव डाल सकता।"

अमृता सुनती रही, कुछ बोली नहीं। हलके-हलके अँधेरे में दूर जात
अनिकेत दिखाई दिया। अमृता उसे देखने में मग्न हो गयी। उसे इस तरह
देखने से मानो उसके समीप पहुँच गयी हो। उसे विचार आया कि यदि अ
इस ओर देखे तो वह उसे अच्छी तरह देख सकता है। मैं तो प्रकाश में ख

"सरकने से तेरा पल्लू नीचे छू गया।"

"आभार ! तू मेरा बहुत ध्यान रखता है।"

अमृता ने पल्लू ठीक किया। उसने उदयन की ओर देखा नहीं। उसके मन में तृष्णा जागी थी। वह बोलती भी : अनिकेत...वह बोली नही। उसने उदयन की ओर देखा।

"तेरा एक अभिनन्दन समारोह रखा जाये तो ?"

"मजाक न करो।"

"तू आवे कि नही, अनिकेत तो सम्मान वग़ैरह में मानता है। ऐसे समारोहों में जाता भी है। किन्तु तेरे लिए ऐसा समारोह रखें और तू न आये तो ? हाँ, तेरी स्वर्णप्रतिमा रखी जा सकती है। उस निष्प्राण प्रतिमा पर तेरी आभा-द्युति आरोपित कर वक्तागण प्रशंसा करते रहेंगे, तेरे शुभेच्छुक आज तक तेरे सौन्दर्य की प्रशंसा करते रहे है। इस अवसर पर तेरी बौद्धिक क्षमता के विषय में बड़े-बड़े उद्गार प्रकट करेंगे। अनिकेत भी औपचारिकताओं का विरोध करता है, फिर भी किसी का सम्मान करने मे उसे विरोध नही। वह अवश्य ही तेरी प्रशंसा करे !"

"तुझे यह सब बोलना क्यो अच्छा लगता है ? तू तो किसी का गौरव करने में नही मानता।

"हाँ, नही मानता। परन्तु क्या नियमों के अपवाद नही होते ?"

"निरपवाद न हो वह नियम अपूर्ण कहलाता है।"

"इस सृष्टि में निरपवाद बहुत कम हैं, अमृता !"

"जो नही है, उसमें मुझे रुचि नही, उदयन !"

"अनिकेत अभी नही है।"

"ना, वह है ही। दूर होने से उसका होना शंकास्पद नही बन जाता।"

अमृता को खयाल आया कि उसने अनिकेत के लिए एकवचन का प्रयोग किया। उसकी अनुपस्थिति मे ऐसे बोल पडना सहज है। तो भी वह अपने शब्दों के प्रति इस तरह सजग क्यों हो गयी ? उदयन ने एक बार अमृता का अवलोकन किया।

"कई बार तू व्यर्थ तंग करता है, उदयन !"

"ऐसा ! मैं तुझे तंग करने में सचमुच ही सफल होता हूँ ? तब तो कहा जा सकता है कि मेरा तुझपर प्रभाव है।"

"तुझे जो भी कहना होता है वह तू सामनेवाले का विचार किये बिना कह सकता है।"

"तेरी बात सच है।" उदयन सिलखिलाकर हँस पड़ा। अमृता उसके हास्य

में संस्काररूप में प्रविष्ट होने के लिए प्रयत्नशील ऐसे तथाकथित मूल्यों को तोड़ूँ गा। यहाँ तो महामानव भी कितने सारे ! और प्रत्येक के उपदेश का भार विद्यार्थी के सिर पर। विद्यार्थी के स्वयं प्रस्फुटन की कामनावाले चैतन्य कोषों का क्या ? आदमी ऋण लेकर कितना टिक सकता है ! अपने अस्तित्व की तो किसी को चिन्ता ही नहीं है। अनिकेत कहेगा—मैं परम्परा को मानता हूँ। संस्कृति को मानता हूँ। विरासत को मानता हूँ। बग़ैर श्रद्धा के मैं जी नहीं सकता...। वह इस युग का आदमी ही नहीं...। इन दिनों अमृता उसकी ओर अधिक ध्यान देती है। मैंने उसका परिचय अमृता से न कराया होता तो आज तक वह उसे देख भी न पाया होता। अपनी स्वस्थता का कैसा प्रभाव जमा बैठा है। तिस पर तुर्रा यह कि अमृता के साथ एक निस्पृही की अदा से व्यवहार करता है। उसका बस चले तो इस तरह चले कि पैर ज़मीन को छुए ही नहीं और लोगों को बताये कि देखो मैं धर्मराज हूँ।

अमृता नादान है, मुग्धा है। अब मेरी ओर से औपचारिक बनती जा रही है। दस-दस साल के परिचय के बाद आज मानो वह मुझे अपना अन्तरंग मित्र ही न मानती हो। मैं उसके साथ कितना नियन्त्रित रहा हूँ। विचारों में उसे आत्मनिर्भर बनाने में मेरा कितना योगदान है, इसका उसे पता नहीं। उसे शायद अभी मेरी ऊर्जा का परिचय नहीं। मैं समीक्षा के क्षेत्र में नये मूल्यांकन स्थापित करूँगा। मैं ऐसे नये मानवमूल्य स्थापित करूँगा, जिसके केन्द्र में होगा—मानव का अस्तित्व। उपरनों और छायाओं से मुक्त—स्वाधीन अस्तित्व।

मैं देखूँगा कि कब तक लोग मुझे अस्वीकार करते हैं। मैं अपने रक्त में बहते वड़वानल के अन्तिम दाह तक जूझूँगा...अभी तो अमृता के मौग्ध्य की तरंगलीला देखता हूँ। देखता हूँ यह कब तक चलती है। मेरे साथ अब वह तटस्थ रहने लगी है। चाहता था, वह अपने पैरों पर खड़ी हो। मुझे नहीं मालूम था कि वह दूसरे की छाया का आश्रय लेने की कमजोरी बतायेगी। एक दिन अमृता मेरी क्षमता के सामने झुकेगी। और नहीं झुकी तो ? तो....तो, मैं क्या करूँगा ? उसे नगण्य मानकर मैं आगे बढ़ सकूँगा ? इतना सामर्थ्य मुझमें है ? प्रश्न के उत्तर में छायाकृति बनकर विवशता आ खड़ी हुई।"

कभी-कभी उग्र व्यग्रता के बाद उदयन को विवशता का अनुभव होता है।

वह उठ बैठा। पलंग के नीचे अस्त-व्यस्त पड़ी पुस्तकों को ठीक से स्टील के स्टैण्ड पर रखा। बचे पैसे बैंक में न रख, वह पुस्तकें ही खरीदता रहा है। स्टील के दोनों 'रैक' ठसाठस भर गये हैं। आड़ी-तिरछी ढेर-सी—जहाँ जगह देखी, वहाँ उसने किताबें रखी हैं। किसी और को जरूरी पुस्तक ढूँढ़ने पर भी न मिले और इसमें कुछ बुरा भी नहीं। उसने विचार किया कि अब पुस्तकें नहीं खरीदनी

है, इस बारे मे उसने निर्णय नही किया। निर्णय करने से पहले वह सोचता है। वह जानता है कि सिगरेट और पुस्तकों के बिना वह नही रह सकता।

पुस्तकें रखकर वह मुड़नेवाला ही था कि उसकी दृष्टि 'नोट्स फ्राम अण्डर-ग्राउण्ड' पर पडी। यह पुस्तक पढे काफी समय बीत गया। 'दोस्तोयेवस्की' ने इस पुस्तक द्वारा भव्यता एवं महानता से मण्डित मनुष्य का ग्रीक बिम्ब तोड डाला। 'जो कुछ तोड़ सके हैं—वे ही सच्चे धार्मिक हैं, शेष तो सभी लकीर के फ़कीर।' उदयन का यह एक प्रसिद्ध कथन है।

उदयन पुस्तक लेकर कुरसी पर बैठा। टेबल-लैम्प जलाया। उसका दृष्टि-क्षेत्र सामान्य पाठक की अपेक्षा बड़ा है। औसत पाठक से वह डेढ गुनी गति से पढ सकता है। वह पढता-पढता यहाँ पर आकर अटका—"आइ एम लीविंग आउट माई लाइफ इन माइ कार्नर, टाटिंग माइसेल्फ विद दी स्पाइटफुल एण्ड यूजलेस कन्सोलेशन दैट एन इण्टेलीजेण्ट मैन काण्ट बिकम ऐनी-थिंग सीरियसली, एण्ड इट इज ऑनली दी फूल हू बिकम्स ऐनीथिंग।" हाँ, जो समझता है, वह खामोश है। उसे कुछ बनने में रुचि नही।

उसने टेबल-लैम्प बन्द किया। दो कमरे के फ्लैट को ताला लगाकर वह नीचे उतरा। ताला बन्द हुआ है या नही, यह देखने की उसकी आदत नही। पहले भूख न थी, किन्तु अब कुछ लेने की इच्छा हुई। अमृता के घर सब मीठा-मीठा था, उसे अच्छा नही लगा था।

वह किसी होटल का आशिक नही। जब और जहाँ जो होटल पहले दिखाई दिया, उसी में वह खा लेता है।

मुख्य मार्ग पर पहुँचते ही उसकी दृष्टि मैगेण्टा रंग की कार पर पड़ी। अमृता की कार का रंग भी ऐसा ही है। गति भी ऐसी ही है, पर कार किसी और की होगी। वह भला इस समय यहाँ कहाँ? किस लिए हो! शंका होनी ही नही चाहिए, सोचता हुआ वह रास्ता पार कर रहा था कि एक कार ब्रेक लगने से खडी हो गयी। कार चलानेवाले सज्जन ने कहा—

"क्यों जनाब, ठिकाने पर पहुँचा दूँ?"

"नहीं, धन्यवाद। मुझे चलना है।"

"तो जरा सँभलकर चलिए न! बगीचे और रास्ते दोनो में एक ही तरीके से नही चला जाता।"

उदयन के चित्त में सोये क्रोध के नाग ने फन उठाया।

"आप सज्जन है या गँवार! एक विचार करते आदमी को कही इस तरह 'डिस्टर्ब' किया जाता है? बहुत जल्दी थी तो कर देते एक्सीडेण्ट। मुझे सँभल-सँभलकर चलने की आदत नही।"

"तो भी 'डिस्टर्ब' तो बड़ी जल्दी हो गये। मन उचटता है तो घर में रहना चाहिए। यह कैसा न्याय कि आपकी अस्थिरता के शिकार हम बनें।"

"इतनी ही ज़्यादा सावधानी रखनी हो तो सभी पैदल चलो न! अच्छा जाओ, मेरे पास समय नहीं है। न जाने, ऐसे कितने लोग पड़े हैं!"

"इन महाशय का ठिकाने नहीं लगता।" कार में बैठे दूसरे सज्जन से उस सज्जन ने कहा।

"आपको नहीं मालूम कि आप किससे बात कर रहे हैं!"

"मैं तो मानता हूँ कि आप पुरुष होंगे। बाक़ी तो खुदा जाने।"

"अच्छा भई जा! अपने खुदा को साथ ले जा। ऐसे हलके व्यंग्य सुनने की मुझे फ़ुरसत नहीं। लड़ना भी अमुक स्तर के आदमी के साथ ही हो सकता है। आप यदि इन्सान हैं तो इतना तो जानते ही होंगे कि यह धरती केवल वाहनों के लिए ही नहीं है। आपको इस तरह दौड़कर जाना हो तो पैदल चलनेवालों को थोड़ी भी जल्दी करने का अधिकार नहीं? अच्छा, अब जाओ। झगड़ा करने से मेरा सिर दुखता है।"

"एक मिनट।" बग़ल में बैठे सज्जन ने उदयन को रोका।

"मेरे मित्र को आपका परिचय कराऊँ।" यह कहकर उन्होंने संक्षेप में बताया कि यह हैं मिस्टर उदयन। यहाँ के एक निर्भीक पत्रकार और नयी शैली के कहानीकार। एक अड्डे पर मैं गुण्डों को पकड़ने गया था तब मेरी प्रार्थना पर ये मेरे साथ आये थे और गवाह के रूप में इन्होंने अच्छा काम किया था। कोर्ट में सफ़ाई-पक्ष के वकील को ऐसा बनाया कि उसकी बोलती बन्द हो गयी। जान-बूझकर ही मैंने पहले इनका परिचय नहीं कराया था। मुझे आशा थी कि सुन्दर भाषण सुनने को मिलेगा। किन्तु आज ये 'मूड' में नहीं लगते। दो वर्ष पहले एक बड़ी वक्तृत्व प्रतियोगिता में इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

गुप्तचर पुलिस के इन अधिकारियों की कार के रवाना होने के बाद उदयन वहाँ खड़ा रहा। उसे लगा कि उस आदमी के सामने देखने तक का विचार उसे क्यों न आया? इसका कारण उसे मिल गया। वह मानता रहा है कि इस शहर में सभी आदमी एक-से होते हैं। जिनसे परिचित होने की इच्छा हो ऐसे व्यक्तित्व ही कहाँ हैं? जिनमें थोड़ी-बहुत भी खुमारी हो ऐसे आदमी ही कहाँ होते हैं?

उदयन ने नाश्ता मँगाया। भूख जल्दी ही मिट गयी। बिल मँगाया। वेटर को आश्चर्य हुआ। लोग यहाँ समय बिताने ही आते हैं। उन लोगों के लिए नाश्ता-चाय विषयान्तर-जैसे होता है। उदयन ने अपने कमरे का दरवाजा खोला। तुरन्त ही टेबल लैम्प की स्विच दबायी और लिखने बैठा—"विचारशून्य

पाठ्यक्रम समितियाँ" कभी-कभी वह लिखता है तो उसका चित्त वाणी बनकर लावा की उग्रता से बहता है। शिक्षण क्षेत्र में काम करते सुविख्यात विद्वानों की निरक्षरता पर उसने विपाक्त प्रहार किये। लेख पूरा कर, टेबल पर सिर रखकर वह सो गया।

अनिकेत जब अपने घर आया तब नौकर खिड़की के पास खड़ा-खड़ा चौपाई गा रहा था। अनिकेत को आया जान उसने अपनी आवाज़ धीमी कर गाना बन्द कर दिया। अनिकेत को लगा कि उसने आने में जल्दी कर दी है। उसके आने से किसी की आवाज़ दब जाये यह उसे पसन्द नहीं, और जब किसी का प्रफुल्लित मन संगीत की लहरियों में आलोड़ित हो रहा हो तब विघ्नकर्ता बनना, यह तो एक अपराध है।

अनिकेत अब उसे गाना चालू रखने को कहे तो वह फ़रमाइश हो जायेगी। स्वान्तःसुखाय 'गायक को आग्रह करने में कैसा लगे? फिर भी उसने नौकर को गाना चालू रखने के लिए कहा ही।

"बाबूजी! मैं गाना क्या जानूँ? मैं तो हनुमानजी की तरह आपकी राह देखता था और चौपाई गा रहा था। आप बहुत देर से आये, भोजन भी ठण्डा होने आया।"

"अरे! मुझे अफ़सोस है दोस्त! तुझे कहना ही भूल गया। वहाँ से तुझे फ़ोन भी किया जा सकता था। आज मैं खाकर आया हूँ। ऐसा कर—अपने यहाँ लेता जा। अभी ही ले जाना ताकि बिगड़े नहीं। और अब सवेरे ही आना, अभी मुझे कोई काम नहीं है।"

"...इसके परिवार को हर रोज़ पर्याप्त भोजन मिलता होगा? अथवा खा लेने के बाद वे लोग तुरन्त न खा सकें, ऐसी स्थिति में होंगे? एक बार जाकर देख आऊँ। वे झोपड़े, वह सीलन-भरी हवा, नाक बन्द हो जाये ऐसी बदबू से बोझिल हवा...कितने सारे लोग वहाँ रहते हैं। उसके छोटे भाई-बहन, उसकी माँ सभी कैसी विकट स्थिति में रहते होंगे? यह युवक कब से मेरे यहाँ काम करता है, फिर भी मुझे इसके परिवार से मिलने की एक बार भी इच्छा हुई है? क्यों विशेष पृच्छा भी नहीं जगी? एक बार थोड़ा-बहुत पूछ लिया, फिर बस! इसके साथ भी मैं काम के अलावा कोई बात नहीं करता। एक दूसरे से अपरिचित रहने की यह कैसी आदत! अपरिचय में जीने की मेरी आदत-सी पड़ गयी है? आदमी को पहचानने की रुचि कैसे लुप्त हो गयी होगी? यह वर्तमान पर्यावरण का दोष है या फिर मेरे व्यक्तित्व की कमी? जैसा उदयन

कहता है—मेरे संस्कार क्या सचमुच सामन्तयुगीन हैं ? जितना रूढ़िवादी वह मानता है, उतना तो मैं नहीं ही हूँ।"

वह आलमारी में लगे दर्पण के सामने जा खड़ा हुआ। इस तरह दर्पण के सामने खड़े होकर खुद को देखा करना आत्मरति का लक्षण है ? थोड़े-बहुत आत्मराग के बिना आदमी जी सकता है ? इस आत्मरति और निज में निमग्न रहने में कितना अन्तर होगा ?

उसने आलमारी खोली। विषयानुसार रखी पुस्तकों के अनफटे फ़्लैपों के विविध रंग चमक उठे। अलग-अलग साइज़ की पुस्तकें एक साथ रखी होने से ऊपर की ऊँची-नीची सतह आकर्षक लगती थी। पुस्तक पढ़ते समय अनिकेत फ़्लैप उतारकर टेबल की दराज़ में रख देता है। पढ़ लेने के बाद फिर से चढ़ाकर उसे आलमारी में उचित स्थान पर रखता है।

उसने आलमारी बन्द की। पढ़ने की इच्छा न हुई। चश्मा टेबल पर रख, कपड़े बदलकर, हाथ-मुँह धोकर नयी स्फूर्ति के साथ वह झूले पर बैठा....मैंने इस आदमी को निकट से जानने का इसलिए प्रयत्न नहीं किया होगा कि उसके परिचय की मुझे कोई विशेष आवश्यकता नहीं। दूसरे में रुचि का कारण आदमी की अपने में रही- दिलचस्पी होती है, ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं है। यह जगत् स्व-अर्थों से जुड़ा हुआ है, यह ठोस वास्तविकता है। किन्तु आदमी केवल ठोस वास्तविकता से जी नहीं सकता। आकाश बिना वह रह नहीं सकता। भले आकाश को कोई शून्यावकाश कहे....

झूले के तकिये पर उसने पीठ टिका दी। बायें पैर के अँगूठे से उसने एक छोटा-सा पेंग लिया। फिर दोनों पैर झूले की फ़्रेम पर रखे। दोनों हाथों से तकिये के पीछे की छड़ें पकड़ीं। सामने दीवार पर लटका चित्र देखता रहा। गुलमोहर के परिपार्श्व में उषा की अंशतः प्रकट आभा को देख वह गाने लगा—

"तिमिर अवगुण्ठने वदन तव ढाँकी,
के तुमी मम अंगने दांडाले एकाकी।"

जो रहस्यावृत है, वह अधिक सुन्दर लगता है। 'के तुमी ?'

दोलन शमित हुआ, झूला स्थिर हो गया। स्थिरता का स्पर्श किये बग़ैर ही कुछ क्षण बीते।

वह खड़ा हुआ। बालों की एक लट भाल पर झुक आयी थी, इस तरह रोमाण्टिक दिखना उसे पसन्द नहीं। बाहरी हवा के स्पर्श से यह लट खुश-खुशाल हो उठी। आज हवा क्यों इतनी तेज है। बाल ठीक कर लिये और वह अपने मनपसन्द पानवाले की ओर चला।

वह पहुँचा। पान की दुकान के सामने खड़े मज़ाक़ करते तीन युवकों में से

एक अधिक उत्साह में लगता था। सामनेवाले को ताली देकर वह उछलता हुआ पीछे हटा। उसकी पीठ अनिकेत के कन्धे से टकरायी। अनिकेत ने उससे क्षमा माँगी। वह युवक और अधिक संकोच के साथ माफ़ी माँगने लगा। वह मानो उन्हीं की टोली में से एक हो ऐसी सहजता से अनिकेत ने सस्मित कहा—

"तुम जितनी गति से पीछे हटे थे उतनी ही गति से मुझे भी पीछे हटकर अपने को बचा लेना चाहिए था किन्तु मेरा अपने पर इतना नियन्त्रण नहीं है, इस कारण मुझे तुम्हारा स्पर्श सहना पड़ा। मुझे इसका दुःख नहीं है। तुमको आश्चर्य होगा कि मुझे इसका आनन्द है। तुम्हें आश्चर्य हो रहा है? कारण बताऊँ? आज अपनी जिन्दगी की औसत गति मन्द लगती है। उसे किसी भी धक्के का अनुभव नहीं होता। तुम-जैसे प्रफुल्लमना युवक से इस तरह टकराना, इस जमाने में दुर्लभ हो गया है। लोगों को इस तरह मुक्त कण्ठ से हँसते देख-कर मुझे आनन्द होता है। इसमें कोई व्यंग्य नहीं है। मैं व्यंग्य नहीं करता। यह मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं है।"

उन युवकों का आश्चर्य दुगुना हो गया। उन्होंने परिचय पूछा। जानकर उनका आश्चर्य आनन्द में परिवर्तित हो गया। प्रोफ़ेसर अनिकेत! वनस्पति-शास्त्र के अन्य अध्यापक भी अनिकेत के मत की प्रशंसा करते थे। साहित्य एवं अन्य कलाओं पर व्याख्यान हेतु अनिकेत को बुलाया जाता है। विज्ञान का अध्यापक साहित्य की रसप्रद मीमांसा करता है। यह मान्यता विद्यार्थियों तक तो निरपवाद है। विद्यार्थी-जगत् में वह दूसरे कारण से भी लोकप्रिय है। अपने शारीरिक सौन्दर्य, सिमेट्री और ग्रेस के लिए। विद्यार्थियों में एक यह मान्यता भी प्रचलित है कि उसे अमुक फ़िल्म के हीरो का ऑफ़र भी किया गया था किन्तु उसने इनकार कर दिया इत्यादि। एक दिन यह बात उड़ते-उड़ते अनिकेत के कानों तक पहुँची। उसने कुछ भी स्पष्ट न कर केवल मुसकरा दिया।

उन युवकों के साथ थोड़ी इधर-उधर की बातें कर उनके कॉलेज के अध्यापक-मित्रों को याद दिलाने को कहकर अनिकेत वापस मुड़ा। आग्रहवश ही अनिकेत ने उनका पान स्वीकार किया था। विदा होने से पहले उसने कहा:

"अब कब मिलेंगे? यह महानगर तो अमावस्या की रात्रि-जैसा है, तारों से भरा-भरा। कौन, कब, कहाँ हो, कुछ कहा नहीं जा सकता। लोग मिलें, परिचय प्राप्त करें किन्तु फिर न मिल पायें। और यह तो नियति का क्रम है। चलो, एक बार मिलने का आनन्द भी कुछ कम नहीं।"

जब अभिनन्दन मिलने लगे तब अमृता को पता चला कि समाचार अखबारों

में भी प्रकाशित हुए थे। शाम तक आते रहे अभिनन्दनों के जवाब में, सबका आभार मानते-मानते वह थक गयी थी। अच्छा हुआ कि शाम को अनिकेत और उदयन आ गये थे। आनन्द की एकरसता से उत्पन्न थकान से राहत मिली। उनके जाने के बाद अमृता को एकान्त का अनुभव होने लगा। जाते समय उदयन कुछ गम्भीर लगा था। अमृता ने मान लिया कि वह किसी चिन्ता में होगा, किन्तु चिन्ता में तो वह विश्वास ही नहीं रखती।

"...दस वर्ष से उसे देखती आयी हूँ। देखा तो उसे पहले भी था, दस वर्ष से तो परिचय कहा जायेगा। जब-जब उसे देखा है, वह किसी नये प्रश्न के साथ ही दिखाई दिया है। ऐसा लगता है मानो प्रश्न के अनुरूप ही अपना नया रूप धारण कर वह आया हो। एक साथ वह कितनी-कितनी जिन्दगियाँ जीता है।

आज वह उल्लसित लगा। उल्लास उसके चेहरे पर व्यक्त होता है, यह तो मैंने आज ही जाना। मेरी सफलता से खुश दिखाई दिया। आज कोई विशेष चर्चा भी उसने नहीं उठायी। नहीं तो प्रश्नों...चर्चाओं...विसंवादों...व्यंग्य...कटुतर्कों से वह वातावरण को घँघोल डालता है। कोई विवादास्पद मुद्दा न हो तो भी ऐसा मानकर बोलता रहेगा कि वह सबसे अलग ही है। आज वह मुझमें कुछ अलग तरह से रुचि दिखाता लगा।

अनिकेत तो शायद ही आता है। ऐसा लगता है कि वह अपनी इच्छा से नहीं आया। उदयन को लगा कि मैंने उसकी ओर विशेष ध्यान दिया। उदयन कुछ भी कहे बग़ैर रह नहीं सकता। और अनिकेत? वह बहुत कम बोलता है। ...अकेला ही घूमने चल दिया। इस तरह दूर जाकर अपना स्थान सूचित ...था। ...तीरे...विहरे एकलता!' कैसी एकलता? किसकी ... अपनी बात करता होगा? निरुद्देश्य बोल पड़ा ...। कुछ भी निरुद्देश्य कैसे हो सकता है?

... करता है, मानो अभिजात सौजन्य का ... सुन्दर चेहरा...उसकी वाणी, कुछ भी ... है, हृद्य लगता है। उसके सौन्दर्य ...पन ही उसे यहाँ खींच लाता है। ...पने साथ न लाये। अनिकेत की ...ें होता है। वातावरण के केन्द्र

...ल जाता है। उसके बाद ... बन्द होंठ मुझे अच्छे नहीं

अमृता

लगते। वह क्यों इतना कम बोलता है ? जिसका जैसा स्वभाव। मैं कौन होती हूँ, नापसन्द करनेवाली। मगर...शायद वह कम नही बोलता है। उदयन जो कुछ बोल गया हो, उसका एक वाक्य में जवाब होता है, और दूसरे वाक्य में उदयन को फिर से बोलने को मजबूर करती शान्त उत्तेजना।

अनिकेत विदग्ध है, उदयन निरालस। एक शान्त लगता है, दूसरा आक्रामक। किन्तु सत्ता मे शायद दोनो की रुचि एक-सी है। दोनो में से कोई भी अपने को भूल नही सकता। किन्तु हाँ, अनिकेत सामनेवाले का अधिक ध्यान रखता है। दो वर्ष हुए, कम परिचय नही कहा जा सकता। अपने सम्बन्ध में उसने मुझे कभी कुछ भी नही बताया। मैंने ऐसा किया, मैं वैसा करना चाहता हूँ, और मुझे विश्वास है कि...ऐसे-वैसे शब्द बोलने मे उसे बिलकुल दिलचस्पी नही है। क्या अपने विषय मे बात करने की वृत्ति ही उसमें नही होगी ? तब उदयन इतना अधिक क्यों बोलता है ? वह अपना प्रभाव डालने का प्रयास करता है ? ऐसा न भी हो। उदयन सच्चा आदमी है, मुझे अपने साथ बात करते समय भी ऐसे कथन नही करने चाहिए। शायद मुझे दोनो का थोड़ा ही परिचय है। पूरी तरह पहचानने के बाद किसी के सम्बन्ध मे अधिक कहने की आवश्यकता नही रहती। जो लोग ईश्वर को नही पहचानते, वे ही ईश्वर के सम्बन्ध में सबसे अधिक बोलते है। इस तरह उदयन ईश्वर को अस्वीकार करने के लिए भी उसका नाम कितनी बार लेता है...। मगर वह तो, उस दिन कहता था—आदमी कभी एक दूसरे को पूर्णतया नही पहचान सकते। अब देखो न, हम लोग दस वर्षो से एक-दूसरे से परस्पर मिलते रहे है, फिर भी क्या एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानते है ?

उदयन ईश्वर को नही मानता, फिर भी अनिकेत उसे नास्तिक नही कहता। ईश्वर के बारे में अपना विश्वास व्यक्त नही करता, विवाद नही करता। कहता है, 'मैंने इस सम्बन्ध मे विशेष विचार ही नही किया और यह काम मेरी क्षमता के परे है। इतने महापुरुषो ने अपने जीवन कार्यों की फलश्रुतिस्वरूप जो कुछ कहा है, उसे मान लेने मे मुझे कोई आपत्ति नही। और फिर ईश्वर को स्वीकारने से मेरे दायित्व का बोझ हलका हो जाता है। इतने विशाल विश्व में स्वयं को स्थापित करने के प्रयास में मुझे कोई रुचि नही।'

किन्तु क्या यह नम्रता का अभिमान नहीं कहा जा सकता ?

मेरे प्रति उदयन का रुख अब प्रकट और स्पष्ट है। किन्तु अनिकेत के मन में कुछ व्यक्त होने के लिए छटपटाता नही होगा ? क्या वह मेरी ओर किसी प्रकार की लालच के बिना देख सकता होगा ? उसकी आवाज तो रागात्मक है...। उसका जन्म ही मानो चाहने के लिए ही हुआ है। मेरा कितना खयाल रखता है वह।

तो क्या इसे अनुराग नहीं कहा जायेगा ? पिकनिक से वापस लौटते समय उसने उदयन की बात का कैसा विरोध किया था ? 'विजातीय आकर्षण अपरिहार्य है।' मैं भी मानती थी कि इस उक्ति का तो अनिकेत विरोध नहीं ही करेगा। किन्तु उसने तो कहा, 'यदि स्त्री-पुरुष आपस में उसी तरह व्यवहार करें, जिस तरह एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ करता है, तो वह व्यवहार अधिक सहज और स्वाभाविक होगा। सेक्स के प्रति अधिक सहज रहनेवाला नॉर्मल नहीं होता, असामाजिक होता है।' क्या अनिकेत का व्यवहार मेरे प्रति सहज है ? क्या जो दिखाई देता है, वही यथार्थ है ? मेरे सौन्दर्य के प्रति क्या वह उतना ही उदासीन है, जितना दिखता है ? और विद्या के क्षेत्र में मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसका क्या उसके मन में कोई विशेष मूल्य नहीं है ?

मुझे ऐसे विचार क्यों आ रहे हैं ? क्या मैं अपनी प्रशंसा सुनने की इच्छुक हूँ। उसका मौन तोड़ने में इतनी अधिक रुचि मुझे क्यों ?

कई बार तो उसका मौन इतना घना होता है कि सामनेवाले को व्यग्र कर दे। किन्तु वह 'श्रूड' नहीं है। शालीन लगता है। 'प्रणाम !' विदा होते समय उसने मुझे प्रणाम कहा। मैं उसे उत्तर देना ही भूल गयी। उदयन के सामने देख 'गुड-नाइट' कहकर मैं वापस मुड़ी। अनिकेत के 'प्रणाम' का उत्तर न देने में क्या मेरी भूल हुई है ? क्या मैं भूल गयी थी ? या फिर मेरा समग्र ध्यान अनिकेत की ओर केन्द्रित था ? इसीलिए मैं उदयन के सामने देखकर बोली थी। क्या यह अपने प्रति मेरी वंचना नहीं है ? किन्तु मैं उदयन की अवहेलना कहाँ करती हूँ ? उसके मुझपर कम उपकार नहीं हैं।''

अपने एयर-कण्डीशन कमरे से अमृता बाहर आयी और नीचे उतरी। बँगले के सामनेवाले बगीचे के दायीं ओर का झूला शाम के समय खाली होता है। उस ओर के सभी पुष्पपादप अमृता की रुचि के अनुसार ही लगाये गये हैं। सब जानते हैं कि कभी-कभी रात के नौ-दस के बीच इस झूले पर आकर बैठती है।

वह झूले पर बैठी, इससे पहले तो खुशबू उससे लिपट गयी। यह किस फूल की सुगन्ध है ? वह पहचान न पायी। पहचानने की जरूरत भी उसे महसूस न हुई। पहचानने से प्राप्त करना—अनुभव करना अधिक तृप्तिदायक है। वह झूले पर लेट गयी और बायें पैर से झूले को गति देने लगी। उसे 'ब्रा' में अपना वक्ष खिंचता महसूस हुआ। झूले पर इस तरह लेटे रहने से ? ऐसा तो नहीं होता। उसे 'शाकुन्तल' का प्रथम अंक याद आया : ''सखी अनसूया, अधिक खींचकर बाँधे वल्कल से प्रियंवदा ने मुझे जकड़ दिया है, जरा इसे ढीला तो कर !'' अनसूया जब वल्कल ढीला करती है तो प्रियंवदा नटखट स्मित के साथ कहती है : ''इसके लिए तो पयोधर को विकसित करनेवाले अपने यौवन को ही दोष

दे न, मुझे क्यों देती हैं ?" शकुन्तला के स्थान पर अमृता ने स्वयं को स्थापित करने का प्रयास किया। मेल नही बैठा। युगों का अन्तर पड़ गया है। ऐश्वर्य और मृदुवचन पर मुग्ध होनेवाली वह नही है। शकुन्तला ने जो तपस्या बाद में की वह पहले कर लेना अधिक उचित है। जागृति रहित समर्पण का क्या अर्थ ?

दरवाज़े की शोभा बढ़ाते दस-दस फ़ुट ऊँची दो मीनारों के शिखरों पर लगे गोल दूधिया बल्ब ऐसे लगते हैं मानो अपने ही भीतर प्रकाशित हो। बाहर की दुनिया के सन्दर्भ में वे बेमेल लगते थे। और फिर भी जो प्रकाश बाहर था, वह उन्हो का था।

धीरे-धीरे रजनीगन्धा की महक बढती गयी। अपनी देह को ढीली छोड़कर अमृता सुगन्ध का अनुभव करती रही। थोड़ी देर में तो उसे लगा कि उसका श्वास भी महकने लगा है। उसे लगा कि वह अपने-आपको भूलकर इस वातावरण में घुल जाये, तो कैसा अच्छा हो ?

उसे लगा वह अब सोने ही वाली है। कल सायं साढ़े आठ बजे जब अनिकेत का फ़ोन आया, तो पहले उसे विश्वास नही हुआ। नौकर ने सुनने में भूल की होगी ? उदयन का फोन होगा। अनिकेत इस समय फोन नही कर सकता, किन्तु जब उसने आवाज सुनी तो वहाँ कोई उसका चेहरा देखनेवाला न था : "अभिनन्दन...बधाई। बहुत प्रसन्नता हुई डॉक्टर अमृता !" अत्यानन्द भी अस्वस्थ कर देता है। नींद न आयी।

वह झूले पर से उठ गयी।

शयनकक्ष में जाकर लेट गयी।

हलके जामुनी रंग का छोटा बल्ब पलंग की सफ़ेद रेशमी चादर पर स्पर्श-मधुर नीलिमा बिछा रहा था। अमृता ने करवट बदली। आँखें बन्द की। सेमल के रेशों से बना एक फूल-सा हलका तकिया मुँह पर दबाया। एक-दो बार हाथो के हिलने से हुई कंगनो की खनक के अतिरिक्त उसके सोने से पहले और बाद में कमरे में शान्ति थी।

निद्राधीन अमृता के चित्त में रजनीगन्धा की सौरभ नये रूप में छा गयी। झूले पर जन्मी आनन्दलय यहाँ भी उपस्थित हो गयी। उसने देखा—

निस्तब्ध ज्योत्स्ना और प्रातःकालीन उजास एक-दूसरे में ऐसे घुल गये हैं कि उसके बँगले के प्रांगण में मानो अलकानगरी के किसी प्रासाद के परिवेश का निर्माण किया गया हो। उसे नृत्यगीत सुनाई दिया। हवा की प्रकम्पित ऊर्मियाँ कहाँ से इस वातावरण-प्रेमियों के मिलन से प्रात लोचन का उन्माद खीच लायी ? किसने अमृता को नृत्यांगना का वेश पहनाया ? पैरों को चचल करने के लिए उद्यत नूपुर उसने देखे। देख न सकी। नूपुर-ध्वनि सुनाई दी। वह नाच उठी।

उसके दृष्टिक्षेप में विद्युत् की चमक थी। उसका नृत्य-समारोह देखने दो गा आते दिखाई दिये। दूसरा थोड़ा पीछे था। उसके पैरों में कुछ संकोच चेहरे पर हर्ष का अतिरेक था। दोनों प्रवेश-द्वार पर आ खड़े हुए। उनके के ऊपर से होकर श्यामल मेघघटा गुज़र रही थी, वह भी ठहर गयी इन्द्रधनुष बना।

नृत्य रुक गया।

नृत्यांगना प्रवेश-द्वार के पास गयी। वह सार्थकता का अनुभव कर थी। जाकर ऊपर की ओर देखा तो वहाँ कोई नहीं था।

अमृता ने करवट बदली।

तीन

अमृता ने परदा हटाकर खिड़की खोली। शीतल उजाला उसके कमरे में घु आया। पूर्व दिशा प्रभात में परिणत हो गयी थी। सूर्यागमन के पूर्व का आह्ला हवा के अणु-अणु में झिलमिला रहा था।

यह कमरा अमृता के शयनकक्ष से लगा हुआ था। यह 'एयरकण्डीशण्ड' नह है। सब कुछ समशीतोष्ण हो जाये, ऐसा उसे अच्छा नहीं लगता, बाहर की हव का भी सम्पर्क बना रहना चाहिए। वह सवेरे जागने के तुरन्त बाद इस कमरे चली आती है। इसकी चारों दीवारों में आलमारियाँ हैं। पूर्वी दीवार क आलमारी में वे वस्तुएँ हैं जो उसे पुरस्कार में मिली हैं। दक्षिणवाली आलमारं में पुराने जमाने में काम में आनेवाले बरतनों की आधुनिक आवृत्तियाँ हैं। कुछ शिल्पाकृतियाँ हैं। उनमें सिद्धपुर के रुद्रमाल के एक अवशेष की अनुकृति है, एव प्रतिमा राधाकृष्ण की है, तांबे की बनी नटराज की एक प्रतिमा है, स्वर्णपत्रमण्डित हाथ में कुम्भ लिये धन्वन्तरि की भी एक प्रतिमा है। पहले संगमरमर का बना एक छोटा ताजमहल भी था, किन्तु एक दिन उसपर उदयन की नज़र पड़ी, "इस क़ब्र को तूने घर में क्यों रख छोड़ा है? चल इसे मैं यहाँ से ले जाता हूँ।" वह ले गया। उसने बाद में उसका क्या किया पता नहीं, अमृता ने पूछा अवश्य, पर लगभग एक वर्ष के बाद। तब उसे उत्तर मिला था, "पहले थोड़े दिनों तो किसी क़ब्रिस्तान की खोज की, वहाँ रख भी आता पर फिर एक दिन समुद्र में फेंक दिया।" अमृता उसके सामने ताक रही थी। उदयन ने कहा था, "ताजमहल

को देख मुझे शाहजहाँ याद आता है, न कि उसका प्रेम। इस क़ब्र को प्रेम का घनीभूत आँसू कहने की भावुकता मुझमें नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि शाहजहाँ प्रेमी नहीं कामी था। जब वह युद्ध में जाता था तब भी वह मुमताज़ को साथ ले जाता था।" अमृता की इच्छा हुई कि कह दे—"पर तू कहाँ उसके तम्बू का द्वारपाल था जो कि उसपर ऐसा आक्षेप करने का अधिकार रखता हो।" पर कह न सकी। ऐसा कहने का मन होते ही लजा गयी थी अथवा यूँ कहना चाहिए—लज्जाशील तो वह है ही, उसके चेहरे पर अतिरिक्त लज्जा उतर आयी थी।

यदि उदयन मिलने आये और अमृता बाहर गयी हो या व्यस्त हो तो उदयन इस कमरे में बैठता है। 'विमण्ट वॉन घोघ' का 'सोरो' चित्र देखता रहता है। अमृता ने अपने घरवालों की इच्छा के विरुद्ध यह चित्र दीवार पर टाँगा था, यह जानकर उदयन ने उसे शाबाशी दी थी। यह चित्र देखने के अलावा वह कला-विषयक पुस्तकें उलटता-पलटता है। वह इनका 'महँगी पुस्तक' कहकर परिचय देता है। अमृता पहले उदयन द्वारा अस्त-व्यस्त की गयी पुस्तकों को ठीक करती है, फिर उसके लिए चाय-नाश्ता ले आती है।

आज अचानक अमृता को ध्यान आया कि बहुत दिनों से उदयन इस कमरे में नहीं आया। वह कमरे से बाहर निकली और पश्चिम की ओर उस बालकनी में पहुँची जहाँ कल उदयन और अनिकेत के साथ वह बैठी थी।

वह समुद्र की ओर टकटकी लगाये देखती रही। उसकी घनी खुली केशराशि में जहाँ-तहाँ अवकाश खोजकर सूर्य की किरणें कपोलों पर स्थिर होने लगीं। सूर्य की ओर घूमकर उसने मन ही मन प्रणाम किया। अमृता बारह वर्ष की कन्या थी, तभी से सूर्य की उपासिका है। उसके एक-दो वर्ष बाद उसका उदयन से परिचय हुआ था। सूर्य के प्रति श्रद्धा अमृता को उसकी माता से उत्तराधिकार में मिली है, जिस प्रकार माँ के साथ उसका सम्बन्ध तर्कातीत था वैसा ही सूर्य के प्रति उसकी श्रद्धा के विषय में भी कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में उदयन का कोई परोक्ष प्रभाव भी उसपर नहीं पड़ा था। प्रणाम करनेवाले व्यक्ति अनिकेत को अच्छे लगते हैं। वह भी लोगों को प्रणाम करता है। कल रात जाते समय उसने मुझे प्रणाम किया...

एक बार टैक्सी में वी पी. रोड से गुज़रते हुए अनिकेत ने कहा था—"मैं यहाँ सिक्कानगर में रहता हूँ। एफ नम्बर . " क्या नम्बर बताया था ? हाँ, हाँ, याद आया।

आज कहीं बाहर तो जाना चाहिए। कहाँ जाना है, यह शायद मन में तो पहले ही तय हो चुका था, पर अमृता मानो अपने से ही कुछ छिपाना चाहती थी, इसलिए शब्दों में वह इस प्रकार सोचने लगी—"कहाँ जाऊँ ? अनिकेत के घर

Adarsh Library Adarsh Nagar
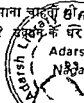
जाऊँ ? किन्तु आज मुझे निरानन्द नहीं होना। वह तो पहले मेरे आनन्दातिरेक को देखकर उसे कम करेगा। आज तो बस आनन्द ही जीना है। किन्तु अकेले बैठकर आनन्द अनुभव करने में मज़ा नहीं आयेगा। किसी सहेली के घर जाऊँ ? या तो तास खेलने बिठा लेगी या फिर इसकी-उसकी बातें करती रहेगी। तो कहाँ जाऊँ ? अनिकेत....क्या उसके यहाँ जाया जा सकता है ? कैसा लगेगा उसे ? सुबह के समय इस तरह जाना...पर मैं कहाँ उसे तकलीफ़ देने जा रही हूँ ? वह मेरे यहाँ आता है तो मुझे भी उसके यहाँ जाना चाहिए ? बस...अनिकेत के घर जाऊँ। उदयन को साथ नहीं लेना है। वह साथ होगा तो पत्थर की तरह व्यवहार करेगा। उसे आज तो लटकने ही दो। बाद में इस प्रसंग को याद कर-करके उसे चिढ़ाया जा सकेगा।"

कितने वर्षों से शान्त पड़े हुए किशोर भाव अमृता के मन में जाग रहे थे। बस, जाना ही है। क्या पहनूँ आज ? एक दिन अपनी-अपनी पसन्द की वस्तुओं की चर्चा चल रही थी। अनिकेत ने अपनी पसन्द यूँ बतायी थी—'शुभ्रवस्त्रावृता सरस्वती का बिम्ब'।

उसने एक सफ़ेद फुलवॉयल की साड़ी पहनी। डबल मोतियों की माला का छोटा-सा पेण्डल आगे आ गया। मोतियों के ही कर्णफूल उसने हाथ में लिये। दर्पण के सामने आ खड़ी हुई। शृंगार पूरा हो चुका था, तो भी थोड़ी देर तक अपने को निहारती रही। कार का हॉर्न सुनाई दिया। ड्राइवर ने कार तैयार कर दरवाजे के आगे खड़ी की होगी। अमृता ने उसे शाम तक की छुट्टी दी।

अमृता ने आज दूसरा रास्ता पसन्द किया था। उदयन साथ होता है तो घोड़बन्दर रोड होते हुए गोखले रोड और वर्ली रोड पर से गुज़रना होता था। समुद्र से कम दूरीवाले रास्ते उदयन को अधिक पसन्द हैं। आज दूसरे रास्ते पार कर जब अमृता ग्राण्ट रोड तक पहुँची, तब एक बात उसके खयाल में आयी। आज वह सब कुछ दो दृष्टियों से देख रही थी। एक दृष्टि आकाश में से बम्बई पर उतर रही थी, तो दूसरी कार के काँच में से गुजर रही थी। इस तरह दो नजरों से देखने पर बम्बई उसे अधिक अच्छी लगी।

"यस प्लीज़ !" घण्टी सुनकर अनिकेत खड़ा होने को हुआ कि उसे याद आया, दरवाज़ा बन्द नहीं है। उसने थोड़ा ज़ोर से कहा, "आइए, द्वार खुले हैं।" अनिकेत नहीं जानता था कि वह किसे बुला रहा है। धोती-बनियान पहने हुए आरामकुरसी में बैठे-बैठे महोदय एक अँगरेजी पत्रिका पढ़ रहे थे। दरवाज़ा खुलते ही मानो पूरा मकान उसकी आँखों में डोल उठा।

साक्षात् सुन्दरता दहलीज पर आकर खड़ी है। अमृता क्षण-भर रुकी। उसने दायाँ हाथ शाह पर रखा और अभिराम ग्रीवाभंग करती खड़ी रही। अनिकेत

ने देखा कि उसके थमने से खुले द्वार का अवकाश अपने बीच अमृता को पाकर द्युतिमय हो उठा है।

"तो एक क्षण अभी और खड़ी रहिए, पूजा की सामग्री ले आऊँ। ये आप ही हैं, अमृता ही हैं, यह अब तो सच लगता है। दृष्टिभ्रम तो नहीं ही है। अतः आपका स्वागत करता हूँ।"

अमृता भीतर चली आयी। उसके साथ-साथ एक अपरिचित विश्व भी भीतर चला आया था। अमृता के इस तरह आगमन की तो उसने कल्पना तक न की होगी। उसे अपूर्व आश्चर्य में डूबा देख अमृता बोली—

"मुझे देख आपको आनन्द हो रहा है और यह देख मुझे आश्चर्य हो रहा है। मैं तो सोचती थी कि आप गम्भीरतापूर्वक कहेंगे—आइए, पधारिए डॉक्टर अमृता!"

"हाँ, हाँ, आइए! पधारिए डॉ अमृता! बैठिए, आपके आगमन से यहाँ का वातावरण बदलकर एक नये रूप में विलस रहा है। वह अब आपको किन्हीं भी शब्दों में सम्बोधित करने पर भी यहाँ से छिटककर बाहर जा सके, यह सम्भव नहीं। इसलिए अब द्वार पर खड़े रहकर रोकना जरूरी नहीं है।"

"आप दो बार—'आओ', ऐसा कहें इसकी राह देखती थी, क्योंकि बिना समय माँगे ही आ पहुँची हूँ।"

"समय को लिया या दिया नहीं जा सकता। वह निराकार है, बेरंग है। इसे एक बिन्दु से आरम्भ कर किसी निश्चित बिन्दु पर पूरा नहीं किया जा सकता। वह चिरन्तन है। उसका इस प्रकार आदान-प्रदान करना हमारे वश में नहीं है। हम तो उससे निरपेक्ष रहकर जो अपने अधिकार में है उसी का आदान-प्रदान कर सकते हैं।"

"आप तो दार्शनिक हो गये।"

"आपके दर्शन मात्र से, ठीक है न! अन्यथा मैं कहाँ आपकी तरह दर्शन-शास्त्र का अध्येता हूँ? मैं तो केवल दर्शक हूँ।"

"बहुत नम्र मत बनिए, नहीं तो मुझे विरोध करना पड़ेगा।"

"यह कहकर आपने बहुत कुछ कह दिया।"

अमृता का स्मित होंठों पर बँधा नहीं रहा अपितु उसके पूरे चेहरे पर फैल गया। इस स्थिति में मोतियों की माला और कर्णफूलों की शोभा भी द्विगुणित हो उठी।

वह झूले पर बैठी। झूले के आरोह-अवरोह से उसके प्रभातरल अंग अनिकेत को किसी स्वप्नसृष्टि में खींच ले गये। इस तरह आकर तुरन्त झूलने लगना अमृता को शायद पसन्द न आया हो। उसने झूला छोड़ा। खाली झूला अपनी

गति की अर्थहीनता सह लेने को विवश हो गया। सामनेवाले शीशम के स्टैण्ड पर रखी पत्र-पत्रिकाएँ देखने अमृता गयी है, यह देखकर अनिकेत बग़ल के कमरे में गया और रेशमी कुरता पहनकर आया। महिलाओं की उपस्थिति में इस तरह बनियान पहनकर नहीं बैठा जा सकता, ऐसा वह मानता होगा।

"तमाम विषयों की पत्रिकाएँ मँगाते हैं। आपकी रुचि व्यापक है।"

"वर्तमान विश्व से असम्पृक्त रहकर हम कैसे जी सकते हैं? हालाँकि ये सब पत्रिकाएँ तो परिचय, सम्पर्क मात्र के लिए ही हैं। एक-दो विषयों के अतिरिक्त अन्य में शायद ही गहरा उतरा जा सकता है। अपवादरूप कोई उदयन-जैसा व्यक्ति ही यह कर सकता है, जो बग़ैर शान्ति के चला सकता हो। अपने विषय को अन्य विषयों के सन्दर्भ में जाना जा सके केवल इसी दृष्टि से मैं ये सब पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ता हूँ। ज्ञान और विद्या के क्षेत्र में संसार कितना सारा आगे बढ़ रहा है। हम लोग तो थोड़ी-बहुत जानकारी से मन को बहला लेते हैं।"

अमृता रिवाल्विंग कुरसी पर बैठी थी। अनिकेत खड़ा था। अब वह झूले पर बैठा। झूला स्थिर रहा। टेबल के पाये से अँगूठे को टिकाकर अमृता ने कुरसी घुमायी। अपने को अनिकेत के सम्मुख कर बोली—

"मैं मानती थी कि..."

अनिकेत की नज़र उठी, बीच में ही अमृता की नज़र से मिली। पतले धारदार होठ स्मित को रोकने के प्रयास के बावजूद फैल गये। अमृता ने नज़र झुका ली। अपने आनन्द पर नियन्त्रण नहीं लाया जा सकता, यह उसे नहीं रुचता। मौन का आश्रय लेने से भी कोई परिणाम नहीं निकलता। शायद विपरीत परिणाम आता है। इसलिए उसने अपने मनोभाव को अलग तरह से मोड़ने का प्रयत्न किया—

"आपकी मुसकराहट क्या सूचित करती है, मैं समझी नहीं।"

"कोई अर्थ नहीं, केवल आनन्द। काव्यशास्त्र की परिभाषा में रूपान्तरित कर कहूँ तो सभी परतत्त्वों से सद्यःनिवृत्ति देनेवाला आनन्द। आनन्द, मात्र आनन्द।"

"सच, तब तो मेरे लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं रहा।"

"आनन्द की सृष्टि में चिन्ता का प्रवेश निषिद्ध है। आपको आश्चर्य लगेगा जब आपको देखा तो मुझे ग़ालिब का एक शेर याद आया। उन दो पंक्तियों में रहे बिम्ब का अनुभव मुझे आज आपके आकस्मिक दर्शन से हो गया। कितने वर्षों पहले याद की गयी उन पंक्तियों की अनुभूति आज हुई।"

"सुन सकती हूँ।"

"हाँ, सुनिए। किन्तु पहले एक स्पष्टीकरण कर लूँ ताकि आपको बुरा न

लगे। इन पंक्तियों को सुनाने में मुझे इसे सुनाने के सिवा अन्य अभिप्रेत नहीं है। अतिथि को कुछ अन्यथा न लगे इसका मैं खयाल रखता हूँ। तो सुनिए—

"वो आये हमारे घर में, खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं॥"

अमृता ने ये पंक्तियाँ सन्दर्भरहित मानकर ही सुनी थी। किन्तु कुछेक क्षण पूर्व की घटना ने स्वयं ही सन्दर्भ उपस्थित कर दिया। अमृता का रुका हुआ स्मित कब लज्जा में परिवर्तित हुआ इसकी खबर अनिरुद्ध को भी न हुई। नौकर ने चाय-नाश्ता लाकर रखा। तीसरे की उपस्थिति से दोनों ने भावात्मक विवशता में से मुक्त होने की थोड़ी राहत महसूस की।

"क्या कार्यक्रम है, आज का? बाहर निकलने की अनुकूलता है या नहीं?'

"आपने कुछ सोचा है। तैयार होकर ही आयी लगती हैं, फिर पूछने की आवश्यकता नहीं है, आदेश पर्याप्त होगा। मुझे थोड़ा काम है, आध-पौन घण्टा इसमें जायेगा। एक गुरुजी का यहाँ के किसी होटल से फोन था। थोड़े दिनों पहले उनका पत्र भी था। वे मुझे कुछ काम सौंपना चाहते हैं। मैं उनका आदर करता हूँ। उनसे मिल आऊँ। एतराज तो नहीं है न?"

"चलिए, मैं आपको वहाँ तक पहुँचा दूँ।"

"इससे उत्तम और क्या हो सकता है? पर आपको एतराज न हो तो ऐसा कीजिए कि उदयन को मिल आइए और किसी काम में न हो तो साथ लेते आइए।"

"उसे फ़ोन करूँ तो न चले।"

"तो ऐसा कीजिए। पर, पड़ोसी कभी-कभी उसको बुलाते नहीं हैं। कह देते हैं कि वो तो नहीं है। और उनका भी दोष नहीं है। कई बार उदयन घर खुला छोड़ बाहर गया हो—ऐसा भी होता है।"

"मैं उससे बात करती हूँ। आप हो आइए।"

•

अमृता ने उदयन को फ़ोन करने की जल्दी नहीं की। यूँ भी अमृता ने उदयन को फोन किया हो ऐसा शायद ही कभी हुआ है। ऐसा होने का कारण उदयन के मिलने की क्षिप्रता है। यदा-कदा वह मिलने आता है। मिलने जाने की इच्छा न हो तो फोन करता है और मिलने का समय निश्चित करता है। फिर चूँकि अब तो तय किया है इसलिए जाना ही पड़ेगा, इस तर्क से मन को तैयार करता है। अमृता को उदयन की कभी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी हो,

ऐसा नहीं हुआ। कई बार अमृता बाहर से आती तो उदयन बैठा होता और वह कभी नहीं कहता, 'मैं तेरी राह तकता बैठा हूँ।' जिस कमरे की आज सवेरे बात हुई, उसमें उदयन आज तक बहुत बैठा है।

अमृता ने फ़ोन उठाया। अनिकेत का फ़ोन कितना उपयोग में आता होगा? पर ऐसा न हो तो रखे किस लिए? या फिर मकान बना होगा तभी फ़ोन माँग लिया होगा? शायद अनिकेत को ही जरूरत महसूस हुई हो? अध्यापकों, विद्यार्थियों और लेखकों के साथ उसका परिचय है। उदयन कहता था कि अनिकेत अपने कॉलेज के प्राचार्य का विश्वासपात्र है। विज्ञान-विभाग की पुस्तकें और साधन-सामग्री की तमाम खरीदी वही करता है। अनिकेत पर काफ़ी लोग विश्वास करते हैं, क्योंकि वह व्यावहारिक आदमी है...उदयन ने किस लिए अनिकेत का ऐसा परिचय दिया होगा? और व्यावहारिक होना—यह उदयन की दृष्टि में ग़लत क्यों है?

उदयन को फ़ोन तक आने में थोड़ी देर लगी।

"कौन, अमृता?"

"हाँ, उदयन।"

"क्यों अभी से जगाया। एक लेख लिखने में बहुत रात बीत गयी। तीन घण्टे की नींद के बाद जागा तो देखा कि कुरसी में बैठे-बैठे ही मैं सोया हूँ, इससे असन्तोष हुआ। फिर तो स्वयं को उठाकर पलंग में डाला, फिर सोया। तू जानती है, जान-बूझकर सोने का भी एक मज़ा होता है? अच्छा हुआ, आखिर तूने ही मेरी नींद उड़ायी। खैर, तेरी आवाज़ तो सुनने को मिली। क्या समाचार है, बोल?"

"मैं कहूँ वो मानेगा?"

"तेरी आज्ञा शिरोधार्य।"

"घूमने चलना है, तू तैयार होकर आ जा।"

"इतना भी नहीं पूछती कि फ़ुरसत में हूँ या नहीं? सीधी आज्ञा दे देती हो।"

"क्यों तूने ही आज्ञा माँगी थी? भूल गया।"

"समुद्र के किनारे जाना हो तो मैं नहाये बिना आऊँ। किसी होटल में बैठना हो तो चाय पीये बिना आऊँ। बाज़ार में जाना हो तो पैसे घर पर रख-कर आऊँ। या फिर एलीफेण्टा की गुफाओं में तो नहीं जाना है न?"

"अभी तो बस तू आ जा। बाक़ी सब बाद में तय करेंगे।"

"अनिकेत को साथ लेता आऊँ?"

"ना।"

"क्यों ?"

"उसके घर ही आ। मैं कहाँ से फ़ोन कर रही हूँ, इसका तुझे अभी भी पता नहीं चला ?"

"अच्छा ! तो तू अपने ठिकाने पर नहीं है। अब समझा, तू अनिकेत के यहाँ से बोल रही है, ठीक।"

"तू जल्दी आ जा।"

"जरा अनिकेत को बुला, उसे बधाई देनी है।"

"कैसी बधाई ? वे बाहर गये हैं।"

"अच्छा ! तो घर का चार्ज तूने सँभाल लिया है।"

"हट, बकवास बाद में करना। किस बात की बधाई देनी है उनको ?"?

"यह तुझे कही जा सके ऐसी नहीं है। बधाई तुझसे सम्बन्धित है, पर देनी उसे है।"

"क्या मतलब ?"

"तू वहाँ पहुँच गयी, यह कोई सामान्य बात नहीं है।"

"स्पष्ट कह, आखिर तू कहना क्या चाहता है ?"

"मैं कहूँ, उससे पहले ही तू समझ चुकी होगी। अब मैं कहूँगा तो, तू मेरी भाषा को न समझने का ढोंग करेगी।"

"मैं यहाँ आयी, इससे तुझे इतना अधिक खेद हुआ ?"

"हाँ, मुझे खेद हुआ। मैं झूठ बोलने का विवेक नहीं पाल सकता।"

अमृता ने फोन रख दिया। आरामकुरसी में बैठी। फिर खड़ी हो गयी। झूले पर बैठी, पर मन न लगा। खड़ी होकर पत्र-पत्रिकाएँ देखने लगी। कुछ भी पढ़ने का मन न हुआ। समय मन्द गति से बहने लगा।

उदयन आया।

"मैं तुझे समझ नहीं सकती उदयन !"

"मैं तुझसे सहमत हूँ। तू मुझे समझ सकी होती तो..."

"तुझे समझने का मतलब तेरी महेच्छाओं के अधीन रहना।"

"यह तेरा भ्रम है, पर एक बात तो मुझे तुझसे कहनी ही है, 'मेरे लिए जगत् में तेरे सिवा दूसरा आश्रय-स्थान नहीं है'।"

"क्यों, तू तो आत्म-निर्भर होने की बात करता है न।"

"उसके लिए मेरी इस तरह मदद करना चाहती है ? तेरी मैत्री के बिना...।"

"मैंने कब तेरी मैत्री त्यागी ?"

"तू नाहक ही व्यग्र हो गयी। अच्छा जो तू कहे वही ठीक।"

इस बातचीत के दौरान दोनों एक-दूसरे से नज़र चुराते रहे। नौकर उदयन के लिए चाय-नाश्ता लाया। उदयन ने अमृता के सामने प्लेट रखी। उसने हाथ बढ़ाया। उसके हाथ में निरी औपचारिकता थी। उदयन जल्दी-जल्दी चाय पी गया। अमृता का कप पड़ा हुआ था, वह उसे भी उठाकर पी गया।

"तूने मुझसे आग्रह भी नहीं किया? अब आभार मान मैंने तेरी कठिनाई कम कर दी।"

"बहुत कष्ट हुआ होगा?"

"तू जो भी दे, मैं पी जाऊँ अमृता! मुझे विश्वास है जो तू देगी वह मेरे लिए पेय होगा ही।"

वह पढ़ने लगा, पर पन्ने पर जो छपा था उसे वह नहीं पढ़ता था। पत्रिका का पन्ना तो नीचे देखते रहने का बहाना था। उसके मन में कुछ चल रहा था— 'अनिकेत में ऐसा क्या है कि अमृता दौड़ी आयी? लक्षण तो पहले से ही दिखाई पड़ रहे थे। अब मुझे इसके व्यवहार का अध्ययन करना पड़ेगा। अनिकेत में ऐसी कौन-सी विशिष्टता है कि अमृता को मेरे निकट से खींच ले जाये? अनिकेत तो एक दिन कहता था कि शादी के बारे में वह सोचता ही नहीं। पर ऐसा कहने के दिन तक उसने अमृता को देखा न था। इनका सम्पर्क बढ़ता गया। मैं ही अमृता को उसके पास ले गया था...किस लिए? क्या यह बताने के लिए तो नहीं कि देख मेरे साथ यह एक व्यक्ति है जो दूसरे किसी के साथ नहीं हो सकता। यह भी सम्भव है। किन्तु अमृता तो जानती है कि आज तक मैंने उसके साथ तटस्थतापूर्वक व्यवहार इसलिए किया है कि..."

"क्या पढ़ रहा है, उदयन?"

"मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ अमृता! मेरी क्षमा माँगने की तैयारी का मूल्य तू समझ सकती है। आज तक मैंने किसी से क्षमा नहीं माँगी। अनजाने में ही मुझसे तेरा अपमान हो गया है। तुझे इस तरह व्यग्र करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। इसके विपरीत मैंने तो कभी कल्पना भी नहीं की कि मेरे कारण तुझे कभी व्यग्र होना पड़े।"

"मैं चाहती हूँ कि तू मुझसे क्षमा न माँग ताकि क्षमा न माँगने का अपना रिकार्ड तू क़ायम रख सके।"

"तेरे वाक्य पर ध्यान दिये बिना ही मैं आगे बोलता हूँ। तू जानती है कि मैं स्पष्ट भाषण में विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हूँ। मन में हो वह भले ही प्रकट हो जाये। जो व्यग्रता थी, वह बाहर आ गयी। अब इसमें का कुछ भी मेरे मन में घुमड़ेगा नहीं। मैं जो कुछ भी बोला उस सम्बन्ध में अब तुझे विचारना है।"

"मेरी ओर क्यों देखता है। मेरी सुने बिना ही बोलता जा।"

"हाँ, यही कर रहा हूँ। मेरा जीवन निर्जन नदी-जैसा है। कई बार प्रवाह में—अपने प्रवाह में मैं ऐसा बहता हूँ कि मेरे निकट आकर, बिलकुल किनारे पर आ खड़े हुए को मुझसे क्या चोट लगेगी इसका मुझे भान नहीं रहता। हाँ, किनारे पर खड़ा होनेवाला मेरे प्रवाह में मिल जाये तो उसे चोट न लगे। उसे कोई खयाल भी न आये।"

"तेरे प्रवाह को रोकने में किसी की रुचि हो तो?"

"प्रवाह नहीं तो मैं नहीं। मैं न हूँ इसमें किसी को रुचि हो तो वह भले ऐसा करे।"

"तू बोलता था, वह अधिक अच्छा था—प्रवाह चालू रख।"

"मैं बोलता हूँ तो लोगों को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि मैं भाषा को—जो कहने-जैसा है, उसे छुपाने के साधन के रूप में प्रयोग नहीं करता—अलंकृत आवरण के रूप में उपयोग नहीं करता। अप्रस्तुत सन्दर्भों का मोहक उपयोग करके भाषा द्वारा मैं कोई मायावी सृष्टि नहीं रचता, क्योंकि सुननेवाले को मैं ललचाना नहीं चाहता। मैं अर्थों को शब्दस्थ करता हूँ। जिसकी प्रतीति हो उतना ही बोलता हूँ। और बात सुननेवाले को कुछ न कुछ हो जाता है।"

"तूने यह सब कहा, उसमें 'मैं' कितनी बार आया?"

"मैं जिन्दा हूँ, तब तक मेरे वाक्यों के कर्ता के रूप में 'मैं' रहेगा। पर क्या तुझे भी इससे एतराज़ है? तेरी गलतफ़हमी दूर करने के लिए बोल रहा हूँ, उस समय भी तुझे ठेस लग रही है? किसी को ठेस पहुँचे इसलिए मैं नहीं बोलता। सामनेवाले व्यक्ति को ठेस लग रही है कि नहीं इसकी खबर मुझे बाद में होती है। मेरे रक्त में साबरकाण्ठा और पंचमहाल की आषाढ़ी आँधी की लय है। बम्बई के समुद्र की लौटती लहरों की मन्द गति मैं अपना सकूँ, यह सम्भव नहीं। और ऐसा हो तो ही अच्छा, यह मैं नहीं मानता। तुझे पहले भी अकसर मेरी बातों का बुरा लगता रहा है, यह मैंने देखा है। पर आज तू काफ़ी देर तक झुँझलाती रही है—यह देख मैं कह सकता हूँ कि तुझे बहुत बुरा लगा है। मैं अपनी भूल स्वीकारता हूँ....पर कई बार आदमी जब अपनी ही विसंगति से वाकिफ़ हो जाता है तब भी उसका चेहरा उतर जाता है। तेरे साथ यदि ऐसा हुआ हो तो मैं अपनी भूल का इनकार करता हूँ।"

"मैं अपनी असंगतियों से वाकिफ़ हूँ उसके लिए तुझे इतनी जहमत उठाने की जरूरत नहीं है। यदि मुझमें असंगतियाँ हैं तो उन्हें निभाने के लिए मैं स्वतन्त्र हूँ।"

"तू अपनी स्वतन्त्रता को समझ सकती है, इसीलिए तो मैं तेरे साथ इस

तरह बात करके वक़्त ज़ाया करता हूँ। वैसे 'कल्चर्ड मोती' की चमक से मैं अभिभूत हो आऊँ यह सम्भव नहीं।"

"अब तेरा वक्तव्य पूरा हो तो अच्छा। मैं क़बूलती हूँ कि तेरे शब्दों का मुझे बुरा लगे तो यह मेरी कमजोरी मानी जायेगी। जल्दबाज़ी में कही हुई तेरी किसी भी बात का मुझे बुरा नहीं लगा। तुझे सुन रही थी उसी दरम्यान मैं अपने को भी सुन रही थी। बीच-बीच में तुझसे इसलिए बोलती थी कि मैं उस भीतरी प्रवाह से बच निकलूँ। तूने जो कुछ कहा उसमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं है।"

उदयन खड़ा हुआ। चहलक़दमी करने लगा, किन्तु कमरे में छोटे-छोटे चक्कर लगाना उसे अनुकूल नहीं आया। वह शो-केस में से लकड़ी का बना आम उठाकर उसका आकार और वास्तविकता का भ्रम करानेवाले रंगों को देखने लगा। अपने नाख़ून से इन मिश्रित रंगों के बीच गहरा निशान करने का मन हुआ ताकि लकड़ी दिखाई देने लगे। रंगों का मायाजाल खण्डित हो जाये।

"मैं अपने सम्बन्ध में विश्वासपूर्वक कुछ कह सकूँ, यह सम्भव नहीं, किन्तु आज कहे बिना रह नहीं सकता कि अब जब कभी तुझे आघात लगे उसका निमित्त मैं न बनूँ इसके लिए प्रयत्नशील रहूँगा। मुझे एक बात अभी समझ में आयी—मैं तुझे एकवचन में सम्बोधित करूँ और तू आनन्दपूर्वक सुनती रहे, इससे बड़ा दूसरा सुख मेरे लिए क्या हो सकता है। नियति को मैं नहीं मानता, अतः 'सद्भाग्य'-जैसे शब्द का प्रयोग नहीं करता। वास्तव में 'सुख' शब्द में भी मुझे अतिशयोक्ति लगती है। लाइफ़ इज गुड बिकाज इट इज पेनफुल"

अमृता खड़ी हुई। द्वार तक गयी। प्रवेश करते समय वह यहाँ खड़ी थी तब अनिकेत उसे जिस दृष्टि से देख रहा था उसी दृष्टि से अर्थात् अनिकेत की दृष्टि से उसने लौटती हुई स्वयं को देखने का प्रयास किया, पर सफल नहीं हुई। उसने उस दृश्य की स्मृति को झटक दिया। बोली—

"मैं घर जाकर आती हूँ। जरूरी काम याद आया है। तुम दोनों पूरा कार्यक्रम सोच रखना। यदि मैं समय से लौट सकी तो साथ हो लूँगी। तो, मैं चलूँ।"

"अधिक देर मत करना। वैसे भी देर तो हो ही गयी है।"

अमृता तुरन्त ही खिसक गयी, इसलिए उदयन ने ऐसा कहने का विचार छोड़ दिया।

उदयन स्वयं से अधिकाधिक असन्तुष्ट होता गया। यह आवेश मुझे पूर्णविराम

से आगे खींच ले जाना है। मन में विचारों का दूसरा फलक स्पष्ट हो, उसके पहले ही मैं अगले 'माईल स्टोन' तक पहुँच जाता हूँ। पर यह मेरी कमजोरी है तो जो मुझे समझने का दावा करता है, उसे तो इतना चला ही लेना चाहिए। अमृता ने आज कहा—'मैं तुझे समझती नहीं'। शायद यह सच हो, नहीं तो इस तरह अवहेलना कर वह चली न जाती और बहाना कैसा निकालती है—मेरे मन में दूसरा प्रवाह चल रहा है....मैं भी जानता हूँ कि दूसरा प्रवाह चलता है। तो ठीक है। अब अनिकेत को समझने का प्रयत्न करके देखूँ। यदि धरती पर अमृता का जन्म न हुआ होता तो क्या उदयन के अस्तित्व पर इस अभाव का कोई असर होता? यह तो एक धारणा हुई...आज स्थिति क्या है? अमृता के सान्निध्य और उसकी अनुपस्थिति का मुझपर प्रबल प्रभाव है। शायद इसी कारण मैं आज उसे बहुत कुछ कह बैठा। जाते-जाते मृदुभाषिणी होने का प्रयत्न करती गयी....इस तरह छटक जाने के लिए बहाना करके जाना आत्मवंचना है।

अमृता अनिकेत की ओर झुक चुकी है। तो क्या ऐसा करने का उसे अधिकार नहीं? बी. ए. के प्रथम वर्ष में वह थी तब एक सांझ समुद्र की ओर देखते हुए उसने कहा था—"उदयन! मैं तुझे चाहती हूँ।" उसकी उस अवस्था को वयः-न्धि की मुग्धता मानकर उसके शब्दों को निरालस किन्तु मुग्ध मानकर मैंने हा था—"अमृता, प्रेम नहीं, समझ। उस दिन मैंने सच हाँ कहा था न? मझपूर्वक निकट आये साथ रह सकते हैं।" प्रेम तो आकस्मिक कहलाता है। आकस्मिक है, जिस पर मेरा नियन्त्रण नहीं, उसे प्राप्त करने में क्या लाभ। भी वह समझपूर्वक अनिकेत की ओर झुकी हो तो मुझे क्या एतराज हो ा है। वह मुझे समझे ऐसा मैं चाहूँ तो भी वह मुझे स्वीकार ले, ऐसा तो कैसे सकता हूँ? अनिकेत...उसे मैं मित्र कहता हूँ किन्तु इस क्षण उसके प्रति भाव घृणारहित नहीं है। घृणा के मूल में कहीं न कहीं स्वार्थ निहित। जागृति एवं स्वतन्त्रता के लिए जीनेवाले आदमी का प्रेरक अगर स्वार्थ वह जो कुछ बोलता है वह सब बकवास ही है।

यन के मन में उथल-पुथल मची रही। वह कुछ भी संकल्प नहीं कर निकेत को अपना मित्र मानने के बावजूद भी अमृता के कारण उसकी प्रतिभाव में वह कुछ भी बदलाव नहीं ला सका। मन ही मन अनिकेत स्वीकारने पर भी जब वह आया और उसने पूछा कि अमृता कहाँ मने तुरन्त जवाब दिया—

ल लेने।"

भी लेने जाना था न! एक ही जयमाल तुम दोनों पहनोगे?"

चालाकी से छटक जाना चाहता है।"

"मैं कहीं छटक नहीं रहा हूँ। अपने स्थान पर हूँ।"

अनिकेत शरीर को ढीला छोड़कर झूले पर इस तरह बैठा मानो उसपर गिर रहा हो। छड़ों ने झटके का अनुभव किया। वातावरण हिल उठा।

"तू अपने स्थान पर हो इससे किसी के आड़े न आये, यह क्या जरूरी है?"

"तू अमृता की बात करता है न! मैं तुम्हारे भविष्य में विघ्न नहीं बनूँगा।"

"ऐसी सुरक्षा का आश्वासन मुझे नहीं चाहिए। मैं अपने वर्तमान से सन्तुष्ट हूँ। जिसे तू मेरा भविष्य कहता है उसे मैं तुझे सौंपने को तैयार हूँ।"

"किन्तु दान स्वीकारने के लिए मैं तैयार होऊँ, इतना मैं लाचार नहीं मित्र!"

"मेरा दान तू न स्वीकारे, तो भी किसी अन्य की माँग स्वीकारेगा न?"

"अभी तो मुझे अपने अध्ययन में ही रुचि है।"

"इतना ही कि अध्ययन का विषय क्या है, यह शायद तू नहीं बतायेगा।"

"तेरी व्यग्रता का कारण मैं समझ गया हूँ। अब बिना देर किये जो कहना है कह दे।"

"तो पूछ ही लेता हूँ। यह केवल जिज्ञासा के लिए नहीं पूछता। जिस मामले में मैं शरीक हूँ उसी के सम्बन्ध में पूछ रहा हूँ। यदि तुझे किसी के प्रति प्रेम का अनुभव हो तो तेरे मन में उसे प्राप्त करने की अभिलाषा जगेगी या नहीं?"

"तेरे प्रश्न का पूरा उत्तर मैं नहीं दूँगा। पर इतना तो कह सकूँगा कि प्रेम प्राप्त होता है, अभिलाषा जगे—इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना होता। तू मान नहीं सकता ऐसा भी मैं कहूँगा: प्रेमी को प्राप्त किये बिना भी प्रेम प्राप्त हो सकता है। प्रेम और प्रेमी ये अविभाज्य घटक नहीं हैं।"

"तू विज्ञान का विद्यार्थी होकर भी प्रेम और शरीर को पृथक् मानता है?"

"मैं तेरे साथ इस समय एक मनुष्य की हैसियत से बात कर रहा हूँ। मैं अपना विश्वास तुझसे कह रहा हूँ। दुनिया के सब शास्त्र उसकी अवगणना करें या मान्यता दें इससे उसमें कोई फ़र्क़ पड़नेवाला नहीं है। इस समग्र के साथ मेरा सम्बन्ध विश्वास पर आधारित है, कारण पर नहीं। मैं विज्ञान को छोड़ विश्वास के पास आया हूँ और यह कोई मेरी बाहरी दौड़धूप नहीं। मेरी अन्तःसृष्टि की बात है। मेरी सृष्टि में समग्र को स्थान है। और समग्र को नापने में विज्ञान अधूरा सिद्ध हो चुका है। जो तर्कातीत और इन्द्रियातीत है उसे भी मैं स्वीकारता हूँ।"

"भले ही विज्ञान सर्वग्राही न हो सका हो पर वैज्ञानिक दृष्टि के बिना आप समग्र को समझ नहीं सकते। तुम्हारा विश्वास या तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें कहाँ खींच

ले जायेगी । इसकी खबर तक न पड़ेगी ।"

"ऐसा भय बताने की तुझे कोई आवश्यकता नही। जिनमें विश्वास का अभाव होगा उसे ही भय का अनुभव होगा। पर मुझे तो तुझे चिन्तामुक्त करना चाहिए। अमृता के प्रति मुझे कोई स्वार्थ नही है, किन्तु मैं उसके सौन्दर्य, समझ, शालीनता के प्रति ऊँचा अभिप्राय रखता हूँ। मैंने उसके जैसी युवतियाँ नही देखी। जगत् का मेरा प्रत्यक्ष अनुभव कम है यह भी मेरे इस मत को बनाने में कारणभूत हो सकता है। गलत सिद्ध हो जाने का खतरा उठाकर भी मैं कहूँगा कि अमृता अद्वितीय है। विधाता के ऐसी रचना के सौहार्द का अनुभव हो उसे मैं अपने जीवन की धन्यता मानता हूँ। मुझमें उसके प्रति आदर है। परिचित-अपरिचित के आदर-सत्कार को मैं अपना व्यवहार-धर्म समझता हूँ तो फिर अमृता को कैसे नकार सकता हूँ? उसकी उपेक्षा करने की सामर्थ्य मुझमे नही है। और इस तरह की सामर्थ्य बढ़े इस हेतु प्रार्थना भी नही करूँगा। अमृता के परिचय से मुझे आनन्द है। यह परिचय तूने कराया, इसलिए मैं तेरा आभारी हूँ, पर जैसा कि मैंने पहले कहा—मुझे अमृता में स्वार्थपरक ऐसी कोई भी दिलचस्पी नहीं, क्योंकि मुझमें अमृता के प्रति जितना पक्षपात है, उतना स्वयं के प्रति भी नही, क्योंकि अमृता को देखने के बाद ही मैंने जगत् और जीवन को सौन्दर्य के सन्दर्भ में देखना सीखा है। अपने पुरुषार्थ से जो नहीं प्राप्त कर सका था उसे अमृता के आगमन से प्राप्त कर सका हूँ। मैं मानता हूँ कि इस सम्बन्ध में अब तुझे कुछ पूछना नही होगा।"

उदयन उठा और चलने लगा। उसके बुश्शर्ट का कॉलर पकड़कर अनिकेत ने उसे बिठाया।

"क्यों जल्दी करता है? अमृता जरूर आयेगी। प्रतीक्षा कर।"

चार

अनिकेत ने अपने अध्यापक के प्रस्ताव पर पर्याप्त विचार कर निर्णय लिया। उनका पत्र मिला उसी दिन से वह इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ विचार किया करता था। जब निर्णय करने का समय आया तो उसने देखा कि एक निर्णय के साथ अन्य कितने सारे सन्दर्भ जुड़े होते हैं।

रेगिस्तान के बढ़ते विस्तार को रोकने के प्रयोग हेतु यह वृद्ध अध्यापक शान्ति-

शाली अध्यापकों की एक टुकड़ी खड़ी करना चाहते हैं। वनस्पतिशास्त्र के विद्वान् के रूप में तो अनिकेत सुविख्यात है ही। उसके गुरुजी को यह भी खयाल था कि अनिकेत संयोजक के रूप में भी अच्छा काम कर सकेगा। संशोधन की यह संस्था उन्होंने कड़ी मेहनत से स्थापित की है। अब तो सरकार का सहयोग भी मिलनेवाला है।

अनिकेत को उसके कॉलेज के आचार्य और ट्रस्टी छोड़ने को तैयार नहीं थे। बीस वर्ष की उम्र में वह अध्यापक बना। उसके बाद के छह वर्षों में बाहर के अन्य कॉलेजों से भी प्रलोभन आते रहे, पर अनिकेत सादर इनकार कर देता। अपने कॉलेज के आचार्य से भी इस बारे में वह बात नहीं करता। उन्हें ज़रूर मालूम पड़ जाता था। अनिकेत के वेतन में वांछनीय वृद्धि कर देते। इसका लाभ अनिकेत के साथ नियुक्त हुए सभी अध्यापकों को भी मिलता। ये लोग अनिकेत की विद्वत्ता की प्रशंसा करते और अपनी योग्यता बढ़ाने की चिन्ता से मुक्त रहते।

उदयन यह समाचार सुनकर स्तब्ध हो गया था। इसके एकाधिक कारण रहे होंगे। वह अनिकेत को शान्त और जीवन जीनेवाला समझता था। उसकी यह मान्यता एकदम ग़लत सिद्ध हुई। दूसरा कारण यह था कि उसके लिए बम्बई में सिर्फ़ तीन आदमियों की बस्ती थी—अमृता, अनिकेत और वह स्वयं। बाक़ी तो सारी बम्बई थी। इन तीन में से अनिकेत जा रहा है, इससे उसने कोई कम कमी महसूस न की। एक तीसरा कारण भी हो सकता है, पर वह तो निश्चित होने के बाद ही कहना अच्छा।

यह समाचार जानकर अमृता ने कैसा अनुभव किया होगा इस सम्बन्ध में उदयन या अनिकेत को अभी कुछ पता नहीं चला।

अनिकेत का त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया। उसे तीन वर्ष की छुट्टी दे दी गयी। यह सब तीसरी जून तक पूरा हो गया। कल उदयन ने अमृता से बात कर अनिकेत जा रहा है, इस प्रसंग पर नौकाविहार का आयोजन किया। कल रात की गाड़ी से वह रवाना होनेवाला है।

अमृता इन दिनों परिवार के छोटे-बड़े सदस्यों के साथ समय बिताती थी। हर शाम वह अपने बँगले के आन्तरिक उद्यान में बँधे झूले में झूला करती। पिछले तीन-एक दिनों में उसने जलकन्या के विषय में जो कुछ मिला वह सब कुछ पढ़ डाला।

जुहू के समुद्री तट पर नौकाविहार की व्यवस्था नहीं है। यहाँ का समुद्र गहरा है। अतः नौकाविहार का सच्चा आनन्द यहीं मिल सकता है, यह मानकर उदयन दूर जाकर मछुए से नाव ले आया।

अमृता के मकान की पश्चिम दिशा में समुद्र है। शुक्ल पक्ष में सान्ध्यवेला के

बाद बदलते वातावरण को निहारने की उसे आदत है। सूर्य की चमकीली किरणें जब समुद्र तल पर अपनी विदाई के रंग जगा रही होती हैं तब अमृता बालकनी में खड़ी-खड़ी निकट आ रहे अन्धकार की कल्पना करती होती है। शुक्ल पक्ष में भी चाँदनी छिटकने से पूर्व सूर्य का अभाव सूचित करता एक धुंधलका अपना समय साध लेता है, फिर चाँदनी का प्रकाश धीरे-धीरे सम्पूर्ण प्राकट्य पा लेता है। शुरू-शुरू में तो समुद्र चाँदनी के उजाले से लेशमात्र भी प्रभावित न हो अपने में ही निमग्न रहता है। अपने तटीय स्वातन्त्र्य को अबाधित रहने देता है, पर बाद में एक क्षण ऐसा है, जब पूरा-पूरा छलकने लगता है। अमृता की आँखों में पूरा का पूरा समुद्र छलकने लगता है और अमृता की आँखों में पूरा का पूरा समुद्र शमित हो जाता है। शमित सागर अपना एक भी स्पन्दन किसी को भी न सुनाई दे, इस ढंग से बरतता है।

उदयन ने जैसे-तैसे नाव को टिका रखा है। अनिकेत उस ओर जा रहा है। वह समुद्र के पानी से भीगी रेत पर जाकर खड़ा रहता है। दृष्टि को मुक्त छोड़ देता है। क्षितिज देखना चाहता है। इस समय चाँदनी में क्षितिज पिघल गया हो, ऐसा लगता है। आकाश और धरती के बीच कोई विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं होती। समुद्र ही मानो आगे बढ़कर ऊपर उठा हो और आकाश में स्थापित होकर फैला हो। एकत्व के इस अनुभव को—धरा-आभ के इस क्षितिज रहित विस्तार को—वह अपने समक्ष रखना चाहता है पर उसी समय उदयन उसे पुकारता है।

उदयन ने लंगर उठा लिया है। नाव पानी की ओर तेजी से बढ़ने लगती है, वह रोकता नहीं। अनिकेत और अमृता को तैयार देख वह नाव को पीछे घुमाता है।

"आ जा, अमृता !"

"बिना लंगर की नाव स्थिर नहीं रहती। तेरे इन दो पतवारों का आधार ही कितना ?"

"ले पतवारें रख दीं। ला तेरा हाथ।"

"शायद दोनों लुढ़क पड़ेंगे और उलटी हुई नाव हमें ढँक देगी।"

"तो अनिकेत तुझे बचा लेगा। इस तरह हिचकती क्यों है ? चल, पैर उठा।"

"ओफ़्फ़ !"

पैर रखते ही नाव डगमगा उठी। अमृता को काँपती देख उदयन खिलखिला-कर हँस पड़ा—

"यह तो किनारा है, डरपोक !"

अमृता कुछ नहीं बोली। नाव के बीचोंबीच आड़ी गोट पर वह बैठी।

संकुचित अंगों को सहज स्थिति में आने में थोड़ी देर लगी। अनिकेत के मन में उदयन की उन्मुक्त हँसी से बदला लेने की इच्छा जगी हो या फिर वह कोई दूसरी बात सोचता हो। पर उसने जिस तरह नाव में पैर रखा उसे देखकर तो लगा कि उसने बहुत लापरवाही दिखायी। दूसरे सिरे पर सन्तुलन साधने की दृष्टि से खड़ा उदयन डगमगा गया। यह देख उस क्षण तो अमृता भी चिन्तित हो उठी। अनिकेत इतनी सहजता से बैठा मानो ज़मीन पर बैठ रहा हो। उसने उदयन की ओर देखा। बीच में अमृता थी। केन्द्र में बैठी अमृता ने देखा—दोनों के साथ समान अन्तर था।

गति।

हाथ से छूने का मन हो रहा था चाँदनी से भरा जल।

हवा, गति और चाँदनी। चाँदनी और हवा। चाँदनी में गति। हवा में गति। जल में गति। इससे चाँदनी भी मानो चंचल। तीनों के हृदय को माधुर्य का एक समान स्पर्श। पर प्रभाव अलग-अलग।

अमृता ने बैठने की स्थिति बदली। अनिकेत को भी देखा जा सके, इस तरह बैठी।

"अनिकेत !"

"हाँ, मैं अनिकेत।"

"आप स्पन्दन-प्रधान नहीं कहला सकते। स्पन्दन की अपेक्षा आपमें बौद्धिक नियन्त्रण अधिक दिखता है।"

"ऐसा ?"

"मेरी बात सच है न उदयन ?"

"मैं हाँ कहूँगा तो तू मुझे स्पन्दन-प्रधान कहकर बौद्धिक नियन्त्रण के अभाववाला कह बैठेगी।"

"कोई क्या कहेगा इससे डरकर सच बोलना छोड़ा नहीं जा सकता।" अमृता ने आवाज़ में माधुर्य उँड़ेलते हुए कहा ताकि प्रतिकार करने के लिए उदयन पतवार रखकर नाव को न रोके। वह बोला नहीं। शायद वह कुछ बोले इसके पहले अनिकेत ने कहा—

"आप अनुसन्धान छोड़कर समीक्षा करने लगीं।"

अब अमृता बोले इसके पहले ही उदयन ने कहा—"जो सर्जन नहीं कर सकते, वे समीक्षा करते हैं। हालांकि अमृता यह भी कर सकती है ऐसा कहने की जल्दी मैं नहीं करूँगा।"

"मैं तो मौन भंग करने के लिए ही बोली थी, पर सुननेवाले इतने सजग कि उन्होंने वही अर्थ ग्रहण किये जो अपने मन में थे और अपने-आपको अलग कर

लेने के लिए दोषारोपण मेरे सिर पर।"

"हमारा अभिप्रेत चाहे जो है, सुननेवाला तो आखिर उन्ही शब्दों से अर्थ निकालता है जो प्रकट किये गये हैं। वास्तव में इस तुलना या समीक्षा का हमारे अस्तित्व से कोई सौदा लेना-देना नही। यह तो सब अपने आरोपण हैं। तुलना में जिस कल्पित भेद को स्वीकार कर हम चलते हैं वह वस्तुस्थिति की प्राप्ति में शायद ही कभी सहायक बनता है। हमारे शब्द अधिकाधिक इतना ही सिद्ध करते हैं कि हममें तुलना करने की एवं विभाजन करने की कुशलता है। मनुष्य को दूसरे के साथ समानता करने की बात तो दूर रही, उसके व्यक्तित्व में दिखाई पड़नेवाले भिन्न पक्षों की तुलना भी हमें केन्द्र से दूर ले जानेवाली सिद्ध होती है। इसीलिए निरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करना पड़ता है। किन्तु कठिनाई यह है कि यह निरपेक्षता की भूमिका स्वीकारने को कोई तैयार नहीं है।"

"ऐसी कोई भूमिका है ही नहीं। निरपेक्ष होने की बात में भी उपदेश छिपा हुआ है। छोड़ो यह सब होने और बनने की बातें। 'होना' ही तुम्हारे लिए पर्याप्त नहीं है? हाँ, तुम अपने अस्तित्व को धोखा दो यह मुझे पसन्द नही।"

अनिकेत उदयन को जवाब देने जा रहा था कि तू उपदेश का विरोध कर आग्रह प्रस्तुत कर रहा है। पर वह नही बोला क्योंकि आकाश मे उसे एक बदली दिखी।

उदयन ने अनिकेत को पतवार सौंपी। नौका का अग्रभाग छोर बन गया। उदयन दो हाथों से एक साथ पतवार चला रहा था अर्थात् आरा खिंचने की तरह। अनिकेत एक के बाद एक घिलौने की पद्धति से पतवार चलाने लगा। इससे उसने नौका की गति दुगुनी कर दी। उसके बाद गोल-गोल घुमाकर उसने एक वृत्त निश्चित किया। उसका केन्द्र निश्चित किया और परिधि की रेखा खींचता रहा। एक चक्कर पूरा करता तब तक परिधि का अधिकांश हिस्सा अदृश्य हो जाता। उसने देखा कि पानी पर लीक नही खींची जा सकती। हर बार नयी पगडण्डी शुरू करनी पड़ती है और वह पीछे-पीछे मिटती आ रही है यह मानकर चलना पड़ता है।

चन्द्र के प्रतिबिम्ब को केन्द्र मे रखकर उसकी परिधि मे घूमा जा सकता है या नही? चन्द्र का प्रतिबिम्ब किसी एक स्थल पर स्थिर है ऐसा वह नही देख पाया। चन्द्र के प्रतिबिम्ब को भी केन्द्र में लेना हो तो कितनी बड़ी परिधि बनानी पड़ेगी। यह समुद्र भी छोटा पड़े। शायद नहीं। पानी के एक छोटे गड्ढे में यह प्रतिबिम्ब पड़ा हो तो उसके चारो ओर घूमा जा सकता है। किन्तु समुद्र की अनन्तता के कारण ही वह स्थानान्तरित होता रहता है।

उदयन का ध्यान इस ओर न था। वह घिर आये बादलो को बड़े ध्यान से

निहार रहा था।

अमृता ने देखा कि अनिकेत क्या करने में इतना मग्न है। उसको इतना निमग्न देख वह प्रसन्न हुई। वह अनिकेत की ओर सतत देखती रही। अनिकेत को इसका आभास हुआ। यह जानकर अमृता ने नौका पर से एक ओर झुककर अपनी हथेली में समुद्र का पानी लिया। और हथेली आँख के सामने धर दी। उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता था। अनिकेत ने यह प्रतिबिम्ब देख लिया, देखता रहा। नौका की गति मन्द पड़ चुकी थी।

"मैं तेरी हथेली में जो पानी है वह पीना चाहता हूँ। दे सकती है तो हाथ बढ़ा।"

"तुझे पानी पीना है या फिर मेरी हथेली में पानी है यह देख तुझे प्यास लग आयी है।"

"तू जो कहे वह सच।"

"तो वॉटरबेग से पानी हथेली में लेकर तुझे पिलाऊँ।"

"वह तो यहाँ मेरे पैर के पास ही पड़ा है। मुझे तो खारे पानी की प्यास लगी है।"

उदयन क्यों ऐसा बोल रहा है, यह समझने के लिए अनिकेत उसके चेहरे की ओर ताकता रहा। अमृता ने संकोच के साथ हाथ बढ़ाया। उस क्षण मेघमाला चन्द्र तक पहुँच गयी। अमृता की हथेली से ढुलते-ढुलते जो पानी रह गया था उसमें अब चन्द्र का प्रतिबिम्ब नहीं था। ऐसे किसी प्रतिबिम्ब की उसे पड़ी भी न थी। उसने तो इतना ही देखा कि यह अमृता का दायाँ हाथ है, जिस हाथ से मनुष्य दूसरे को कुछ देता है। यह हाथ खाली हो और बढ़े फिर भी देखनेवाला सौन्दर्य ऊष्मा का अनुभव कर सके। उदयन पानी पी गया। इतनी लालसा से उसने इस हाथ को पहले कभी देखा न था। हाथ तो पूर्व परिचित था पर आज उसके स्पर्श से उदयन ने लावण्य के नशे को अनुभव किया—

"तू बिना थके पिलाती ही रहे तो मैं सागर पी जाऊँ।"

"लगता है सागर को तू किसी रूपक के अर्थ में प्रयुक्त कर रहा है।"

"रूपक वग़ैरा तो ठीक, मगर तू समझ गयी हो तो आनन्द की बात है।" ऊपर देखते हुए उदयन ने वाक्य पूरा किया। आकाश को आवृत करता अन्धकार का काला परदा चन्द्रमा को पीछे छोड़कर ठीक-ठीक आगे बढ़ चुका था। अब हवा न थी, पवन था।

बाहर निकल जाने की बात किसी ने न की। बोलनेवाला सुरक्षा चाहता है ऐसा ज़ाहिर होने के डर से या फिर उनमें से किसी की बाहर निकलने की इच्छा न हो, मौन घिरता रहा। अब तो पवन भी नहीं था—झंझावात था।

आकाश का एक खण्ड चन्द्र की उपस्थिति की साक्षी भरने तक ही चमक रहा था। पर वह भी अब ढँक गया था।

ज्वार का समय शुरू हो चुका था।

एक लहर शान्त हो उसके पहले ही दूसरी उछल जाती। कब बाहर निकलना है यह पहले निश्चित नहीं हुआ था।

पर अब ? आकाश आकाश नहीं रहा था, अन्धकार घहरा रहा था। पवन ने वर्षा होने की पूर्व सूचना दी।

उदयन ने अनिकेत के हाथ से पतवार ले ली है। उसके उत्साह का पार नहीं था। पहले दो बार नौका पर जलधारा इस तरह छिटकी मानो पवन अंजलि छिटक रहा हो। उदयन ने बुलन्द आवाज़ में गर्जना की और जल्दी-जल्दी पतवार खींचने लगा। उदयन की गर्जना अमृता को क्रूर लगी। वह आक्रान्त हो उठी।

"तू किस तरफ ले जा रहा है ?"

"मझधार में।"

"तो पहले अनिकेत को किनारे पर छोड़ आ। फिर मैं तेरी शक्ति देखने इस अंधे साहस में तेरे साथ रहूँगी। इस काल-तूफान में कूद पड़ने को तू साहस समझता हो तो बलिहारी है।"

"इस तरह भयभीत क्यों होती है ? इस डोंगी को तो कन्धे पर ले तैरता-तैरता तुम दोनों को बाहर छोड़कर आ सकता हूँ।"

"तू व्यायामवीर है, यह तो पता है, पर भला ज़रा बता तो सही अपना किनारा किस ओर है ?" अनिकेत ने पूछा।

"पृथ्वी गोल है। इसका किनारा नहीं होता। हर एक को अपना किनारा साथ लेकर घूमना होता है।"

"घूमने के लिए भी दिशा तो तय करनी ही पड़ती है न ?"

उदयन ने इस बार कोई जवाब नहीं दिया। जब किनारा पास होता है तो पता चलता है कि लहरें उस ओर ज़ोर कर रही हैं, मझधार में ? तेज़ हवा के बहने और घनघोर आकाश के बरसने के कारण लहरों की मदद से किनारा मिलना सम्भव नहीं था।

अनिकेत सोच रहा था : उदयन की बात सच है। नाव यहीं उलटे तो यहीं किनारा ! वह इस तरह व्यवहार कर रहा है तो क्या सच ही उसमें इस समय निर्भयता हिलोरें ले रही है ? या भय का विरोध करने का वह इस तरह प्रयत्न कर रहा है। मेघ-गर्जन सुनकर सिंह भी प्रत्युत्तर में गर्जना करता है। भरा जंगल, गुफाएँ, पर्वत—सब इस घोष-प्रतिघोष की सृष्टि—कैसा आह्लाद अनुभव करते होंगे ? उदयन ने भी इस तूफ़ान को अपनी बुलन्द से प्रत्युत्तर दिया।

मृता इस आदमी के ओज को नहीं पहचानती ?

बिजली की चमक में तीनों ने एक दूसरे के चेहरे देखे।

"अमृता ! तू डर तो नहीं गयी न ?"

"ना !"

"तू अनिकेत ?"

"अरे ले चल यार ! आज तो बस तेरा किनारा ही मेरा किनारा। किसी भी दिशा में ले जा। इस सागर का किनारा तो होगा ही। हमारी कठिनाई यह है कि जो हमारे निकट है, उसे ही किनारा कहने के हम आदी हैं। जो दूर है, उसे दूसरी संज्ञा से पहचानते हैं...।"

अनिकेत आगे भी कुछ बोला था, पर उसके शब्दों की ध्वनि मेघगर्जना में विलीन हो गयी। बिजली की चमक के बाद तुरन्त देखने पर समुद्र और आकाश एक-जैसे काले घुप दिखाई देते थे। अन्तर दूसरी तरह का था। ऊपर का अन्धकार आवेग-भरा था और नीचे का अन्धकार उछल रहा था। नीचे के अन्धकार में अमृता को निर्दय प्राणमयता के संचरण का अनुभव हुआ। उसने देखा कि अनिकेत अँजुरी से नाव का पानी उलीचने के बदले पैण्ट-बुश्शर्ट उतार-कर उनकी मदद से पानी निकाल रहा था।

भयानक सृष्टि में जी रही अमृता ने बिजली की कौंध में बनियान और जाँघिया पहने अनिकेत के शरीर को शोभित देखा था। इतना ही नहीं कुछ ऐसा अनुभव किया था जो तुरन्त भय में घुल-मिल गया वरना उसे कोई संज्ञा दी जा सकती थी।

"अरे उदयन ! तू किनारे की ओर तो नहीं ले जा रहा न ?"

"मैं नहीं जानता।"

"तो थोड़ी गति कम कर लेने में क्या हर्ज है ?"

"नाव को दिशाशून्य बनाने में तेरा कोई कम दोष नहीं है। बादल घिर आये तबतक तू क्यों गोल-गोल घुमाता रहा ?"

"अच्छा, तो तेरी साहसवृत्ति में चिन्ता पैदा हो ही गयी !"

"हाँ, मैं बड़ी उलझन में हूँ। हाथों में थकान भी महसूस हो रही है अमृता !"

"ला, पतवार मुझे दे दे। मैं किनारे का ही ध्यान रखकर बैठी थी। अब बाह्य संकेत और आन्तरिक प्रतीति दोनों के सहारे चल सकूँगी।" उसे लगा कि नाव में दो जोड़ी पतवार होती तो कितना अच्छा होता। कड़ियाँ तो तीन जोड़ी पतवारों के लिए हैं। यदि इस समय एक नाव में न होकर तीनों थोड़ी दूर हों तो एक दूसरे को देख भी न पायें। कैसा घोर अन्धकार है !

अमृता के हाथ कई बार निरर्थक सिद्ध हो जाते थे। लहरों पर नाव के उछलते समय पतवार खींचती पर वह पानी के बाहर रह जाती थी। उसके हाथ की चूड़ियाँ खनक उठती थीं। थोड़े क्षणों के लिए उसका चित्त निष्फलता के अनुभव से व्यग्र हो उठता था।

अनिकेत ने पतवारें ले लीं। थोड़े समय में ज्यादा दूरी पार की। उदयन ने यह कहकर पतवार माँग लिये कि पानी उलीचना उसके बस का नहीं। थोड़ा आराम मिलने से एकत्र शक्ति को संकल्पपूर्वक द्विगुणित कर उसने नाव की गति बढ़ायी और लहरों पर नियन्त्रण पाकर मन ही मन उनका उपहास किया। ऐसी घोर वर्षा होने लगी कि किसी सुरक्षित व्यक्ति को भव्य उपमाएँ सूझ आयें—'मेघ समुद्र को अपना शत्रु मानकर उसका मर्दन करना चाहता है, जहाँ से अमृत-कुम्भ निकला था, समुद्र के उस गर्भ में अमृता को पहुँचा देना चाहता है....इत्यादि।'

मूसलाधार वर्षा के एकाएक बढ़ गये आक्रोश को देख, न जाने क्यों अनिकेत को लगा कि अब बरसात बन्द हो जायेगी, उसने अमृता से कहा भी। उसे आनन्द हुआ।

अमृता द्वारा निश्चित की गयी दिशा में—पवन और लहरों की गति की दिशा में बलपूर्वक उदयन आगे बढ़ रहा था। लहरों के थपेड़ों से नाव का अगला भाग बार-बार तिरछा हो जाता था। पूरे शरीर का बल उसने कलाई में संचित कर लिया था।

मान लो कि आप किनारे पर खड़े हैं, उन पास वृक्षों के पास सर्वव्याप्त अन्धकार में भी आप उछलती लहरों पर झूलती विवश नाव को देख सकते हैं। नाव को पीछे छोड़कर वेग से बढ़ती आ रही लहर आपकी दृष्टि के बीच दीवार बन जाती है। नाव आपको दिखाई नहीं पड़ती। भ्रमवश आप मान लेते हैं कि नाव गयी। पर वहीं पीछे से उछलती लहर तत्काल नाव को ऊपर उठाती है। वह उठी और पछाड़ खाकर गिरी, वह डूबी...। आप केवल दर्शक हैं, फिर भी विह्वल हो जाते हैं...। बिजली की मर्मभेदी कौंध आपकी आँखें बन्द कर देती है, तो भी आप देख लेते हैं कि भयाक्रान्त अमृता 'ओह!' कहती अनिकेत की गोद में लिपट जाती है। नाव डगमगा उठती है। उसकी अस्थिरता बेहद बढ़ जाती है। ऐसा होने के कार्य-कारण-सम्बन्ध को विस्मृत करने के लिए संघर्ष करता उदयन केवल पतवारों पर ही ध्यान देता है। आप इस प्रकार सोच सकें या न सोच सकें, वे तीनों इस समय किसी चाँद के अस्तित्व से नितान्त बेखबर हैं।

वर्षा थम गयी, यह देख उदयन का उत्साह बढ़ा। उसने जो देखा और

जिसे देखकर उसने कुछ मान लिया इस कारण थोड़ी देर पहले की बिजली की कौंध उसे अपने अन्तर्नाद की ज्वाला के रूप में याद आती है। उदयन को अब भी उसके नियन्त्रण में न रहती नौका पर क्रोध ही आता है। और यह क्रोध इतना अधिक होता है कि उसमें समुद्र में कूदकर अपने कन्धे के एक धक्के से नौका को किनारे तक ले जाने की शक्ति उत्पन्न करता है। उसने कभी अस्वीकार नहीं किया कि क्रोध शक्ति नहीं है। हाथ के स्नायु में महसूस होती थकान को वह बिसर जाता और पतवार को अधिक गहरे में लेने लगता है।

एक आवाज़ होती है। यह आवाज़ पतवार के अगले हिस्से के टूटने की आवाज़ है। दाहिने हाथ की पतवार टूट जाने से उसका हत्था उदयन की छाती में लगता है। इस पतवार को खींचने के लिए उसने बल प्रयोग किया था। उस बल के कारण नाव एक ओर झुक जाती है। पानी की सतह तक ऊँची एक खुरदुरी चट्टान से उसका अगला हिस्सा टकराता है। तीनों पानी में इस तरह कूद पड़ते हैं मानो फिंक गये हों। अनिकेत का पैर एक पत्थर से टकराता है पर यह उस पत्थर का वह भाग था जो पानी में चारेक फ़ुट गहराई में डूबा था।

तीनों एक-दूसरे को सुरक्षित देख चैन की साँस लेते हैं। "हम आ पहुँचे उदयन! इस पत्थर तक तो तू कई बार तैरता-तैरता आ चुका है।"

"अनिकेत, तू अमृता की मदद करना। इन लहरों का वेग असह्य है।" उदयन ने अमृता को जवाब नहीं दिया और अनिकेत को यों मदद करने को कहा, इसका कोई विशेष कारण नहीं होगा।

अनिकेत ने निकट जाकर अमृता को अपने कन्धे का सहारा दिया, उसने आनाकानी किये बग़ैर आधार ग्रहण किया। इन कपड़ों में भी वह तैर तो सकती थी, फ़क़त उसे इस ढंग से तैरने की आदत नहीं थी।

"उदयन ?"

"उसकी ज़रा भी आवाज़ सुनाई न दी।"

"उदयन, क्यों पीछे कैसे रह गया ?"

"अब कोई जल्दी नहीं।"

अमृता का हाथ अनिकेत के कन्धे से सरकता-सरकता रह गया। इसलिए उसने अपना दाहिना हाथ अनिकेत के गले के निकट रखा और बायीं ओर खिसकी। बार-बार हो जाते अनिकेत के स्पर्श से और स्पर्श के परिणामस्वरूप उसके अंगों में जागते आन्दोलनों से उसे ऐसा लगा कि वह स्वयं गौरवहीन परिस्थिति में फँस गयी है। तो फिर अनिकेत का सहारा छोड़कर अलग क्यों नहीं तैरती ? क्या उस स्पर्श के साथ अचेतन मन का कोई समझौता हो गया है ? या अनिकेत का सहारा छोड़ने पर उसे बुरा लगे तो ?

"उदयन, तू कितनी दूर रह गया ? क्यों कुछ बोलता नहीं ?"

उदयन से प्रश्न पूछकर अनिकेत अपने मन को दूसरी ओर मोड़ने का प्रयत्न कर रहा था ? या फिर उसे उदयन की चिन्ता थी।

"उदयन !"

"किनारे पहुँचने पर कहूँगा।"

"तेरी आवाज़ में थकान दिख रही है। तुझे कोई चोट नहीं आयी न ?"

"बाद में कहूँगा।"

अनिकेत ठिठका। अमृता भी समझ गयी थी कि उदयन सरलता से तैर नहीं सकता होगा।

"उसे कहीं वह पत्थर तो नहीं लगा ? आप उसे सहारा दीजिए। मैं सरलता से बाहर निकल जाऊँगी। एक मिनट ज़रा थमना। मैं साड़ी ठीक से बाँध लूँ।

अमृता को सावधानी से बाहर निकलने को कहकर अनिकेत पीछे मुड़ा। ज्यों ही उसने उदयन की बाँह थामी कि तुरन्त ही उसका शरीर शिथिल हो गया। दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई। बाहर निकलने का प्रयत्न करने के साथ-साथ उदयन के शरीर को सँभालता था। इस दौरान अनिकेत ने देख लिया कि उदयन के ललाट से खून बह रहा है। ललाट की दाहिनी ओर चोट लगी थी। बहुत शीघ्रता करने की आवश्यकता थी।

पैर तले धरती आ गयी थी ! अब तो पीछे लौटती लहरों के बीच सम्भव हो उतना टिके रहना था। बाहर की ओर बढ़ती लहरों के धक्कों ने उन्हें किनारे पर लाकर रखा।

बादल का आवरण महीन होने लगा था।

उदयन रेत में पैर जमाकर खड़ा रहा। वह शरीर को खड़ा रखना चाहता था। पर एक क्षण उसकी सावधानी शिथिल हो गयी और वह बैठ गया।

चन्द्र दिखा। अमृता अपने कपड़े निचोड़ती, थोड़ी दूर खड़ी थी।

उदयन का चेहरा एकदम लाल हो गया है। अलबत्ता चाँदनी में लाल रंग, लाल नहीं लगता। किन्तु बहकर काला पड़ने लगा खून भी लाल रंग का ही भाव पैदा करता है। इससे अनिकेत को उदयन का चेहरा लाल दिखाई दिया। वह पास बैठकर देखने लगा कि घाव कितना गहरा है। चिन्ता-जैसी बात नहीं। पर उसने कुछ अलग तरीक़े से कहा :

"बिलकुल चिन्ता करने-जैसा नहीं। एक बात तो कहनी पड़ेगी दोस्त ! तूने नाव पर अद्भुत नियन्त्रण रखा। यह प्रसंग तो याद रह जायेगा ... दमी में इतनी असाधारण शारीरिक शक्ति देखकर ही मुझमें उसके प्र...

लगता है।"

"मैं आगे जाकर अपने फेमिली डॉक्टर को बुलाती हूँ। आप लोग शान्ति से आइए, मगर...." बनियान और जाँघिये में खड़े अनिकेत को देखकर अमृता के चेहरे पर हास्य छिपा नहीं।

"तू कुछ खटपट मत करना। अनिकेत का एक मित्र डॉक्टर है। हम उन्हें ही बुलायेंगे।"

"तो आप कॉर्नर तक आइए। तब तक मैं कार ले आती हूँ।"

एक फ़र्लांग जितनी दूरी थी। उदयन खड़ा होकर चलने लगा। बीसेक क़दम चलकर रुक गया।

"तुझे एतराज़ न हो तो मैं तुझे उठा लूँ ?"

"अभी मुझे थोड़ा प्रयत्न करने दे। चलते-चलते गिर पड़ूँ तो उठा लेना।"

"अपने साथ इस तरह क्रूरता से क्यों व्यवहार कर रहा है ?"

"होश में रहूँ तब तक तो कम से कम मुझे अपना वज़न तो उठाना ही चाहिए न !"

"इसके सम्बन्ध में ज़रूरत से ज़्यादा होश में रहने की आवश्यकता नहीं है। मैं आसानी से तुझे उठा लूँगा। हम लोग एक बार पिकनिक में गये थे और एक विद्यार्थी पेड़ की डाली टूटने से गिर पड़ा। अन्य कोई साधन नहीं था। मैं उसे उठाकर लगभग आधा मील दौड़ने की गति से चला था।"

उदयन बिना कुछ बोले खड़ा रहा। अनिकेत ने उसे उठा लिया।

"अरे ! तेरा वज़न जितना दीखता है उससे कम लगता है।"

"गत वर्ष एक सौ पैंतीस रतल था। उसके बाद बढ़ने का कोई कारण नहीं। तेरा अभी हाल ही बढ़ा होगा !"

"तेरी शुभेच्छा का रहस्य समझ सकता हूँ। एक सौ पचास के आसपास रहता है। तू तो जानता है कि मैं शरीर का ध्यान तुझसे ज़्यादा रखता हूँ। इसलिए मेरे लिए यह गौरवप्रद तो नहीं ही कहा जा सकता।"

"लगता है तेरा बांधा हुआ रूमाल ढीला हो गया है। सिर में टीस उठती है। ज़रा कसकर बाँध न।"

अनिकेत ने उदयन को नीचे उतारा। दोनों आमने-सामने खड़े थे। रूमाल छोटा पड़ रहा था। गाँठ बराबर नहीं लग पा रही थी। इसलिए थोड़ी देर हो गयी। उदयन ने देखा कि उसकी ऊँचाई अनिकेत से लगभग एक इंच कम होगी। उसने आज अनिकेत का चेहरा ध्यानपूर्वक देखा। अर्जुन के एक चित्र में चित्रकार ने ऐसा ही चेहरा रचा था। बिना कुछ बोले अनिकेत उसे उठाकर चलने लगा। अमृता ने कार का हॉर्न बजाया। अभी सौ क़दम की दूरी थी।

"भई, जरा ध्यान रख न ! इस रूमाल में से तेरा खून मेरी बाँह पर टपक रहा है। तू वहाँ हाथ रखे तो क्या हानि है ?"

"मैं ऐसा कायर नहीं हूँ।"

"तो इस तरह तेरी निर्भीकता का मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़नेवाला। सुरक्षा का ध्यान रखने में कायरता कहाँ से आ गयी ?"

उदयन ने माथे पर हाथ रखा। इसके बाद दोनों कुछ बोले नहीं। इतने में अमृता कपड़े बदल कार लेकर आ गयी ? दौड़ती गयी होगी।

दोनों पीछे की सीट पर बैठे। अमृता कार चालू करे उसके पहले अनिकेत बोला :

"आपको आपत्ति न हो तो मैं ड्राइविंग करूँ। आप उदयन के पास बैठिए।"

"हाँ, मुझे यह अच्छा लगेगा।" अमृता तुरन्त बाहर आ गयी। उदयन से सटकर बैठी। उसके सिर पर हाथ रखकर देखने लगी।

"ओह ! अभी खून बह रहा है !"

झटके के साथ कार उठी। पीछे बैठनेवालों ने अन्दाज़ लगाया कि स्पीड साठ और सत्तर के बीच होनी चाहिए।

"तुम दोनों धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ो। मैं डॉक्टर को फ़ोन कर लूँ।" अनिकेत तीन-तीन सीढ़ियाँ कूदता हुआ ऊपर चढ़ गया। उतावली में खोलने से दरवाज़ा खड़खड़ाया। सीढ़ी चढ़ते हुए दोनों ने यह सुना।

डॉक्टर को जागकर फ़ोन पर आने में देर लगी। "जल्दी आओ। मैं अनिकेत। उदयन को सिर में चोट लगी है।" इतना कहकर उसने फ़ोन रख दिया। उदयन सोफ़े पर जाकर बैठा तब तक अमृता उसकी बाँह पकड़े हुए थी।

"अब तो छोड़ ! इसको भ्रम है कि मैं इसके सहारे सीढ़ी चढ़कर यहाँ तक पहुँचा हूँ। उसे यदि मेरी चोट का दसवाँ हिस्सा भी लगा होता तो अभी तक होश में न आयी होती।"

"क्यों, मेरा सहारा तुझे नहीं रुचा ?"

"अरे ! मैं तो यह चाहता हूँ कि ऐसी चोट मुझे रोज़ लगा करे। तुम दोनों का और खास तौर से तेरा ध्यान इस समय मेरी ओर कितना सादा है ! तुझे इस तरह मेरी चिन्ता करते देख मुझे हँसी आती है।"

"चल, अन्दर आ। कपड़े बदलकर सो जा।"

पानी गरम होने रख दिया था। डॉक्टर के आने तक अनिकेत ने सिर धोकर उदयन को पलंग पर लिटा दिया था। डॉक्टर ने दो इंजेक्शन लगाये। पट्टी बाँधी। कितना खून बह गया होगा ? प्रश्न के उत्तर में डॉक्टर ने कहा कि चिन्ता करने-जैसी बात नहीं। आराम की ज़रूरत रहेगी। बनेगा वहाँ तक घाव दखेगा नहीं।

नहीं अन्दर की चोट ? कोई और खास चोट तो नहीं आयी न ?

"यह जो चोट लगी है वह भी कहाँ खास है ? आपको आधी रात को उठाया उसके लिए खेद प्रकट करूँ या फिर आपका खूब-खूब आभार माना जाये ?"

"कल दोपहर हॉस्पिटल आइए। स्क्रीनिंग कर लूँ। फिर आभार मानिएगा।"

"क्या मेरे लिए इस तरह लेटे रहना जरूरी है ?"

"निहायत जरूरी है।"

डॉक्टर के जाने के बाद उदयन ने ताश खेलने का प्रस्ताव रखा जो बहुमत से उड़ गया। अनिकेत ने कहा कि अब अमृता को जाना चाहिए। बहुत देर हो गयी है।

अमृता घर पहुँची, तब बैठक में उसके भाई-भाभी और मेहमान ब्रिज खेलते बैठे थे। उनके साथ थोड़ी देर बैठने की इच्छा हुई। द्वार तक पहुँचने पर उसने अपना सन्दर्भ सुना। वह ठिठकी। सीढ़ी की ओर मुड़ी और अपने शयनगृह में पहुँच गयी।

ऐसी स्थिति में उदयन अनिकेत के घर ही रुका। अलबत्त अनिकेत ने रोक रखा इसलिए। वरना उदयन का तो क्या ठिकाना !

पाँच

उदयन को लगा कि दर्द का अन्तिम भाग ही वह अनुभव कर सका है। टीस जल्दी चली गयी। कोई विषैला मुलायम सँपोलिया छूता हुआ सरक जाये, उसके बाद ही उसका पूरा खयाल आये उसी तरह टीस को खतम होने पर ही जान पाया। मस्तक में जाग उठी उस वेदना को समझने के लिए भी उसे अब कल्पना का आश्रय लेना पड़ा। वह दूसरी टीस उभरने की प्रतीक्षा इस इरादे से करने लगा कि अबकी बार तो इस दर्द को समग्र अनुभव कर लेना है, आद्यन्त जान लेना है। इस दर्द की टीस के माध्यम से अपने अस्तित्व में उद्भासित चेतना को जानने का आज अवसर मिला है, ऐसा मानकर वह दूसरी टीस की प्रतीक्षा करने लगा।

दूसरी टीस। वह भी धोखा दे गयी। दर्द की सम्पूर्णता का स्वरूप अजाना रह गया। सतर्कता काम न लगी। दर्द सतर्कता को भेदकर पार निकल गया।

कठिनाई से टिकायी हुई जागृति व्यर्थ हो गयी। 'जो दर्द और उसका कारण अपने ही शरीर में स्थित है क्या उसे पूरी तरह जान लेने की शक्ति मुझमें नहीं है?' उदयन अकुला गया। उस घाव को मस्तक से अलग कर आँखों के सामने लाने की इच्छा हुई। अपने हाथ से ऐसा किया जा सकता तो कितना अच्छा होता?

टीस को समझने के लिए उसने अन्य माध्यम ढूँढ़े। बचपन में उसने सुना था—अमुक आदमी को टिटेनस हो गया है। वह लकड़ियाँ फाड़ रहा था। लकड़ी को पैर से दबाकर वह कुल्हाड़ी चला रहा था तभी घूम गयी और उसका आधा अँगूठा कटकर अलग हो गया। वह ऐंठने लगा। उसके शरीर की सभी नसें खिंचने लगी और वह मर गया। किशोरावस्था में थोड़े-बहुत घाव तो उदयन को भी लगे थे, उसे क्यों ऐसा नहीं हुआ? 'आज अगर इन टीसों में वेग आ जाये तो क्या वे टिटेनस में बदल जायेंगी? पर डॉक्टर ने इंजेक्शन तो दिया है? यदि इंजेक्शन देने से पहले ही असर शुरू हो गया हो तो? मेरे शरीर को क्या होता है, क्या नहीं होता इस सम्बन्ध में मैं कितनी अल्प जानकारी रखता हूँ! मुझे शरीर-विज्ञान और मेडिकल सम्बन्धी पुस्तकें पढ़नी चाहिए। आज तक इस सम्बन्ध में क्यों विशेष कुछ पढ़ा न जा सका? पर पढ़ने से क्या होगा? वही का वही आदमी के शरीर में प्रवेश कर नया सायुज्य प्राप्त करता है। जिस तरह दर्पण-दर्पण में अलग प्रतिबिम्ब उसी तरह आदमी-आदमी में रोग का विशिष्ट स्वरूप। तो भी लोग व्याख्या करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं। जबकि रोग और घाव तो बिलकुल अलग तरीक़े से काम करते हैं। कुछ समझा नहीं जा सकता। यह विवशता तो असह्य है। एक बार एक ट्रेन-दुर्घटना देखी थी। उसका एक कर्मचारी इंजन और मालवाहक डिब्बे के बीच खड़ा-खड़ा चप गया था। उसके पेट में लोहे के कैसे-कैसे आकार घुस गये थे। इंजन और डिब्बे के बीच ऊपर की ओर उस आदमी का धड़ दिखाई देता था। वह होश में था। बात कर सकता था। डिब्बे और इंजन को अलग कर उसे बाहर निकालने गये, शरीर के साथ एकरूप हो गये लोहे को अलग करने गये। एक सूत बराबर भी जगह नहीं हुई होगी कि उसकी आँखें फट गयी।' यह प्रसंग उदयन के लिए मृत्यु की एक अनुभूति बन गया। आज कितने वर्षों बाद उसे यह प्रसंग याद आया। उस दिन देखते-देखते उस प्रसंग को स्वयं जी सका होता उससे अधिक आज जी सका। आज उसने स्वयं को इंजन और डिब्बे की चपेट में रख देखा... पर ओह! यह टीस...क्या उस आदमी की मृत्यु से यह टीस बड़ी है? तो फिर कैसे यह उस प्रसंग को भुलाकर मुझे खींच गयी!

करवट बदलकर उसने सोने का प्रयास किया। दोनों हाथ तकिये पर ले

गया। हाथ के स्नायु दबाकर देखे। अकड़ गये हैं। तो क्या सुबह में दुखने लगेंगे? उसने फिर से हाथ के स्नायु और कन्धे को दबाकर देखा। पतवार चलाने के तो अनेक अनुभव हैं। किन्तु इस तरह ?

एकाएक नदी और समुद्र के पानी के घनत्व का अन्तर उसकी त्वचा ने अनुभव किया। उसे एक दूसरी घटना याद आयी। पिताजी ने उस समय अध्यापक की नौकरी नहीं छोड़ी थी। साथ-साथ लकड़ी का व्यापार भी करते थे। उनके साथ वह भीलोड़ा से शामलाजी की ओर गया था। शरद् पूर्व अथवा भादों के आरम्भ के दिन थे। मेश्वो नदी में ठीक-ठीक पानी था। एक आदिवासी किशोर नहाने के लिए नदी में कूदने की तैयारी कर रहा था। उदयन उसके साथ बातों में लग गया। उस किशोर ने कहा था, 'मैं सामने पार निकल जाऊँ तो क्या दोगे ?' उदयन ने जवाब दिया था, 'दूँगा क्या ? मैं भी तुम्हारे साथ शायद तुमसे भी पहले उस पार निकल जाऊँ।' दोनों में शर्त लगी थी। भुजंग की गति से दौड़ती मेश्वो नदी में उदयन कूद पड़ा था। उसने उस पार पहुँच जाने की जल्दी न की थी। प्रवाह में उछलने और जलक्रीड़ा करने में मजा आया था। वह किशोर प्रवाह से जूझ रहा था। पता नहीं क्या हुआ कि उसके मुँह से चीख निकल गयी थी। उस समय तो वह डूब न जाये इसके लिए हाथ-पाँव मार रहा था। उदयन ने थोड़ी देर तो खेल देखा। फिर उसे पकड़ लिया था।

स्मृति में यह घटना पूरी हुई तभी उदयन को उस धरती का तरबतर चौमासा याद आया। गीली ज़मीन पर जगह-जगह पड़े हुए गड्ढे, अँखुआती घास, वर्षा के थम जाने के बाद पेड़ों पर से टपकता पानी, हवा के झोंके से पत्तियों में जाग उठती भीनी-भीनी मर्मर, तरह-तरह की घास पर झाँकते रंग-बिरंगे नन्हें-नन्हें फूल, बाजरे के लहलहाते खेत और मक्के के झूमते भुट्टे....उसने करवट बदली।

विजयनगर तहसील में सर्दियों के अन्त में खिल-खिलकर पलाश-वन उठते ढाक....वक्र किंशुक का रंग...सागौन की झाड़ी...।

अनिकेत ने बत्ती जलायी। एक हाथ में दवा की गोलियाँ और दूसरे में पानी का गिलास लेकर वह खड़ा था। उदयन उठ बैठा। अनिकेत के हाथ खाली किये। सो गया। उसके हाथ और कनपटी का स्पर्श कर उसने लाइट बन्द की और चला गया।

... कॉलेज-जीवन में उदयन ने कितनी ही बार तरण-स्पर्द्धा में भाग लिया था। एक स्पर्द्धा के समय उसके प्रतिस्पर्द्धी बहुत पीछे छूट गये थे। वह क्षण-भर रुका। सबको पास आने देकर वह आगे बढ़ा। दर्शकों ने तालियों की गड़गड़ाहट से उसका अभिवादन किया था। बाहर आकर इधर-उधर खड़े

प्रतिस्पर्द्धियों का उसने सिंहावलोकन किया। प्रेक्षकों में अमृता भी थी बल्कि अमृता उनमें मुख्य थी। उस पुराने प्रसंग के गौरव को ताज़ा करने में उदयन इस क्षण सफल न हो पाया। आज जो हुआ वह कल्पनातीत है। अनिकेत ने ऐसी किसी स्पर्द्धा में प्रथम स्थान प्राप्त नहीं किया है। वह तो इस प्रकार की स्पर्द्धाओं के आयोजन को ही अवैज्ञानिक मानता है। मगर इससे क्या हुआ? विजेता के रूप में वह प्रख्यात नहीं है। उसमें इतनी अधिक शक्ति है यह उदयन को खबर नहीं थी। अमृता ने भी यह आज जाना होगा। उससे कैसी लिपटी हुई थी, किन्तु उदयन ने उसकी मदद न ली होती तो क्या हो जाता? जो होना था वह हो जाता, पर वह उदयन के लिए अच्छा होता। उसे अफ़सोस था कि उसका मनोबल कमज़ोर हो गया था और वह स्वीकार करना पड़ा। वह अपने प्रति सख्त नाराज़ हुआ।

यह प्रसंग उसने ही खड़ा किया था। दूर से नाव लाया। वज्राघात करती लहरों पर नाव तैरती रही, वहाँ बीच में पत्थर आ गया। पत्थर भले ही आता हो किन्तु अनिकेत न होता तो अच्छा। उसकी मदद की वजह से ही तो उदयन का मनोबल ढीला हुआ। मदद हाज़िर न होती तो वह सब कुछ सहन कर लेता। आज तक क्या-क्या नहीं सहा? उन दिनों अमृता जब उसकी ओर बेहद आकर्षण अनुभव करती थी, तब मुक्त किया हुआ पंछी उड़-उड़कर वापस पिंजरे में लौट आये, यों मुसकराती, आँखें छलकाती आती अमृता को उसने रक्षण दिया। अपने हिंस्र आवेगों से उसकी रक्षा की है कारण उस समय अमृता कन्या थी—मुग्धा थी, युवती नहीं थी। आज अमृता मुझे सहारा देने का दिखावा कर गयी। उसने खुद आयोजन करके जो परिस्थिति खड़ी की थी उसमें गौरव बढ़ने की सम्भावना थी, किन्तु नीचा देखना पड़ा।

उदयन ने इस तरह करवट बदली कि पलंग हिल उठा, उसके जोड़ चरमरा उठे।

अमृता को भूल जाने के लिए उसने आँखें खोलीं। नाइट लैम्प की मद्धिम रोशनी में वह कुछ भी नहीं देख पाया। न देखने का ही उसका इरादा था। उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं।

उस परिचर्चा में उदयन ने भाग नहीं लिया था। वह ग्यारहवीं कक्षा में था अमृता नवीं में। उस चर्चा में अमृता प्रथम आयी। उसे बधाई देने के बाद उदयन ने उसे कुछ मुद्दे बताये। उद्धरण सुनाये। अमृता भौंचक रह गयी। उस वर्ष कुछ समय पूर्व ही उदयन उस ज़ोन के स्कूलों का व्यायामवीर बना था। अमृता ने उसे देखा था। वह भी खेलकूद और तैराकी में रुचि लेती थी। स्वभाव से संकोची होने के कारण वह स्पर्द्धाओं में शायद ही भाग लेती थी। अलबत्त

निबन्ध, चर्चा आदि प्रवृत्तियों में भाग लेने के लिए अध्यापक उसे मना लिया करते थे। बाद में तो उसे समझाने की ज़रूरत भी न रही। अमृता भी उसी कॉलेज में प्रविष्ट हुई, जिसमें उदयन पढ़ रहा था। अब दोनों के बीच कोई दूरी न थी। किसी भी विषय पर वे बात कर सकते थे। तब वह अपनी मौसी के घर अँधेरी में रहता था। उनकी कोई सन्तान न थी।

'मैं अमृता को हर विषय पढ़ाता रहता था, इसी कारण तो वह प्रथम श्रेणी का कैरियर बना सकी। प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी। मेरी मदद के बिना वह इतनी आगे बढ़ सकती थी।' किन्तु यह सब तो वह स्वयं ही कहती है। बार-बार कहती है इसलिए कि आभार मानकर ऋण अदा कर देना है। अब अनिकेत को देखा है।

वे दिन बड़े गुलाबी थे। तब तो भविष्य में अविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठा था। प्रत्येक मुग्ध मानस की भाँति उदयन भी भविष्य के सम्बन्ध में रंगबिरंगे मनसूबे रचता। स्वप्नसृष्टि में डूबकर वह वर्तमान परिस्थितियों को भूल जाता। अमृता के सम्पर्क का स्वयं की कामनाओं के अनुकूल अर्थ लगा लेता और कल्पित दाम्पत्य-जीवन के आनन्द का नशा अनुभव करते-करते वह हैंगिंग गार्डन तक पहुँच जाया करता। एक शाम उसने निर्णय किया था कि पढ़ाई पूरी होने के बाद नौकरी के साथ-साथ कुछ अनुवाद-कार्य कर वह पैसे इकट्ठे कर लेगा। और फिर पगड़ी देकर वह मलबार हिल पर डेढ़-दो कमरों का छोटा-सा किन्तु स्वतन्त्र फ़्लेट किसी मकान की सबसे ऊँची मंजिल पर पसन्द करेगा ताकि आसानी से पूरी बम्बई देखी जा सके।

उन्हीं दिनों की बात है। बी. ए. की परीक्षा देने के बाद नौकरी ढूँढ़ रहा था। पिछले चार-पांच वर्षों से एक अँगरेज़ी प्रिंटिंग प्रेस में वह प्रूफ़ देखने का काम करता था। वह ग़लतियाँ आसानी से पकड़ लेता था। पहले से ही स्पेलिंग अच्छी थी इसलिए उसका काम प्रशंसित होता था। किन्तु अब प्रेस का काम छोड़ दिया था। उस प्रेस में अब पाठ्य-पुस्तकें छपने लगी थीं।

एक ओर बेकार अनुभव कर रहा था दूसरी ओर पढ़ने का बेहद शौक़ चढ़ आया था। उसे लगा कि पढ़ने-जैसा तो यही था। क्योंकि मनुष्य को केन्द्र में रखकर यह सब लिखा गया था—पूर्व निश्चित आदर्शों और सतही आचार-संहिताओं का आक्रमण मनुष्य का दम घोंट देता है...इन तमाम रूढ़िग्रस्त समाजों के जड़-चौकठों में फँसा हुआ मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता के अधिकार के सम्बन्ध में जागृत हो तो जीवित भी नहीं रह सकता...यह आदमी जिसे जी रहा है वह क्या जीवन है ? सबके साथ समझौता कर स्वयं के साथ बेवफ़ा होकर आदमी ने जीवन को नज़रअन्दाज़ किया है। यह कायरता है...अपने प्रश्न स्वयं समझकर

उनका हल ढूंढ़ने के बदले, स्वतन्त्र विचार करने का अपना दायित्व छोड़कर उपदेशात्मक कथा-कीर्तन का आश्रय लेनेवाला अन्धश्रद्धा की छाया में भले ही सुखी हो जाये, पर वह परम आत्मवंचक है...कहा गया सभी मान लेना बौद्धिक पराधीनता का लक्षण है। और तो और वह बौद्धिक प्रवृत्ति भी नहीं है। यह तो भेड़ियाधसान है...अपने अस्तित्व से निरपेक्ष हो, ऐसी कोई वास्तविकता मनुष्य के लिए उपयोगी नही...ईश्वर के नाम पर जमा किये हुए सभी अन्तिम सत्यों को मनुष्य के अस्तित्व से कोई सरोकार नही। अन्त-पूर्व के सत्य—ज़िन्दगी के साथ ही मनुष्य के अस्तित्व का सम्बन्ध है—जीवन्त वास्तविकता के साथ ही सम्बन्ध है...अनन्त सम्बन्धी दर्शन बहुत चले। अब तो अपने अस्तित्व का ज्ञान—सन्त का दर्शन—प्राप्त करना है और वह भी किसी दूसरे के मार्गदर्शन के बिना। मार्गदर्शक भले ही स्वयं अपने मार्ग पर चलते रहें। जब ये लोग भी चले जाते हैं तो इनके हठाग्रहों का बोझ जीनेवालो के सिर क्यों?

उस वेकेशन में उदयन ने जो कुछ पढ़ा था उसकी संक्षिप्त सूची भी यहाँ दे पाना सम्भव नही। केवल दिशा संकेत कर दिया। यह अध्ययन उसके रहन-सहन में इस क़दर घुल-मिल गया जैसे पानी में क्षार। अमृता परिवार के साथ महाबलेश्वर गयी थी। उसने लौटकर देखा कि ज्यादा सिगरेट पीने से उदयन के होंठ काले पड़ गये थे।

उसने निश्चय किया था, 'अब अमृता से नही कहूँगा कि मैं तुझे चाहता हूँ। 'तुझे समझता हूँ' यह कह सकने की क्षमता विकसित कर लेने के बाद ही उससे कहूँगा कि समझ की भूमिका पर ही हम मिल सकते हैं।'

आज अमृता उससे दूर जाकर खड़ी है। उसे दूर देखकर आकांक्षा जगती है। उसके अंग-सौष्ठव से दृष्टि इतनी अधिक प्रभावित होती है कि विश्लेषण करने की स्वस्थता नही टिका पाता। उसके अतृप्त अन्त में अरब की गरम लू सांय-सांय करने लगती है।

"अब मै अवश्य ही बात करूँगा। पहले जिसके मूल्य की अवमानना की थी वैसा कोई सौरभपूर्ण एकान्त मिले...। उसके दृष्टिक्षेप मे सद्य जात ऋजुस्पन्दन की सुषमा मैं देख लूँ, कि बस...। हाथ लगेगा? दो उत्सुक क्षणों का संयोग। उसके अमर्दित वक्ष का गुमान अपने अंग-अंग में सोख लूँ, ऐसा समय आयेगा? वास्तव में इसके लिए मैं उससे प्रार्थना तो नही ही करूँगा। उसे समझना चाहिए कि मेरी चाह...।"

अनिकेत तो कहता था कि वह अमृता के प्रति निरपेक्ष है। सच्चा आदमी है। वह सच्चा न होता तो? उदयन को अमृता पर क्रोध आया। उसे कोई भी कितनी आसानी से फाँस सकता है? किन्तु आज भी उसका व्यवहार किसी

विदग्ध मनुष्य को शोभा दे, ऐसा है ? वह अनिकेत को भूल जायेगी। आज तो उसका व्यवहार कितना सन्दिग्ध है। यह सन्दिग्धता क्या आगे भी जारी ही रहेगी ? तो उसे कब तक संशय में रहना होगा ?

"अनिकेत बम्बई छोड़ रहा है। अच्छे काम पर जा रहा है। मरुस्थल के बढ़ते विस्तार को रोककर वनस्पति द्वारा समृद्धि कैसे बढ़ायी जा सकती है—इस सम्बन्ध में शोध एवं अध्ययन करने जा रहा है। उसका निर्णय स्तुत्य है। कुछ ठोस काम करके आयेगा। वापस आयेगा ? भले ही आये ? कौन कहता है कि जाये ? अगर वह हमारे बीच से हटने के विचार से जा रहा है तो वह मुझे समझता नहीं। उसके बदले में मुझे कुछ भी नहीं प्राप्त करना है। मेरी अपनी हो उतनी ही शक्तियों से मिली विजय मुझे स्वीकार्य है, अन्यथा अन्त बेहतर है। मैं उपकृत नहीं होऊँगा, संघर्ष करूँगा। वरण करने में यदि अमृता जागृत रह सकी तो अनिकेत देखेगा कि उसके लिए त्याग करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हुआ, उदयन जीत गया। मुझे विजय स्वीकार्य है, उपकार नहीं। और यदि मैं उसके सामने हार गया तो कोई बात नहीं। हार के बाद जीने की व्यवस्था मैं कर लूँगा। किन्तु मैं अनिकेत के प्रति शंकालु क्यों हूँ ? यह भी सम्भव है कि वह बीच से खिसकने का आदर्श लेकर न भी जा रहा हो। वह राष्ट्रीयता में विश्वास करता है। मातृभूमि के प्रति उसके मन में अनुराग है। बढ़ते मरुभूमि को नाथने के लिए कुछ कर गुजरने की शुद्ध नीयत से ही वह जा रहा होगा, और उसके उस बूढ़े खूसट अध्यापक की भी इच्छा थी। वह जिस काम से जा रहा है उसके अलावा और कोई बात उसके मन में न हो...।"

अनायास उसका हाथ अपने कपाल पर गया। थोड़ी खुजलाहट हुई थी। पट्टी पर हाथ गया। उसे खयाल आया कि टीसें कभी की बन्द हो गयी हैं। क्या अनिकेत इसीलिए गोलियाँ दे गया था ?

यह शरीर कुछ गरम क्यों है ? उन इंजेक्शनों के लेने के कारण तो यह असर नहीं हुआ होगा ? किन्तु साँस कोई गरम नहीं है।

"इसमें से लम्बी बीमारी हो जाये तो ? बीमारी से उसे सख्त चिढ़ है। ऐसे अनिवार्यतः कौन पड़ा रहेगा ? अपनी ही इच्छा से भले ही घण्टों समुद्रतट के कुहासे में बैठकर हम दूर के आकारों को धुँधलाते देखते रहें। भले ही आँखों को आकाश में रखकर देखें कि समुद्र की सतह पर एक विशालकाय मगर पड़ा है। नमी में रहा क्षार और धुआँ उसकी खाल के साथ एकाकार हो गये हैं। मलाबार हिल के पश्चिमी छोर पर स्थित राजभवन का अन्तिम भाग और सामने कोलाबा प्वाइण्ट—ये मुँह फाड़कर पड़े मगर के नीचे और ऊपर के दो जबड़े हैं। मरीन ड्राइव रात के अँधेरे में जलते दीयों के कारण भले ही किसी

को 'महारानी के नवलखे हार का' भ्रम करने पर वे तो मगर के खुले मुँह के दांत हैं—चबाने और छिपाने दोनों ही तरह के दांत। एक कवि को यह सूझा तो सही, किन्तु वह इसे 'पुच्छविहीन मगरी' का ठोस बिम्ब न दे सके, फिर इधर-उधर की बातों में लग गये। मैं लिखूंगा। पहले जरा तैयार हो लूं, फिर मेरी हथेली में हांफती छिपकली का बिम्ब बनकर यह नगर आ गिरेगा। मैं कहूंगा—हे मनुष्यो! यदि मैं तुमको मनुष्य कहने का साहस करता होऊं तो मुझे क्षमा करना। किन्तु एक बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी—यह शहर है। इसके द्वारा जोड़ी गयी सन्धियों से तुम एक नहीं हो सकोगे। तोड़ डालो ये सब सन्धियां और लौट जाओ अपने वतन में। इस सीलन-भरे [illegible] की वायुहीन उमस में मुँह लटकाये क्यों बैठे हो? जाओ, अभी भी [illegible] खेतों की मेड़ों पर अँसुवायी दूब को चमकाती कोमल धूप [illegible] रही है। आखिर वह कब तक रुकेगी? तुम सब जाओ, मैं [illegible] थाऊँगा। फिर इस सूने नगर में अमृता भले ही अकेली रहे [illegible] भी जा रहा है....।"

विचार, स्मरण और चिन्ता का प्रवाह [illegible] आ रही है, यह जानकर उसने नाइटलैम्प का [illegible] अँधेरा भी अधूरा उसे अच्छा नहीं लगता।

घर में प्रवेश करते ही अमृता ने जो टीका [illegible] थी। उसे चैन न पड़ा। लेटने के बाद पन्द्रह-बीस मिनट तक वह [illegible] करती रही। अन्त में हारकर बाहर आयी। छत की पश्चिमी मुँडेर को थामे खड़ी रही। आकाश में इधर-उधर थोड़े बादल बच रहे थे। निरावरण चन्द्र के पास एक छोटी-सी बदली रह गयी थी—उसके कलंक के रंग सदृश धुँधली। चन्द्र खिसक गया तो वह भी खिसकने लगी या फिर दोनों साथ-साथ दूर जाते रहे। जो भी हुआ हो अब वह बदली अन्य बादलों-जैसी ही दिखने लगी। चन्द्र के परिवेश से बाहर जाते ही उसकी विशिष्टता अदृश्य हो गयी।

ध्यान देने पर लहरों की फेनिल ध्वनि अमृता सुन सकी। हर बार अधूरी रह जानेवाली कामना अगली लहर में कैसे प्रकट होती है! किनारे पर लहरें कैसी पछाड़ती हैं। मानो समुद्र एकत्रित पौरुष है और यह धरती है नारी। समुद्र की गोद में धरती। चारों ओर समुद्र है। दोनों में ऐसा क्या अभाव है जिसे वे सतत दूसरे में खोजते रहते हैं? कैसी है यह शाश्वत अतृप्ति? कवि ने वर्णन किया है, धरती की ओर धँसती समुद्र की आक्रामक लहरों का, पीछे हट-

कर हिचकोले खाती और श्वास लेकर आगे धँसती इन लहरों की हृदयलीला का। यह वृहद् सृष्टि रतिकर्म के कितने ही रूपक प्रदान करती है। आरोह-अवरोह...स्वयं के अभुक्त अंगों का अब उसे बोझ लगता है। किन्तु प्रेम बिना क्या? पहले प्रेम की प्रतीति, फिर वरण और फिर...। प्रतीक्षा तो करनी ही रही।....

अभिनन्दनों की वर्षा के बाद सभी के रुख में अचानक उदासीनता आ गयी है। घर में सबके साथ दुराव-सा अनुभव होता है। उसकी ओर ताकती सभी निगाहों में मानो एक प्रश्नचिह्न है, स्नेह का विश्वास नहीं। या फिर वह अपने ही मनोभावों का दूसरे की निगाहों में आरोपण कर रही है। उसका अपना चित्त भी कहाँ कम संशयग्रस्त है? जो भी हो, आज परिवार के वातावरण में सौहार्द का अभाव है।

आजकल कोई प्रवृत्ति भी नहीं है। प्रवृत्ति के अभाव से भी ऊब बढ़ती है। इस वर्ष कहीं बाहर भी नहीं गयी। घर में से सभी लोग अपनी-अपनी रुचि के स्थलों पर दो-दो सप्ताह बिता आये। उसको भी जाना अच्छा तो लगता, मगर किसके साथ?

"मैं घरवालों के साथ समय नहीं बिताती, यह शायद उन्हें अच्छा नहीं लगता हो। दूरस्थ व्यक्ति के सम्बन्ध में शंकाएँ जागती रहती हैं। अब मुझे इनमें घुलना चाहिए। किसी न किसी काम में उपयोगी तो हो ही सकती हूँ। प्रवृत्ति में मन पिरोने से अकेला नहीं लगेगा।"

अमृता की थकी आँखों ने फिर से देखा। बरसात के बाद मानो चाँदनी और अधिक निर्मल हो गयी थी। आकाश में पहुँची धरती की उमस बरसात से पहले चाँदनी में घुल गयी होगी। अब तो वह भी धुल गयी होगी। हवा की शीतलता तन्द्राप्रेरक थी।

वह शयनकक्ष में गयी। नीचे बैठे लोगों के अट्टहास की आवाज उस तक पहुँची। वह निढाल होकर बिस्तर पर गिरी। मन में जो घुमड़ रहा था उसे सागर पर के अनन्त अवकाश में सरका देने में वह समर्थ न हो सकी थी, फिर भी एकदम निराश होकर नहीं लौटी थी। समय एक ऐसा परिबल है जो उत्तर दिये बिना भी आगे चलकर प्रश्नों की तीव्रता कम कर सकता है। अनिकेत या उदयन? वरण केवल अभिरुचि पर निर्भर होता तो कितना अच्छा! साथ ही उसे अपने नैतिक कर्तव्य का बोध न हुआ होता तो कितना अच्छा! कर्तव्य-बोध से निरपेक्ष-वरण किया जा सकता है? तब तो वरण करना कितना सरल होता! इससे उसका कोई गौरव भी न होता। उदयन उससे कुछ अपेक्षा रखे तो यह समझा जा सकता है, किन्तु उसकी अपेक्षा की तुष्टि हेतु क्या अमृता को निर्णय

रोशनी देखी वहाँ उड़कर पहुँच जाती तितलियों-जैसी मैं हूँ ? ये लोग ऐसा मानते भी हों क्योंकि इनके संस्कार ही ऐसे हैं। जिस समाज में ये जीते हैं उसका मापदण्ड ही रोशनी और साज-सज्जा है। मैंने सम्पत्ति को कभी मूल्य नहीं माना। वरना उदयन जैसे ख़ानाबदोश की ओर झुकती नहीं। और अनिकेत के कुल-सम्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जानने की इच्छा नहीं की। मैंने तो इतना ही देखा है कि ये दोनों अपने आधार पर खड़े हैं। आज मैं इन्हें समझने योग्य व्यक्ति मानती हूँ। अन्य किसी रूप में मैं इन्हें नहीं देखती। इनके सम्पर्क का ये लोग ऐसा अर्थ क्यों लगाने लग गये ? कामनाएँ न जागती हों ऐसा नहीं है, किन्तु आज तक मैंने उन्हें रोक रखा है। अपने सुख को रोक रखनेवाले व्यक्ति को ये सामाजिक ऐसा बदला देंगे ?

"इन लोगों ने वस्तुस्थिति को समझने का थोड़ा भी प्रयत्न किया होता तो मुझे इतना अधिक दुःख न होता। बिना कुछ जाने बग़ैर मेरे सम्पर्क के सामने लाल-बत्ती धर दी। फिर इसके बारे में चिन्ता करने की इन लोगों को क्या जरूरत आ पड़ी ? थोड़ा-सा काम और शेष समय आमोद-प्रमोद। है दूसरा कुछ इनके जीवन में ? लेखक-कलाकारों के चार-पाँच नाम जान लिये और अखबारी समाचारों की चर्चा करने लगे, बस। किसी बौद्धिक प्रवृत्ति में दिलचस्पी ली है इन लोगों ने ? इनके दैनिक आयोजन में होती है कोई फेर-बदल ? आराम, खेल-कूद, सिनेमा, बाग, बाज़ार, होटलें...इनके अतिरिक्त अन्य किसी के साथ इनका क्या सम्बन्ध ? अधिक से अधिक प्रवास और वहाँ भी जायेंगे तो पूरी तरह साधन-सामग्री से लैस होकर। समग्र प्रपंच साथ ही घसीट ले जायेंगे।

"उदयन को ये लोग क्या समझें ? अनिकेत को कैसे पहचान सकते हैं ? अभी तक मेरी प्रशंसा करते रहते थे। हर रोज़ आते अभिनन्दनों को इकट्ठा कर मुझसे कहते। किन्तु मेरे विषय के शीर्षक का अर्थ भी शायद ही इनमें से कोई जानता होगा। प्रशंसा का नित्यक्रम छोड़कर एकाएक उपालम्भ का प्रस्ताव ले आये। इनकी ऐसी बालिश सलाह मैं मान लूँगी ऐसा ये लोग मानते होंगे ? यदि किसी ने यह सोचा होता कि इस पत्र की मुझपर क्या प्रतिक्रिया होगी, तो क्या ऐसा साहस करते ?

"उनके साथ मैं बात नहीं करूँगी। लिखित उत्तर दूँगी। उनके सामने भी नहीं देखूँगी।"

अमृता खड़ी हुई। काग़ज़-पेन लेकर लिखने बैठी—

"आपमें से किसी एक को सम्बोधित कर मैं उत्तर नहीं लिख रही हूँ। आप सबने सामूहिक दायित्व से मुझे यह पत्र, बल्कि धमकी-पत्र लिखा है। इसलिए मुझे भी आपकी पूरी टोली को सम्बोधित करना चाहिए। इसके उपरान्त आप

सब मेरे लिए एक समान हैं। भाइयों और भाभियों का बौद्धिक स्तर एक-सा ही है। यह बात मैं पहले से ही जानती थी। आज उसकी सम्पूर्ण प्रतीति हो गयी। आपने जो सलाह मुझे दी है, उसमें आप सब एक ही तरह से और एक ही स्तर का सोचते होंगे ऐसा साबित होता है।"

इतना लिखकर वह रुकी। लिखा हुआ पढ़ गयी। 'इसमें जरूरत से ज्यादा कड़वाहट आ गयी है। पढ़ते हुए उन्हें कैसा लगेगा? मैं आज तक किसी से झगड़ी नही हूँ। माँ कहती गयी है...' माँ की याद आते ही अमृता का आक्रोश गल गया। उसने पत्र फाड़ डाला। बैठी रही। फिर अनिच्छा से दूसरा कागज लिया :

"सर्वानुमति से दी गयी आपकी सलाह के लिए आभारी हूँ। किन्तु आपकी यह अथवा अन्य कोई सलाह मुझे उपयोगी हो सके यह सम्भव नही। मुझे क्या करना है और क्या नही इन सब निर्णयों के सम्बन्ध में मैं सदा स्वावलम्बी रहना चाहती हूँ। जिस प्रकार मैं आपमें से किसी को कभी किसी भी प्रकार की सलाह नही देती उसी प्रकार आपमें से कोई मुझे सलाह देने का कष्ट करे यह भी मैं नही चाहती। ऐसा करने में नाहक आपका समय बिगड़ेगा यह मैं आपको आज बता दूँ। फिर, किसी को आपकी सलाह उपयोगी सिद्ध हो ऐसी समझ आप लोगों में से किसी में होगी या नही, इस सम्बन्ध में मुझे शंका है। अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि अपनी रुचि-प्रवृत्ति के आधार पर दूसरों को समझने का प्रयत्न करने में बहुत खतरा है। ऐसी-वैसी कोई सलाह देने का उत्साह आप भविष्य में बतायेंगे तो उसका उत्तर देने के लिए मैं आपके पास नही होऊँगी। 'छाया' छोड़कर अन्यत्र रहने चली जाऊँगी। नौकरी करूँगी। ऐसा करने में मुझे शर्म नही आयेगी। और इसमें शर्म क्यों? वही गौरवपूर्ण मार्ग है। कम्पनी के हिस्सेदारों में माँ मेरा नाम जोड़ती गयी है उसे रद्द कर देना। मुझे सम्पत्ति नही, स्वतन्त्रता चाहिए।"

इस समय माँ के स्मरण से अमृता की आँखें सजल हो उठी। "माँ की मृत्यु को चार वर्ष होने को आये। पहली बार वह इस तरह याद आयी। इस विशाल भवन का नाम 'छाया' उसी का दिया हुआ है। वह मेरे शिक्षण में कितनी अधिक दिलचस्पी लेती थी! संगीत में उसकी कितनी गहरी रुचि थी! नृत्य सीखने के लिए उसने मुझसे आग्रह किया था। मैं सीख रही थी, किन्तु एक समारोह में नृत्य प्रस्तुत करने के बाद प्रेक्षकों की ललचायी आँखें देखकर नृत्य की तालीम लेनी छोड़ दी। नृत्य को नही। नर्तक को देखनेवाली इस दुनिया का मनोरंजन मुझसे नही होगा तो इसमें कला-देवता की सेवा ही होगी। और फिर एक आदमी क्या-क्या कर सकता है? नृत्य में दीक्षित हो गयी होती तो क्या पी-एच. डी.

कर पाती ? और उदयन तो नृत्य को वास्तविकता में से पलायन करानेवाल माया मानता है। माँ उदयन के प्रति सद्भाव रखती थी। उसको पास बिठाक घण्टों उसकी आपबीती सुनती रहती थी। उससे भी पूछती—'अमृता का अभ्या कैसा चलता है ?' मैं पास होती तो जरा कठोर अभिप्राय देता। इसलिए मैं इ प्रश्न का उत्तर छिप-छिपकर सुनती। उस समय उदयन का अभिप्राय मेरे लि अन्तिम अभिप्राय होता था।

"माँ की मृत्यु के बाद वह पहली बार आया तो शून्यमनस्क बैठा रहा। मुझ साथ लेकर माँ की बैठक में गया। जहाँ बैठकर शाम को पढ़ती रहती थीं वह जाकर नीचा मुँह कर खड़ा रहा। मेरी आँखों में आँसू आ गये। उसने देखा त तुरन्त पास आकर मेरे आँसू पोंछते हुए कहने लगा, 'अमृता, रोकर वेदना हलक करना तो कायरों का काम है। वेदना तो हमारा मेरुदण्ड है।'

"आज मुझे इस शोक-प्रसंग पर माँ की याद आयी। कोई असहायता अनुभ की कि उसमें से बचने के लिए मैंने उसकी स्मृति का आश्रय लिया। मैंने उसे याद किया—वह भी अपने स्वार्थ के लिए। जब ऐसी कोई परिस्थिति सम्मुख नहीं थी तब मुझे उसकी याद क्यों नहीं आयी ? उसके प्रति मेरा ममत्व कहाँ चला गया था ? तो क्या आप्तजनों की मृत्यु से हमें जो दुःख होता है, उसका कारण अपना स्वार्थ है ? ऐसा ही होगा। कुछ अंश तक ममत्व और अधिकांश में स्वार्थ इसमें निहित होता है। इसीलिए तो कुछ खोया है ऐसा अनुभव होता है। स्वार्थ न हो तो आदमी रोये ही क्यों ? प्रेम हो तो उसके लिए प्रार्थना न करे ? किन्तु ऐसा कोई बिन्दु भी होगा जहाँ प्रेम और स्वार्थ सन्धि पाते होते हैं। मृतात्मा को याद करना भले ही हमारी मर्यादा हो, पर ये मर्यादाएँ ही मनुष्य की पहचान में सहायक लक्षण होती हैं।

"जब तक मैं अपने साथ निर्मम बनकर नहीं सोचूँगी, व्यवहार नहीं करूँगी मुझे दूसरों का आश्रय लेना ही पड़ेगा। और आश्रय से मिला सुख मुझे पराधीनता की याद दिलाता रहेगा। तो क्या करूँ ? घर छोड़ दूँ ? यह पत्र उन लोगों को दूँ ? ओफ़्फ़् ! रात के तीन बज गये।"

उसने पत्र की संशोधित आवृत्ति भी फाड़ डाली। "ऐसी लड़ाकू भाषा का उपयोग करने में मेरी दुर्बलता प्रकट होती है। उनसे मिलकर शान्ति से बात करूँगी। उनकी इस तरह अवहेलना कर देना और यह मान लेना कि उनकी बात में कोई तथ्य नहीं है, उचित नहीं। इस रुख के मूल में अहम् काम करता है। मैं उनकी बात का तात्पर्य समझूँगी। यह सम्भव है कि उनके पत्र में उन्हें जो अभिप्रेत हो वह व्यक्त न भी हो पाया हो। भाषा के माध्यम पर पूरा विश्वास नहीं रखा जा सकता।"

अनिकेत रात देर तक जाने की तैयारी में लगा रहा था। क्या-क्या साथ ले जाये ? ले जाने-जैसा लगे फिर भी छोड़ा जा सके तो छोड़ता जाऊँ। हाँ, छोड़ता जाऊँ। केवल सामग्री ही नहीं संवेदन भी।

"उदयन ने मेरे कारण नौका-विहार का आयोजन किया। किन्तु उसे चोट लगी। ज्यादा चोट आयी है। कल अगर डॉक्टर कहेगा कि चिन्ताजनक बात नहीं है, तभी जाऊँगा। इतना खून बह गया, तो भी कितना बेपरवाह है। उसके घाव का इलाज किस तरह का होगा, शाम तक मालूम होगा। यदि मात्र इंजेक्शन से ही घाव भर जाने-जैसा होगा तो चिन्ता नहीं। 'एक्स-रे' लेने के बाद ही सही स्थिति का पता चल सकता है।"

यहाँ से जाकर पहले तो वह पालनपुर में रहने की व्यवस्था कर लेगा। फिर कच्छ हो आयेगा। यदा-कदा राधनपुर में भी रुकेगा। भीषण गर्मी के इन दिनों में तो आबू पर रहना अच्छा लगे किन्तु अभी तो वहाँ अहमदाबाद जाकर बसना होगा। पहले एक बार जैसलमेर भी हो आना चाहिए। यदि पालनपुर में रहना अनुकूल न रहा तो जोधपुर चला जाये। संस्था का मुख्यालय जोधपुर में शुरू कर सका जाये तो अच्छा !

रेगिस्तान।

आज तक जाने क्यों उसे देखने की इच्छा तक भी न जागी ?

वीरान ! मरुस्थल ! रेगिस्तान ! बंजर भूमि ! प्रत्येक नाम एक ही प्रदेश के लिए प्रयोग किया जाता है, फिर भी प्रत्येक की अर्थछवि पृथक्। इन अर्थों की प्रत्येक छवि की जाँच-पड़ताल अनिकेत प्रवास-दरमियान कर लेगा। मरु को अस्तित्व शेष करने के लिए वह जा रहा है। अतः जिसे मिटाना है उसे वह पहले जानेगा।

"रेगिस्तान की सरहदों को भेदकर जब उसमें प्रवेश करूँगा, तब वहाँ पर निर्जन बनकर विलसते अनन्त का किस रूप में मुझे साक्षात्कार होगा ? क्या उस शून्य में मैं अपने अनन्त को पा सकूँगा ? परिणाम मेरे हाथ में नहीं है। मैं पुरुषार्थ करूँगा। मरुभूमि का छोर पल्लवित कर लौटूँ तो यह भी कुछ कम नहीं। अरावली की शिखरमाला यदि युग-युग से खड़ी न होती तो अभी तक रेगिस्तान कहाँ पहुँच गया होता ? उस पर्वत की वनराजि में लहराती हरीतिमा को नीचे उतारूँगा। प्रकृति को रण में जीवन मिले इससे अधिक मुझे कुछ खोजना नहीं है। और वह खोजना सरल भी नहीं है। प्रश्न जीवन का—पानी का ही है। और पानी वहाँ नहीं है, ऐसा भी नहीं। दिखाई नहीं देता। और

जो है उसे दिखने में रुचि भी कैसे हो ? कारण कि वह खारा है। खारेपन को अलग कर पानी ग्रहण करे ऐसी वनस्पति के बीज मैं एकत्र करूँगा और लोगों को बतलाऊँगा। यदि इतना कर सका तो मेरा भविष्य मुझे सन्तोष अनुभव करने की छूट देगा। पुरुषार्थ करने का कितना बड़ा मौक़ा मिला है ! उदयन कहता है कि पुरुषार्थी व्यक्तियों के समक्ष जड़ अवरोध उपस्थित करके प्रमादी दुनिया कुम्भकर्णी निद्रा ले रही है। उसे जगाने के लिए आघात करना पड़ेगा। यह उदयन का मत है। दुनिया जैसी है, भले वैसी ही रहे। यह मेरी दुनिया है जिसका एक सिरा मैं हूँ। मैं अपने से ही आरम्भ करता हूँ और मेरे लिए बस इतना ही पर्याप्त है कि मैं सोता नहीं हूँ। दूसरों की नींद में बाधा पहुँचाकर मैं क्या पा सकनेवाला हूँ ? मुझ अकेले को तो अकेले भी आगे जाना है। जो आगे जाते हैं उनके पदचिह्न किसी न किसी को तो पीछे आने के लिए प्रेरित करते ही रहते हैं।"

प्रवास में अनिकेत को किशोरावस्था से ही रुचि है। उसने अपने आचार्यजी को आज पत्र लिखा उसमें अपने विद्यार्थियों के लिए भी थोड़ा लिखा। अभी कॉलेज खुला होता तो उनसे इस तरह अलग होना अवश्य दुष्कर लगता। जल्दी निकल जाने का निश्चय किया वही ठीक रहा। उसने लिखा था—"मैं तीन वर्ष की छुट्टी लेकर प्रवास पर जा रहा हूँ। और प्रवास में जानेवाला कभी खाली हाथ वापस नहीं आता। प्रवास शिक्षण के लिए उपयोगी हो सकता है। मैं शिक्षक इसीलिए बना कि विद्यार्थी के रूप में अपनी जिज्ञासा सदैव बनाये रख सकूँगा। ऐसा मेरा विश्वास था। तुम युवकों को ये तीन चीज़ें नहीं भूलनी चाहिए—प्रवास, इतिहास और धर्म। प्रवास बृहद् की झाँकी दिखलाता है। प्रकृति के साहचर्य से संवेदन व्यापक बनते हैं। इतिहास—जगत् और जगत् में विकसित विज्ञानों, मानवविद्याओं और कलाओं का इतिहास—मानव-प्रवृत्ति की फलश्रुति प्रस्तुत करता है। इतिहास के पलड़े के समक्ष एक दूसरा पलड़ा भरने की अपने में आकांक्षा जागती है। इस पलड़े को हम अपने भविष्य से भरने हेतु उद्यत होते हैं उस समय धर्म के अध्ययन से प्राप्त विवेक सन्तुलन स्थापित करता है। प्रवास से जागी क्रियात्मकता, इतिहास से जागी आकांक्षा और धर्म से प्राप्त जागृति विद्यार्थी के लिए उपास्य है। यह बात मैंने विद्यार्थी की हैसियत से ही की है।"

प्रवास की तैयारी पूरी करके अनिकेत जब सोने लगा तब उसके समक्ष एक प्रश्न आ उपस्थित हुआ—'अमृता ने मेरे निर्णय के बारे में [illegible] नहीं पूछा ? मुझे लगता था कि वह नाराजगी व्यक्त करेगी। [illegible] मेरे इस काम का प्रयोजन पूछेगी, मैं रण [illegible] जा रहा [illegible]

चिन्ता व्यक्त करेगी और अन्त में शुभेच्छा देगी। वह कुछ भी न बोली।"

"यह अच्छा ही हुआ कि वह कुछ भी न बोली। मैंने जितना मान लिया था मेरी प्रवृत्तियों में इतनी अधिक दिलचस्पी उसे किस लिए हो? जब-जब उससे मुलाकात हुई है मैंने उसकी ऊष्मा अनुभव की है। नेत्रों ने उसके पुष्ट सौन्दर्य का हृद्य प्रभाव झेला है। उसके सान्निध्य में कुछ भी अधूरा नहीं लगा। वातावरण उसे पाकर सभर हुआ है। वह भी मेरी उपस्थिति से खुश हो, ऐसा लगता रहा है। मेरी प्रवृत्ति में उसे दिलचस्पी नहीं है—क्या ऐसा कहा जा सकता है? तो फिर वह क्यों नहीं बोली? उसने कुछ संकेत भी क्यों नहीं किया?"

समुद्र की लहरों में जब आगे-आगे बढ़ रहा था तब पीठ से होता अमृता के स्कन्ध का स्पर्श...उसके वक्ष का स्पर्श अनिकेत को याद हो आया। अपनी पीठ के जुड़ी सृष्टि को भूलकर तैरते रहना उसे दुष्कर लगता था—वह याद आया। 'और एक बार उसके अधर मेरे गले को स्पर्श कर गये थे—क्या वह लहरों के आघात का असर था या फिर संकेत? कवि शेली ने इटली के पश्चिमी तट पर नौका-विहार करते-करते ही दूसरे जगत् में प्रवेश किया था पर उन-जैसों के लिए यह जलसमाधि है और मुझ-जैसों के लिए डूबना। कामना कहाँ-कहाँ खींच ले जाती है!"

उदयन के कमरे का हलका-भूरा प्रकाश एकाएक लुप्त हो गया। उसने लाइट बन्द की। तो क्या वह अभी तक जग रहा था?

"अब तो उदयन और अमृता से दूर! अमृता से दूर—बहुत दूर! वह याद आयेगी तो मन को कहूँगा कि वह तो सौन्दर्य की प्रतिमा के रूप में साक्षात् हुआ एक स्वप्न थी, स्वप्न। स्वप्न के रूप में ही उसके अस्तित्व को प्रमाणित करूँगा। उसे मरीचिका मानूँगा...। उसे मरीचिका मानने से तो उसका अपमान होगा। मैं उसका अपमान नहीं कर सकता। उसकी स्मृति की पवित्रता सँभाले रखूँगा....।" अनिकेत को लगा कि वह चलता-चलता एक मरुद्वीप तक पहुँच गया है। नारियल के तने से टेककर वह बैठा है। नीरव शान्ति में पवन ऋजु कदमों से प्रविष्ट होता है। उसके पीछे-पीछे एक संगीतमय स्वर बहता आ रहा है। अंग-अंग को मृदुल स्पर्श हो रहा है। वह स्वयं रण के बीच है इस वास्तविकता का भान विस्मृत होता जाता है। जागृति तन्द्रावस्था में रूपान्तरित होती है और स्वप्नहीन निद्रा का प्रारम्भ होता है।

छह

अनिकेत जागा। उदयन सो रहा था। उसके सिर पर हाथ रखकर देखा कि उसे बुखार है या नहीं। फिर हाथ गले के नीचे छाती पर ले गया। अनिकेत की बुशर्ट पहने उदयन कुछ अलग ही लग रहा था। उसका शरीर बुखार-जैसा गर्म नहीं था। थोड़ी देर उसके पास खड़ा रह, वह पलंग पर बैठा। उदयन गहरी निद्रा में था। उसे शाल ओढ़ाकर अनिकेत नित्यकर्म में रत हुआ।

निवृत्त होने के बाद आलमारी खोली। साथ ले जाने योग्य कोई पुस्तक रह तो नहीं गयी न? पौने नौ बजे थे। वैसे तो सभी पुस्तकें ले जाने का मन होता था। जहाँ रहना होगा, वहाँ बिना पुस्तकों के सूना लगेगा। वनस्पतिशास्त्र, भूगोल और भूगर्भशास्त्र की कुछ अँगरेजी पुस्तकें तो उसने कल रात में ही निकालकर एक सन्दूक में भर ली थीं। उसमें अब पाँच कविता संग्रह रखे जा सकें, इतनी जगह न थी। सूटकेस में जगह थी।

उदयन जागा। अँगड़ाई और फिर जम्हाई ली। सुबह में भी यह आदमी जम्हाई लेता है—इसका अनिकेत को पता न था। इसलिए उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ।

"गुड मार्निंग उदयन!"

"मंगल-प्रभात मित्र! आँख खुलते ही मैं तो घबरा गया कि मेरा मकान इतना बड़ा कैसे हो गया? एक कमरा इस ओर, एक कमरा सिर की तरफ़—इतने बड़े मकान में तू छोटा नहीं पड़ता? अगल-बगल यदि इतनी अधिक जगह रहे तो मैं तो एडजस्ट ही न हो पाऊँ।"

"यह मकान कहाँ मैंने बनवाया है? मैं तो केवल वारिस हूँ।"

"हाँ, तू तो विरासत को मानता है।"

"माने या न माने, भोगे बिना मुक्ति नहीं।"

"कैसी है तेरी तबीयत। कल तो मैं तुझे पूछना ही भूल गया। तुम सबने मेरी कितनी देखभाल की, मगर मुझे तो एक प्रश्न भी पूछने को नहीं सूझी। लोग कैसे स्वार्थी होते हैं? अपने दर्द में ग़र्क़ होकर सबको भूल जाते हैं।" बोलकर वह छत की ओर देखने लगा। अनिकेत पुस्तकें रखकर हँसता-हँसता उदयन के कमरे में आया और उसके पलंग पर जा बैठा। हँसी रोककर उसने

बैठकर उसने ट्रंक खोला।

"अरे! घूमने जा रहा है या पढ़ने?"

"पढ़ते-पढ़ते घूमूँगा।"

एक पुस्तक लेकर उदयन पन्ने पलटने लगा। एक चित्र दिखाई दिया। काले वस्त्रों में सुशोभित एक सुगठित शरीरवाले सहारावासी पुरुष का चित्र था। ओढ़ी हुई शाल झूले पर फेंक उदयन खड़ा हुआ। साढ़े नौ बजे थे। वह ट्रंक खुला रह गया था। उसे बन्द किया, बन्द करके फिर खोला। एक एटलस तथा अन्य दो पुस्तकें लेकर झूले पर लेट गया। एटलस देखना उसे रुचिकर लगा। नयी खरीदी हुई पुस्तक थी। सूर्य और नक्षत्रमाला का नक़शा खोलकर एटलस को छाती पर टिकाकर देखने लगा।

"यह नक़शा देखने पर तो ऐसा ही लगता है कि वी आर नो-ह्वेयर।"

"नो, माई फ्रेण्ड, वी आर एवरी-ह्वेयर, इफ़ वी आर नो-ह्वेयर। हम जितने और जहाँ दिखाई देते हैं उतने और वहीं ही अपने को मान लेते हैं। जो देखा नहीं जा सकता फिर भी अस्तित्व में है, वह सर्वत्र और शाश्वत है। आखिर तो हम लोग वही हैं।"

"मुझे तो प्रत्यक्ष जगत् में रुचि है। एक बात में मैं महर्षि मार्क्स के साथ सहमत हूँ कि जिसे अपनी इन्द्रियों से प्रमाणित किया जा सके, वही सच्ची दुनिया है। उतना ही वास्तविक जगत् है।"

"वास्तविक लगे वही सत् है, यह माना नहीं जा सकता है। उस वास्तव और सत् में अन्तर है।"

"यह तो सब दर्शनशास्त्र की बातें हैं।"

नौकर नाश्ता लाया।

"मुझे इस नाश्ते में दिलचस्पी है क्योंकि यह वास्तविक है। तेरे सत् के बिना मुझसे चलेगा, पर इसके बिना नहीं चल सकता है।"

"यह तो मात्र तर्क है। उदयन, तू कहानी लिखना छोड़कर एकांकी नाटक लिख। उसमें अधिक सफल होगा।"

"तेरी सलाह का अर्थ समझ गया हूँ। एक बात तुझसे पूछनी है—तू जो शोधकार्य करना चाहता है, उसमें उस प्रदेश को देखना ज़रूरी है, यह तो समझ सकता हूँ पर बीच-बीच में यहाँ आकर रहे तो क्या आपत्ति है?"

"यहाँ आऊँ तो दूर पड़ सकता हूँ। रेगिस्तान के समीप के शहरों-क़स्बों में रहूँगा। सम्भव हो सके, उतना घूमना चाहता हूँ। अब निकला ही हूँ तो उस प्रदेश का होकर रहूँ। जहाँ कहीं भी जाता हूँ मुझे तो अपने घर-जैसा ही लगता है। तू तो जानता ही है कि वर्ष के तीन-चार महीने मैं बम्बई से बाहर

ही रहता हूँ।"

"किन्तु मैं नही मानता कि तुझे बम्बई से बाहर अधिक अनुकूल आयेगा। चार-पाँच महीनों के बाद तो आना! मेरी तरह तू काँटों पर चलकर बड़ा नही हुआ है। मैंने कितनी बार आग्रह किया पर तू एक बार भी मेरे साथ भीलोड़ा नही चला। खुद जहाँ जाता है, घर बनाकर आता है, किन्तु मित्र का घर देखने में तुझे रुचि नही।"

"क्या तू इन दिनों वहाँ गया था ?"

"इन दिनों तो नही गया, काफ़ी समय बीत गया है। अब एक बार हो आने की इच्छा है। थोड़े-बहुत मकान, एक घर और चालीस बीघा जमीन। यह सब अब किस काम आयेगा। घर के अलावा शेष सब बेच डालूँ। जो मिल जाये वही सही। पिताजी कोई पूँजी तो छोड नही गये है।"

"मेरी सलाह माने तो, उसे जैसा है वैसा ही रहने दे। वरना हाथ में आया सभी पैसा तू फूँक डालेगा।"

"किन्तु जमीन तो मैं न बेचूँ तो भी जानेवाली है। कानून-कायदे जो बन रहे है।"

"तो यह और भी अच्छा! कायदे के अनुसार जो होता है वह होने दे, दूसरो को बोध-पाठ मिलेगा।"

"कानून से भी अधिक अच्छा न्याय मिले इस तरह खेती करनेवालो को ही जमीन दे दूँ तो ?"

"तो दे देना।"

"अरे! बहुत सुन्दर! एक उपाय सूझा। जमीन भूदान में दे दूँ तो कैसा रहे? एक ही पत्थर से दो शिकार। एक तो जमीन बेचने की परेशानी मिटे, दूसरा पैसे खर्च करने का समय बचे। एक तीसरा फायदा तुझे होगा कि मुझे 'पैसे उड़ाऊ' की पदवी तुझे नहीं देनी पड़ेगी।"

"ऐसे दान में मेरा विश्वास नही। जो उसे जोतते है, उन्हें वह जमीन पाने का अधिकार है। दान देनेवाले हम कौन? वैसे तो दान देना पड़े इतना सारा इकट्ठा करना भी एक प्रकार का पाप है। मनुष्य होकर दूसरे मनुष्य पर दान देने के लिए दया करना—यह तो सवाई पाप है। दया करना तो अधम कोटि का मनोभाव है।"

"अरे! तू तो बुद्धिशाली लगता है।"

"तू दूसरो को समझने लगा है, यह एक अच्छा लक्षण है।"

उदयन कलाई पर से घडी उतारकर चाबी भरने लगा। चाबी देते समय उसने देखा कि स्प्रिंग खिचने से सेकेण्ड की सुई की गति मन्द हो जाती है। इस

तरह धीमी गति से पूरे हुए पचास सेकेण्ड के बाद उसने अनिकेत की ओर देखा। वह उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है यह सोचकर वह बोला—

"मैं दूसरों को समझ नहीं सकता या मुझे उनमें कोई रुचि नहीं होती—ऐसा तो नहीं ही है। बात इतनी ही है कि मैं वह सब प्रकट नहीं करता। इसीलिए मेरा कोई मित्र नहीं। वास्तव में तू इस बारे में अपवाद है। मैंने कभी तुझे चाहने का दिखावा नहीं किया। फिर भी तू मेरे साथ अनुबन्ध अनुभव करता है। तेरी भावना, तेरी मैत्री मेरे लिए अभी तक रहस्य है। अनिकेत! एक प्रश्न पूछूँ? तू बम्बई छोड़कर जा रहा है। जिस स्थिति में तूने जाने का निर्णय किया है, उस सम्बन्ध में मैं जो सोचता हूँ, वह सच है या नहीं? बस इतना ही तुझे कहना है। कहेगा न?"

"अवश्य। प्रश्न समझ में आया तो मैं अवश्य उत्तर दूँगा।"

उदयन के होठ न खुले, क्योंकि उसे विश्वास था कि अनिकेत के बम्बई छोड़ने का वही कारण सच है, जो वह सोचता है। ऐसी स्वतः स्पष्ट बात में उससे पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि इस सम्बन्ध में मैं कुछ पूछूँगा तो इसे लगेगा कि अभी तक इसके मन में एक ही बात घुमड़ रही थी।

"क्यों बोला नहीं? पूछ ले न?"

"फिर किसी समय।"

"तूने तो मुझे केवल प्रश्नचिह्न दिया। प्रश्न तो अध्याहार ही रखा। जैसी तेरी इच्छा। फिर किसी समय पूछना, याद रहे तो। याद रखने का प्रयत्न मत करना। कुछ प्रश्न समय बीतने पर अपने-आप शमित हो जाते हैं। समय बहुत बड़ा परिबल है।"

डॉक्टर आये। अनिकेत खड़ा हुआ।

"थैंक्यू डॉक्टर! हम लोग आपके कन्सल्टिंग रूम पर ग्यारह बजे आने ही वाले थे। एक्स-रे करा लेने के बाद निश्चिन्त हो सकते हैं।"

"तो चलो, मैं ले चलूँ। कार लाया हूँ।"

"मैं तो अभी तैयार ही नहीं हुआ।"

"लौटकर तैयार होना।"

"मगर....।"

"तो तैयार हो जा। फिर भूल न जाना कि जाना है।" अनिकेत को याद आया कि एक बार वह उदयन से मिलने पहुँचा तो वह बाथरूम में था। वह दस बजे पहुँचा था। उदयन साढ़े दस बजे बाहर निकला। "अरे! मैं तो भूल ही गया था कि तू आकर बैठा है। लोग कितने भुलक्कड़ होते हैं।" उदयन कभी-कभी अपने पर से ही नियम बना लेता है।

"डॉक्टर, एतराज न हो तो चाय लीजिए।"

"चलेगी।"

"अरे उदयन! पट्टी खोलकर सिर मत भिगोना।"

"भई! डॉक्टर बैठे हैं, इतनी तो मेरी लाज रख। इस तरह हुक्म क्यों चलाता है? तेरा मेहमान हूँ। नहाने की जरूरत इसलिए है कि समुद्री पानी के क्षार चिपक जाने से चमड़ी बूलन लगती है।"

डॉक्टर हँस पड़े। बोले—

"कितना विरोधाभास है। कहानियों में पैथेटिक और व्यवहारों में सार्केस्टिक।"

"नही डॉक्टर! समझदार व्यक्ति के हास्य-व्यंग्य के गर्भ में उदासी का एक स्रोत—कम से कम एक स्रोत तो बहता ही है।"

"आप जरा जल्दी आयी होती तो कितना अच्छा होता। उदयन अभी ही गया।"

अनिकेत ने पूर्व की दीवार पर लगे इलेक्ट्रिक क्लॉक की ओर देखा। अमृता को आता देख वह दरवाजे की ओर गया था।

"ठीक पाँच-पैंतीस पर वह यहाँ से निकला। सुबह ही वह ठीक हो गया था। मैं असमंजस में था कि जाऊँ या नहीं? एक्सरे के बाद जाना कि चिन्ता का कोई कारण नहीं। और फिर आप तो हैं ही।

उसने कहा कि निश्चित किये अनुसार जाना ही चाहिए। उसके कारण किसी का निर्णय भंग हो, यह उसे पसन्द नहीं। फिर दुबारा रिज़र्वेशन मिलने में समय लगता है। मानसिक रूप से तो मैं बम्बई के बाहर निकल ही चुका हूँ। अब वह ठीक है। यह देख मुझे आज ही जाना चाहिए। काम शुरू कर देना चाहिए। आप थकी हुई क्यों लग रही हैं? जुकाम हो गया है क्या? आँखें कुछ अधिक झुकी हुई लगती हैं। किसी वेदना के भार से तो नहीं झुक गयी न? आपको आराम करना चाहिए था। ऐसी स्थिति में भी आप उदयन की चिन्ता करके यहाँ आयी, यह बात आपके प्रति सद्भाव जगाये, ऐसी है। बैठिए न! खड़ी क्यों है? आपके इस तरह खड़े रहने से पूरा वातावरण अधर में लटका हुआ लगता है। बैठिए! बैठिए! किसी भी आसन को अलंकृत कीजिए।"

"मैंने सोचा बोलना पूरा कर लें फिर बैठूँ।"

"ओ...हो....! मेरा बोलना आपको अप्रिय लगता है, इसका पता नहीं था।"

"आप तो बुरा मान गये।"

"आपके शब्दों का बुरा माना जा सकता है, भला ? आप तो मेहमान हैं। आप कुछ भी बोलें आपकी आवाज़ सुनना मुझे अच्छा लगता है। आपकी आवाज़ में एक मधुर कम्पन है। निविड़ स्पर्श की..."

"मेरी आवाज का एक वैज्ञानिक होकर काव्यात्मक विश्लेपण कब कर रखा था ? इस एक नाचीज की आवाज़ को...."

"विज्ञान का आदमी विश्लेपण ही करता रहे ऐसा नहीं। वह संश्लेपण भी करता है। ये लोग सब कुछ पृथक् नहीं करते; कुछ प्राप्त भी करते हैं। अलबत्त, इसके लिए तटस्थ रह सकें तो। कवि की भांति उन्हें बीच में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। और मैं कवि नहीं हूँ, सौन्दर्य का तटस्थ भावक हूँ।"

"आपको इतना सुनने के बाद मैं निश्चित कर सकी हूँ कि मुझे कहाँ स्थान ग्रहण करना है। आपके साथ इस झूले पर बैठूंगी ताकि आपके वाक्यों के आरोह-अवरोह में झूला करूँ।"

"किसी के शब्दों की लय में झूलते रहना शायद सुखद हो, किन्तु यह एक अचेतन पराधीनता है। आप तो स्वातन्त्र्य की उपासिका हैं।"

अमृता को याद आया कि अनिकेत के सामने वह अपने स्वातन्त्र्य, स्वातन्त्र्य के उस विचार को भी विस्मृत कर जाती है। ऐसा क्यों ? जिसे लोग प्रेम कहते हैं वह....उसे कल रात की 'छाया' में पहुँचने के बाद की घटना याद आयी। जिनके साथ इतने-इतने वर्ष बीते हैं उनकी सलाह के सामने मैंने स्वतन्त्रता की दुहाई दी। उसकी खातिर उनसे लड़ लेने को तत्पर हुई। जबकि अनिकेत के साथ बात-चीत में भी ऐसा लगता है कि स्वयं के शब्द उसका शासन स्वीकार करने के लिए ही प्रकट होते हैं। चेहरा तो बार-बार लज्जावश होकर एक अनजानी परवशता स्वीकार लेता है। यह सब सहजरूप से होता है। मैं कोई जागरूक प्रयत्न नहीं करती। उस स्वतन्त्रता की बात और इस परवशता की स्थिति में कितना विरोधाभास है ! उसने दीवार की ओर देखा। घड़ी की सेकण्ड-सूई का सहारा लेकर उसकी दृष्टि सरकने लगी। एक वर्तुल पूरा हुआ। इस पूरे हुए वर्तुल की परिधि का आरम्भ कहाँ से माना जाये ?

"आपको स्टेशन पर छोड़ने चलूँ ?"

अमृता मानो कोई गम्भीर प्रस्ताव करती हो इतनी सावधानी से बोली थी।

"क्यों, मेरे बाहर भेजने में विशेष रुचि है ?"

"यदि मेरे छोड़ने न जाने से आप रुक जाते हों, तो मुझे आपको छोड़ने जाने में जरा भी दिलचस्पी नहीं।"

"आपको बहुत कष्ट होगा। यहाँ से आप घर जायेंगी, वहाँ से लौटकर

आयेंगी और फिर यहाँ से मुझे स्टेशन छोड़ने चलेंगी....। यह सब तो ज्यादती ही है।"

"तो ऐसा करूँ यहीं ठहर जाती हूँ, आपको स्टेशन छोड़कर ही घर जाऊँगी। ठीक है न ?"

"हाँ, ठीक है। गाड़ी चूक न जाऊँ ?" अनिकेत की मुसकराहट रोकने पर भी न रुकी। उसके स्मित की झलक अमृता के चेहरे पर भी पड़ी। अमृता जब भी अनिकेत को सम्बोधित करती हो तब वह स्मितवती न हो ऐसा तो शायद ही होता है।

"शायद मैं आपकी बात का मर्म नहीं समझी।"

"मैं कह रहा था कि आप यहाँ बैठी हों और मैं प्रवास पर निकलूँ—घर बन्द करके बाहर निकल जाऊँ, यह कितना अविवेकपूर्ण कहलायेगा ?"

"आप प्रवास पर जा रहे हैं या वनवास पर ?"

"वापस आऊँगा, यदि देश निकाला न दे दिया गया तो।"

अपेक्षाकृत अधिक अच्छा वाक्य सुनकर अमृता ने अव्यक्त व्याकुलता अनुभव की। व्याकुलता आनन्दजन्य भी हो सकती है। और ऐसी ही व्याकुलता को अनिकेत की उपस्थिति में अमृता ने अनुभव भी किया है, पर यह उससे एकदम भिन्न थी। अनिकेत का उत्तर सुन आनन्दित होने के साथ अमृता को उदयन का उदासी—तिरस्कार का मिश्रभाव व्यक्त करता चेहरा याद आया। पलकें उठाने पर भी वह ओझल न हुआ अपितु उसने जहाँ-जहाँ देखा उसे वहाँ-वहाँ वह समान रूप से व्याप्त दिखाई पड़ा। तो क्या मेरे दृष्टिपथ में उदयन की छाया फैली ही रहेगी ? उसकी छाया से मुक्त भविष्य का निर्माण कर सकने में वह समर्थ नहीं है ? प्रश्न केवल सामर्थ्य का होता तो वह विजेता होने का प्रयास करती, अनिकेत से कह देती कि...।

"क्यों, कुछ बोलीं नहीं ?"

"क्या बोलूँ ? जिस मोड़ पर आकर हम खड़े हैं, अगर वह नियतिकृत होता तो मैं आपसे श्रद्धापूर्ण आवाज़ में कहती कि सीमाएँ लाँघकर आप आइएगा, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी। किन्तु यहाँ तो आप समय के साथ स्पर्द्धा कर अपने संकल्प को भविष्य में परिणमित देखना चाहते हैं। भविष्य के सूत्र अपने हाथ में लेकर निकलने को तत्पर हैं। आपका संकल्प पूर्ण हो—ऐसा न चाहूँ, ऐसी मैं आत्मरता नहीं हूँ। पर मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहना है जिसे सुनकर आपको आश्चर्य हो—ऐसा सम्भव है। आपने भले ही भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय कर लिया हो, किन्तु भविष्य कभी भी किसी के लिए पारदर्शी नहीं बनता। हमारे हठ के साथ उसे कोई सहानुभूति नहीं। वह अकल्याणकारी है—

ऐसा कहने का मेरा आशय नहीं, किन्तु वह अकल्प्य है। इसलिए लौटकर आप क्या देखेंगे इसकी कल्पना किये बिना ही जाइए। आप आयेंगे इसका मुझे पता है, किन्तु आप आयेंगे तब मैं क्या हूँगी? इसका मुझे पता नहीं। फ़िलहाल तो मैं इतना ही देख सकती हूँ कि आप जा रहे हैं। और आप जा रहे हैं, यह एक बहुत बड़ी घटना है। भले, जाइए। मेरी शुभेच्छा है कि आपका काम पूरा हो तब तक आप बम्बई से बाहर रह सकें।" झूला जरा भी हिला नहीं, इस तरह उठकर वह कुरसी पर जा बैठी।

अमृता की आँखों में तपोवनकालीन शान्ति चमक रही थी और वह शान्ति उसकी माला के प्रत्येक मोती में प्रतिबिम्बित हो रही थी। अमृता ने अब नीचे की ओर देखा था। उसका नतवदन अपने सम्मुख हो—इसकी प्रतीक्षा में अनिकेत बैठा रहा। वह बैठा रहा—यह कहने में आंशिक सत्य था, क्योंकि उसकी दृष्टि एक अनाविल सौन्दर्य का पान कर रही थी।

अमृता ने दक्षिण करांगुलि से मोती की माला ग्रहण कर वक्ष से थोड़ा ऊपर उठाया था। अनामिका की अँगूठी का गुलाबी हीरा उन श्वेत मोतियों के बीच कैसा लगता है?—यह अमृता देख रही थी और इस तरह देखती अमृता को अनिकेत देख रहा था। दर्शन के इन क्षणों को अपने अन्तरंग में हमेशा के लिए स्थिर कर लेना चाहता हो इस तरह अनिकेत देखता ही रहा। स्थित झूले पर तकिये का आधार लेकर बैठा अनिकेत इतना निमग्न था कि अमृता द्वारा उसकी ओर देखे जाने का भी उसपर कोई असर नहीं हुआ। कुरसी पर रखे हाथ की हथेली के सहारे चिबुक को टिकाकर वह फिर नीचे देखने लगी। तर्जनी से धीरे-धीरे हाथ के कंगन को घुमाने लगी। पर वह अधिक समय तक यह सब न कर सकी।

"क्यों, कुछ बोले ही नहीं?"

"अपनी आवाज के कोलाहल से मैं एक अपूर्व सौन्दर्य की अनुभूति को आच्छादित करना नहीं चाहता था। इन थोड़े-से क्षणों को मौन द्वारा संचित कर लेना चाहता था। इन क्षणों को शब्दों का सम्पर्क कराने में कहीं कुछ खो जायेगा, ऐसा भय लगता था।"

"प्रत्येक शब्द कुछ जोड़ता हो, इस तरह आप बोल रहे हैं। आपको सुनकर तो मैं तृप्ति का अनुभव करती हूँ। कम क्या हो जायेगा, बतायेंगे?"

"मौन से निकटता का अनुभव होता है। शब्द के प्रकट होते ही तीसरी उपस्थिति की सतर्कता आ जाती है।" अमृता सुन रही थी। उसे लगा कि अनिकेत के अंक में लुढ़क पड़ूँ और मधुपात्र बन जाऊँ। वह पी जाये। बूँद-बूँद पी जाये। मैं मैं न रहूँ। अविभक्त बन जाऊँ। उसने अनिकेत की आँखों

में देखा। अनिकेत ने एक छलछलाती पारदर्शी सुराही देखी। वह रुका था वही से आगे बढ़ा—

"तीसरी उपस्थिति....और वैसे भी हमारे बीच तीसरी उपस्थिति तो है ही। जो नगण्य नही है, इतना ही नही जब हम मिलते हैं तो मैं उसकी सापेक्षता में ही सोचता रहता हूँ। उसे नकारकर मैं आगे बढ़ सकूँ यह सम्भव नही।"

अमृता का चेहरा बदल गया। आवाज भी बदल गयी होती, मगर वह बोली नही।

अनिकेत अपने को रोक नही सका—

"तुम मेरे प्रति कैसी संवेदना अनुभव करती हो और तुम्हें देख मेरे हृदय में कैसी भावनाएँ संचारित होती है, इस सम्बन्ध में हम लोगों ने पहले कभी बात नही की थी। इस सम्बन्ध में हम पहले भी बात कर सके होते तो किसी का स्वरभंग न होता, ऐसा मेरा विश्वास है। क्योकि मुग्धता की प्रथम बाढ़ के इस पार हम लोग निकल चुके हैं। वैसे तो आज भी इस विषय पर बात करने की जरूरत नही थी। किन्तु हो गयी। भाषा का सहारा लिये बग़ैर भी जो समझा जा सकता है, उसे शब्दों के कोलाहल में क्यो घसीटा जाये? भाषा की जहाँ अनिवार्यता नहीं थी वहाँ आज उसका प्रयोग हुआ। जब हम भाषा द्वारा अपने को व्यक्त करने की कोशिश करते हैं तब कभी-कभी तो भ्रान्ति भी पैदा होती है। किन्तु आज जब मैं बोला ही हूँ तो पूरा बोल ही लूँ: अमृता, मैं तुम्हें चाहता हूँ। कर्तव्य और विवेक की वर्जनाओं से मैं अपने को रोक न सका। तुम्हारे सौन्दर्य और सौहार्द के सामने मेरी समस्त वर्जनाएँ हतप्रभ हो गयी। अन्ततः एक ही वास्तविकता प्रतीत हुई कि मैं तुम्हें चाहता हूँ। किन्तु इतना कहकर मैं नही रुक जाता, जा रहा हूँ। केवल अध्ययन के लिए नहीं जा रहा, यहाँ से दूर भी जा रहा हूँ।"

एक-एक शब्द में अपना स्वीकार देख अमृता धन्यता अनुभव कर रही थी। उसके चेहरे पर उभर आयी आर्द्र आभा उसकी आँखों में एकत्रित होने लगी। वह उठी, बगलवाले कमरे में गयी और पलग पर लेट गयी। तकिये में उसने अपना चेहरा छिपा लिया। आँसुओं में ऐसा भी क्या छिपाने का होगा? यह तो अमृता जाने। ये आँसू अनिकेत ने नही देखे थे। अमृता बगलवाले कमरे में क्यों गयी यह देखने के लिए वह उठा भी न था। उसका झूला झूलने लगा था। अस्वाभाविक लगे इतने वेग से वह झूल रहा था।

अमृता आयी। भीनापन पोछने के बाद भी सुर्खी उसके कपोल पर तैर रही थी। उसके स्मित मे प्रकट होते निर्वेद को अनिकेत ने भाँप लिया। पर वह कुछ

बोला नहीं। अमृता जहाँ पहले बैठी थी - टेबल के पासवाली कुरसी पर बैठी।

"तुम्हारे कहने का मतलब यह हुआ कि तुम जहाँ जा रहे हो वहाँ यहाँ से किसी को आने की इजाजत नहीं है।"

"मैं रेगिस्तान में जा रहा हूँ और वहाँ भी किसी एक जगह टिककर नहीं रहनेवाला हूँ। मैं इनकार तो कैसे कर सकता हूँ? किन्तु कोई आये तो कहाँ आये? और उस प्रदेश में कोई आये यह उचित भी नहीं। बार-बार विचारने से मेरी एक मान्यता दृढ़ हुई है कि रागात्मकता अनुभव करने के बाद भी उससे मुक्त हुआ जा सकता है। हम दोनों की वर्तमान भावस्थितियों को देखते हुए ऐसा लगता है कि वे पारस्परिक अनुकूलता के साथ आगे बढ़ें और भविष्य को एक निश्चित दिशा प्रदान करें यह सम्भव है। किन्तु मेरे लिए यह परिणाम वर्ज्य है। जिसे गँवा देना है, उसका अभाव सहन कर मैं अपने मन को बदलने का प्रयास करूँगा। मेरी नियति क्या है—यह जाने बिना भी मैंने इतना तो निश्चित कर ही लिया है। यहाँ नियति से होड़ करने का मेरा कोई इरादा नहीं है। क्योंकि समग्र के सन्दर्भ में मैं अपने को न के बराबर मानता हूँ। और फिर ऐसा नहीं है कि ऐसा निर्णय करके मैं उदयन पर कोई उपकार करना चाहता हूँ, वैसा हो भी नहीं सकता। मैंने जो पाया है वह कोई ऐसी स्थूल प्राप्ति नहीं है कि जिसका आदान-प्रदान हो सके। एक-दूसरे से सम्बन्धित हमारी भावनाएँ आगे बढ़कर स्थूलप्राप्ति की कामना करें तो आश्चर्य नहीं, किन्तु इस समय तुम्हारे प्रति मेरा जो भाव है उसमें अभिलाषा का कोई स्थान नहीं। अभिलाषा के संसर्ग से वे भावनाएँ दूषित न हो जायें, मैंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। तुम्हारे लिए इस क्षण जो मैं अनुभव कर रहा हूँ उसे स्नेह की संज्ञा देकर बात आगे बढ़ाऊँ तो इतना ही कहूँगा कि स्नेहसिक्त सौन्दर्य मेरे लिए पवित्रता का पर्याय है। उसके प्रति कोई आशा जन्म लेती है तो उसे स्वार्थ कहा जायेगा। बात फिर उलझने लगी। दूसरे शब्दों में कहूँ : मैं आज की इस विदाई को निःस्वार्थी बनने के साधन के रूप में, आत्मोन्नति के लिए एक सोपान के रूप में प्रयोजित नहीं करना चाहता। निःस्वार्थ और आत्मोन्नति-जैसे शब्द खोखले खड़खड़ाते हों तो माफ़ करना। इस बारे में मुझे कोई बचाव नहीं करना। मैं तो जो कुछ करना चाहता हूँ उसे धर्म्य समझता हूँ।"

साँस ले सके इतना समय रुककर, स्वर को मन्द कर वह बोला :

"आज तो तुम उदयन से दूर नहीं हो, कुछ समय पहले तुम मेरी अपेक्षा उदयन के विशेष निकट थीं। आज मेरा जाना दूसरा मोड़ बन सके तो सद्भाग्य। मैं जानता हूँ कि उदयन तुम्हें चाहता है बल्कि तुम्हारी कामना करता है। एक दीर्घ सम्पर्क और समझपूर्वक किया हुआ परिचय भी है। सारी दुनिया भले ही

उदयन को गलत समझे पर तुम कभी ऐसा नही करोगी ! उदयन की जिजीविषा मुझसे अधिक प्रबल है। उसकी शक्तियाँ और उनका उपयोग करने का साहस भी उसमें अधिक है। वह इतना सच्चा है कि सामाजिक अन्याय और सार्वजनिक प्रवंचना के प्रतिकार के लिए अपने सुखों से वंचित रह सकता है। अन्याय से प्राप्त दुःख तो उसके लिए दुःख होता ही नहीं, उसे तो वह पचा गया है। अब तो उसके लिए एक ही अभाव दुःख बन सकता है। तुमको वह प्राप्त न कर सका तो....तो वह इतना सच्चा है—दुःख को पूरी सचाई के साथ भोगते हुए उस स्थिति में वह टूट जायेगा और वह टूट जाये तो उसके मित्रों का भविष्य भी *खण्डहरों में बदल जायेगा। उसके मित्रों की चिन्ता मैं नहीं करता, किन्तु अमृता,* तुम जानती ही हो कि मैं उदयन को चाहता हूँ। हम समकालीन हैं, इसका मुझे हर्ष है। उदयन अपने जमाने को कितनी निष्ठा से जीता है ? मैं तो केवल देखता हूँ।"

अमृता के झिलमिलाकर अदृश्य होते स्मित में झरते पुष्पों की निस्पृहता थी। अनिकेत के प्रत्येक वाक्य पर वह स्मित का पूर्ण विराम लगा रही थी, किन्तु अनिकेत बोलता ही जा रहा था। अब तो वे सारे स्मित और अनिकेत के वाक्य कमरे के अवकाश में डूब गये हैं। हाँ, पर्स की चेन खोलने और बन्द करने की क्रिया उसने अभी बन्द नही की।

"तुमको सुनकर मुझे अचरज नहीं लगा। मैं सोचती ही थी कि तुम ऐसा कुछ कहोगे। मेरे हृदय में क्या चल रहा है, उसे भी जान लिया हो, इस तरह तुम बोले। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि तुमने मेरे बारे में जो कुछ कहा उसमें सत्यांश था। तुम्हें देखने के पूर्व मैं अपने भविष्य के सम्बन्ध में सोचती थी तब मेरी उस भावसृष्टि के केन्द्र में उदयन था। उसके बाद भी उदयन मेरी सृष्टि के बाहर निकल नही गया। इसीलिए तो तुम्हारे परिचय के बाद मैं द्विधा-ग्रस्त रही हूँ। मैंने देखा कि वरण करना एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि उसमें दायित्व भी वहन करना होता है। तुम अपनी विदा को दूसरा मोड देकर जो सूचित कर रहे हो, उस सम्बन्ध में मैं कुछ नही कह सकती। तुम्हारे जितनी निर्णय शक्ति मुझमें नही है। किन्तु मुझे एक विचार आया है वह तुम्हें कहूँ—अकेले रहना हो तो भी क्या ?"

"तुम्हें जो विचार आया क्या वह वरण के दायित्व से पलायन करना नही सूचित करता ? एक ओर छटक जाने से भी उस भावसृष्टि में कोई परिवर्तन तो होगा नही, हम स्वयं बदल जायें यही एक मार्ग है।"

"बदलने के लिए क्या करना चाहिए ? एक संकल्प कर उसे जीने का प्रयत्न करना ? तुम चाहते हो वैसा संकल्प करूँ ?"

"मैं आदेश नहीं दे सकता। मैं प्रत्येक के व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य को स्वीकार करता हूँ। इतना ही कह सकता हूँ कि संकल्प के बारे में मेरा क्या अनुभव है ? मैंने एक संकल्प लिया था कि अध्यापक होने के बाद पिताजी की कोई मदद स्वीकार नहीं करूँगा। किन्तु उत्तराधिकार में मिले इस मकान का उपयोग कर रहा हूँ। इतना ही नहीं दो किरायेदार नीचे रहते हैं, उनका किराया भी मेरे खाते में जमा होता है। हाँ, यह बात अलग है कि मैं इन पैसों का उपयोग नहीं करता। किन्तु संकल्प तो टूट ही गया न ? कुछ संकल्प आवेग के आविष्कार होते हैं, समझ के परिणाम नहीं। वे टूटते हैं और संकल्प तोड़ना—यह तो मेरुदण्ड की कमजोरी को बढ़ावा देने-जैसा है। उदयन के प्रति मेरे मन में इसलिए आदर है कि....।"

"हाँ, उसमें कुछ असामान्य शक्तियाँ हैं। वह संकल्प करने के बाद पुनर्विचार नहीं करता, किन्तु....।"

"किन्तु ?"

"यह वाक्य भले ही अधूरा रहे, उसमें सम्बन्ध निभाने की निष्ठा है। वह किसी से बचकर चलना नहीं चाहता। मेरी सृष्टि में इसीलिए उसका स्थान है.... कोई अकस्मात् हो और सहानुभूति पैदा हो, सहानुभूति व्यक्त करते रहने से सम्पर्क बढ़े, सम्पर्क में से संवेग पैदा हो और...इत्यादि, इत्यादि। ऐसा हमारे सम्बन्ध में नहीं हुआ। एक दशक पूर्व का परिचय है। मेरे शैक्षणिक विकास में उदयन का योगदान है। मेरे आत्मविश्वास को दृढ़ करने में उसने उद्दीपन विभाव का काम किया है। बहुतों ने उसकी उपेक्षा की है, उस स्थिति में भी मैं उसकी शुभेच्छुक रही हूँ। किन्तु...."

"किन्तु से शुरू होनेवाला यह दूसरा वाक्य भी शायद अटक जाये।"

"हाँ, भले ही अटक जाये। मैं उसकी शुभेच्छुक हूँ मात्र इतना ही नहीं है और इसीलिए तो यह सारी उलझन है, बल्कि यन्त्रणा है।"

"ओहो ! तो मैं कितना सुखी हूँ, तुम दोनों को चाहता हूँ, और ऐसा कह भी सकता हूँ।"

"बधाई, तुम जो कह सहते हो वह मैं नहीं कह सकती, क्योंकि मैं नारी हूँ।"

काम से निपटकर बग़ल के कमरे में गये नौकर ने रेडियोग्राम पर रिकार्ड लगाया। अनिकेत ने उसे आवाज़ तेज़ करने को कहा। यह उसका प्रिय गीत था। वह इस तरह बैठा लग रहा था मानो वह गीत सुनने में मशगूल है। इस गीत की लय के साथ एकरूप न हो सके ऐसा एक प्रश्न उसके मन में घुमड़ रहा था : तो क्या पुरुष और स्त्री के लिए स्वातन्त्र्य का एक अर्थ नहीं ?

समय हो गया है यह देख नौकर ने कहा कि भोजन तैयार है। दूसरा रिकार्ड

पूरा ही उठाकर अनिकेत अमृता को साथ ले डाइनिंग टेबल के पास पहुँचा।

"आओ! तुम्हें और उदयन को आज तक मैं भोजन के लिए निमन्त्रित करना क्यों भूल गया? आशा करता हूँ कि भविष्य में इसके लिए योग्य अवसर मिल जायेगा।"

अमृता नेपकिन से हाथ पोंछती बैठी रही।

खाली पड़े ड्राइंग रूम में अब केवल पंखे की गति थी और यहाँ ऊपर घूमते पंखे की गति सुनाई दे रही थी। खाते-खाते कोई बात नहीं हुई। नौकर की इच्छा थी कि आज बाबूजी को खूब आग्रह कर-करके खिलायेगा। अमृता की उपस्थिति से उसकी भाषा शायद संकुचित हो गयी थी। वह अधिक आग्रह न कर सका। दोनों का साथ भोजन करना औपचारिक प्रसंग बन गया।

भोजन करने के बाद पन्द्रह मिनट जितना समय नीरव बीत गया। नौकर अनिकेत के सामान को एक तरफ जमाने लगा था। सब आ गया है कि नही यह जानने के लिए उसने अनिकेत से पूछा—"ठीक है न?" "ठीक है।" उसके बाद सारा सामान धीरे-धीरे कार में रख आया।

अभी समय था किन्तु कोई बात न हुई।

अनिकेत ने नौकर को बुलाकर तीन महीने का अधिक वेतन दिया और अमृता का पता दिया ताकि नौकरी न मिलने पर अमृता मदद करे। उदयन को तो वह अच्छी तरह जानता है। नौकर ने इतना अधिक वेतन लेने से आनाकानी की। अनिकेत उठा, उसे सीने से लगाकर उसकी क़मीज़ की जेब में पैसे रख दिये। दोनों के बाहर निकलने पर नौकर ने दरवाजा बन्द किया। घर छोड़कर जा रहा हो इस तरह थोड़ी देर वह खड़ा रहा। अनिकेत के हाथ में चाबी थी। झुककर प्रणाम करने की उसकी आदत अनिकेत ने छुड़ा दी थी फिर भी आज तो वह झुक ही पड़ा। कार रवाना हुई तब उसकी आँखें बिलकुल सूनी हो गयी फिर धीरे-धीरे भर आयी। आँखें पोंछे बिना ही वह अपने रास्ते की ओर बढ़ा।

ड्राइविंग अमृता कर रही थी। अनिकेत पास में बैठा था। वह चाहता था कि अमृता ही उसे स्टेशन पर पहुँचाये। रास्ते में राजस्थान, फिर देश-विदेश के सम्बन्ध में बातें हुईं। रास्ता छोटा था, इसलिए दूर की बातों में अपने को उलझाये रखना आसान भी था।

प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँचकर अमृता अनिकेत की सीट ढूँढने एवं उसका सामान डिब्बे में ठीक से रखने में काफी सक्रिय रही। अनिकेत को कोई चिन्ता या जल्दी नही थी। गाड़ी ने सीटी दी तब तक वह प्लेटफ़ॉर्म पर ही खड़ा रहा। अब डिब्बे के दरवाज़े पर जाकर खड़ा हो गया। उसने अमृता की ओर देखा।

विदाई के अनुभव की तीव्रता आँखें ही सविशेष व्यक्त कर सकती हैं।

अमृता ने देखा कि अनिकेत की स्मृति-भरी दृष्टि में मृगजल लहरा रहा था। बम्बई के चारों ओर का समुद्र भी मानो मृगजल बन गया है। अनिकेत अपने साथ कोई समूची बम्बई लेकर नहीं जा रहा था, फिर भी अमृता को तो यही लगा। अब वह लौटेगी लोगों की भीड़ से आच्छादित जंगल में। एक व्यक्ति की कमी होने पर इतना अधिक खलेगा इसकी कल्पना भी अमृता को नहीं थी।

"मैं आज जो कुछ बोली, वह सब भूल जाना। मैं...अब यहाँ तो कैसे कहूँ, मगर...तुम्हारी प्रतीक्षा करूँ ?"

उदयन की आवाज़ आयी, वह दौड़ता आ रहा था। अनिकेत ने हाथ ऊपर उठाया। गाड़ी के चक्कों में गति आयी। उदयन पहुँच गया। चलती गाड़ी में उसने अनिकेत का हाथ पकड़कर शुभेच्छाएँ दीं। वह सिर की पट्टी खोलकर कश्मीरी टोपी पहनकर आया था। अपने घावों को ढँककर घूमने में कोई आत्म-वंचना नहीं है, ऐसा वह मानता है।

"अच्छा...! गुड-बाय !"

"फिर आना !" एक क़दम आगे बढ़कर अमृता ने दूर से ही कहा।

"बाय ! बाय !" अनिकेत ने दोनों को कहा।

"टा-टा !"

"अलविदा...उदयन !"

गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म छोड़ चुकी थी। उदयन को अनिकेत का 'अलविदा' अच्छा नहीं लगा। उसके उच्चारण में उसे त्याग का नशा दिखाई दिया और विदा लेता उसका हाथ उसे गर्वोन्नत लगा। अमृता लौट गयी थी। स्वजनों, परिचितों को छोड़ने आये सभी लौट चुके थे। हाँ, कुछ लोग गाड़ी के चले जाने से पट-रियों पर आ खड़े हुए अवकाश को देख रहे थे। अवकाश को निहारने के लिए अमृता ने ऐसा कोई दृश्यमान आधार नहीं लिया था। वह नीचे देखती चल रही थी। उसने गति मन्द कर दी ताकि उदयन पहुँच सके। जल्दी लौटे हुए और अन्त में लौटनेवाले एक प्रवाह में मिल गये। दूर के प्लेटफ़ॉर्म की ओर से इंजन की लम्बी सीटी सुनाई दी। पास के प्लेटफ़ार्म पर इंजन के धक्के से गाड़ी के डिब्बे खड़खड़ाये। फिर इंजन उनको छोड़कर चलने लगा— भक्-भक्-भक्...। उदयन पहुँच गया। अमृता ने टोपी पहचान ली। उसने जो भेंट में दी थी, वही। जब वह उत्तर भारत की यात्रा पर गयी थी तब लौटते समय दिल्ली से खरीद लायी थी। कितने वर्ष हुए ? तीन या चार ? वह संख्या तीन की हो या चार की इससे, अमृता ने यह भेंट दी है इस हक़ीक़त में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। यहाँ इतना ही उल्लेखनीय है कि अमृता को यह संख्या निश्चित याद नहीं है।

"अच्छा, अमृता ! मैं चलता हूँ। तू यहाँ से सीधी ही जायेगी न ?"

"मैं तुझे छोड़ने आ रही हूँ। तुझे छोड़कर जाऊँगी।"

"तू ड्राईविंग करे और मैं बगल में बैठा रहूँ यह तो मुझे चुभेगा।"

"तो पीछे बैठना। या फिर तू ही ड्राईविंग कर। मुझे नहीं खटकेगा। पुरुषों के मन से अभी भी नारी का रक्षण करने का अभिमान गया नहीं। तुम्हारा यह स्त्री-दाक्षिण्य और रक्षणार्थ तत्पर रहने का औदार्य एक प्रच्छन्न स्वामित्व का सूचक है।"

"मैं तो इस वृत्ति को प्रकट भी कर चुका हूँ। प्रच्छन्नता का आश्रय लेने-वालों में मैं नहीं हूँ।"

अमृता समझी कि उदयन का संकेत अनिकेत की ओर ही है। स्टियरिंग पर से उसका बायाँ हाथ उठा। उदयन की पीठ पर धौल जमाने की इच्छा हुई थी। वह एकदम निकट नहीं बैठा था फिर भी। उसे सिर पर चोट आयी है यह देखकर हिचकिचा गयी या फिर दूसरे ही क्षण जगे विवेक से वह रुकी अथवा दोनों कारणों ने एक साथ काम किया। किन्तु बाद में उसे लगा कि वह ऐसी हास्यास्पद चेष्टा करने से बच गयी यह अच्छा ही हुआ। वह आर्य नारी को शोभा दे ऐसा व्यवहार न होता। वह कितना घटिया लगता ? एक दिन 'गेट-वे ऑफ़ इण्डिया' के पास उदयन का पत्रकार मित्र दोनों को रोककर बतियाने लगा था। वह कहता था कि रूस में स्त्रियाँ पुरुषों की तरह ही सभी श्रमसाध्य काम करती हैं। गृह-कार्य उनके हाथों में से लगभग छिटक ही गया है। नारी-सुलभ संकोच और लज्जा उनमें दिखाई नहीं देते। पुरुषों के सम्पर्क की निरन्तरता और नीरस-शुष्क कार्यों में जुते रहने का ही यह परिणाम है, ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है...यह अधिकतर कॉलेज-जीवन की सखियों से दूर ही रही है। उनमें से बहुतों की तो शादी भी हो चुकी। उनकी यह शिका-यत रही है कि अमृता को पुरुषों का सम्पर्क अधिक पसन्द है। अमृता को उनकी बातों में मज़ा नहीं आता। इसी कारण वह उनसे कुछ दूर हो गयी थी। भाई-भाभियों ने टोका तो इसमें क्या बहुत बुरा हो गया ? पुरुषों का इतना अधिक सम्पर्क उस अभद्र व्यवहार को जन्म देने के मूल में हो तो कोई अचरज नहीं।

"अमृता, इस ओर ले ले न ! मुझे प्रेस-बिल्डिंग से थोड़ी सामग्री लेनी है। हाल ही कुछ लेखों के जल्दी अनुवाद कर देने की आफ़र आयी थी। कल शायद मैं वहाँ जाना भूल जाऊँ। अच्छे पैसे मिलने की सम्भावना है।"

अमृता ने रास्ता बदलकर कहा—

"इस समय वहाँ कौन होगा ?"

"साढ़े दस बजे तक मेरी राह देखेंगे ऐसा सन्देश था।"

इमारत के प्रवेश-द्वार के पास अमृता ने कार रोकी। वह कार में ही बैठी ी पर उदयन ने उसे साथ लिया। लिफ़्ट खुली छोड़कर लिफ़्टमैन कहीं आस- गया होगा। उदयन अन्दर गया। अमृता ने भी उसका अनुसरण किया। यन ने स्विच दबाया। लिफ़्ट चालू हुई। उदयन इस समय कुछ-कुछ न्न था। बोला—

"लिफ़्ट टूट पड़े तो कैसा तीव्र अनुभव हो ?"

"मुझे तो ऐसा विचार आया कि लिफ़्ट रुके ही नहीं और ऊपर ही ऊपर चलती ही जाये, चलती ही जाये तो कैसा ?"

"ऐसी दो-तीन दिन तक बराबर चलती रहे तो रेगिस्तान में पहुँचा अनि- हमको निश्चित देख सकेगा, क्योंकि उसकी दृष्टि तो बम्बई की ओर ही ती।"

"यह अनिकेत इतनी दूर से पहचान सकेगा ?" लिफ़्ट रुक गयी थी।

"न पहचान पायेगा तो यूँ समझेगा कि विश्वामित्र का वह कृपापात्र त्रिशंकु नी की किसी परी को साथ लेकर स्वर्ग की ओर चला है और बीच में कहीं रुककर रह जायेगा।"

उदयन ने दरवाज़ा खोला।

"पर हम बीच में कहीं भी न रुकें और बस ऊपर ही ऊपर आगे बढ़ते ही तो ?"

"किन्तु अन्त में नरक का तल छूने पर तो लिफ़्ट रुकेगी या नहीं ? अमृता, इस स्वर्ग-नरक में नीचे कौन है ? या फिर दोनों एक ही सतह पर हैं ? मुझे गता है नरक तो स्वर्ग का तहखाना होगा।"

"बहुत दिनों के बाद आज हमने मूर्खतापूर्ण बातें कीं।"

"मूर्खतापूर्ण नहीं, अर्थहीन। ऐसी अर्थहीन बातों में जुड़ते समय ही मुझे गता है कि मैं आज के दिखाई देनेवाले वास्तविक जीवन के निकट हूँ।"

उदयन सामग्री ले आया। दोनों वापस मुड़े। उदयन ने जीने पर किसी की दचाप सुनी। उसने झुककर देख लिया। दोनों लिफ़्ट के भीतर गये। वह ादमी लिफ़्टमैन था। वह नज़दीक आये उसके पहले ही लिफ़्ट नीचे उतरने गी थी।

"इन तमाम यन्त्रों का हमें खिलौनों की तरह उपयोग करना चाहिए।"

"मगर वह बेचारा जीना चढ़कर ऊपर आया, अब नीचे उतरेगा। तुझे उसपर ज़रा भी दया नहीं आयी।"

"उसका काम लिफ्ट चलाना है। हमारी तरह मटरगश्ती करना नहीं।"

"ठीक है। अब मलाबार हिल या फिर किसी होटल में ? कहाँ ड्राप कर दूँ तुझे ?"

"क्यों, बहुत जल्दी है ? इतनी जल्दी हो तो इधर से बायीं ओर मोड़ ले और मुझे पारसियों के टावर ऑफ़ सायलेन्स में धकेलकर चली जाना।"

अमृता की चीख़ निकल गयी। एक दिन उदयन पारसियों के शव धकेलने के टावर की चोरी-छिपे जानकारी ले आया था। फिर अमृता के सामने उसने अपने अनुभव का सविस्तार वर्णन किया था। अमृता सुनते-सुनते अत्यन्त व्याकुल हो उठी थी। उस दिन के बाद कभी-कभी उदयन उसे टावर ऑफ़ सायलेन्स का स्मरण दिलाता रहता है।

सवा दस बजे थे।

"अरे हाँ ! अच्छा हुआ कि याद आ गया। एक-दो वर्ष पहले हमने तेरे छोटे भतीजे के लिए स्पूतनिक और 'फ़ायर-ब्रिगेड' के खिलौने ख़रीदे थे। वे आज शाम को मुझे मेज के नीचेवाले ख़ाने में दीख पड़े है। लेती जा !"

"अब तो तू ही खेलना। वह मुन्ना तो बड़ा हो गया है। फिर भी चल दस-पन्द्रह मिनट बैठूँ। देखूँ कि तेरे कमरे के क्या हाल-हवाल है ?"

कमरे में प्रवेश करते ही चिरकालीन अस्त-व्यस्तता ने अमृता का स्वागत किया। पलंग पर कुछ पत्रिकाएँ पडी थी। उनके बीच खुला पेन पडा हुआ था। राइटिंग टेबल पर बूट पडे थे और नीचे मोज़े। दवा से रँगी पट्टी आरामकुरसी पर पड़ी थी। पलंग के तकिये के पास रखी कुरसी पर रखी ऐश-ट्रे के पास सिगरेट के कुचले हुए टुकड़े भी दिखे।

"आप श्रीमान् आरण्यक संस्कृति के पुरस्कर्ता हैं यह इस कमरे में कदम रखनेवाले किसी भी व्यक्ति को सहज ही समझ में आ जायेगा।"

"दो मिनट मे सब व्यवस्थित हो जायेगा। तब तक तू यह पत्र पढ ले।"

सत्रारम्भ होते ही जिस कॉलेज से उदयन का नाता जुड़नेवाला है उसके आचार्य का पत्र था। अभ्यासक्रम समिति पर प्रकाशित उदयन का लेख काफी प्रचार पा चुका था। यह पत्र उसी लेख के सन्दर्भ में था। 'ये सब हमारे कार्य-क्षेत्र के बाहर की बातें है और अध्यापक-जैसे उत्तरदायी व्यक्ति को अभ्यासक्रम समिति पर इतनी हद तक प्रहार करने की अपेक्षा नही करना चाहिए। आप स्पष्टीकरण दीजिए कि किसी को बुरा लगा हो तो मैं खेद प्रकट करता हूँ ...' वगैरह मधुर भाषा में लिखा हुआ था।

"कौन है तेरे आचार्य ?"

"बहुत बड़े व्यक्ति। विद्वान् कहे जाते है। बहुत-सी पुस्तकें लिखी है

उन्होंने। शिक्षा-जगत् के एक जाने-माने व्यक्ति हैं।"

"किन्तु उनका मानस तो सामन्त युग का मालूम देता है। माफ़ी माँगने कह रहे हैं। तेरी इनके साथ पटरी बैठेगी ?"

"कल मिल आऊँगा। उनकी ग़लतफ़हमी दूर होगी तभी उनका कॉ ज्वाइन करूँगा।"

"मुझे तो तुम्हारा लेख खूब रुचा।"

"तुझे रुचे इसीलिए सबको रुचे यह ज़रूरी है ? तेरी मान्यता सर्वोच्च नहीं कही जा सकती।"

"तेरे लिए भी नहीं ?"

"तुझे बुरा न लगे इसलिए स्वीकार किये लेता हूँ। बाक़ी तूने इसके प्रकाशित चर्चा-पत्र पत्र पढ़ा था ? उसमें मेरी भाषा को हिंसक बताया गया है

अमृता ने उदयन के सिर से टोपी अलग की। घाव पर की पट्टी उ नहीं थी। यह देख उसे अच्छा लगा। उसने वह ऊपरवाली बड़ी पट्टी बाँध दी।

"नौकरी ज्वाइन करने से मना करेगा तो ?"

"तो क्या ? एक महीने का वेतन तो देंगे न ! उतना वेतन समाप्त होने नयी नौकरी खोज लूँगा। और अनुवाद का काम मिलता ही रहेगा। वह किसी के कहने से बन्द हो गया तो भिलोड़ा जाकर लकड़ी का व्यापार लूँगा। कोयला बनाऊँगा। इस उद्योग में मैं निष्णात हूँ। भट्ठी बनाकर अ लकड़ी डालना फिर सुलगाकर उसका बाहर निकलता धुआँ देखते रहना। नौ के लिए झुक जायें वे कोई और होंगे। जाने दे वह बात। आज तो कोई बातचीत होनी चाहिए। अमृता, सच कहता हूँ, तू किसी ग़रीब घर की व होती तो कितना अच्छा होता ?"

"क्यों ?"

"मैं तुझे अपनाकर तेरे परिवार पर उपकार करता।"

"उपकार करता या स्वार्थ साधता ?"

"अपने समाज में तो उपकार भी इस तरह होते हैं कि उनसे तो स ज़्यादा निर्दोष लगता है।"

"किन्तु तेरा यह स्वार्थ देखकर मुझे तो डर लगता है। तू एकाएक अपना ले तो मेरी पसन्दगी का क्या होगा ? मैं अब तुझसे मिलने नहीं आऊँगी

"तो मैं चला आऊँगा। मैंने क्या तेरा घर नहीं देखा है ? 'छाया' सुन्दर नाम है उसका।"

"तू मिलने आये वह तो मैं समझ सकती हूँ। किन्तु मेरे घरवालों को

पसन्द नही। कल रात एक पत्र मिला है कि इस तरह पुरुषों के साहचर्य में रहना किसी कुलीन युवती को शोभा नही देता।"

"मैं उन लोगों के साथ सहमत हूँ। पहले जब तू मुझ अकेले को जानती थी तब क्यों किसी ने कुछ नही कहा? दो पुरुषों की ओर एक-सी भावनाएँ बनाये रखने में खतरा है। यह इतनी स्पष्ट बात है कि जिसे सामान्य आदमी भी समझ सकता है। हाँ, तुझे क्लियोपेट्रा बनना हो तो और बात है।"

"तूने ही मेरा परिचय अनिकेत से कराया। तू ही इस परिचय को बढ़ाता गया। आज तू जानता है कि अनिकेत के प्रति मुझे विशेष सद्भाव है। इतना ही नही मैं तेरे साथ तो मित्र के समान अधिकार से बरत सकती हूँ किन्तु अनिकेत के सामने अपने को छोटा महसूसती हूँ।"

"मुझे तो तुम दोनों छोटे और नादान लगते हो। जिस तरह से अनिकेत महोदय हमारे बीच से गये हैं वह मुझे जरा भी पसन्द नही आया। मानो दूसरे किसी को विरासत मिले इसलिए वनवास जा रहा हो ऐसा गौरव था उसके चेहरे पर। भले आदमी! जो अनुसन्धान करना है उसके लिए रेगिस्तान में भटकना अनिवार्य है किन्तु वहाँ रहना अनिवार्य नही है। इस बात का खयाल आने पर उसकी अध्ययन-निष्ठा के प्रति मेरा आदर घट गया है। और वह मुझे समझता क्या है? एक दिन मैंने कुछ व्यंग्य किया, और वह सहन न कर सका तो महा-पुरुष बन बैठा? उसकी इस उपकारवृत्ति का प्रदर्शन मुझे सहन नही हुआ, पर दूर जाते व्यक्ति से कौन कटु-वचन कहे? तुझे प्राप्त करने के लिए मैं उसके साथ स्पर्द्धा में भी उतरने को तैयार था। अपनी योग्यता सिद्ध कर मुझे विजेता बनना था। और मुझे विश्वास था कि...."

"तू तो ऐसी बात कर रहा है कि मानो तुम दोनों की स्पर्द्धा के लिए मैं तो मात्र निमित्त ही हूँ। मानो एक निमित्त से अधिक मेरी कोई सत्ता ही नही। तुम दोनों की खींच-तान में मेरे लिए वरण करने की स्वतन्त्रता-जैसा कुछ हो ही नही? उदयन! भले ही तू आधुनिक मानव-मूल्यों का प्रवर्तक बनना चाहता होगा। हो सकता है कि भविष्य में नये मूल्यों के स्थापकों की सूची में तेरा नाम भी किसी को पढ़ने को मिल जाये किन्तु मुझे तो तेरा दिमाग पिछड़ा हुआ लगता है। तुझमें स्वामित्व-वृत्ति के दूषण कुछ कम नही है। तू तो मुझे एक निर्जीव निमित्त मानकर ही बात करता है।"

"तुझे अधिकार है, जो कहना चाहे कह ले।"

"इतनी छूट देकर भी तू अपना अधिकार जताना चाहता है, तो भोग अधिकार, इस कमरे की शाश्वत अराजकता पर। मैं जा रही हूँ। यह ले अनिकेत के मकान की चाबी। उसने तुम्हें देने के लिए कहा था।"

"चावी को मैं क्या करूँगा ? अपने पास ही रख न ! तो क्या चावी भिजवाकर पूरा घर मुझे सौंपता गया हो—ऐसा संकेत करना उसे अभिप्रेत रहा होगा ? तू पाँच-दस मिनट बैठ, अमृता ! मैं थोड़ा बोल लूँ, फिर अकेला रह जाऊँगा। मैं जो बोलूँगा; वह तुझे अच्छा लगेगा। वह अनिकेत से सम्बन्धित है : जितना मैं उसको चाहता हूँ उससे अधिक वह मुझे चाहता है। मैं जानता हूँ कि मैं माँगू तो वह अपना भविष्य भी मुझे दे दे। मैं तो यहाँ तक कहूँगा और तुझे यह मानना भी होगा कि कोई अनजान व्यक्ति आकर माँगें तो भी अनिकेत अपना भविष्य दे देगा। यह बात अलग है कि उसके भविष्य को नष्ट करने की अन्य किसी की वृत्ति न हो, किन्तु अनिकेत उसके लिए भी तैयार है, यह मैं तुझसे कहना चाहता था...तेरा परिवार अमीर है, इससे तू अमीर कहलाती है, उसके परिवार को केवल अमीर ही कहें तो तेरा परिवार तब मध्यमवर्ग में ही गिना जायेगा। हम दोनों कॉलिज में साथ-साथ थे। उस वर्ष अनिकेत के पिताजी बम्बई आये थे। कॉलेज के प्राचार्य ने उन्हें व्याख्यान देने के लिए बुलाया था। मानो ईरान का शाह सौदागर, उनके प्रौढ़ चेहरे पर भूमध्यसागर की शान्ति। एक वाक्य आज भी मुझे याद है—'हम अफ़्रीका में व्यापार करके सम्पन्न बने हैं, हो सकता है हमारे कार्य को इतिहास न्यायोचित करार न दे। हमने वहाँ जाकर कोई निर्माण नहीं किया है, परिस्थिति का लाभ मात्र उठाया है।' उन्होंने वहाँ के व्यापार-धन्धे पर अच्छी चर्चा की थी। उनकी पेढ़ी का वहाँ पर बड़ा नाम है। एक बार अनिकेत की वर्षगाँठ के मौक़े पर उन्होंने लिखा था—'तेरे लिए मर्सडीज कार का ऑर्डर दे दिया है, निकट भविष्य में भेज दूँगा।' अनिकेत ने फ़ोन कर मना कर दिया। फ़ोन पर सम्पर्क स्थापित करने में कितना समय लगा था, किन्तु इनकार करने के बाद ही उसे शान्ति मिली। बाद में उसने मुझसे कहा था—'कार की देख-रेख में समय बिगड़ता है और विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित हो तो उनका भी समय बिगड़ता है। अध्यापक-जैसे आदमी को कार उपयोगी नहीं।' उसका छोटा भाई यहाँ पढ़ता था, फिर इंग्लैण्ड चला गया। एकदम मस्तमौला और उतना ही बुद्धिशाली। शायद अब तो अपनी पेढ़ी में काम करने लगा होगा ? अनिकेत के साथ अदब से बात करता...। यह सब बातें शायद तुझे नगण्य लगें किन्तु मैं कहे बिना नहीं रह सका। ऐसा आदमी ऐशो-आराम छोड़कर रेगिस्तान में रहने जाता हो तो उसका त्याग सार्थ है। मैंने पहले उसके दृष्टिकोण को नापसन्द किया, वह एक अलग अर्थ में है, उसे तू समझ सकेगी। अब तू जा सकती है।"

"हाँ, मैं जाऊँ। घर से कब की निकली हूँ ! सभी शंकित दृष्टि से मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।"

"किसी को कुछ समझाने की आवश्यकता हो तो मुझे कहना, आ जाऊँगा।"

"तेरे समझाने से तो गलतफ़हमी बढ़ेगी। मुझे अपने व्यवहार से ही उन्हें समझाना होगा...व्यवहार से मैं उन्हें अवश्य समझा सकूँगी। परन्तु उस दौरान पराधीनता भोगने की वेदना मुझे होगी। मुझसे किसी की शंका सहन नहीं होती। दो पुरुषों के सम्पर्क का ये लोग क्या अर्थ लेते होंगे? मैं अपने ढंग से स्वयं को और दूसरों को समझने के लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ? घर के लोग प्रतिष्ठा के एक छिछले विचार में मेरी अभिरुचि और वरण के मेरे अधिकार को दबा देना चाहते हैं। जिस समाज को तू आत्मवंचना की नींव पर निर्मित कहता है उसमें तेरे और अनिकेत-जैसों के लिए जितनी स्वतन्त्रता है, मेरे लिए तो उतनी भी नहीं है। मैं तुलना नहीं कर रही, अपनी स्थिति को समझ रही हूँ। मैं तो यह भी कहूँगी कि उदयन और अनिकेत मेरे समग्र व्यक्तित्व को स्वीकारने के बदले मुझे मुख्यतः नारी के रूप में ही पहचानते-देखते रहे हैं। तेरी उमंग और अनिकेत की स्वस्थता में भी मुझे कुछ ऐसा उपस्थित लगता है जो मुझे बेचैन बना देता है। मेरे नारीरूप से ही तुम लोग क्यों इतने सभान हो?"

यहाँ उदयन कहना चाहता था कि तेरे सौन्दर्य को दोष दे, पर ऐसा नहीं बोलना चाहिए, यह सोचकर चुप रहा। अमृता आगे बढ़ चुकी थी। "तू ही कह, पुरुष की तरह नहीं अपितु एक मनुष्य की भाँति तू जो आत्म-निर्णय का अधिकार भोगता है, उस स्थिति में मुझे रख सकता है? तेरे सामने भी मुझे एक बात कहनी है। तू मुझे चाहता है—ऐसा कहकर उपयोगिता-प्रेरित आत्मवंचना का तू आश्रय नहीं लेता? और अगर ऐसा है तो बताओ कि मेरी स्वतन्त्रता, फिर कहाँ सुरक्षित रही? अब जब हम मिलेंगे तब इस प्रश्न का उत्तर तेरे पास होगा?"

उदयन कुछ भी नहीं बोला। झड़े हुए पत्तोंवाले एक पेड़ की छवि दीवार पर लटक रही थी। देखे बिना ही उसे वह दिखाई दी। अमृता उठकर चल दी, उसी क्षण उसकी दृष्टि दीवार पर की उस छवि पर स्थिर हुई। अमृता दरवाजे के बाहर पहुँच गयी। वह उठकर दरवाजे तक पहुँचा ही था कि तब तक तो अमृता सीढ़ी के दोनों मोड़ उतर चुकी थी। सीढ़ी के वातावरण में अवशिष्ट उसके पदरव भी शान्त होने लगे थे। एकाएक आवाज हुई। कार स्टार्ट होने की थी यह आवाज। अमृता की गति की नीरवता का अनुभव करता उदयन खड़ा था। अब तो उस नीरव गति पर भी आवाज का आघात लगा। अन्त में कान और आँखों से अपने चित्त में निःशेष अवकाश भरकर वह वापस हुआ।

□

द्वितीय सर्ग

प्रतिभाव

मिथ्या !

न्याय के लिए संघर्ष की फलश्रुति क्या ?

पराभव !

एक सर्वाश्लेषी भूकम्प की आवश्यकता है। जीर्ण नींव पर नयी इमारत की रचना सम्भव नहीं। उदयन ने ताला खोला। बूट से दरवाजा धकेला। किवाड़ खड़खड़ा उठे। उसने दूर से ही टेबल पर पुस्तकें फेंकीं। पुस्तकों के साथ पकड़ा हुआ गोगल्स भी फेंक गया। मेज पर से उछलकर वह नीचे जा गिरा। दाहिना काँच टूट गया। उसने देखा कि काँच सदैव अनेक टुकड़ों में टूटता है, जैसे कि केवल दो-तीन टुकड़े होने में काँच का टूटना पूरा नहीं होता। एक ओर काँच-वाली और दूसरी ओर बिना काँच का अर्थात् अवकाशयुक्त फ्रेम उसने पहना। उससे जो दिखाई दिया, उसे देख वह हँस पड़ा। हँस लेने के बाद वह गम्भीर हो गया। उसकी गम्भीरता देखकर देखनेवाले को तो ऐसा ही लगेगा कि यह आदमी जीवन में एक बार भी नहीं हँसा होगा।

उसने खण्डित चश्मा मेज पर रखा। विचार आया कि यह रंगीन काँच मेरे और अमृता के बीच है। अनिकेत और अपने बीच कोई काँच नहीं। अथवा फिर इस तरह सोचना—यह कोई सोचना है ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा इसे तरंग-लीला कहा जा सकता है।

किन्तु मुझे ऐसा बचकाना विचार क्यों आया ? यह तो नहीं कि दुनिया में अमृता और अनिकेत दो ही प्राणी हैं ? मैं भी हूँ। और मैं हूँ तो सारा जगत् कोई छोटा नहीं है। रास्ते में चलते हर समय नये और नये ही चेहरे देखने को मिलते हैं।

इन चेहरों को उदयन देखता रहता है। इन चेहरों में उसे कुछ नया कुछ अजाना देखने को मिलता है। विविध अजानेपन का ही उसे परिचय होता है। वह जानता है कि उनके लिए वह भी अजाना है। इस पारस्परिक अपरिचितता को तोड़ आगे बढ़ने की उसे जरूरत नहीं लगती, क्योंकि जिस भूमि पर ये चेहरे चलते हैं उसे भी बदलना चाहिए, एक जबरदस्त उथल-पुथल होनी चाहिए। उसके बाद समग्र का रसायन तैयार होना चाहिए तभी उसमें नवांकुर फूटेंगे,

जिन्हें देखने के लिए वह खड़ा होगा।

कहाँ ? उसे विचार आया। उस रसायन में तो वह भी निःशेष हो गया होगा। तब, फिर जो परिवर्तन देखने को न मिले उससे क्या लेना-देना ? इस तर्क को दबा दिया। अपने होते, अपने समक्ष ही यह परिवर्तन हो, स्वयं तटस्थ दर्शक की अदा से खड़ा रहे, इतना ही नहीं अमृता भी उसके पास खड़ी रहे। और अनिकेत ? हाँ, वह भी खड़ा हो, किन्तु थोड़ी दूर, ताकि उसकी छाया में अमृता ढँक न जाये। और उदयन विजेता की शान के साथ अनिकेत को देख सके। शायद किसी को लगे कि उदयन में विजेता बनने की वृत्ति उन्माद की हद तक पहुँच सके ऐसी है, किन्तु ऐसा नहीं है। हिटलर और उदयन में इतना अधिक अन्तर है कि उस अन्तर को समझा सके ऐसा कोई आँकड़ा गणितशास्त्र के पास नहीं। उदयन अभी जो कुछ और जिस तरह से सोच रहा था, वह एक घटना का परिणाम है। उदयन की प्रतिक्रियाएँ बड़ी तीव्र होती हैं। सामान्य व्यक्ति जिसे नज़रअन्दाज़ कर देता है ऐसी छोटी-सी घटना के लिए उदयन आकाश-पाताल एक करने लगता है। समग्र सृष्टि की पुनर्रचना करने का दायित्व उसका है ऐसा मान बैठता है। शास्त्रानुसार तो यह काम सर्वप्रथम ब्रह्मा ने किया था। ब्रह्मा अथवा उनके बदले में काम करनेवाले किसी अन्य विधाता को उदयन नहीं मानता। अतः सृष्टि की रचना या पुनर्रचना करने का किसी का अधिकार वह छीन रहा है—ऐसा विधान नहीं हो सकता। उदयन अपने पैरों पर खड़ा रहने में विश्वास करनेवाला व्यक्ति है। अभी उसे जो विचार आये उसका कारण समझने में वह घटना उपयोगी है—

कॉलेज, उसके आगे की सिच्युएशन की कल्पना आप स्वयं कर लें। खास फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। छुट्टियाँ होने के कारण विद्यार्थी नहीं हैं। नजदीक के रास्ते पर युवक-युवतियों और वाहनों का आवागमन भी विशेष नहीं है। आप पढ़ते थे अथवा पढ़ाते हैं या देखते हैं वैसा ही किसी कॉलेज-जैसा यह कॉलेज है। इसमें आचार्य के ऑफ़िस की ओर उदयन जा रहा है। 'अनुमति लेकर प्रवेश करें'—ऐसी तख्ती पढ़ता है। ऐसी बहुत-सी तख्तियाँ उसने पढ़ी हैं। फिर यहाँ तो उसे बुलाया गया है इसलिए अनुमति की आवश्यकता नहीं। वह अन्दर जाकर खड़ा हो जाता है। नज़रें मिलती हैं—'आओ !' वह बैठता है। बातचीत शुरू होती है।

"आपका गद्य अच्छा है।"

"क्या मेरी कोई कहानी पढ़ी ?"

"आप कहानी भी लिखते हैं ?"

उदयन व्यग्र हो उठता है—"इस आदमी को पता नहीं कि मैं कहानीकार

हूँ। इण्टरव्यू के समय इसने कहा था—आप-जैसे निर्भीक, नवोदित साहित्यकारों को अपने कॉलेज में अध्यापक रूप में प्राप्त कर मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। उस वक्त नवोदित विशेषण में रही एक प्रकार की अस्वीकृति देखकर वह अकुलाया था, पर मुँह नीचा किये सुनता रहा। आज यह आदमी पूछता है—आप कहानी भी लिखते हैं? तो उस समय मुझे साहित्यकार कहने में इसने झूठ का आश्रय लिया था, अथवा यह सोचकर कह दिया होगा कि गुजराती के अध्यापक के रूप में पहले काम किया है, इसलिए कुछ न कुछ तो लिखता ही होगा।" इस क्षण मन में उठती तरंगों की अवगणना कर उदयन ने कहा—

"जी, साहब! मैं कहानियाँ लिखता हूँ, किन्तु आप शायद मेरे उस चर्चापत्र के सम्बन्ध में बात करना चाहते होंगे?"

"हाँ, उसी सम्बन्ध में। हालाँ कि मैंने तो वह चर्चापत्र पूरा नहीं पढ़ा। समय ही कहाँ मिलता है। पर सुना है बहुत। जितना भी पढ़ पाया उसमें मैंने देखा कि तुम्हारी भाषा में गजब का फोर्स है।"

पूरा पढ़े बिना ही यह आदमी अभिप्राय दे रहा है? कैसा अप्रामाणिक! इसे क्या कहूँ? चलो, दूसरी बात करूँ—

"किन्तु साहब, इसमें मेरे गद्य की प्रशंसा करने-जैसा कुछ भी नहीं। सायास लिखा गया गद्य वह नहीं है।"

"मेरा भी यही कहना है। ऐसे लेख अधिक सजगता से लिखे जाने चाहिए।"

उदयन ने आचार्यश्री की ओर देखा। उनके होठों पर थिरकता स्मित उसे सभी तरह से वक्र लगा।

"मेरा आशय सर्जक की सजगता से था, जिसमें शब्दों को नया परिमाण देना होता है। जिस सजगता की बात आप कर रहे हैं, वह तो मेरे इस चर्चापत्र के पाठकों को विकसित करनी थी।"

आचार्यश्री की कुरसी जरा हिली। मेज पर रखे चश्मे को हाथ में लेकर बोले—

"देखो, भाई उदयन! हो सकता है मैं तुम्हारे जैसा प्रतिभाशाली न होऊँ, पर अनुभवी अवश्य हूँ। तुमने जो कहा वह दूसरी तरह से भी कहा जा सकता था। मुझे तो तुम बहुत आक्रामक लगे। अभ्यास समिति पर तुम लेख लिखो, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। चर्चाएँ होनी ही चाहिए। मेरा तो इतना ही कहना है कि किसी को नीचा दिखाने के लिए लिखना—यह अध्यापक के लिए शोभास्पद नहीं है।"

"यानी कि पहले तो मुझे चर्चापत्र में अभ्यासक्रम समिति की प्रशंसा करनी चाहिए थी, उसकी योग्यता को स्वीकार करने के बाद ही मुझे लिखना चाहिए

था, कि ये एक-दो बातें मेरे नम्र मतानुसार विचारणीय हैं। और अन्त में यह भी लिखना चाहिए था कि मेरे विचारों में कोई दोष हो तो अवश्य बतायें। ठीक है न ?"

"मैं ऐसा कुछ भी कहना नहीं चाहता। आज तक सभी इसी तरह ही लिखते आये हैं। फ़िलहाल तो मैं तुमसे ऐसा कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि अभी तुमने यहाँ ज्वाइन भी नहीं किया है। मुझे आशा थी कि तुम मेरा आशय समझोगे। बिना उग्र प्रहार के भी तुम पाठ्यक्रम समिति की त्रुटियाँ बता सकते थे। उसकी अवमानना न करते तो अधिक अच्छा होता, क्योंकि सम्भव है कि वे लोग हमसे अधिक समझदार हों।"

"इस इक़रार में मैं आपके साथ सहमत नहीं हो सकता।"

आचार्यश्री हँसे। हँसी की प्रतिध्वनि थम जाने पर आचार्यश्री के चेहरे पर उभर आयी कड़ुआहट देखकर उदयन उबल पड़ा—

"क्या उस समिति के किसी सदस्य के दबाववश आप मुझे समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं ?"

"तुम मुझपर आक्षेप कर रहे हो।"

"मैं तो कार्यकारण सम्बन्ध समझने की कोशिश कर रहा हूँ, आक्षेप नहीं।"

"तुम्हारे शब्दों से तो यही प्रकट होता है।"

"तो वैसा मानने के लिए आप स्वतन्त्र हैं।"

"मुझे अपना अधिकार समझाने की आवश्यकता नहीं मिस्टर उदयन। क्या तुम आचार्य और अध्यापक के व्यवहार में शिष्टाचार की कोई भूमिका स्वीकारने को तैयार नहीं ?"

"स्वीकारता हूँ, अनिवार्यतः स्वीकारता हूँ, और दोनों पक्षों में स्वीकारता हूँ।"

"तो इसका आरम्भ कहाँ से होता है, यह समझ लो।"

"मैं भी यही कहूँगा। जो आदमी पहले...."

"तो सुन लो। शिक्षण-क्षेत्र में मैं उपेक्षा और बे-अदबी को मान नहीं देना चाहता।"

"यह मान्यता वर्षों तक भोगी हुई दासता की विरासत है। ये सब साहबशाही की परिभाषाएँ हैं। आज की शिक्षा भीतर से खोखले लोगों के अहंकार की पोषक है। वह टूटनी ही चाहिए। विनय-विवेक का बहुत पोषण किया, इससे हमें कुछ नहीं मिला।"

"उपेक्षा और उद्दण्डता से मिलना तो दूर रहा, उलटे गँवाना पड़ेगा।"

"सब कुछ गँवाकर भी सत्य प्राप्त होगा तो सन्तोष की बात है। और

मानता हूँ कि उसके साथ आप-जैसे बड़े लोगों का कोई वास्ता नहीं है।"

"तुम्हारी आँखों से देखें तो ही सत्य दिखाई दे, क्यों ?"

"ऐसा मैं नहीं कहता। किन्तु जो लोग अपनी आँखों से सत्य देखना चाहते हैं, उन्हें जीने दीजिए। उन्हें आप राय-मशविरा दे-देकर अवरुद्ध न करें। आपकी शिक्षा-योजना में स्वतन्त्रता और समानता का कोई स्थान नहीं। कठपुतलियाँ बनाने में ही आपकी रुचि है और कौशल भी। विद्यार्थी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पोषक वातावरण के निर्माण में आपकी लेशमात्र रुचि नहीं। इस तरह विद्यार्थियों की मूलभूत शक्तियों को भी आप कुण्ठित कर रहे हैं। यह दमन है। भयंकर दमन है क्योंकि किसी को दिखाई न दे इस तरह से आप यह सब कर रहे हैं। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।"

आचार्यश्री ने बायीं ओर पड़ी फ़ाइल उठाकर दायीं ओर रखी। दावात से होल्डर खींचा और मेज पर रख दिया।

"तुम मुझसे अधिक समझदार हो। मेरे अधीन काम करने में तुम्हारी प्रतिभा कुण्ठित नहीं हो जायेगी।"

"आपका उत्तर सुनने की तैयारी के साथ ही मैं यहाँ आया हूँ। आप मुझे नि.संकोच निकाल सकते हैं। विश्वास दिलाता हूँ कि इस सम्बन्ध में मैं कोई चर्चापत्र नहीं लिखूँगा।"

"मैं कभी किसी अध्यापक को मुअत्तल नहीं करता। इस संस्था में लोगों को निभा लेने की परम्परा है। आपको अन्यत्र अच्छा काम मिल जाये तो, इसलिए कि आपका विकास यहाँ अवरुद्ध न हो आप स्वेच्छया जा सकेंगे।"

"आपकी दया का लाभ भले ही किसी और को मिले, मैं तो जा रहा हूँ, आपकी इन दीवारों की ओर मैं फिर से देखूँगा भी नहीं।"

उदयन उठा। कुरसी एक तरफ़ खिसककर ज़रा पटकायी। वह चला। आचार्यश्री ने खड़े होकर हाथ बढ़ाया था वह वैसा ही रह गया। हाथ मिलाने के लिए भी यह आदमी रुका नहीं।

"ठहरो! नौजवान दोस्त! मेरी बात तो तुमने पूरी सुनी भी नहीं, तुम इस तरह दुश्मन बनकर जा रहे हो?"

आचार्य बाहर आये। उदयन थमा।

"सुननेवाला मिल ही जायेगा और आपकी बात सुनकर वह कुछ अभूतपूर्व सुनने की धन्यता अनुभव करेगा। और फिर आभार बरसाता रहेगा। आपका कार्य निर्विघ्न सवादिता से चला करेगा। और चिन्ता मत कीजिए, मैं किसी का शत्रु नहीं। आप मुझे लम्बे समय तक याद भी नहीं रहेंगे।"

सामने देखे बग़ैर ही उदयन बोला था। आचार्यश्री तो बस देखते ही रह

ये। उदयन तेजी से डग भरता चला गया। कॉलेज-कम्पाउण्ड से बाहर निकल गया। रास्ते पर सीधा ही चलता गया। एक कार ने ब्रेक लगाकर उसे जाने दिया। ज्यों-ज्यों वह दूर होता गया, उसका आकार छोटा होता गया। वह दूर ही दूर चला गया। उसका आकार एक बिन्दु-जैसा दिखने लगा। वह भी अदृश्य हो गया। मेघाच्छन्न आकाश में क्रोधित चन्द्र आखिर जब दिखाई नहीं पड़ता तब देखनेवाले आँखें फेर लेते हैं...।

गोगल्स के काँच के टुकड़े बीनकर उदयन ने कूड़ादान में डाले। क्या किया जाये? कुछ नहीं सूझा। लेट गया। उसे लगा कि वह पलंग पर बेकार ही पड़ा है। उठकर पेन ढूँढ़ने लगा। पेन जेब में ही था। वह कहानी लिखने बैठा। आखिरी सिगरेट पीने के बाद वह कहानी को अधूरी छोड़कर सो गया। इस समय दोपहर के दो बजे हैं। स्नान करना बाक़ी है। पर स्नानपूर्व सो लेना चाहिए। खूब थकने के बाद ही उसे नींद आती है। 'हाथ आयी लक्ष्मी को छोड़ना नहीं चाहिए।' इस सिद्धान्त को वह मानता है। लोगों को जितनी रुचि लक्ष्मी में होती है, उदयन को उतनी रुचि नींद में है, क्योंकि नींद उसके लिए दुर्लभ वस्तु है। इस दुनिया में आदमी शान्ति से सो नहीं पाता। कई बार पलकों तक आयी नींद अदृश्य हो जाती है। कल रात देर तक वह अमृता के प्रश्न का उत्तर खोजता रहा। अन्त में यह सोचकर कि अब नींद नहीं ही आयेगी वह महाभारत के पन्ने पलटने लगा। युद्ध पर्व का अंश पढ़ने में उसे मजा आया। शान्तिपर्व तक आते-आते सुबह हो गयी। गहरी और धुंधली सुबह। आठ बजे और वह कॉलेज के लिए रवाना हुआ।

इस समय शाम के छह बजे हैं। उदयन अभी-अभी जागकर नहाने के लिए बाथरूम में गया है। वैसे तो वह नहीं गाता पर आज वह गाने लगा है। बाथरूम में एक स्वर पानी का और दूसरा उदयन का। दोनों में संगीत गुण समान। उदयन जो गा रहा था, उसके बोल थे—

तोबा को तोड़-ताड़ के थर्रा के पी गया।
वे कैफ़ियों के कैफ़ से घबरा के पी गया॥

एकाएक उसका हाथ सिर पर गया। घाव की पट्टी के नीचे पानी घुसता हुआ लगा। उस समय पानी का स्पर्श एक अलग ही अनुभव दे रहा था। उसने सोचा कि यह घाव धीरे-धीरे गहरे उतरता जाये, और-और गहरा उतरता जाये, ठेठ मस्तिष्क के केन्द्र तक पहुँच जाये। मेरी विचार शक्ति को नष्ट कर दे और फिर भी मैं जिन्दा रहूँ तो क्या करूँ? किसी साँड़ की तरह बाड़ा कूदता-कूदता बीच में आनेवाले को सींग मारता, दीवारों पर पिछले पैरों से दुलत्ती मारता, छप्परों को हचमचाता, पूरे गाँव के बीच धड़धड़ाता हुआ दौड़ता जाऊँ और सबको जगा

दूँ। फिर तालाब में जाकर चित्त होकर तैरता रहूँ। कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं। यह विचारशक्ति न होती तो मैं सम्पूर्णतः पशु होता। इस विचारशक्ति के कारण ही पशुत्व कम हुआ है। यह विचारशक्ति न हो तो जीने में बड़ा मजा आये। कोई हृष्ट-पुष्ट पागल कहीं रास्ते पर बैठा होता है तब उसके सुख और स्थितप्रज्ञता के प्रति मन में कितना आदर होता है। जिन्हें सुखी रहना है, उनके लिए दो ही मार्ग हैं। या तो पशु बने या पागल। जो महापुरुष हुए वे पागल बन सके थे। उनके अतिरिक्त जो सुखी हैं उन सबका विशेष पशु-समाज है। इन दो वर्गों में जिनका समावेश नहीं किया जा सकता, वैसा एक तीसरा वर्ग भी है, जिसकी यातना अन्तहीन है। उसका स्थान सदैव अनिश्चित रहा है।

उसने पट्टी दबा दी और शरीर पोंछना शुरू किया। यह घाव गहरा उतरता जाये...। कहते हैं कि अश्वत्थामा बिना खोपड़ी के भी जीता था। महाभारत के अन्य पात्र भले ही कल्पित हों, किन्तु अश्वत्थामा, भीम, शकुनि और द्रौपदी तो वास्तविक लगते हैं। खोपड़ी टूटने के बाद भी अश्वत्थामा जीवित रहा, उसका मस्तक चूता रहा, खून और मवाद रिसते रहे और फिर भी जीता रहा। कहते हैं वह आज भी अभेद्य जंगलों में भटका करता है। अपनी टूटी खोपड़ी को भिक्षापात्र बनाकर वह अलख जगाता घूमता फिरता है। कहता है, 'याद करो अठारहवीं रात को। मेरा प्रायश्चित्त पूरा होने की सम्भावना नहीं। मेरे-जैसी भूल मत करना....।' तो क्या अश्वत्थामा को इस स्थिति में अमर रहने का शाप मिला है? तो उसकी अमरता कहानी का विषय क्यों नहीं बन सकती?

अधर्मयुद्ध करने के अपराध में महाकवि ने अश्वत्थामा को चिरन्तन यातना भोगते हुए बताया। मेरे युग के मानव के सामने अश्वत्थामा का उदाहरण है। अतः वे अठारहवीं रात का पुनरावर्तन नहीं करेंगे। वे अब मुसोलनी या हिटलर नहीं बनेंगे...। वास्तव में नहीं बनेंगे? हाँ, युगों के बाद आग्नेयास्त्र के प्रयोग का परिणाम वह देख चुका है, भोग चुका है। हिरोशिमा-पायलट अर्थली अश्वत्थामा की यातना भोग चुका है।

उदयन एक विचार के जगते ही निश्चिन्त बन गया। खुद चाहे तब मृत्यु का वरण कर छुटकारा पा सकता है। मृत्यु का आश्वासन न होता तो मनुष्य किस आशा में जिन्दगी के बोझ को ढोता रहता। अनेक मोड़ों को पार कर इस युग तक आ पहुँचा मनुष्य वरदान और शाप की स्थिति से मुक्त हो गया है। अब कोई ऋषि किसी को शाप देने के लिए तप नहीं करता। अब तो वह अपने जीवन को सत्य के प्रयोगों द्वारा पहचानने का प्रयत्न करता है। हाँ, इस युग का ऋषि वही है, जिसने ईश्वर का प्रेम सम्पादित करने को न जाकर अपने अस्तित्व के सत्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। आत्मनिर्भरता के लिए जिसने पुरुषार्थ

किया। 'किन्तु मैं औरों की भाँति उसका नाम गुनाकर प्रतिष्ठित होने का प्रयास नहीं करूँगा...।" आज तो बलिदान की भी कोई महिमा न रही। दंगा देखने के लिए एकत्रित होनेवालों को भागना न आये और गोली लग जाये इसलिए वे शहीद। ऐसी शहादत से तो आत्महत्या अच्छी। चारों ओर जो चल रहा है, इसे देखकर शायद बहुतों को आत्महत्या करने की इच्छा होती होगी। आत्महत्या को यदि पाप न समझा गया होता तो सच्चे धार्मिकों ने अवश्य ही यह मार्ग अपनाया होता। आचार्यश्री ने कहा—'मैं अशिष्टता का गौरव करना नहीं चाहता।' यहाँ तो सच बोलना ही सबसे बड़ी अशिष्टता है—आक्रामक वृत्ति है। पाठ्यक्रम समिति के किसी भी सदस्य से मेरा क्या विरोध हो सकता है? यह स्तर कब सुधरेगा...। कब तक अज्ञान श्रद्धा का पर्याय बना रहेगा....। कब तक मुझ-जैसों को अध्यापन-क्षेत्र से बाहर रखने की व्यवस्था जारी रहेगी...। अमृता न होती तो खुद को आत्महत्या करने की कितनी जल्दी सूझी होती?

तो इंजेक्शन ले आऊँ। पट्टी बदलवा आऊँ। अमृता चाहती है कि मैं अपना ध्यान रखूँ। किन्तु अमृता का प्रश्न....।

आचार्यश्री के साथ हुई बातचीत, अमृता का प्रश्न और अश्वत्थामा का रिसता घाव। मन में घूमते रहनेवाले चक्र के यह तीन आरे थे। टैक्सी लेकर वह अपने घाव की मरहम-पट्टी के लिए गया। इसके बाद वह फुटपाथ पर चलता रहा। इन चौड़ी सड़कों की ऊँचाई बिजली के तारों द्वारा बाधित हो रही है। सड़क से ऊपर देखो तो बस बिजली के तार ही तार। विद्युत्-ट्रॉम गुजरती है तो बिजली के तारों पर चिनगारियाँ झरती हैं। उदयन को ट्राम के चक्कों की आवाज अच्छी नहीं लगती। कठोर धरती भी इन चक्कों की निरन्तर खरोंचों से चुनचुना उठती है। धरती को अब इसकी वेदना का अनुभव नहीं होता। लगता है उसका हार्द सतह से खूब नीचे चला गया है। कहाँ है? धरती तो इस नये पाषाण युग में एकदम उपेक्षित हो गयी है। नजर आता है केवल पथरीला विस्तार। उदयन बढ़ता जा रहा था।

उसकी बग़ल से गुजरती ट्रॉम को ब्रेक लगा। मुसाफ़िर हिल उठे। एक युवक का ट्रॉम से टकराने से चश्मा टूट गया था। वह शान्ति से ड्राइवर को धमका रहा था। ड्राइवर कर्तव्यपालन की मुद्रा से सुन रहा था कि इतने में यात्रियों में से एक अन्य युवक बाहर आया और उस युवक से जोशीली आवाज़ में बोला—"चला जा, यार! ब्रेक नहीं लगी होती तो यह झगड़ा करने से तू उबर गया होता। हमें तो ऐसा लगा था कि तू आत्महत्या करना चाहता था किन्तु ड्राइवर ने तेरी मदद नहीं की।"

"आपका इससे अच्छा सम्बन्ध रहा आयेगा, तो यह आपकी अवश्य ही

मदद करेगा; जाओ, अपनी जगह पर जाकर बैठो।" उदयन बोले बिना न रह सका। ट्रॉम रवाना हो गयी। उदयन उस युवक का हाथ पकड़कर चलने लगा।

"सुबह मेरा भी चश्मा टूट गया, चश्मा नहीं गॉगल्स। अच्छा हुआ। अब किसी माध्यम के बिना अपनी आंखों से देखने को मिलेगा। तुम मुझसे भले ही सहमत न हो पर मुझे तुमसे सहानुभूति है। बोलो किधर जाना है? चलो चाय पियें।"

समीप ही एक छोटा-सा होटल था। उदयन उसकी सीढ़ियाँ चढ़ा। युवक अनिच्छा से पीछे-पीछे चला। "तुमको यह होटल पसन्द नहीं आया? छोटा है इसलिए? मगर कोई भी यहाँ न आये, तो यह होटल चले कैसे? हाँ, और फिर मकान छोटा और सामान्य है इसलिए अच्छी चाय न मिले ऐसा कोई नियम नहीं। मेरा अनुभव तो कहता है कि....।"

"आप किसी मिल मजदूर संगठन के कार्यकर्ता लगते हैं। साम्यवादी हैं?"

"नहीं भाई! तुमको मजदूर समझकर मैंने तुममें दिलचस्पी नहीं ली है। हम एक ही नगर के वासी हैं, एक-दूसरे में दिलचस्पी नहीं ले सकते?"

"आपकी भाषा तो किसी कार्यकर्ता-जैसी लगती है।"

"हाँ, मुझे ऐसा थोड़ा अनुभव अवश्य है। एक बार मैंने मजदूर मण्डल के कार्यकर्ताओं का साथ दिया था। तुम्हारी एक बार जबरदस्त हड़ताल हुई थी। गोदी मजदूर भी इसमें शामिल हो गये थे। मैंने तब एक सुन्दर योजना तैयार की थी। सभी मजदूर बम्बई के पूर्वी समुद्रतट पर एक लाइन में खड़े हो जायें, पूरे किनारे को घेर लें। फिर उन्हें आदेश दिया जाये। 'एक' समुद्र में कूद पड़ें। 'दो' और फिर जोर से किनारे को धक्का लगायें और बम्बई को पानी में नहला दें। 'तीन' बम्बई को फिर से ठिकाने ला दिया जाये। 'दो' और 'तीन' बोलने के बीच तो सारे सेठ-साहूकार, मालिक-मैनेजर मान बैठेंगे। कारण कि वे समझते हैं जो डूब रहा हो. उसे बांट देने में कोई आपत्ति नहीं। मेरी यह योजना तुमको कैसी लगी? है न, शुद्ध योजना! जिस पर अमल न किया जा सके, ऐसी एकदम शुद्ध योजना! पर हड़तालों से तो निश्चय ही अच्छी।"

"आपका नाम?"

"उदयन।"

"जाति।"

"पहले थी। बाद में मैंने मिटा दी। पिता का नाम भी मैं साथ में नहीं लिखता हूँ।"

"मुझे लगता है कि आप लेखक-वेखक होंगे।"

"तुम जैसों के लिए मैं वेखक हूँ, बाक़ी लेखक। कहानियाँ लिखता हूँ।"

"मैंने श्री उद्यान की एक अँगरेज़ी कहानी पढ़ी थी।"

"उद्यान नहीं, उदयन। जिस तरह लेखक का नाम पढ़ा उसी तरह पूरी कहानी पढ़ गये होंगे ?"

"अभी नौकरी की तलाश में हूँ, इसलिए समाचारपत्र खरीदता हूँ। 'वान्टेड' विभाग पढ़ता हूँ, किन्तु आपकी कहानी भी पढ़ गया। आपकी इस कहानी का कोई अन्त नहीं था। ठीक है न ?"

"आरम्भ था—इतना आपने स्वीकार किया, इसके लिए आभार।"

"किन्तु आप कहानीकार के रूप में निराशावादी लगे। कारण बतायेंगे ?"

"अनुभव बढ़ने के साथ कारण स्वतः ही समझ में आ जायेंगे। कहाँ तक पढ़े हो ? बी. ए. किया है ?"

"नहीं, गुजराती में एम. ए. किया है।"

"तो तुमको एक पता देता हूँ। एक कॉलेज में आज ही जगह खाली हुई है। ज़रा नम्र आदमी की आवश्यकता है।"

"अरे, नम्र क्या विनम्र हो लूँगा। आप मुझे पता दीजिए।"

उदयन ने पता दिया और कहा, "यह मत कहना कि किसने भेजा है। आचार्य के परिचितों का पता लगाकर उनकी सिफ़ारिश लेकर पहुँचना। परिचय न हो तो कहना—आपकी प्रशंसा सुनकर आया हूँ, तुरन्त चिट्ठी लिख देंगे। अच्छा, मैं चलता हूँ।"

उस युवक की उदयन के साथ खूब-खूब बातें करने की इच्छा थी, किन्तु उदयन चल दिया। अश्वत्थामा वैसा पाप करने के लिए क्यों प्रेरित हुआ—इसका उत्तर उसे मिल चुका था। वह अपने पिता के श्राद्धकर्म से निवृत्त होकर लौटा तो उसने देखा कि सम्राट् दुर्योधन पड़े हैं—भीम के अन्यायी प्रहार से उरुभग्न दुर्योधन को उसने देखा और वह क्रोध से गरज उठा...। उदयन के रक्त में भी उग्रगति का संचार हुआ। इन सभी धर्मात्माओं में पहले से ही कुछ न कुछ अपूर्णता रहती आयी है। सभी अपूर्ण है....वह उठकर चल पड़ा। उसकी भी उस युवक से बात करने की इच्छा थी। ऐसे श्रोता भी कहाँ मिलते हैं ? उसका नाम-पता पूछना रह गया। वह एक पुराने ऐश्वर्यशाली होटल के दरवाज़े के पास से गुज़र रहा था। चौकीदार ने स्वागत किया। उदयन अन्दर घुसा। उस चौकीदार ने उसकी मानसिक अनिश्चितता को मोड़ दिया। हाँ, उसे खाना भी चाहिए। यह बात सही है कि इस होटल में कभी-कभार आना होता है, पर न आने का कोई पूर्वाग्रह नहीं है।

खा लेने पर बिलकुल नीरस दृष्टि से वह दूसरे लोगों को देखता रहा।

डाइनिंग हॉल खचाखच भरा था। युवक-युवतियाँ एवं प्रौढ़-प्रौढ़ाएँ जो अपनी उम्र छिपाने के लिए यौवन के अनुरूप प्रसाधन और आभूषण पहनकर आयी थीं। अवस्था का भेद मिटाती समान रूप से सभी मतृष्ण, आने-जानेवालों की आडम्बरपूर्ण चाल, नौकरों की भाषा एवं हाव-भाव में टपकता विवेक—सिगरेट के धुएँ के आर-पार की इस दुनिया को उदयन देखता रहा। उसकी मेज़ के सामनेवाली सीट खाली थी। वहाँ एक सुन्दर स्त्री आकर बैठ गयी। उसके आने पर सभी ओर से निगाहें आकर उस मेज़ पर जम गयीं। उदयन ने भी देखा। उस स्त्री ने नकली बुन्दे पहन रखे थे। उसकी साड़ी इतनी चिकनी थी कि कन्धे से बार-बार फ़िसल जाती थी। उसके ब्लॉउज़ की सिलाई प्रयोगात्मक थी। उदयन नयी फ़ैशनों की ओर बहुत ध्यान नहीं दे पाता था पर अवसर मिलने पर उसने ज़रा ग़ौर से देखा—उस ब्लॉउज़ के भीतर से उस सुन्दरी का अंग सौष्ठव निरावृत होकर बाहर झाँक रहा था।

उदयन ने दुबारा नज़र उठायी तो उसे लगा कि महिला के चेहरे पर कुछ अपाकर्षक तत्त्व चमक उठा है। स्मिति भी भाँति-भाँति का होता है।

"मैंने आपको पहले भी कहीं देखा है। क्या आपका नाम जान सकती हूँ?"

"उदयन"

"जाना-सुना नाम है, सुन्दर भी। याद नहीं आता, पर हम कहीं मिले हैं।"

"कोई हर्ज नहीं।"

यह आदमी इस तरह क्यों बोला? उसकी समझ में नहीं आया कि उसके इस बाबत की प्रशंसा कर बात कैसे आगे बढ़ायी जाये। उदयन दृष्टि नीचे किये बैठा रहा।

कुछ क्षणों की शान्ति के बाद उदयन ने पैर में स्पर्श का अनुभव किया। तुरन्त ही उसके मन में एक संवाद बनने लगा।

"क्या हुआ?"

"जड़ता का स्पर्श।"

"स्पर्श नहीं, इसे तो प्रेम कहते हैं।"

"इसे व्यक्त करने के लिए कोई पशु-संग्रहालय अधिक उचित स्थान हो सकता है।"

"माफ़ करना। मैं तो आपकी आँखों की आकुल प्यास से प्रेरित होकर बोली थी। मैंने इतना अविवेक तो कभी देखा नहीं।"

"आपको माफ़ी माँगनी पड़ी, इसका मुझे अफ़सोस है, किन्तु मेरी आँखों में जो प्यास है, उसका आलम्बन आप नहीं।"

"किन्तु यह वासना की रौनक है, इसमें मुझे शर्म नहीं।"

"हाँ, यह रौनक़ तो अवश्य है, किन्तु यह सुलगते उपवन की रौनक़ है। अधिक से अधिक आप एक तटस्थ प्रेक्षक बन सकती हैं।"

उसके मन में यह संवाद कब तक चलता रहेगा ? उदयन ने दूसरी सिगरेट सुलगायी। बिल चुकाया। बिल चुकाकर पर्स एक ओर रखा।

वह खड़ा होकर इस तरह चलने लगा कि कहीं कुछ भूला ही नहीं। उसके खड़े होने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। सामने के ख़ाली हुए स्थान की ओर वह महिला देखती रही। अचानक उसे खयाल आया कि वे सज्जन अपना पर्स यहीं भूल गये हैं। झटके से उठ खड़ी हुई और जल्दी-जल्दी चली। उदयन दरवाज़े से बाहर निकलकर बायीं ओर मुड़े उसके पहले ही उसने पीछे से पहुँचकर उसका हाथ पकड़ लिया।

"यह आपका पर्स रह गया था ?"

"भूल से नहीं रह गया था, मगर आप वापस करती हैं तो ले लेता हूँ।"

आप मुझे ग़लत समझ बैठे हैं। मुझे याद आता है कि आपके साथ मैंने दो दिन तक सर्विस की है। आपके लिखे उत्तर मुझे टाइप करने होते थे। मुझे ज्वाइन किये दो दिन ही हुए थे। मेरी स्पीड इतनी नहीं थी कि सब काम पाँच बजे तक पूरा हो जाता। मैनेजर ने आपसे कहा था कि छह-सात बज जायें तो भी यह काम पूरा करके जायें—यह आपको देखना है। आपने मना कर दिया था—'अतिरिक्त समय के काम के लिए अलग से पैसा नहीं दिया जाता है, और यों भी पाँच बजे के बाद किसी को रुकने के लिए मैं मजबूर कैसे कर सकता।" मैनेजर के साथ कहा-सुनी हो गयी। आप त्यागपत्र देकर चले गये। बहुत वर्ष बीत गये। आपको शायद मैं याद न आऊँ क्योंकि आपकी दृष्टि तो अपनी टेबल के घेरे से कभी बाहर ही नहीं जाती थी।"

"हाँ, तब मैं एम० ए. कर रहा था और पार्ट टाइम सर्विस करता था। मेरी याददाश्त की इस कमज़ोरी के लिए माफ़ करना।"

"नहीं, नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। लगता है आप जल्दी में हैं। अच्छा, जाइए। फिर कभी मिलेंगे।"

"मिले, तो अवश्य ही थोड़ा साथ बैठेंगे। मैं आपको समझने का प्रयास करूँगा। मुझे स्त्रियों की समस्याओं को समझने में दिलचस्पी है। मैं लेखक हूँ। अच्छा, आभार !"

"आव जो।"

"गुड नाइट।"

वातावरण में ऊमस थी। टैक्सी करके वह अपने कमरे पर पहुँचा। स्विच दबायी, प्रकाश नहीं हुआ। लाइटर जलाकर वह फ़्यूज़ देखने लगा। खण्डित

हुआ प्रवाह पाँच-एक मिनट में पुनः शुरू हो गया। कमरे में अधिक प्रकाश देखकर उसने फिर से अँधेरा कर दिया। उसे लगा कि अभी अन्धकार अधिक अनुकूल है। स्मरण और अन्धकार में निकट का सम्बन्ध है।

तब वह इस मकान को घर में बदलने की अभिलाषा पाल रहा था। उसके एकाकी जीवन में जब अमृता अपना सम्पूर्ण जागृत नारीत्व लेकर आयेगी तब घर स्वयं हलका फूल बनकर अमृता के अंकुरित वक्ष की धड़कन का अनुभव करता उसके आँचल में ढँक जायेगा...तब प्रतिबिम्ब बनकर अमृता की मदहोश आँखों में आश्रय पा लेगा और विशाल शून्यता में से मुक्त हो जायेगा।

उन दिनों की एक शाम वह कमला पार्क की सीढियों पर बैठा था। अमृता अभी आयी नहीं थी। उसकी दृष्टि वायव्य बम्बई पर बिछी हुई थी। अचानक उसे लगा कि अमृता उसके पास आकर खड़ी है।

"अरे! तू एकाएक कैसे प्रकट हो गयी यहाँ तक? अन्तर्ध्यान होकर आयी थी?"

"दूर से आयी ही कहाँ हूँ? तेरे हृदय में से ही प्रकट होकर यहाँ खड़ी हूँ।"

अमृता उदयन के पास बैठ गयी। बैठते ही उसने उदयन के कन्धे पर अपना सिर टिका दिया।

साँस में सौरभ को अनुभव करते हुए वह बोला:

"अमृता! इस तरह अकल्पनीय अमृत-वर्षा कर क्या मुझे हैरत में डालना चाहती हो, या फिर इस तरह अपना कोई संकल्प तो सूचित नहीं करना चाहती?"

"क्यूँ? तेरे कन्धे पर एकाएक बोझा तो नहीं बढ गया न? ऐसा हो तो सीधी बैठूँ।"

"ऐसा हो सकता है भला! अनुभवियों ने कहा है कि इस बोझ से ठीक चला जाता है और तू तो संजीवनी है।"

जिन विशेषणों का तू उपहास करता है उनका उपयोग क्यों करता है? अप्रीतिकर लगे ऐसा मत बोल। अपनी वास्तविक भाषा ही बोल।"

"प्रेम एक मोहक अवास्तविकता है। जब इसका सम्भ्रम अनुभव करने का अवसर मिलता है, तब वायवीय विशेषण सूझते हैं। बुरा मत मानना, अमृता! तू मुझे सदैव अवास्तविकता की प्रतिमूर्ति लगती है। तू मानो कि अतिशयोक्ति अलंकार का उदाहरण है। मुझे शंका है कि मैं तुझे हकीकत में प्राप्त कर सकूँगा।"

"अब तेरी स्वाभाविक वाणी मिली। फिर सुन, सच बात कह दूँ—सिर-दर्द हो रहा था इसलिए तेरे कन्धे का टेका लिया था। अब तू ऐसा बोलने लगा

है कि सिरदर्द और बढ़ जाये ताकि मैं यह मान सकूँगी कि मैं उदयन के
बैठी हूँ।"

"तो क्या इसीलिए तूने मेरी शान्ति को आन्दोलित कर दिया था ?
रोब के साथ एक भ्रमजन्य स्वर्ग में पहुँच गया था। इन्द्रासन पर बैठकर
हाथ में लेने ही वाला था कि तूने मुझे इन सीढ़ियों पर उतार दिया।"

अमृता थोड़ी दूर खिसककर बैठ गयी। उदयन के शब्दों में—वह
कर बैठ गयी।' उसने कहा भी। अमृता और भी चिढ़ गयी। यह देख उ
उसका दायाँ हाथ पकड़ लिया और अनामिका में नाखून गड़ा दिया।

"राक्षस !"

"तेरे आशीर्वाद से राक्षस बन जाऊँ तो कितना अच्छा। तुझे उठाव
से खाली पड़ी असुरपुरी में पहुँच जाऊँ फिर किसकी मजाल कि तुझे छुड़ा त

"शायद तू नहीं जानता कि जो वरदान देता है, वह श्राप भी दे सकत

"अरे ! देखना ऐसा न कर बैठना। अभी बड़ी मुश्किल से तो ठिका
हूँ। नौकरी छूट जायेगी तो फिर कहाँ ढूँढ़ता फिरूँगा ? तुझसे मिलना :
जाऊँगा।"

अमृता खड़ी हो गयी। फ्रॉक की किनारी पकड़ उदयन ने उसे रोका।

"कितना बेशर्म है तू ! कोई देख ले तो ?"

"यहाँ कोई है नहीं। नहीं तो देखता अवश्य कि क्यों जा रही हो ?"

"कल मेरा जन्मदिन है।"

"अच्छा है कि तुम्हारा जन्मदिन प्रति वर्ष आता है। मेरा जन्म
भूतकाल बन गया है। एक ही बार आया था केवल ई. सन् १९३१ में।
है, मनाओ अवश्य मनाओ। शुभकामनाएँ दूँ ? अभी ही दे दूँ। कल दूस
लाइन में खड़ा नहीं रहूँगा।"

"अच्छा अभी ही दे दे।"

"तो शुभकामनाएँ देता हूँ कि तेरी इच्छा हो तब तक तू जिये, कम
मैं जिऊँ तब तक तो जिये ही।"

"वाह। ऐसी शुभकामनाएँ तो दूसरा कोई मुझे नहीं दे सकेगा। उ
एक बात पूछूँ, तू अपना जन्मदिन क्यों नहीं मनाता ?"

"मैं स्वयं इस परेशानी में क्यों पड़ूँ ? इससे सीधा रास्ता तो यह है
महापुरुष बन जाऊँ, फिर लोग युगों तक मेरा जन्मदिवस और निर्वा
मनाया करेंगे।"

"इस तरह बकवास न कर, सही बात बता।"

"मुझे अपने जन्म की खुशी नहीं है। जीने के लिए मुझे कितने ह

मारने पड़ते हैं। मुझे लगता है कि मैं इस पृथ्वी पर फेंका हुआ प्राणी हूँ, जो मजबूर होकर जिया करेगा। इस असीम सृष्टि मे मेरा जन्म एक नगण्य दुर्घटना है। यह दुर्घटना है, अतः निरर्थक है और देर-सवेर मुझे उसी निरर्थकता में वापस जाना है।"

"तो फिर मेरा होना भी दुर्घटना ही कहलायेगा न ?"

"पता नही ? पर तू मुझे स्थायी प्रतीत होती है, दुर्घटना नहीं लगती। और इसी कारण 'तू है' यह बात मेरे मानने में नही आती।"

"उदयन !"

"क्या ?"

"मैं जबतक तेरे पास होऊँ तबतक भी क्या तू प्रसन्न नही रह सकता ?"

"नहीं।"

"क्यों।"

"तेरी उपस्थिति में भी दूसरा बहुत कुछ आता रहता है। अनेक प्रश्न मुझे घेरे रहते हैं। इनके उत्तर मैं अपने पास से ही प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे उधार कुछ भी नहीं खपता। मैं आत्मनिर्भर रहने का प्रयत्न करूँगा—यह दुनिया को रुचेगा नही। अभी तक तो नही ही रुचा। भविष्य में भी मुझे इसके लिए तैयार रहना चाहिए। एक उपेक्षित आदमी की पूँजी प्रसन्नता किस सीमा तक हो सकती है—तू ही अनुमान लगा ले।"

"मुझे प्राप्त करना हो तो तुझे प्रसन्न रहना ही होगा।"

"बस, एकदम चेतावनी ? इसे तू प्रेम कहती है। अच्छा है कि इस शब्द को व्यवहार में लाने के बाद भी मैं इसे काटता रहा हूँ। अमृता, तेरी धमकी या चेतावनी तो मुझे खुश नही कर सकेगी पर शायद तेरा मिलन मुझे प्रसन्न कर सके। हाँ, यह भी मेरी धारणा ही है।"

उदयन को आज यह समझ में आया कि उस दिन अमृता उसकी बात नही समझ सकी थी। अमृता बार-बार कहती रही कि 'इस उदासीनता को छोड़ !' और ऐसा कहकर दूर और दूर होती रही। स्मित के बिना उसका चेहरा मानो सूना पड जाता है, एकाकी रह जाता है।

इस घटना को बीते आज करीब साढ़े तीन-चार साल हो गये। फिर तो प्रसन्नता की शिल्पाकृति सदृश अनिकेत ! सौम्य, अभिजात, अजातशत्रु, स्वस्थ, रसिक. ..जिसके लिए शब्दकोष के अच्छे लगनेवाले सभी विशेषणो का निःसंकोच उपयोग किया जा सके। बस, अमृता को उपयुक्त आलम्बन मिल गया।

उदयन के होठ पर व्यंग्यपूर्ण मुसकान खेल गयी। कमरे में अँधेरा था; इसलिए कोई दर्पण वह नहीं देख पाया।

बहुत रात गये वह पढ़ने बैठा। एक पंक्ति ऐसी मिली कि पुस्तक बन्द क
एक ओर रख दी, वह धीमे-धीमे बोलता रहा :

"एण्ड एवरी अटेम्प्ट
इज़ ए होली न्यू स्टार्ट,
एण्ड ए डिफ़रेण्ट काइण्ड ऑफ़ फ़ेल्अर।"

"आश्रय अथवा स्वतन्त्रता!"

अन्य कोई मार्ग नहीं!

ये लोग कमाते हैं, मैं इनका कमाया खाती हूँ, इसीलिए तो इन्होंने म
सलाह दी। मेरी स्वतन्त्रता इन्हें स्वीकार नहीं। तो मैं स्वावलम्बिनी बनूँगी
इनके विरोध के कारण स्वावलम्बिनी बनूँ इससे अच्छा है कि स्वावलम्बन अप
कर्तव्य समझकर इस आश्रय को छोड़ूँ। भविष्य में ये लोग मेरे विचारों अं
व्यवहार पर कोई नियन्त्रण न लादें तो भी इनका आश्रय तो अब वर्ज्य है।
लोग तो अब मुझे यदि अपनी तरह जीने की स्वतन्त्रता दें भी तो इनकी उदार
होगी, अधिकार नहीं। हक़ है उतना ही जीवित रहना....किन्तु मेरा जो हक़
क्या वह इस समाज में सुरक्षित है? जहाँ जाऊँगी वहाँ शंकित निगाहों की क
नहीं और अब तो अनिकेत यहाँ नहीं है। वह कब लौटेगा? इसका भी प
नहीं। दो पुरुषों के सम्पर्क की उनकी चिन्ता तो अपने-आप ही टल गयी..
किन्तु इस तरह सोचना, समझौतावादी व्यक्तित्व का सूचक है। अनिकेत अं
उदयन के साथ मेरे सम्पर्क में कुछ भी ग़लत नहीं था, हो ही नहीं सकता। य
ये लोग स्वीकारेंगे कि उन्हें ग़लतफ़हमी हो गयी थी तभी मैं यहाँ रुक सकूँगी
कितने ही लोग हैं जो दुनिया में अकेले जीते हैं, क्या उनका जीना जीवन नहीं।

"उदयन की उदासीनता मुझे रुचिकर नहीं लगती, पर क्या उसके कार
तक पहुँचकर मैंने कभी इस उदासीनता को दूर करने की कोशिश की? उस
मेरी दिलचस्पी ऊपरी थी? शायद इसमें मेरा दोष नहीं। बिना अनुभव किये
उसकी उदासीनता को नहीं समझ सकती। अब समझ सकूँगी। जैसे-जैसे सह
करने का अधिक अवसर मिलेगा मैं उसे अधिकाधिक समझ सकूँगी। उसका
दुर्भाग्य से पाला पड़ा है। दसों दिशाओं से उसे विरुद्ध प्रतिध्वनियाँ सुनाई दे
हैं। उस दिन नौका-विहार के वक़्त अन्ततः वह विवश हो गया। कॉलेज
प्राचार्य को मिलने जाना था, मिल आया होगा। जिस आदमी ने उसे एक चच
पत्र के लिए सलाह दी, क्या वह उदयन की व्यंग्यात्मक भाषा शान्ति से सु
सकेगा? अब फिर लम्बे समय तक बेचैन रहेगा। किन्तु शायद अच्छा परिणा

आया हो। सलाह देने के पीछे आचार्य का दूसरा आशय भी हो सकता है। बिना जाने उसके सम्बन्ध में मैं आशंका क्यों पालूँ, और हो सकता है इतने अनुभव के बाद उदयन ने भी वाद-विवाद कम कर दिया हो। अभी तक उसने जितनी नौकरियाँ छोड़ीं, उन सबके छोड़ने के कारणों को एकत्र कर यदि कोई उदयन के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करने जाये तो निर्णय अवश्य ही उसके पक्ष में देगा।"

"उससे मिलने जाऊँ ? घर में जो उपस्थित होंगे उन सबकी दृष्टि तन जायेगी : इस समय कहाँ चली ? यह सब तो असह्य है। तो इनसे पहलेवाले मामले की चर्चा कर लूँ।"

बड़े भाई के कमरे में जाकर उसने भाभी को बुलाया और चिट्ठी के विषय में पूछा। जवाब मिला कि यह तो चारों लोगों का सामूहिक अभिप्राय है। सबको बुलाया गया। सभी कौतूहलवश जल्दी आ गये।

"क्यों ? मुँह मीठा करने-जैसे समाचार हैं ?" एक भाभी ने पूछा।

"आप सब अपने-आप ही मुँह मीठा किये रहते हैं, इसलिए मुझे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं।"

"इससे विपरीत करने में तुमको दिलचस्पी है ?" दूसरी भाभी ने पूछने के साथ मुँह दबाकर हँस लिया।

"अमृता के साथ अदब से बात कर।" उसके पति ने कहा।

अमृता बोली :

"दो दिन पूर्व मुझे जानने को मिला कि आप सबको मेरे अमुक व्यवहार पर आपत्ति है !"

किसी ने कुछ नहीं कहा। अमृता आगे बोली :

"ऐसी सलाह देते हुए आपको संकोच नहीं हुआ ?"

अब एक ने कहा :

"लोग बातें करें उससे पहले सावधान हो जाने में कोई बुराई नहीं।"

"इसका मतलब कि आपको मेरे प्रति अविश्वास तो हो ही गया।"

"तेरे प्रति किसी को अविश्वास नहीं हुआ। कभी होगा भी नहीं, किन्तु दुनिया ही ऐसी है कि अमुक वस्तु देखकर बातें करने ही लगती है। लोग शान्त रहेंगे ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता।"

"लोग मतलब कौन ?"

"पास-पड़ोस, दूर-नजदीक के, तेरी सहेलियाँ—कोई भी बात कर सकता है और एक बार बात फँसी फिर उसकी कोई सीमा नहीं।"

"आपके इस भय के कारण मैं नजरकैद भोगूँ ? मुझे लगता है कि आपको मेरे विकास में रुचि नहीं। इतना ही नहीं मेरे कारण आप सबकी प्रतिष्ठा रहे

इसमें दिलचस्पी है। आपको मेरे सन्तोष की नहीं अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता है आप जिसे प्रतिष्ठा मानते हैं, वह तो बनावट है, इसलिए प्रतिष्ठा तो भ्रम है।"

"मालूम नहीं था कि तू पढ़-लिखकर हमें समझाने बैठेगी।" बड़े या छो भाई ने कहा।

"इसकी सम्भावना ही नहीं कि मैं आपको समझा सकूँ क्योंकि ऐसा करने लिए मुझे पहले वह सब मिटाना पड़ेगा जो आप समझते हैं और यह सम्भ नहीं। फिर भी आपको समझाने की मुझे न उमंग है, न अधिकार। यदि हो तो मात्र स्वयं को समझाने का बल्कि समझने का।"

"अपने समझने के लिए दूसरे दो जनों की आवश्यकता है भला?" पूछने वाली भाभी की आँखों में निम्नस्तर के कटाक्ष की प्रवृत्ति थी। अमृता कुपित हुई पर उसने जवाब न दिया। उसने एक ओर देखते हुए कहा :

"मैं इस घर में सबसे छोटी हूँ। आज तक आपके साथ आपका सद्भाव पाक रही हूँ, किन्तु यदि आप चाहें कि यही छत्रछाया मेरी सीमा बनकर रह जाये मैं इसको त्याग दूँगी।"

"मतलब?" दो कण्ठों से एक साथ चिन्तायुक्त स्वर निकला।

मतलब कि मैं नौकर खोजकर अलग रहने चली जाऊँगी ताकि इस विशा भवन में सुरक्षित आपकी प्रतिष्ठा को मेरे कारण आँच न आये।"

"आज तक तुम्हारे कारण हमारी प्रतिष्ठा ही दिखी है और हमने भी तुम्हा इज्जत की है।" गम्भीरता से एक भाभी ने कहा।

"मुझे इज्जत से नहीं, जागृति और विचार पूर्वक जीने का सन्तोष चाहिए आप विचार करते डरते हैं। मैं जिस निर्दोष स्त्री-पुरुष साहचर्य को सहज मा सकती हूँ, वह आपकी कल्पना से परे है। इस सम्बन्ध में आपकी सभी धा णाएँ मुझसे भिन्न हों, यह सम्भव है क्योंकि यह सब आपने रूढ़ियों से अनाया ही सीखा होगा। जिस साहचर्य में इच्छा और कामना को स्थान है, उस आत्मनिर्भरता और तटस्थता का स्थान नहीं। मेरा अनिकेत और उदयन साथ का सम्पर्क जीवन सम्बन्धी हमारी समान समस्याओं के कारण बढ़ा किसी कृत्रिम संयम की मदद से हम शीलवान् बने हैं, ऐसा नहीं है, वर विवेक से प्राप्त चेतना के कारण हम सबकी अलग-अलग सत्ता टिकी हुई है मुझे लगता है मेरी यह बात आपके गले नहीं उतरेगी। मेरे, उदयन औ अनिकेत के साहचर्य से आपको अपकीर्ति का भय हुआ। मुझे इससे कोई नहीं लगता। मैं इन लोगों के साथ आपकी अपेक्षा अधिक निकटता अनुभव क सकती हूँ क्योंकि....।"

"दोनों के साथ निकटता?" बीच ही में प्रश्न आया।

टिका नहीं जा सकता। वेदना में तो थोड़े-बहुत माधुर्य का स्पर्श होता है! यह दुःख था जो श्रद्धा को क्षीण कर देता है जिससे अन्तहीन विवशता के अनुभव का आरम्भ होता है। यह दुःख सौन्दर्य से विमुख करता है। स्वयं की अभिलषित परिस्थिति आ रही है। यह है स्वयं की स्वाधीनता-प्रेरित पहली पसन्द। तो क्या यह चयन सुखद नहीं? वह जानती थी कि स्वतन्त्र होने के प्रयास में साहस की आवश्यकता है। साहस से आत्मविश्वास पोषित होता है और स्वाभिमान हर तरह का खतरा मोल लेने की तमन्ना जगाता है। तो क्या अकेले रहने के साहस में खतरा है? शायद साहस का अर्थ ही खतरा...।

"घरवाले समझेंगे कि वे दो इसे खींच ले गये। अनिकेत यहाँ है ही नहीं, इसका इन्हें पता ही नहीं चलेगा। वह जब-जब भी यहाँ आया है, भाभियों ने किसी न किसी बहाने उसे देख सकने का अवसर ढूँढ़ लिया है। इसमें उनका दोष भी नहीं। अनिकेत को तो देखते ही रहने की इच्छा होती है। और उसके जाने के बाद तो...। मैं घर छोड़कर जाऊँगी, किन्तु मेरे सदाशय पर ये कभी विश्वास नहीं करेंगे। ये लोग नहीं जानते कि अमृता तो यहाँ से एकाकी होकर जा रही है। अनिकेत यहाँ नहीं है, वह होता तो घर छोड़ने के सम्बन्ध में मैं उसकी सलाह अवश्य लेती, किन्तु वह है नहीं। उदयन है। और वह तो इतना बिखरा हुआ रहता है, उसे व्यवस्थित करने के लिए किसी दूसरे को उसके चारों ओर छा जाना होगा। उसे मिलाकर एक करने के लिए मैं उसे अपनाऊँ, पर यह उचित नहीं। मेरा उद्देश्य ही ग़लत हो जायेगा और उसके लिए स्वयं को विलीन कर देने से क्या परिणाम मिलेगा? वह स्वयं की धुरी को मिटाकर शून्यता के रूप में विस्तृति के लिए मथ रहा है और फिर भी मैं समझ नहीं पाती कि मुझे प्राप्त करने के लिए वह क्यों दुर्निवार व्यग्रता का अनुभव कर रहा है? उसके चित्त में शायद विजेता बनने की वृत्ति काम कर रही है और मुझे दूर होते देख इस प्रकार के प्रतिभाव व्यक्त हो रहे हैं। वह जो चाहता है—मैं उसे नहीं दे सकती। जो माँगे वह दे देना तो दान हुआ, अर्पण नहीं। दाता स्वयं को भूल नहीं सकता, इसलिए अर्पण ही एकमात्र रास्ता है। और मैं उसे कैसे अर्पण कर सकती हूँ जब कि मेरा कुछ अनिकेत के पास चला गया हो।"

"अनिकेत माँगता नहीं। जो दे दिया सो दे दिया, अब अनपेक्ष होकर हट जाना चाहता है। वह हट गया इसलिए क्या मैं भी दूरी अनुभव कर सकूँगी? मेरी अभिलाषा उन्मुक्त होकर उसकी ओर दौड़ जाती है। वह मुझसे दूर हटा। किन्तु इस बात का ध्यान रखते हुए कि मेरी अवहेलना न हो। अब भले ही वह अशब्द रहे। उसने एक बार तो कह ही दिया कि...प्रेम की विजय स्वीकार कर उसने अपने-आपको छोटा बनने दिया...। मुझे पाये बग़ैर भी वह प्रसन्न रह

सकेगा ? हाँ, वह प्रसन्न ही रहेगा। उसकी यह प्रसन्नता ही मुझे बेचैन करती है। इसीलिए कभी-कभी ऐसी इच्छा होती है कि अपने स्त्रीत्व को खतरे में डालकर उसे चंचल कर दूँ। ऐसी स्थिति की कामना होती है कि मेरे सान्निध्य मात्र से ही अस्वस्थ हो जाये। रह-रहकर हृदय रंगदीस फौव्वारों की भाँति कामनाएँ उछल आती है। किन्तु वह तो दूर जाकर खड़ा है—किसी हिमाच्छादित शिखर की तरह। नदी भले ही तलहटी में से बह जाये, भले ही आगे बढ कर किसी रेतीले मरु मे मिलकर विलुप्त हो जाये, वह तो पर्वत शिखर की भाँति दृढ ही रहेगा, सागर बनकर घहरायेगा नही, उछलेगा नही। उदग्र लहरो के साथ धँसती हुई सामने आती नदी को अपने तप्त खारेपन में सोखेगा नही। तो क्या वह हिम शिखर के धवल गौरव का अनुभव करता रहेगा ? नदी की गति के दर्प का मर्दन करने के लिए तैयार नहीं होगा ? उसकी अडिग स्थिरता को विचलित होते देख सकूँ, तो बस...। ऐसा प्रसंग वह नही आने देगा। बहुत सावधान है। उसने विजय प्राप्त की है ऐसा जताये बिना ही उसने मुझे पराजय का गहरा अनुभव कराया है...। जाते सलाह दी, उदयन के लिए सिफारिश की। उदयन की प्रशंसा की जैसे उदयन को वह मुझसे अधिक पहचानता हो !

मैं एक को चाहते हुए भी दूसरे को नकार नही सकती। ऐसे किसी अन्तर्द्वन्द्व में से गुजरे बिना ही जो स्त्री अपने समग्र का समर्पण कर सकती होगी वह कितनी भाग्यशालिनी होगी ! अगले जन्म में भी 'त्वमेव भर्ता' का वचन उच्चारित करने-वाली स्त्री ने अपनी पूरी जिन्दगी में मन, वचन और कर्म से क्या एक ही पुरुष को पति की दृष्टि से देखा होगा ? यदि सचमुच ऐसा ही हो तो स्वयं के अस्तित्व के प्रति उसकी जागृति नहिवत् होगी, अथवा उस युग में प्रचलित आदर्श का गीत गाकर अपने को भूलकर केवल गौरव बढाने के लिए ऐसा किया होगा ? शायद मैं भूल रही होऊँ ! मेरी इस द्विधा का कारण शायद मेरी अपनी कमजोरी भी हो। वास्तव में इन सूत्रो पर नही जी सकती। यहाँ तो मन्दोदरी को भी सती माना जाता है, जिसने ढलती उम्र में दूसरे को अपनाया। द्रौपदी जानती थी कि कर्ण उसका विजेता बन सकता था। जीवन-भर वह कर्ण को भूल सकी हो, कर्ण तो नही ही भूला। जब द्रौपदी की यातनाओं का पार नही रहा तब वह अकेले अर्जुन की भी नही रह सकी। अर्जुन भी पांच हक़दारो में से एक। नारी को काया मानकर ही वे लोग चले और द्रौपदी ने प्रतिक्रियावश क्या से क्या कराया ? कविताओं और शास्त्रो में जो कुछ ठीक-ठीक कहा गया है, उसे फिर से देखना चाहिए।"

"उदयन सच ही कहता है—जागृत होने का मूल्य चुकाना पड़ेगा। [illegible] और डेस्पेअर मोल लेकर भी। धर्म, दर्शन और संस्कृति में पूरा [illegible]

ताकि तुम्हें कुछ भी निश्चित करना न पड़े। दूसरों के रूढ़ आदर्शों के अनुसार चलना; स्वतन्त्र विचारों की ज़रूरत ही नहीं रह गयी। मूल्यों का निर्णय करने के दायित्व से भी तुम मुक्त। सब कुछ तैयार! अपनी विरासत कितनी महान् है—ऐसा कहो तो तुम श्रद्धालु और विद्वान् भी कहे जाओगे। खुद खोज करने के लिए आज कौन तैयार है! अध्यापक और विख्यात विद्वान् भी दूसरे को उद्धृत किये बिना बात नहीं कर सकते। ये सब विरासत में मिली आत्मवंचनाएँ हैं। उदयन यह सब समझ गया है। जो एकाकीपन मैंने आज अनुभव किया, उसे तो वह पचा चुका है। अनिकेत विरासत को अस्वीकार नहीं करता। कई मामलों में वह कम बोलता है। वह सचमुच कम बोलता है? या फिर उसको अधिक सुनने की इच्छा मुझमें जागती रहती है? वह रहस्यमय लगता है। इसलिए कई बार उसकी ओर मेरा आकर्षण अदम्य हो उठता है। उदयन प्रकट है। मत न देनेवाले मौन को भी वह आत्मवंचना मानता है। अन्दर जो कुछ जाग उठता है, उसे छिपाने के लिए वह होठ बन्द नहीं रखता...कठिनाई एक ही है कि पीछे मुड़कर देखता नहीं। उसके रवैये में अतिरेक है। वह अतिवादी है। मेरे प्रति उसके रुख में मुझे जो उसके किंचित् स्वार्थ की गन्ध आती है इसका कारण उसका एकाकीपन रहा होगा। वरना उसने मुझे विवशतापूर्ण स्थिति में छोड़ने में कब रस लिया? कर्तव्य कहता है—उदयन...अभिरुचि कहती है—अनिकेत...। कर्तव्य और अभिरुचि एक होते तो कितना अच्छा होता!"

"अनिश्चय की इस व्यथा से मैं कब उबर सकूँगी। अनिकेत स्पष्ट रूप से सलाह दे गया है कि मैं उदयन का वरण करूँ। वह किस अधिकार से ऐसी सलाह दे सकता है? वह कोई मेरे समग्र का स्वामी नहीं। बिलकुल नहीं। नहीं ही। नहीं? ऐसा न होता तो इनकार करते समय भी स्वामी शब्द क्यों मुझे सुखद अर्थछाया देता गया। उदयन की एक प्रिय पंक्ति अमृता को एकाएक याद हो आयी :

"बिटवीन दी इमोशन
एण्ड दी रेस्पान्स
फ़ाल्स दी शेडो।"

"भाव और अनुभाव के बीच पड़ती छाया को उदयन अनिकेत के प्रतीक के रूप में तो नहीं कहता न।" अमृता के उदास होठों पर किंचित् स्मित थिरक गया।

"अक्षांश और रेखांश की आड़ी-तिरछी रेखाओं में अंकित पृथ्वी पर तो दृष्टि

क्षणार्ध में ही अपनी यात्रा पूरी कर लेती हैं। परन्तु जब पैर धरती पर अपनी यात्रा शुरू करते हैं तब नक्शे में देखी हुई वह धरती कागज़ का टुकड़ा मात्र ही बनकर रह जाती है। धरती तो अपने कण-कण में अभिनव है। उसकी सुन्दरता का अनुभव तो पैदल चलनेवाले मुसाफिर को ही हो सकता है। क्षितिज की वर्तुलाकार रेखा तो आँखों के सामने से हटती ही नहीं। चाहे देखनेवाला समझता हो कि उसकी दृष्टि क्षितिज नाम की एक कल्पित पगडण्डी पर यात्रा कर रही है फिर भी वह अपने-आपको रोक नहीं पाता। वह जानता है कि उसकी दृष्टि क्षितिज तक ही फैल सकती है। मनुष्य की दृष्टि के छोरों से ही क्षितिज की रचना हुई है। नहीं तो जो आर-पार देख सकता है उसके लिए क्या क्षितिज और क्या आकाश? हे अनन्त! मेरी दृष्टि के अन्त के साथ ही तू प्रारम्भ होता है। मुझे विस्तृत होना होगा तो तेरा सहारा लेना ही पड़ेगा।"

अब थोड़े दिनों में खडीर जाना दूभर हो जायेगा। समुद्र का पानी बढ़ आयेगा। धरती के अन्तर में से भी पानी फूट निकलेगा और कच्छ का विशाल मरुस्थल समुद्र का आभास करायेगा—कैसी विचित्र घटना है! मानव-हृदय की भाँति कालान्तर में रेगिस्तान सागर बन जाये और सागर रेगिस्तान। बम्बई छोड़ते समय समझता था कि रेगिस्तान के रेतीले विस्तार में भरी दोपहरी में खड़ा रहूँगा। मेरी छाया भी जब पैरों के नीचे छिपने की कोशिश कर रही होगी तब सार्वत्रिक अकेलेपन का अनुभव करूँगा। परन्तु न तो यहाँ पर रेतीले मरु के भागते बगूले हैं और न ही तप्त धरित्री की विनाशक फुत्कार। इस गर्मी को आसानी से सह सका। बम्बई में गर्मी का नहीं केवल उमस का अनुभव किया है। यहाँ के लोग तो मेरी तरह सुबह-शाम-दोपहर का कोई भेद नहीं करते। काम किये जाते हैं। पीपराला से आडेसर के बीच पहली बार रेगिस्तान देखा। क्या इसे ही मरु कहते हैं? तब तो मरुवासी बनना दुष्कर नहीं। हाँ, रापर और जेसड़ा होकर गुज़रते समय बीच का पन्द्रह मील का विस्तार अपनी निर्जनता के कारण मरुभूमि-सा लगा। काली मिट्टी में मिली हुई, खारी सफ़ेदी देखी, किन्तु खडीर की टेकड़ी देखने के बाद फिर अमरापर होकर प्रागड की ओर मुड़ा तो भूल ही गया कि मैं रेगिस्तान में घूम रहा हूँ। लोगों की उपस्थिति में मरु का केवल आभास होता है। लोडाणी से व्रजवाणी पहुँचा। व्रजवाणी में व्यतीत किये दिन याद रह जायेंगे।

व्रजवाणी के प्राचीन अवशेषों की पृष्ठ-भूमि में स्थित नीलवा की लघु पर्वत-माला देखकर ऐसा लगा कि यह उन जीर्ण अवशेषों पर छाया करने के लिए

विह्वल हूँ। फिर भी एक ऐसी दूरी झेल रही है जो कभी मिटायी नहीं जा सकती। धूल-धूसरित पत्थर के टुकड़ों में प्राचीन शिल्प देखकर आँखें त्रस्त हो उठीं। महाकाल कितना निर्मम विजेता है! ढलती सन्ध्या में जब तालाब के किनारे जा खड़ा हुआ तब बबूल और पीलू की सघन वनराजि देखकर आँखें जुड़ा गयीं। बस एक ही कामना है; जहाँ जाऊँ वहाँ वनराजि देखने को मिले; और देखने को न मिले तो मेरे प्रयत्न भविष्य में वनराजि के रूप में फलित हों।

यहाँ बरगद भी हैं। एक फैले बरोह को पकड़कर झूलने के लिए सुप्त बालपन ललक उठा। किन्तु कितना सावधान रहना पड़ता है! उमंग को इस तरह अबाधित प्रकट कर देने से कोई पागल कह बैठे तो। पागल होना अर्थात् अनुशासनजन्य आवरणों से मुक्त होकर सहज स्थिति प्राप्त करना। शुद्ध सचाई की मधुर झंकार जगाना, फिर देखने और सुननेवाले क्या कहेंगे, इसकी कोई परवाह नहीं। एकदम निरपेक्ष रुख। किन्तु यह निरपेक्षता दूसरे छोर की है। समस्त सापेक्षताओं के बीच विकसित निरपेक्षता और पागल की निरपेक्षता दो भिन्न वस्तुएँ हैं। मुझे पागलपन का कारण इष्ट नहीं। क्योंकि समष्टि की अवहेलना करके मैं जी सकूँ—यह सम्भव नहीं। मैं केवल अपने लिए नहीं जीता वरन् समग्र के सन्दर्भ में जीता हूँ। जीवन के समस्त सन्दर्भों के बीच ही मैं अपने अस्तित्व की निर्भ्रान्त प्रतीति कर सकता हूँ। पागलपन तो इस प्रतीति से पलायन है। इसे बनावट कहो या सजावट। दोनों को आत्मवंचना कह सकते हैं, किन्तु व्यवस्था को स्वीकार करनेवाला, सबसे विमुख, पागलपन में से प्राप्त होती निरपेक्षता को वर्ज्य मानेगा। बचपन तो फिर से नहीं जिया जा सकता, किन्तु इतना याद रहे कि मैं बालक था तो क्या यह कम है? उदयन भले ही लौटने की बात करे।

पीलू और बबूल भगवान् शंकर के दूत सदृश वृक्ष हैं। इसीलिए तो यदि उनका उन्मूलन न किया जाये तो वे महालयों के प्रांगण में भी खिल सकते हैं और उसी खुमारी के साथ वीरान अरण्यों में भी टिक सकते हैं। कहीं-कहीं पर इनकी फुनगियाँ छोटे पौधों-जैसी लगती हैं, तो कहीं-कहीं वे झुरमुटों की रचना कर खड़ी होती हैं। इस तालाब के किनारे बबूल और पीलू के वृक्ष निर्मोही की-सी शान्ति धारण कर खड़े हैं। रंचमात्र भी पराये नहीं लगते। तालाब की इसी ऊँची पाल के ऊपरवाली झाड़ी देखकर अमृता को अवश्य ही आनन्द होता। अमृता यहाँ होती तो? अथवा ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि वह यहाँ है ही नहीं? क्या उसके शरीर में ही उसके अस्तित्व की समग्रता आ जाती है? यह बात नहीं है। इसीलिए तो कालिदास या रवीन्द्रनाथ नहीं हैं यह मैं नहीं मान सकता। स्मृति बनकर अमृता मुझे साथ दे रही है। इस चित्त

में संक्रमण करता हुआ समय वर्तमान की जगह प्रतिपल विगत बन रहा है। जो विगत है, उस सबको अमृता घेर लेती है। मेरा समग्र अतीत मानो अमृता के सान्निध्य से स्पन्दित है। इसीलिए तो उसका स्मरण केवल चित्त में ही नहीं अंग-प्रत्यंग में, रुधिर में धधक उठता है। समुद्र में तैरने का वह अनुभव कितनी बार याद आयेगा ? उसके कपोल के आकस्मिक स्पर्श की मुद्रा मेरी त्वचा पर स्थायी हो गयी है, भले ही दिखाई न दे। जो दिखाई दे वही वास्तविक हो क्या ऐसा जरूरी है ? लज्जाविवश उसके निःशब्द ओष्ठ उस ऋजुल स्पर्श द्वारा क्या कम कह गये थे ? अरे ! वह तो याचना भी थी। इससे बड़ा सद्भाग्य कोई हो सकता है ? मन वश में रहे, ऐसी परिस्थिति न थी। वर्षा और समुद्र की लहरों के संयुक्त तूफान से बच निकलना, भूलकर थम जाने का मन हुआ था। उसके बाद भी कोई चुनौती देता रहा...। साहस हो तो रुक जा। जा रहा है, यह तो साहस नहीं पलायन है, रुक जा....। वे दिन लौटकर नहीं आयेंगे। यौवन की ऊष्मा की बसन्ती सृष्टि की शरण में जा। लौटकर आये तब यह भी न रहे। क्योंकि यह शाश्वत नहीं...। इस दुनिया में अमृता एक ही है, भले ही उदयन...किन्तु....वह तो कहता था कि स्वयं के निर्माण में अन्य किसी की सहायता को वह वर्ज्य मानता है....मैं रुकता तो उसके आत्मविश्वास को अपेक्षित उत्तर मिल जाता...उफ् !....यह विचार मेरे मन में क्यों आया ? पर्याप्त विचार करके जो क़दम उठाये हैं वे अब आगे की ओर ही बढ़ेंगे। ऐसा ही होगा; हाँ, ऐसा ही होगा क्योंकि मैंने सकल्प किया है। मैं दूर रहूँगा तो अमृता उदयन के नज़दीक अवश्य ही जायेगी। उदयन के लिए मैत्री का अर्थ चाहे जो हो परन्तु मेरी मैत्री में त्याग का स्थान है।

प्यास लगती है किन्तु पानी भाता नहीं।

तालाब के किनारे आवडमाता का मठ है। बुजुर्ग कहते हैं कि पहले यहाँ सुन्दर मन्दिर था। अवशेष कहते हैं कि इस मन्दिर का शिल्प उत्तम रहा होगा। तालाब खोदा गया तब जो पत्थर मिले उनपर नर्तकियों की आकृतियाँ उत्कीर्ण थीं। लोगों ने उन पत्थरों को पूजना शुरू किया। अमृता को पुरातत्त्व में बहुत रुचि है, किन्तु वह यहाँ नहीं आयी। शायद इन सबके बारे में वह जानती ही होगी ? 'कच्छ की लोक संस्कृति' नामक पुस्तक एक दिन उसके हाथ में देखी थी। उसमें उल्लिखित इस गाँव की एक घटना के बारे में मैंने अपने मेज़बान से पूछा। उन्होंने उस घटना का विस्तार से वर्णन किया। कहानी कहने का उनका लहजा आत्मसात् कर लेने की मुझे इच्छा हुई। इस गाँव में आया तब इस प्रौढ पुरुष को पहले-पहल देखा था, किन्तु दो घडी के साथ के बाद से ही जन्म-जन्मान्तर के स्नेही लगते हैं। वह प्रसंग याद आता है तब उनका चेहरा

भी याद आ जाता है। उदयन मिलेगा तब उसे यह प्रसंग सुनाऊँगा ताकि वह एक सुन्दर कहानी लिख सकेगा। अभी तो इसे संक्षेप में लिख लूँ।

व्रजवाणी गाँव। ऊपर पूनम की रात का आकाश। छोटी-छोटी सफ़ेद बदलियाँ चाँदनी में पिघल गयी थीं। तालाब के दक्षिणी परिसर की रेत किसी भी उतावले पथिक को अपने शीतल स्पर्श से रोक सकती थी। पूर्व की ओर से एक ढोलवादक आ रहा था। कन्धे में पट्टा बाँधकर ढोल को दायीं ओर लटका रखा था और हाथ में था एक टेढ़ा डण्डा। पट्टे के फ़ीते चाँदनी में भी अपने अलग-अलग रंगों में चमक रहे थे। कभी-कभी ढोल पर होनेवाले उसकी अँगुलियों के आघात से उठती आवाज़ को सुनने के लिए रात की निस्तब्धता बेचैन हो उठती थी। एक क्षण के लिए अँगुलियों का आघात ज़रा जोर से हो जाता है और वातावरण गुंजरित हो जाता है। ढोलक रुक जाता है। उसके दाहिने हाथ का डण्डा एक बार हवा में उछलता है और वह ढोल पर पड़े न पड़े तब तक तो चाँदनी प्रकम्पित हो उठती है। एक डंका और फिर दूसरा डंका पड़ता है तब तक तो पूरे व्रजवाणी गाँव के घरों के द्वार उघड़ जाते हैं। ग्वालिनें खिंची आती हैं। ढोलवादक के हाथ में मानो सम्मोहन शक्ति है। एक सौ बीस ग्वालिनों के यौवनमत्त चरण पल-भर में रास की तालबद्ध गति से आबद्ध होकर थिरकने लगते हैं। अनसुना यौवनगान ढोलवादक को घेर लेता है। ग्वालिनों के कण्ठ से फूटता गहन स्वर उसकी आँखों को मदमत्त बना देता है। वह भी झूमने लगता है। पूरा गाँव आकर समूह में शरीक हो जाता है। देखनेवालों की आँखें भी मदहोश हो जाती हैं। हरेक अपने को भूलकर यह अपूर्व दृश्य देखने में निमग्न हो गया है।

तभी दक्षिण दिशा की ओर से काले घोड़े पर सवार होकर एक चारण आ पहुँचता है। उसकी पोथी में पूरे गाँव का इतिहास लिखा हुआ है। हर द्वार-देहरी उसमें अंकित है। उसकी पोथी के ताज़ी स्याही के अक्षरों में वहाँ के हर आँगन की धूल के बोल उसमें फूट रहे थे। वह आते ही दर्शकों के बीच अपना घोड़ा ले जाता है। नीचे उतरता है। एक गबरू जवान के कन्धे पर हाथ रखता है। पहले तो उसकी जवानी की प्रशंसा कर उसे विह्वल करता है। फिर उसके हृदय में ईर्ष्या की चिनगारी भड़काता है। "यौवनसभर रूप का इस तरह क्या एक ढोलवादक आनन्द लूटेगा ?" युवक के हाथवाली लाठी की ओर चारण देखता रहता है। युवक की कलाई में प्रचण्ड जोम उमड़ता है। उसके पैर उछलते हैं और एक ही छलांग में वह ढोलवादक के पास पहुँच जाता है। लाठी के एक प्रहार से ही ढोलवादक का सिर फट जाता है। खून का फ़व्वारा फूट पड़ता है। ग्वालिनों के पैर थम गये हैं। उनके हाथ एक साथ ऊपर उठते हैं। अपने-अपने

सौभाग्य को सँभालती चूड़ियाँ उनके कपाल पर पछाड़ मारती हैं और ढोल के साथ-साथ एक सौ बीस ग्वालिनें लुढक जाती हैं।

काला क़हर टूट पड़ा। सभी अहीर गाँव छोड़कर चले गये। आज यहाँ पर एक सौ बीस स्मृति-स्तम्भ एक स्मारक हैं। इस स्थान को 'ढोली घर का ढोला' कहते हैं। वहाँ असमय कोई नही जाता।

मेरे मेजबान ने कहा कि वहाँ अँधेरी रात में जानेवाले को डर लगता है। युवा ढोलवादक भौं तानकर डंका बजाता है और एक सौ बीस ग्वालिनो की चूड़ियाँ खनकने लगती हैं। एक सौ बीस सुघड गौर देहयष्टियाँ झूम उठती हैं और अपना यौवनगान आरम्भ कर देती हैं। यह सुनते ही वहाँ जानेवाले के रोम-रोम से भय फूट पडता है।

रात को देर तक नींद नही आयी। लगभग बारह बजे इच्छा हुई कि 'ढोली घर का ढोला' में जाकर खड़ा होऊँ। देखूँ क्या होता है? प्रेत-सृष्टि से परिचय नही। देखने को मिले तो देख लूँ। खड़ा हो पाता तो अवश्य ही जाता। ऊँट पर बैठकर तथा पैदल चलकर दिन कट रहे थे। आदत न होने से थकान महसूस हो रही थी।

स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की ओर संवेगो के कारण आकर्षित होते हैं, समझ या बुद्धि से नही। ऐसे मामलो में समझ से तो केवल निषेध ही खड़े किये जा सकते हैं। बिना अनुभव किये कुछ भी प्रतीति नही की जा सकती। प्रतीति भी बाद की बात है। पहली जरूरत है—अनुभव की। मैं अनुभवहीन व्यक्ति हूँ। इसीलिए शायद अमृता स्वप्न में आकर मेरी अतृप्त कामनाओ को बार-बार झकझोर जाती है। केवल एक स्वप्न भी मेरे निर्धार की व्यर्थता सिद्ध कर जाता है।

धूप में भटकने से थोड़ा दर्द होना तो समझ सकता हूँ किन्तु पता नही पेशाब में यह परिवर्तन और असह्य दर्द कैसे होने लगा? निरुपाय होकर डॉक्टर से मिला तो पता चला कि मूत्राशय की त्वचा में से पित्त रिसता है और रोगी समझता कि पेशाब में खून बह रहा है। पहले तो उस असह्य वेदना को सहता रहा। फिर थोडी चिन्ता हुई। चिन्ता अर्थात् शरीर की सुरक्षा का मोह... निरपेक्ष होने की बात करना कितना आसान है। अनेक उदाहरणों के द्वारा यह बात समझायी जा सकती है। समझाना आसान है, समझना कठिन है। मैं अमृता को समझाता रहा हूँ। उसे समझाने में सफलता मिलने पर मन ही मन मुझे गौरव का अनुभव भी हुआ। पर बिना जिये जो कुछ समझा जाता है वह अधूरा ही होता है।

डॉक्टर ने खूब पानी पीने को कहा। कच्छ की भटकन के दरमियान पानी

कम पिया करता था। पीने की इच्छा न होती हो, यह बात न थी पर पानी अच्छा ही नहीं लगता था। अब तो पित्तप्रकोप मिट जायेगा। अभी तो बर पड़ा रहता हूँ। प्रवास में हुई आहार-विहार की अनियमितता अब ठीक हो जायेगी। व्यवस्थित होने की कोई जल्दी नहीं। प्रमाद भी एक अनुभव है।

मरु के बढ़ते चरणों को रोकने का कार्य प्रकृति ही कर सकती है। आदमी तो उसका आश्रित है। तो भी वह वृक्षों को काटता है। वह वर्तमान का ही विचार करता है। वर्तमान को भी उसके सीमित रूप में देख पाता है...उदयन अपने को वर्तमान के क्षणों का भोक्ता मानता है। कविता शायद ही कभी पढ़ता है। कहता है, बहुत कम कविताएँ ऐसी हैं जो उसे 'फ़ोर्स' का अनुभव करा पाती हैं। इलियट की 'वेस्ट लैण्ड' और 'हॉलो मैन' उसकी प्रिय कृतियाँ हैं। 'मरुभूमि' और 'खाली कलेवर'। 'फोर क्वार्ट्रिट्स' में से थोड़ा ही स्वीकारता है। कभी ऐसा नहीं करता पर एक बार उसने लेटरपैड छपवाया तो प्रणालिकानुसार एक सूत्र भी छपवाया। "आई सैड टू माई सॉल, वी स्टिल एण्ड वेट विदाउट होप।" परन्तु आशा के बिना प्रतीक्षा करने का मतलब क्या? कवि तो कुछ और ही सूचित करता है...जो है, उससे उसे सन्तोष नहीं। अर्थात् जो होना चाहिए वह नहीं है। और वह इतना नजदीक भी नहीं कि अल्पकालिक आशा रखने से प्राप्त हो सके। इसलिए फल की आशा रखे बिना ही वह राह देखने को कहता है। इलियट की वाणी में गीता का स्वर घुल गया है। कवि का जगत् कितना विशाल और कितना एक है! उसका समय कितना अपरिमेय होने पर भी कितना अखण्ड है! वह तो प्रारम्भ में ही कहता है—वर्तमान और विगत। दोनों शायद भवितव्य में उपस्थित हैं। भवितव्य व्यतीत में समाविष्ट है...समस्त समय अनन्तरूप है, तो सम्पूर्ण समय अ-निवार्य है। ऐसा है, जिसे बचाया नहीं जा सकता अर्थात् इस समय से बचा नहीं जा सकता। इसलिए राह ही देखनी रही। उदयन राह नहीं देखता। अमृता की कामना करता है। और नारी तो प्रतीक्षा करती ही है। वरण से पहले व्रत करती है....उदयन को पत्र लिखना चाहिए।

"प्रिय उदयन,

तुझे पत्र लिखने की इच्छा पहले भी हुई थी क्योंकि मुझे तुझसे कुछ कहना था किन्तु वह कुछ-कुछ सलाह-जैसा था, इसलिए नहीं कहूँगा। आज पत्र लिखना शुरू किया है तो तुझे अपने प्रवास के बारे में भी थोड़ा लिखना चाहूँगा।

तू जिसे शून्य कहता है, वह यहाँ है। रेत, लू, चक्रवात-अन्धड़...विभिन्न रूपों में वह यहाँ बिलसित है। परसों गर्द की ऐसी धुन्ध छा गयी थी कि पहि

सात फुट दूर खड़ा इनसान भी दिखाई न दे। पर उस दिन की रात बड़ी रमणीय थी। कालिदास ने ग्रीष्म के दिवसावसान को रमणीय कहा है—यह शायद तुझे याद न होगा, पर परसों शाम कालिदास के साथ तू मुझे अवश्य याद आया था। जैसलमेर में डाक-बँगले के लॉन में कुरसी डालकर बैठा हुआ मैं स्थल के विस्तार और काल की चिरन्तनता के विषय में विचार कर रहा था। देर रात में चाँद भी निकल आया था। चारों ओर का विपुल अवकाश शुभ्र बन गया था, इस पुरानी नगरी पर मानो चन्द्र अपनी आत्मीयता बरसा रहा था। चाँद की तरह निकटता का अनुभव करने के लिए मैं भी शीघ्र आकाश बनकर इस नगर पर छा सकता तो कितना अच्छा होता! किन्तु लगा कि विगलन सम्भव नहीं, अपनेपन से मुक्त होकर हर्ष-शोक से निरपेक्ष ऐसी किसी अनुभूति का सन्धान मुझे प्राप्त नहीं हो सका। सर्वव्याप्त चाँदनी में एक द्वीप की भाँति मैं आकाश को अनुभवता बैठा रहा। पर कुछ के केन्द्र का भार हलका नहीं हुआ, मैं उड़ नहीं पाया...मैं जानता हूँ कि मेरे ये उद्गार तुझे बकवास लगेंगे। शायद तू खीझे भी। तू इसके लिए सतर्क रहता है कि तुम्हारे केन्द्र का अन्त न आये। मैं इस समग्रता में केन्द्रविहीन व्याप्ति खोज रहा हूँ। तुझे आश्चर्य होगा कि मैं इन दिनों गति और स्थिति का भेद भूलने लगा हूँ। अविच्छिन्न धूप में या पेड़ की झुकी हुई डाली में, केन्द्रहीन पाषाणों में या पर्वतों की धूसर आकृतियों के पीछे निमित क्षितिज में दौड़ते घोड़े की सुम में या कछुए की स्थिर पीठ पर, गहरी खाई में लुप्त झरने की विरति में या मानव चेतना आकर आच्छादित करते बवण्डर में मैं एक तत्त्व ऐसा देखने लगता हूँ, जो सर्वत्र समान है। इन सबमें व्याप्त प्राणमयता पर मैं विचार कर रहा हूँ। सूर्य के साथ यहाँ मेरा सम्बन्ध प्रगाढ़ होता जा रहा है। यहाँ सूर्य है, चन्द्र है, इनसान है, क्या नहीं है? जिस अखिल सौन्दर्य की मैं कामना करता हूँ उसे सिद्ध करने से पूर्व मैं निजत्व का समग्र में विस्तार अनुभव करने के लिए व्याकुल हूँ। तुम्हारी शुभ-कामनाएँ मुझे फलित हुई हैं। तेरे साथ अन्य किसी को याद करूँ तो तुझे एतराज नहीं होगा। दीपावली की छुट्टियों में तू यहाँ आकर थोड़ा समय मेरे साथ बिता। जोधपुर से जैसलमेर का सफर तुझे खूब अच्छा लगेगा। एक सौ चालीस मील लम्बा यह रास्ता पार करते समय आस-पास की सृष्टि देखने में तुझे दिलचस्पी होगी। जोधपुर से पोकरन तक गाड़ी जाती है। यह स्थान अनुकूल नहीं है, यह तो तू जान लेगा। रेगिस्तान में तो आदमी की जिजीविषा मन्द नहीं हुई है शायद अधिक तीव्र है! क्या शरीर है यहाँ के लोगों का! हिन्दू है कि मुसलमान! (पहचाना नहीं जा सकता।) सभी कद्दावर, सुन्दर! ...

बस-भाषा का एक नमूना है। सुबह ग्यारह बजे

गड़बड़ाने लगा। ड्राइवर और कण्डक्टर कोशिश करके हार गये, कुछ बना नहीं। गरमी बढ़ती गयी। पानी का पता नहीं। हवा थी और हवा में उड़ती रेत भी। समूह में से तीन व्यक्ति उठे। कुछ दूर जाकर आँख से ओझल हो गये। लौटे तो साथ में एक हिरण मार लाये थे। थोड़े झाड़-झंखाड़ एकत्र कर आग सुलगायी और हिरन को भूनने लगे। मैं वहाँ से उठकर उत्तर की ओर स्थित एक पीलुड़ी की तरफ़ गया। उसकी शाखाएँ जमीन तक झुकी हुई थीं। मैं तने से लगकर बैठ गया। पास की पीलुड़ी की छाया में दो गायें आराम से बैठी जुगाली कर रही थीं। यहाँ कहीं-कहीं पर सूखी घास दिखाई देती है। यहाँ के प्राणियों के लिए इसके अलावा अन्य कोई संगीत नहीं। सामने से एक बस आयी। उसमें से कुछ औज़ार मिले और हमारी बस चालू हो सकी। रास्ते के दक्षिण तरफ़ हिरन की गीली हड्डियाँ पड़ी थीं। लोग बराबर चूस नहीं पाये थे। वहाँ गिद्ध नहीं थे। इसलिए छोड़ी हुई हड्डियाँ वैसी ही पड़ी रहीं। बस काफ़ी दूर तक जा चुकी थी। किन्तु मेरे मन से हिरन के दो रूप हटते नहीं थे। एक तो वहाँ हड्डियाँ बनकर पड़ा था, दूसरा था उसका दौड़ता हुआ रूप। उसके भग्न अवशेष एकत्र होकर पीछे दौड़ते आते थे। और बस के साथ उसकी गति का एहसास भी होता था। बस थोड़ी लेट थी। इसलिए उसकी गति ज़रा तेज़ थी। हिरन की गति में आर्तनाद के धक्के थे। मैं आँख बन्द करूँ तो मुझे हिरन का चेहरा दिखाई देता था। उसकी आँखें एकदम मानवीय थीं। ये आँखें इतनी भयातुर थीं कि देखनेवाला भी बेचैन हो जाये। मैं इस हिरन को भूलने का प्रयत्न कर रहा था। भूलूँ न भूलूँ तब तक तो पीछे छूट गये अस्थि-खण्डों में से वह खड़ा होकर हमारी बस के साथ दौड़ने लगता और आगे निकल जाता। बस में से उतरने के बाद ही उसे भूलना सम्भव हो पाया।

बम्बई के समाचार देना। मेरी ओर से अमृता को 'स्मरण' मत कहना। मैं ही उसे अलग से पत्र लिखूँगा। अब दो महीने के लिए पालनपुर रुकनेवाला हूँ। पता साथ में भेज रहा हूँ। मैं याद आऊँ तो लिखना।

—अनिकेत"

जीप खरीदी जाये तो? दीवाली तक आ जायेगी? देर हो तो भी क्या? तीन वर्ष यहाँ फिरना है, उपयोगी सिद्ध होगी। पिताजी को लिखूँ—भेज दें अथवा जो व्यवस्था करनी हो करें।

अच्छा हुआ कि हाईस्कूल के प्रधानाचार्यजी ने स्वीकृति दे दी। ऐसा हो सकना सम्भव नहीं है नहीं तो पहली कक्षा से अन्त तक यदि एक ही अध्यापक

अपना विषय पढ़ायें तो समय के साथ रहा जा सकता है। विज्ञान में तो जो
साबित हो चुका है, वही पढ़ाया जाता है। अब अकेलापन नहीं लगता।
स्कूल के विद्यार्थियों में जिज्ञासा-वृत्ति अधिक लगी। शायद इनमें अहोमा
मुग्धता भी हो।

अमृता को पत्र लिखूं? भौगोलिक सूचना में उसे मजा मिलेगा?
कर देखूं।

उदयन का तार है। आ रहा है। अमृता तो साथ नहीं होगी न?
हो तो अच्छा। उदयन को लेने स्टेशन जाऊँगा। समय तो उसने लिखा न
खैर! एकाध धक्के खाने पड़ेंगे। वह प्रतीक्षा नहीं करता, पर दूसरों से
करवाता है। अमृता साथ नहीं ही होगी। नहीं तो अवश्य ही समय
किया गया होता। अमृता साथ हो तो उदयन तार ही न करे, मूल
स्टेशन पर जल्दी पहुँच गया होगा। और अचानक सूझा होगा। इसलि
कर दिया होगा। उस दिन भी वह मुझे विदा करने अन्ततः स्टेशन पर
पहुँचा! मुझे विदा करने या अमृता को लेने? आ रहा है तो देखूं कि
उसका वर्तमान काल? उसके चेहरे पर से तो निकट भूतकाल भी
सकेगा!

अनिकेत को उदयन दिखाई दिया, उसने यह भी देखा कि अमृता न
आराम के अभाव में दिखाई देनेवाली थकान उदयन के चेहरे पर थी। इस
की छाया में चेहरे में हास्य घुला—यह देखकर अनिकेत को लगा कि उदय
की कोशिश में अन्तर्निहित विरति से मुक्त होने का प्रयास कर रहा है।
सोलह घण्टों के सफ़र के बाद उदयन का ऐसा दीख पड़ना समझ में आ
बात है, किन्तु अनिकेत भी उदयन को ऐसा ही दिखाई दिया। स्वागत कर
स्मित में एक आवेगहीन शान्ति थी।

"क्यों, साथ कुछ नहीं लाया?"

"अकेला ही हूं।" अनिकेत केवल सुनकर रह गया। उदयन आ

क्योंकि उसे लगा कि अनिकेत अभी और सुनना चाहता है।

"साथ में एक छोटी सूटकेस थी। सूरत से वड़ौदा के वीच मैंने अपनी सीट छोड़ी। तीन रुपये देकर ऊपर सोने की जगह की व्यवस्था की। भीड़ थी। नीचे तरह-तरह के लोग वैठे थे। मैंने एक-दो वार नीचे नजर दौड़ायी। एक किशोरी, उसका प्रौढ़ पिता तथा अन्य छोटे-वड़े लोग दिखाई दिये। मैं देखता रहा। मुझे विचार आया कि उस लड़की को जगह दे देनी चाहिए। मैं तो वैठा-वैठा भी सो सकूंगा। और मेरी ओर देखते रहने की भी किसी को जरूरत न होगी। मैंने उसे जगह दी। उसे तो मानो वरदान मिला। आस-पास वैठे हुए लोग आँखें वन्द कर ऊँघने लगे। वे सव मानो वताना चाहते थे कि वड़ी देर से सो रहे हों। मैंने भी थोड़ा-थोड़ा ऊँघना शुरू किया। तू उसे अर्द्धनिद्रा भी कह सकता है।"

"टिकट।"

सुनता-सुनता अनिकेत टिकट कलक्टर के पास आकर खड़ा हो गया। उदयन को लगा कि टिकट देने की क्या जरूरत है? वह हँसकर वोला—

"आपके हाथ में कितने सारे हैं, अव तो जगह भी नहीं है। एक न लें तो नहीं चले? कहीं पड़ा होगा? किन्तु आप हाथ वढ़ा रहे हैं तो ढूँढ़ देता हूँ।"

पैण्ट और वुश्शर्ट की सभी जेवों में से पर्स और कागज निकाले। सभी कागज़ मुड़-तुड़ गये थे। पर्स में से कोनमुड़ी दस-दस की नोटें झाँक रही थीं। सभी चीजों को जल्दी-जल्दी टटोलकर अधमुड़ा टिकट उसने ढूँढ़ निकाला और उसे ठीक करके देते हुए वह वोला :

"देखिए! आपने सवका कितना समय विगाड़ा।"

"आपको टिकट हाथ में नहीं रखना चाहिए?"

"अरे भाई! मित्र से मिला हूँ तव भी इस तरह की जिम्मेदारी की याद क्यों दिलाते हो? क्या मैं टिकट न खरीदनेवालों-जैसा दिखाई देता हूँ। चेहरा देखकर आपको आदमी का खयाल नहीं आता?"

"चेहरे से तो आप वड़ी लाइन के इंजन ड्राइवर-जैसे लगते हैं।"

"क्यों, आपकी ओर ड्राइवर सुन्दर होते हैं?"

"ठीक आप-जैसे।"

"अच्छा किया कि आपने टिकट कलक्टरों के साथ तुलना नहीं की।"

तीनों हँस पड़े। अनिकेत स्टेशन पर घूमने आता था। यहाँ के लोगों से थोड़ा-थोड़ा परिचय हो चुका था। इसलिए अनिकेत भी सहज भाव से हँस सका। उदयन के लिए सहज-असहज का भेद करने की आवश्यकता नहीं। उसने कहकहे के साथ पालनपुर में प्रवेश किया। उसने पैदल चलना पसन्द किया।

"अरे! वह क्या है?' स्टेशनरोड की अनेक दुकानों के आगे लटके विजौरे

"अर्थात् ?"
"सम्पूर्ण स्त्री ।"
"मतलब ?"
"तू जो नहीं समझता ।"
"अब समझा ।"
"क्या ?"
"ऐण्ड ह्वाट यू डू नॉट नो
इज़ दी औनली थिंग यू नो ।"
अनिकेत के मकान में प्रवेश करते-करते उदयन ने जवाब दिया :
"ऐण्ड ह्वेयर यू आर
इज़ ह्वेयर यू आर नॉट ।"
उदयन को मकान पसन्द आया । दो कमरे और एक रसोई घर । तीनों सीध में थे । आगे के कमरे और रसोईघर में खिड़कियाँ थीं पूर्व और ...चम दिशा की ओर । ऊपर पतरे थे पर बीच में सीलिंग था । झूला भी था । ...यन ने सोचा झूला न भी होता तो अनिकेत ले आता । वह झूले पर सो गया । ...छा धक्का लगने से झूला हचमचा उठा ।
"क्या चलता है, बम्बई में ?"
"पूरे बम्बई को क्यों याद करता है ? सीधा ही पूछ न ।"
"जो मैंने पूछा, वही मुझे अभिप्रेत था, फिर भी तेरा तात्पर्य समझकर ...के अनुरूप पूछता हूँ । बता, अमृता क्या करती है ?"
"तुझे याद करती है ।"
"वह क्या करती है ? यह पूछ रहा हूँ ।"
"तुझे याद करती है ।"
"प्रवृत्ति के बारे में पूछ रहा हूँ ।"
"तो क्या याद करना प्रवृत्ति नहीं है ?"
"सीधा उत्तर दे न भाई !"
"क्यूँ, कहा तो सही तुझे याद करती है ।"
"याद करती है...याद करती है...भले ही याद करे । और क्यों न याद ...रे ? तू भले ही मेरा मन दुखाने के लिए कहता हो कि याद करती है, किन्तु ...ं सच ही मानता हूँ कि वह मुझे याद करती है । इस आत्मस्वीकृति के बाद अब ...ूछता हूँ कि आजकल वह क्या करती रहती है ?"
"काम तलाश रही है । कॉलेज में प्राध्यापिका बनना चाहती थी । कहीं भी ...गह नहीं मिली । और जगह हो भी तो ऐसी सुन्दर महिला को कौन अध्यापिका

बनाये ? विद्यार्थी सुनना भूलकर देखते ही रहेंगे। अब उसे नौकरी मिली है। उसने घर छोड़ दिया है।"

"क्यों ?"

"तेरी तरह आदर्शवादी बनने के चक्कर में।"

"वाक़ई कई बार तो तेरी आदत अखर जाती है। चिन्ताजनक मामलों में भी तू व्यंग्य करता है।"

"मैं समझ सकता हूँ कि यह बात तेरे लिए चिन्ताजनक है। इस सम्बन्ध में बाद में विशद चर्चा करूँगा। पहले घण्टा-भर सो लेने दे। कुछ खाने को मँगवा रख। फिर बहुत कुछ चिन्ताजनक लाया हूँ साथ में। सुनाऊँगा तुझे।"

"अच्छा ! जा, उस पलंग पर सो जा।"

घण्टा-भर सोने के लिए तो झूला ज्यादा ठीक है, फिर बिलकुल ही सो जाऊँ तो खाना छूट जाये।"

और देखते ही देखते वह सो गया। क़रीब चार बजे वह उठा। उसने देखा कि अनिकेत रसोई-घर में है। बन्द होते स्टोव की आवाज़ के पीछे-पीछे वह रसोई-घर में पहुँचा।

"तूने खुद क्यों कष्ट किया ?"

"कष्ट कहाँ है ? यह तो काम हुआ।"

"खाना खुद ही बनाता है क्या ?"

"नहीं, नहीं ! दोपहर में पड़ोस की एक बुढ़िया माँजी के यहाँ खाता हूँ। माँजी बड़ी ममतालु है। पास बैठकर खिलाती हैं। हाँ, सुबह-शाम इच्छानुसार नाश्ता बना लेता हूँ।"

"इन सबमें समय का अपव्यय होता है, ऐसा तुझे नहीं लगता ?"

"अभी तक तो नहीं लगा।"

"तेरी रुचि का रहस्य मेरी समझ में नहीं आता।"

"ऐसी छोटी-छोटी बातों में रहस्य नहीं ढूँढे जाते।"

उदयन अनिकेत के सामने पड़ी टेबल पर बैठकर खाने लगा। उसे चिन्ता हुई कि अनिकेत हाथ-मुँह धोने के लिए कहेगा, तो फिर उठना पड़ेगा। किन्तु अनिकेत तो प्रसन्नचित्त सामने बैठा रहा। उदयन को इस सुखद विरोधाभासी क्षण में एक प्रसंग याद हो आया।

एक दिन सुबह वह जैसा उठा वैसा ही सिक्कानगर पहुँच गया। बाल बिखरे हुए या फिर उलझे हुए थे। अनिकेत ने तुरन्त कंघा और दर्पण लाकर थमा दिया था। और उसने चुपचाप बाल ठीक कर लिये थे।

एक ओर तो अनिकेत सब कुछ बदल डालने की बातें करता है, और दूसरी

और अपने व्यक्तिगत आचरण में नितान्त स्वच्छन्द रहने के विरुद्ध वह कई बार इंगित कर चुका है। स्वयं जो कुछ है, जिस रूप में है वह ठीक है, ऐसी मान्यता उदयन के मन में घर कर गयी है। इसलिए वह किसी को सुनता नहीं। अमृता और अनिकेत अक्सर ऐसा अनुभव करते थे। इन दोनों की मान्यताओं से उदयन परिचित है।

अपने 'ट्रंक' में से एक जोड़े कपड़े निकालकर नहाने की चौकी के ऊपर की खूँटी पर लटकाये। पानी और साबुन भी रखा। उदयन नाश्ता पूरा कर चुका था। नहाने के लिए जाते हुए बोला :

"तुझे खबर है कि मैं बेकार हूँ ?"

"हैं ! कब से ?"

"सत्र के प्रारम्भ से।"

"मुझे तुम्हारा किसी का पत्र नहीं मिला। मैंने अमृता को भी एक पत्र लिखा था, वह भी मौन साध गयी।"

"उसे किस पते पर पत्र लिखा था ?"

"घर के।"

"वैसे पत्र तो पहुँच ही गया होगा। बीच में वह दो-तीन दिन खुश दिखाई दी थी। अन्य कोई कारण नहीं हो सकता।"

"उसने घर क्यों छोड़ा ?"

"घरवालों ने उलाहना दिया था, इस तरह दो पुरुषों के साथ घूमना-फिरना...."

"ओह !"

"इसमें 'ओह'-जैसा क्या है ? अमृता अब अधिक सुखी है, क्योंकि स्वतन्त्र है।"

"स्वतन्त्र अर्थात् अकेली, ठीक है न ?"

"अकेली तो वह जहाँ थी वहाँ भी थी और अब जहाँ रहती होगी वहाँ भी होगी—मैन इज़ एलोन इन दी युनिवर्स !"

"दैट इज़ नॉट दी फ़ाइनल रियलिटि माई फ्रेण्ड !" आदमी विश्व में अकेला है, यह तो कुछ-एक अनुभवों से उद्‌भूत एक सम्भ्रम है, अन्तिम वास्तविकता नहीं। आदमी अकेला नहीं, वह समग्र के साथ जुड़ा हुआ है। अनेक पर उसका अवलम्बन अपरिहार्य है। अमृता स्वयं समझे उससे पहले तू उसे जैसा-तैसा मनवा-कर तो उसका अहित ही कर रहा है।"

"मुझे क्या-क्या करना है यह सब तू बम्बई छोड़ने के पहले तय करके नहीं आया, यह एक बड़ी भारी भूल हो गयी।"

"अपनी भूलों के प्रति मैं सजग हूँ...मैं वहाँ होता, तो वह घर नहीं छोड़ती.... घरवालों को शंका हुई तो उस शंका को मूल से दूर करने में भी अपने व्यक्तित्व का विकास है। सब कुछ छोड़कर चले जाने से अभिमान पुष्ट होता है...अभिमान का भार बढ़ने पर हम अविचारी कदम उठाने में कभी नही हिचकते। फिर गौरव पाने के लिए दम्भ का आश्रय लेते हैं। इस स्थिति में फँस जाने पर दुःख सह लेने का शौक पैदा करते हैं, और पता भी नही चलता कि इस तरह कब नास्तिक बन जाते हैं।"

"परिस्थिति का सामना करते-करते मैं क्या हो जाऊँगा इसकी परवाह मैंने कभी नही की। तेरी तरह हिसाब लगाकर चलने में मुझे कोई रुचि नही। क्योंकि इसमें जीवन नहीं है। किसी भी प्रकार का हिसाब लगाने के मूल में भय होता है और भयातुर व्यक्ति पलायनवादी बन जाता है, तेरी तरह। यहाँ पालनपुर में रहकर तू रेगिस्तान की प्रकृति और उसके लोकजीवन का अध्ययन कर रहा है? यह रेगिस्तान है? पालनपुर में रहा जा सकता है तो तू बम्बई में रहकर भी अपना काम कर सकता था। किन्तु मैं समझ गया हूँ कि अमृता को लेकर तेरे और मेरे बीच जो स्थिति पैदा हो रही थी उसका पूर्ण साक्षात्कार करके और ईमानदारी से अनुभव कर उसका हल ढूँढने की अपेक्षा तू एक तरफ खिसक गया। यह न तेरा औदार्य है, और न ही त्याग। पलायन है, मित्र! पलायन। अमृता के बिना एक जीवन तो क्या उदयन अगणित युग जी सकता है।"

अनिकेत के होठों ने उत्तर दबाये रखा। वह मानता है कि उसने जो किया वही हल है। उसने जवाब नही दिया। उदयन आगे बोला .

"मैं जानता हूँ कि अमृता को मेरी अमुक भाषा, मेरा अमुक व्यवहार पसन्द नही आता। उसे पसन्द आये वैसा बनने में मुझे देर लगे, ऐसा नही है, किन्तु मैं जो हूँ, वही रहूँगा। उसे अच्छा लगने के लिए मैं अपने में परिवर्तन लाऊँ, यह तो बाजारू समझौता हुआ, यह सम्भव नही।"

"अच्छा! नहा ले। नहाते समय भी तू ठण्डा नही रह सकता?"

"तूने बात काटी, यह भी तेरा पलायन है।"

दोनो हँस पडे। अनिकेत रसोईघर की दीवार अर्थात् पिछवाड़े की खिडकी के पार देखता रहा। बाल-मन्दिर से छूटकर बच्चे हँसते-कूदते घर जा रहे थे। उसे लगा कि अगर वह अभी नीचे रास्ते पर उनके साथ चलता होता तो किसी न किसी को उठाकर चूम लेता।

"देख अनिकेत! सुधार, आदर्श, उपदेश - इन सबके सहारे हम लोग आज तक जीते आये हैं। अब तो हमें अपने अस्तित्व को प्रमाणित करना है। इसमें बाहर से आरोपित कुछ भी उपयोगी होनेवाला नही। शिक्षक, बुजुर्ग—

विरासत या संस्कृति कुछ भी अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा। यदि हम अपने को समझ न पायें तो हम भी जड़वत् हैं। अपनी समस्या को जीकर संघर्ष करने की सामर्थ्य से ही उसका हल न निकाल पायें तो नियति की कृपा पर टिक नहीं सकते। आश्रय छोड़ने के बाद किसी अमृता को दो दिन तक सूना-सूना लगे और उसकी वेदना को कल्पना से अन्य किसी संवेदनशील को कविता लिखने की भावुकता हो आये—तो इतने मात्र से ही जो क़दम उठाया हो उसपर पुनर्विचार नहीं हो सकता। अमृता से मैंने कहा था—तू विचार कर। अगर भावावेश में आ जायेगी तो विचार करने से डरेगी। उसने सोच-विचारकर निर्णय लिया। अब तो पुरातत्त्व मन्दिर में उसे अच्छी-खासी नौकरी भी मिल गयी है और रहती है तेरे फ़्लैट में ही। वह तो मकान ढूँढ़ती थी। मैंने थोड़े दिनों तक ढूँढ़ने दिया, फिर तेरे मकान की चाबी सामने रखी। वह लेने का साहस नहीं जुटा पा रही थी। मैंने कहा किसी दिन अनिकेत आयेगा। उसने दूसरी ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू थे...तब मैंने कहा वह कभी नहीं आयेगा। मेरे शब्द सुनते ही उसकी आँखें रोष से लाल हो उठीं। पहली जुलाई का दिन था। वह घर से कुछ भी लाने को तैयार न थी। उसके नाम से जो रक़म थी, वह बैंक में थी, इसलिए छोड़कर या साथ लाने का प्रश्न ही नहीं खड़ा हुआ। कपड़े, पुस्तकें और अन्य थोड़ा-बहुत सामान वह साथ लायी। कार के साथ ड्राइवर को वापस भेज दिया। दूसरे दिन नीचे उतरी तो देखा कार पड़ी है। आज भी कार वैसे की वैसी पड़ी है। मैं समझता हूँ, उसने एक बार भी उसका उपयोग नहीं किया होगा। एक दिन सुबह मैं पहुँचा तब टेबल पर सिर रखे रो रही थी। लिखा हुआ पत्र आँसुओं से भीग रहा था। किसे लिखा है—आदतन यह मैंने देखा नहीं। दूर ही खड़ा रहा। देर तक खड़ा ही रहा। फिर चला आया। मेरी उपस्थिति उसके आँसू न रोक सके तो फिर मैं वहाँ कैसे खड़ा रह सकता था। मैं नीचे उतरकर सड़क के पास उस छोटे-से टावर तक पहुँचा होऊँगा कि खिड़की में से हाथ निकालकर ऊँची आवाज़ में नौकरानी मुझे बुला रही थी। उस नौकरानी को देखकर मुझे हर्ष हुआ। उसके जुहूवाले बँगले पर काम करने-वाली बाई थी। इसलिए मुझे लगा कि अमृता को यहाँ रास आ गया होगा। अबकी बार जब मैं पहुँचा तो वह झूले पर बैठी थी। उसने हँसकर अभिवादन किया। मैं भी झूले पर बैठ गया। बाई समाचार लायी थी कि अमृता के घर छोड़ने के बाद सभी लोग उदास हैं। बच्चे खेलना भूल गये हैं। बड़ी भाभी तो इतनी गम्भीर हो गयी हैं कि किसी के साथ बोलतीं तक नहीं। सबके कहने पर उन्होंने अमृता के कानों तक बात पहुँचाने का बीड़ा उठाया था। किन्तु बाद में उन्हें लगा कि क्यों उन्होंने यह काम अपने सिर लिया, खुद को अविश्वास

नहीं था फिर भी ? और मामा का पत्र था कि यह समाचार उन्हें मिला तब वे भोजन कर रहे थे। उन्होंने डाइनिंग टेबल पर मुक्का मारा। टेबल का काँच टूट गया। उन्होंने पत्र लिखकर सभी की मिट्टी पलीद कर दी। फिर एक दिन वे स्वयं आ पहुँचे। अमृता को समझाया। अन्त में अपने यहाँ चलने का आग्रह किया। अमृता नहीं मानी। फिर उन्होंने अमृता के विचार जाने। उसकी बात मामा के गले उतर गयी। इतना ही नहीं उन्होंने तो यह भी कहा कि हर आदमी में इस सीमा तक समझ आ जाये तो समाज आदर्श बन जाये। आशीर्वाद देकर हँसते-हँसते वहाँ से वे विदा हुए। अमृता प्रसन्नता-पूर्वक उन्हें विदा करने गयी और लौटने के बाद फिर रो पड़ी। मैंने पूछा कि आज तक कितनी बार रो चुकी है, तो उसने कहा—'सात बार'। कोई ज्यादा नहीं है, सच है न अनिकेत ?"

"तुममें पर-पीड़क वृत्ति है। अमृता रोती है यह तुझे हास्यास्पद लगता है ?"

"हाँ ! भले कोई भी रोये, रोना एक हास्यास्पद घटना ही है। मैं निर्बलता का तिरस्कार करता हूँ। किसी के आँसू पोंछने के लिए मैंने अभी तक कभी अपना हाथ नहीं बढ़ाया है।"

"तुझे एकाध बार रोने को मिले, तो तू जाने कि यह अनुभव कितना तीव्र होता है। कैसा अनन्य होता है ! मैं चाहता हूँ कि तेरी आँखों में आँसुओं की स्रोतस्विनी कभी तो प्रकट हो।"

"तेरी शुभेच्छा तुझे ही मुबारक ! मेरे शरीर में इसके लिए स्थान नहीं; और शायद कभी मैं रोऊँगा, तो तू देखेगा कि मेरी आँखों में से खून टपक रहा होगा।"

"बड़े रेगिस्तानों में फ्रिअर्स लुकिंग छिपकली की जाति का ही किन्तु सींग-वाला एक सन्तोषी प्राणी होता है। वह तीन इंच लम्बा होता है। डर जाता है, तब उसकी आँखों से खून टपकता है।"

"तेरे पास उसका चित्र है ?"

"हाँ, एक पुस्तक में उसका रंगीन चित्र है, तुझे दूँ ?"

अनिकेत ने पुस्तक खोलकर वह चित्र बताया। उदयन देखता रह गया। माथे पर छोटे-छोटे सींग, नाजुक फिर भी खुरदुरे, आँखें इतनी दयनीय मानो अभी रो देगा और उनमें खून टपकने लगेगा। उदयन ने पृष्ठ पलटकर उसे ममभावपूर्वक छिपा दिया। अन्य प्राणियों की तसवीर देखने लगा। अनिकेत समझ गया कि अब पूरी पुस्तक पलटे बिना वह छोड़ेगा नहीं। उसने दूसरी पुस्तक उठायी और पढ़ने लगा। वह पुस्तक एक ओर रखकर उदयन ने अनिकेत के हाथवाली पुस्तक खींच ली।

"मुझे तीन तारीख़ को दिल्ली पहुँचना है। इण्टरव्यू है। अग्नि एशिया और जापान के संवाददाता के रूप में लिया जाऊँ ऐसी आशा है। स्केल बहुत अच्छे हैं।"

"अभी तक क्या किया?"

"अनुवाद करता रहता था। भिलोड़ा जाकर ज़मीन-जायदाद का निपटारा कर आया। घर छोड़कर बाक़ी सब हटा दिया। श्मशान के पास होने के कारण यह घर मुझे प्रिय है। भिलोड़ा में छात्रालय के लिए एक मकान दे दिया। बम्बई पहुँचकर सबसे पहले बैंक में पैसा जमा किया। नौकरी न मिले तो भी एकाध वर्ष तो गुज़र जायेगा। हालाँकि नौकरी न मिलने का कोई कारण नहीं है।"

"वापस कब लौटेगा?"

"सात या आठ को वहाँ से निकलने का विचार है। वापसी में भी यहाँ उतरूँ ऐसा तू चाहता है?"

"तुझे याद आये और यहाँ उतरे तो अच्छा है। पास ही 'बालाराम' देखने लायक़ जगह है। यहाँ आने के बाद दो बार हो आया हूँ।"

"तो अमृता को लिख दे न! वह आठवीं तारीख़ तक यहाँ आ जाये। हम सब बालाराम जायेंगे। उसके लिए वहाँ कुछ पुरावशेष ढूँढ़ लेंगे। तू पत्र लिख दे...अपने घर के पते पर....अथवा रहने दे। तू धर्मसंकट में पड़ जायेगा। मैं ही लिख देता हूँ। मुझे ही उसे लिखना चाहिए। मैंने आग्रह किया होता तो वह साथ ही आती, किन्तु मैंने आग्रह नहीं किया। शायद उसे भ्रम होता कि मुझे उसे साथ ले जाने का मोह है। किन्तु अब मैं लिखूँगा। वह शायद मान बैठी होगी कि वह तुझे मिले—यह मैं नहीं चाहता। इसलिए आने का आग्रह नहीं किया। मैं उसे साथ लाता तो अच्छा होता, कहानी नहीं खोती अर्थात् सूटकेस गुम नहीं होता। फ़र्स्ट क्लास में यात्रा करने को मिलती। सहयात्री आदर से बात करते। मुझे लम्बा सफ़र फ़र्स्ट क्लास में करना ही उचित है। अरे! यह फिर मुझे क्या याद आया? सूटकेस में कैमरा भी था। दो कमज़ोर कृतियों के अनुवाद के पैसों से यह कैमरा खरीदा था। कैमरा खो गया। योग्य परिणाम आया। दूध का दूध पानी का पानी—कहावत ठीक निकली। तू क्या कहने जा रहा था? मैं शायद समझ गया हूँ। मुझे पहले से ही सोचना चाहिए... भविष्य में मानना चाहिए...ठीक है न? तू यही कहने जा रहा था न? मैंने ही कह दिया। अब तुझे बोलना नहीं पड़ेगा।"

"अमृता !"

प्लेटफ़ॉर्म पर पैर रखती अमृता को अनिकेत ने दूर से पुकारा। वह उमंग से बोल पड़ा था। गोगल्स शोभित चेहरा अनिकेत की ओर मुडा और गौर वर्ण, चम्पई गौर वर्ण पर अचानक लालिमा का साम्राज्य फैल गया। कुली ने सूटकेस उठा लिया था। अनिकेत ने पास जाकर अमृता के हाथवाली अटैची की ओर देखा और हाथ बढ़ाया। अमृता ने अपना खाली हाथ आगे बढाया और दो हाथों के निविड़ स्पर्श से दोनों के अंग-अंग में उल्लास की प्रतिध्वनि गूँज उठी।

"मैंने अटैची माँगी थी।"

"किन्तु मिला हाथ।"

"यह मुझसे नही सँभलेगा, मुझे अटैची दे दो।"

"उसे तो मैं भी सँभाल सकूँगी।"

"अच्छा, बस अब लाओ।"

"अमृता बहुत झक्की नही है।"

"कहो, सफर कैसा रहा ?"

"प्रतीक्षा का समय तो आनन्द में ही बीतता है। अहमदाबाद तक तो मैं विमान मे आयी थी।"

अनिकेत को लगा यदि अमृता एक नही अपितु दो होती तो कितना अच्छा होता ? किन्तु इस तरह की तरंग के पीछे उसकी लालसा रही है, अमृता को बाँट लेने की कामना रही है—ऐसा उसे तुरन्त समझ में आ गया।

"क्यों, काम-आम रास आया ? नौकरी का यह प्रथम अनुभव होने से सब कुछ नया-नया लगता होगा।"

"अब तो सब कुछ सध भी गया। सर्विस टाइम तो आसानी से कट जाता है। किन्तु ..."

"किन्तु...?"

"फिर घर मे अच्छा नही लगता।"

"ऐसा ?"

"हाँ, झीनी-झीनी झीमी पड रही हो, हवा की लहरियाँ फुहार बनकर सामने घुसती चली आती हो और ऐसे मे घर पहुँचूँ तो कैसा अनुभव होता है, बताऊँ ? खिड़की-दरवाजे बन्द होने के बाद लगता है कि इस मकान की दीवारो के उस पार मेरा एक रूप बरसता है और मैं घर के जड सामान के बीच सुरक्षा-भाव से बँधी जड़वत् पड़ी हूँ।"

"मुझे लगता है कि तुम भी देर-सवेर साहित्य में पदार्पण करोगी।"

"उससे पहले तो जीवन में पदार्पण हो।"

अनिकेत ने ताँगा तय करने की ओर ध्यान दिया। एक अच्छा ताँगा तय किया। ताँगेवाले ने सगर्व पट्टेवाली चावुक ऊपर उछाली और घोड़े के सिर पर शोभती कलंगी नाच उठी। ताँगे के पहियों और घोड़े की टापों का सम्मिलित संगीत शुरू हुआ। पूरा रास्ता उन्हें देखता था। कोई वेखवर होता तो सहयात्री उसे सजग करता। लोगों की साश्चर्य दृष्टि में आनन्द भी हिलोरें ले उठता।

ताँगा दूर पहुँचा तो एक मनचला बोल उठा—'हुस्नवानू'। अमृता गुस्सा होने लगी किन्तु अनिकेत से आँख मिलने पर वह वेहद शरमा गयी। दो-एक मिनट के वाद उसने फिर से ऊपर ताका तो अनिकेत की आँखें उससे मिल गयीं। लज्जा के गौरव से नमित चेहरे को वह देखता ही रह गया।

"तीसेक हज़ार की आवादीवाले इस शहर में वाग़ वहुत हैं। यहाँ से सुगन्धित फूलों का निर्यात होता है। यहाँ चम्पा और केवड़े का इत्र वनता है। तुमको यहाँ अच्छा लगेगा।"

"उदयन आये तव तक, ठीक है न?"

"वह आज शाम तक न आ पाये तो कल सुवह तक तो अवश्य आ जायेगा। इसके वाद हम लोग वालाराम जाने का कार्यक्रम वनायेंगे।"

"जैसा तुम कहो।"

ताँगेवाले को विदा करके अनिकेत ने ज़ीने का ताला खोला। लकड़ी के ज़ीने पर अमृता के पैर धीरे-धीरे पड़ रहे थे अतः मन्द ध्वनि हो रही थी। ज़ीने का ढाल कम था। अमृता के ऊपर पहुँचने के तुरन्त वाद वह भी सूटकेस लेकर ऊपर पहुँच गया।

स्नानादि के लिए सभी चीज़ें अनिकेत ने रख दीं। फिर विनम्रता से कहा कि यहाँ तो वाथरूम भी रसोई-घर का एक अंश है। माफ़ करना, तुम्हें थोड़ी असुविधा होगी। अमृता ने भौंहें तिरछी कर सस्मित सुन लिया, फिर कहा—'एक ओर इतनी सुन्दर चौकी है, फिर क्या! और तुम कोई इस मकान के इंजीनियर थोड़े ही हो कि तुम्हें दोष दिया जाये।' ऐसे थोड़े-वहुत मधुर वचन कहकर रसोई-घर का दरवाज़ा वन्द कर लिया। थोड़ी देर में स्नान करके वह वाहर आ गयी। खुली केशराशि, आनत कर्णाभूषण और श्वेत मुक्तामाल। इतना ही नहीं मध्ययुगीन ऐश्वर्य की याद दिलाती किमखाव की साड़ी पहन-कर उसने दरवाज़ा खोला तो प्रथम दृष्टि में तो अनिकेत को वासकसज्जा सुन्दरी का स्वप्न प्रतीत हुआ, फिर तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि यह तो अमृता है। और अमृता की ओर उसे अदव से देखना चाहिए।

दोनों ने साथ ही भोजन किया। वे एक-दूसरे को परोस रहे थे। मेज़वान, मेहमान का भेद नहीं रहा। जव अमृता ने जाना कि यह खाना अनिकेत ने

पकाया है, उस समय वह कन्धे को लाँघ कर गरदन के नीचे की गोराई को ढँकने के लिए आयी हुई चमकदार लट को देख रही थी। इस लट को अवान्तर स्थिति में छोड़, हाथ हिलाती वह आश्चर्य व्यक्त कर रही थी। आश्चर्य व्यक्त करने में कंगन की खनक ने भी साथ दिया था।

नाश्ता बनाने की आदत का विकास होते-होते किस तरह धीरे-धीरे भोजन पकाना आ गया—यह सब उसने सविस्तार बताया। वह जानता था कि भोजन पकाने के काम को स्त्रैण प्रवृत्ति कहकर व्यंग्य कर बैठे ऐसी सामान्य वृत्तिवाली अमृता नहीं है। इसलिए अमृता द्वारा की गयी प्रशंसा सुनकर उसे वाकई आनन्द हुआ।

"आराम करो।"

"आराम ही है।"

झूले के तकिये के सहारे टिककर अमृता ने पैर भी झूले पर रख लिये। अनिकेत पाँचेक फुट दूर या नजदीक पड़ी कुरसी पर बैठा। कभी छत, कभी द्वार तो कभी अमृता की ओर देख रहा था।

"यहाँ से उत्तर की ओर मलाणा गाँव है। वहाँ के तालाब में कमल होते हैं।" अमृता के चरण-युग्म को देखकर वह बोला।

"मैं तो सोचती थी कि मेरे बाल खुले हैं, इसलिए इस समय तो उन्हें तुम्हारे गुणानुरागी कवित्व का लाभ मिलेगा।"

"इस सम्बन्ध में मुझे कोई नयी उपमा नहीं सूझ रही। कोई पुरानी उपमा देकर प्रशंसा करने से इस विपुल केशराशि की कोमलता, चमक, अपूर्व दृष्टि ताजगी के साथ अन्याय हो जाये, ऐसी शंका है। फिर भी कृष्ण पक्ष के मदिर अन्धकार के साथ तुलना हो सकती है। मगर रहने दो, जो कवि हैं, उन जीवनानन्ददास के ही शब्दों में कहूँ—

'चुल तार कबेकार अन्धकार विदिशार निशा,
पाखिर निडेर मतोचोख तुले नाटोरेर वनलतासेन'।"

"अनुवाद कर दो।"

"तेरी केशराशि है प्राचीन विदिशा की निशा का अन्धकार, लोचन मानो पंछी के नीड़ सदृश, हे नाटोर की वनलतासेन!"

"कौन है यह वनलतासेन?"

"प्रकृति की नारी रूप में कल्पना।"

"जिस तरह अमृता तुम्हारे लिए कल्पना है।"

अनिकेत ने अमृता की ओर देखा। देखने-देखने में फ़र्क होता है, भले ही आँखें वही हों—यह अमृता ने पाया। अनिकेत की तत्पर आँखों में

गहन तृषा की चमक थी। एकाएक अमृता ने पलकें झुका लीं। उसके सिर पर मेघाच्छादित गगन खलबला उठा था। हृदय में एकाएक भूकम्प की तीव्र कसक छा गयी। इस वेदना के माधुर्य की सन्तुष्टि के लिए उसने आँखें और अधिक मूँद लीं। और अब अनिकेत की दृष्टि नव-पल्लव-जैसे सम्मोहक अधर सम्पुट पर स्थिर हुई। इन बन्द होठों में क़ैद अमृत-स्रोत को निर्बन्ध करने को लालायित उसके पौरुष की अभीप्सा रोकने पर भी नहीं रुक पा रही थी। इसीलिए वह बोला :

"अमृता!"

आँखें खुलीं तो और अधिक चमक उठीं। आँसू की प्रथम छलक के सिंचन से ही आँखों की चमक बढ़ी है, यह स्पष्ट हो गया।

"अमृता तुम आयी, यह कोई सामान्य घटना नहीं। परन्तु मैं नहीं चाहता था कि हम ऐसी परिस्थिति में आ पड़ें जिससे हमारी परीक्षा हो। मैं इनकार नहीं कर सका और उदयन ने पत्र लिख दिया। ऐसा लगता है कि वह मेरी पराजय देखना चाहता है। मेरी अथवा तुम्हारी पराजय....इसमें विशेष अन्तर नहीं....अपना संकल्प विचलित हो, उस दिन वह शायद सबसे अधिक मगरूर होगा। और फिर तो मैं तेरे—तुम्हारे सामने आँख उठाकर भी नहीं देख सकूँगा। अमृता, तुझसे वंचित मेरी जिन्दगी की कल्पना तू कर सकती है, किन्तु उसी जिन्दगी को मैं अपना भविष्य बनाना चाहता हूँ।"

अमृता बोली नहीं, आँखें मूँद लेने के सिवाय अन्य कोई उपाय न सूझा। परन्तु आँखें मूँद लेने के बाद कुछ भी दिखाई न दे—ऐसा नहीं। बल्कि उसे लगा कि यह तो छलकते वेदना-स्रोत के भँवर में तैरने के लिए हाथ-पैर मारने-जैसा है। इतना ही कि न बोलने की राहत मिलती है। और मौन शायद उबार भी ले। अलबत्ता चेहरे की रेखाओं में भी प्रकट न होने देकर भी मौन को नितान्त नीरव नहीं रखा जा सकता। इसके बावजूद अमृता ने प्रयत्न किया। अनिकेत भी उसे मदद करना चाहता हो, इस तरह उठा और बग़ल के कमरे में चला गया। जाते-जाते उसका हाथ अनायास झूले की छड़ से छू गया, झूला काँप उठा। अमृता की संगोपित सृष्टि अन्धे पक्षी की तरह फड़फड़ा उठी। झूले को स्थिर होने में समय लगा। फिर ख़ाली हुए कमरे में मुक्ति का अनुभव करने के लिए उसने आँखें खोलीं। खड़ी हुई, बालों को खींचकर गाँठ बाँध दी और पलंग पर जाकर सो गयी। थोड़ी ही देर में पलंग में नीरव शान्ति हो गयी।

अनिकेत लिखने बैठा।

"प्रिय अमृता....! 'प्रिय' किस लिए? अमृता सम्बोधन में ही उद्दिष्ट प्रकट

हो जाता है, एक और विशेषण की क्या आवश्यकता है? ऊपर लिखा काटकर नये सिरे से सम्बोधन करने गया तो यह लिख गया—

'देवी अमृता!'

तुमको 'देवी' कहने में मुझे क्या अभिप्रेत है, यह पहले स्पष्ट कर दूँ। इस आधार पर की देवत्व मनुष्य के विचार का द्योतक है, देवी कहकर मैं तुम्हें गुरुतर गौरव से सम्बोधन करना चाहता हूँ—ऐसा तुम्हें महसूस होगा। ऐसा लगे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि यह अर्थ मुझे पूरी तरह अनभिप्रेत हो ऐसा तो नहीं ही है, फिर भी जो कुछ मुझे कहना है, वह इस तरह है—

मेरे लिए मनुष्य यथार्थ है, देवी कल्पना। तुम्हें यथार्थ रूप में देखता हूँ, अनुभव करता हूँ, किन्तु स्वीकार नहीं सकता। अतः मुझे लगता है कि जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे लिए तो तुम कल्पना ही हो, अपार्थिव हो। तुम स्वयं पार्थिवता को समग्रभाव में प्राप्त करती हो, इसमें तुम्हारी कोई कमजोरी है या होगी—ऐसा कहने का साहस मैं नहीं करूँगा। किन्तु मेरे लिए तो तुम पार्थिव नहीं, मांसल नहीं, सौन्दर्य हो। तुम्हारे नारीत्व की शक्ति का मैं कुछ क्षण पूर्व द्रष्टा, साक्षी बल्कि अनुभवी रह सका हूँ। इस स्वीकृति के बाद अब जो है उसे भी नकारने के लिए उद्यत हूँ, साहस करने जा रहा हूँ। कल्पना और यथार्थ के बीच जिस तरह अन्तराल है वैसे, अनुभव तो नहीं पर विचार करता हूँ तब मुझे लगता है कि तुम्हारे और मेरे बीच एक अन्तराल है। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि अनुभव के क्षणों में इस अन्तराल की प्रतीति मुझे कभी नहीं हुई। प्रतीति होती है विचार करने पर। और तुम जानती हो कि विचार करना यह प्रतीति नहीं। अतः अन्तराल प्रतीत होता है, यह कहने की अपेक्षा मुझे यह स्वीकार्य है, इतना ही कहूँगा।

तुम्हारे साहचर्य में मैं विचार नहीं कर सकता, तर्कातीत अनुभव जगत् में सरक जाता हूँ। और इसीलिए अभी मैं तुम्हारी स्वर्गिक उपस्थिति का अनादर करके थोड़ा दूर खिसक आया हूँ।

शरीर आखिर तो अवास्तविक है। यह 'माया अथवा भ्रम है'—ऐसा कहनेवालों के साथ मैं सहमत नहीं। किन्तु उनके कहने का एक तात्पर्य यह भी हो सकता है कि शरीर को वास्तविकता मान लेने से वास्तविकता का अर्थ संकोच हो जाता है। इसीलिए 'वास्तविक' शब्द को त्यागकर अब 'यथार्थ' शब्द का प्रयोग करूँगा, तो जो सम्पूर्ण यथार्थ है, उसमें शरीर का स्थान सामयिक है और जो सामयिक है, तत्कालीन है, वह सम्पूर्ण यथार्थ नहीं। मैं 'अमृता' संज्ञा पर आश्रित एक वाक्य बोलता हूँ, तब 'अमृता' मेरे लिए मात्र एक शरीर नहीं एक जिन्दगी है। शायद 'अमृता' के लिए 'एक जिन्दगी'—यह भी पूरा

पर्याय नहीं।

'अभी मैं तुम्हारे निकट बैठा था'—कहने के बदले यों कहूँगा कि लावण्य-स्पन्दित एक परिवेश में बैठा था। तुम्हारे अस्तित्व में मैं अपने संस्कारों में संचित नारी के दर्शन करता हूँ। तुम्हारे होने में मैं नारी का दिशा-संकेत प्रदान करने के लिए कवियों द्वारा प्रस्तुत बिम्ब देखता हूँ। इसलिए तुम्हारे अस्तित्व को प्रमाणित करने का मेरे लिए अर्थ है ऐसे सौहार्द और औदार्य को प्रमाणित करना जिसकी छाया में उदयन को जीवन का पुनर्दान मिले। मैं देख रहा हूँ कि उदयन ज़िन्दगी से पलायन करने के प्रयत्न में है। हो सकता है, इस सम्बन्ध में मैं ग़लत होऊँ। मुझे तो जैसा लगा, वह कहा।

उदयन के भविष्य का दायित्व मैं तुम्हारे कन्धे पर क्यों डाल रहा हूँ, इस सम्बन्ध में स्पष्टता करने की धृष्टता भी कर लूँ। तुम्हारा और उदयन का भूतकाल एक दूसरे से अलग नहीं। मुझे लगता है कि इसमें कितना कुछ इस तरह संग्रथित हो गया है कि उसे सुलझाया नहीं जा सकता। क्षमायाचना करते हुए, यह भी कह दूँ कि अतीत में मेरी स्थिति भी जल-कमलवत् नहीं रही। जल में ही कमल खिलता है, फिर जल-कमलवत् कहने से क्या? हम अधूरा ही कहते हैं। तुम्हारे बिना मैं...अब कहना कहाँ बाक़ी है। फिर भी एक बार पुनः कहता हूँ कि तुम्हारी उपस्थिति की सापेक्षता में ही मैंने इस जीवन में बहुत कुछ पहली बार अनुभव किया है, जो नितान्त मधुमय है। और मुझे विश्वास है कि तुम्हारे दूर चले जाने पर भी यह मधुमयता क्षीण न होगी। यह कोई मगरूरी नहीं है, न ही निर्मम हृदय का प्रतिघोष। यह तो प्राप्ति की स्वीकृति है। अब तो मुझे तुम्हारे पास से कुछ भी न मिले तब भी तुमने जो दिया है वह पर्याप्त है। आगे यों भी कहूँ कि मेरा अमृत अ-मृत ही रहेगा तुम तिरस्कार करो तब भी, जो सम्भव नहीं।

मैंने क्या प्राप्त किया? कृपया ऐसा प्रश्न न पूछना। 'कल्पना' शब्द का जो अर्थ रूढ़ हो गया है, वह मुझे यहाँ स्वीकार्य नहीं। जिस तरह तुम कल्पना हो, उसी तरह मैंने जो प्राप्त किया है—वह भी कल्पना है। मेरे लिए जो कल्पना है वही अब यथार्थ बन जाये, इस सम्बन्ध में तुम्हारा मौन ही चाहे उत्तर दे, क्योंकि तुम्हें देखने पर लगता है कि इस सृष्टि में बहुत कुछ तर्कातीत है। कारणों का वश चलता तो मैंने अपने को बहुत पहले रोक लिया होता। मुझे लगता है अब भी देर नहीं हुई है।

प्रणाम अमृता! तुम चाहे जहाँ हो, यह कुछ कम नहीं कि तुम इस सृष्टि में होगी। इसीलिए मेरे लिए यह पूरी सृष्टि मधुमय होगी, सुन्दर होगी।"

पत्र पूरा होने पर अनिकेत ने एक मुक्ति का अनुभव किया, एक यात्रा पूरी

होने पर विश्रामस्थल दिखाई दे उसी तरह। उसे लगा कि इस विश्राम के बाद पथ मुड़ेगा। वह अमृता के पास गया। खिड़की से प्रवेश करता प्रकाश सूर्यास्त की सूचना दे रहा था। शाम के समय इस छोटे से शहर के लोगों की गतिविधियाँ कुछ तेज़ हो जाती हैं। नींद को अभी अकेली अमृता के पास ही विश्रान्ति मिली होगी। वह झूले पर बैठा। अमृता की ओर पीठ करके बैठना ठीक नहीं, यह सोचकर उसने दिशा बदली।

करवट सोई अमृता का चेहरा बायें हाथ का आलम्बन लेकर निश्चिन्त था। दायाँ हाथ पलंग की सीमा तक फैला था। उसकी अनामिका में एक छोटी अँगूठी थी। उसके रत्न में चमकती नीलिमा ने अनिकेत का ध्यान आकर्षित किया। अमृता इस तरह सोयी थी कि पलंग पर एक सौम्य और सुरुचिपूर्ण छवि उभर आयी थी। उसकी नींद में भी एक व्यवस्था थी, सौष्ठव था। धीमे-धीमे लिया जा रहा श्वास, कुछ गति से प्रकटता उच्छ्वास, श्वास-उच्छ्वास के बीच मृदुल यति—ये सब अपनी सृष्टि के पीछे विधाता द्वारा प्रदत्त सूक्ष्म अवधान के सूचक हैं, यह सोचता हुआ अनिकेत श्वासोच्छ्वास की द्रुत विलम्बित क्रीड़ा निरखता रहा।

अमृता का दाहिना हाथ उसके मुँह के पास गया। ब्लॉउज़ की किनार प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ कम्पन अनुभव करती रही, शायद इसीलिए हाथ वहाँ पहुँचा। कुछ ही देर में अमृता ने करवट बदली। इससे अब अनिकेत को अमृता आधी अनुपस्थित लगी। उसे पता ही न चला कि कब पैर प्रवृत्त हुए और झूला ठीक झूल उठा। किन्तु तुरन्त ही कमरे की हवा की स्थिरता भग हो गयी। शान्ति आन्दोलित हो उठी और अमृता ने पुन: करवट बदली। आँखें खुलीं, लेकिन जैसे आँखों का खुलना ही पर्याप्त न था, वह उठ बैठी। अनिकेत ने देखा कि अमृता के नाज़ुक इयररिंग काँप उठे हैं। फिर भी पारिजात के पुष्प की भाँति सुशोभित है। चेहरे की उदासी को आनन्द की लालिमा में बदलते देर लगी।

पानी लाने के लिए अनिकेत खड़ा हुआ। अमृता ने उसका अनुसरण किया। हाथ-मुँह धोकर बाहर आयी और झूले पर बैठी। गाँठ छोड़कर बालों को मुक्त किया। बाद में उन्हें दो भागों में विभाजित किया, तभी उसकी नज़र पत्र देने की प्रतीक्षा करते अनिकेत के हाथ की ओर गयी।

"क्या कोई रचना है?"

"नहीं, पत्र है।"

"अच्छा, मैं तो आशा किये बैठी थी कुछ सुनने को मिलेगा।"

"पत्र तुम्हें ही पढ़ना है, लो।"

उसने पत्र हाथ में लिया। तहाकर उसने उसे ब्लॉउज के ऊपरी हिस्से में रख लिया, किनारे बाहर रह गये।

"तुमको आश्चर्य हुआ। हम लोग सँभालने जैसी चीज़ यहीं रखते हैं। किसी को यह पद्धति शायद पुरानी लगे। तुमको नहीं लगेगी, यह मैं जानती हूँ। अभी मैं यह पत्र नहीं पढ़ूँगी। यहाँ से जाने के बाद पढ़ूँगी। अभी तो तुम सम्मुख ही हो न।"

एक वेणी गूँथ चुकी थी, बाक़ी रह गये बालों को तीन भागों में बाँटकर आनत चेहरे से वह गूँथने लगी।

"घूमने चलना है।"

"कहाँ ले जाओगे?"

"पब्लिक प्लेस।"

"तो नहीं जाना, जहाँ कोई तीसरा न हो वहाँ ले चलो।"

"किन्तु वहाँ पहुँचने के लिए रास्ता तो पार करना ही होगा न और आम रास्ते पर चलने में अधिक निश्चिन्तता रहती है। अपनी जिम्मेदारी कम हो जाती है। सुरक्षा का बोध रहता है। समाज के बीच हम अपने-आपसे भी सुरक्षित रह सकते हैं।"

"माफ़ करना। तुम्हारा यह 'सुरक्षा' शब्द मुझे पसन्द नहीं।"

"कोई पर्याय ढूँढ़ लूँगा।"

"पर्याय नहीं चलेगा, चाहती हूँ कि अर्थ ही बदल जाये।"

"इसके लिए मजबूर हूँ।"

"मजबूर रहने के लिए तुम स्वाधीन हो।"

"आभार।"

"चलो।"

चलते-चलते दोनों स्टेशन तक पहुँचे। क्रॉसिंग पार कर वे दक्षिण की ओर जिधर सूर्यास्त हो रहा था, घूमे। बादल छाये थे। जिससे सन्ध्या अपने पूर्ण रूप में निखर उठी थी। बादल गति-विरत मालूम पड़ते थे। बरस चुके बादलों की शान्ति पश्चिम दिशा में रँग गयी थी। धरती भी तृप्त लगती थी। धूल अभी सूखकर उड़ नहीं रही थी। शरद् ऋतु के आरम्भिक दिनों की यह शाम अमृता को लुभा रही थी। यहाँ के खुलेपन के सन्दर्भ में उसे बम्बई की याद आ गयी। मलबार और सिक्कानगर के चारों ओर की भवन-बहुलता उसे याद हो आयी। ऊँचे और थोड़े कम ऊँचे मकानों की छायाएँ भी तंगी का अनुभव करके एक दूसरे में कैसे गुँथ जाती हैं। जुहू किनारे की लम्बी पट्टी या चौपाटी का अर्द्ध गोलाकार टुकड़ा, बची हुई जगह और वहाँ टिके हुए खुलेपन का आभास

देते हैं। परन्तु ये स्थल इतने अधिक सार्वजनिक हैं कि वहाँ भरी दोपहर में भी कोई न कोई जोड़ा-जुजोड़ा इस तरह बैठा होता है कि इन स्थानों का समस्त खुलापन प्राइवेट बन जाता है। समुद्र नाहक ही नहीं घहराता।

यहाँ आम और नीम के पेड़ों से खेतों को व्यक्तित्व मिलता है। अनिकेत ने देखा कि अमृता के चेहरे पर अंकित होने के लिए प्रयास करते मान्ध्यरंग उनकी दीप्ति के कारण सामंजस्य व्यक्त कर रहे थे। उन्हें अदृश्य होते देर न लगी।

स्टेशन से तीन फ़र्लांग जितना पश्चिम में चलने के बाद वापस लौटने की इच्छा हुई। लौटते समय भी वे धीरे-धीरे चल रहे थे। सन्तोष की भाषा की गति मन्थर होती है, क्योंकि वह शब्द और मौन दोनों ही से व्यक्त होती है। अनिकेत और अमृता की गति सन्तुष्ट लग रही थी।

अभी अँधेरा नहीं हुआ था। दोनों के हृदय प्रदेश भी प्रकाशित थे। तभी अमृता को बाड़ तले की घास में से निकलकर सामने से जाता सँपोला दिखाई दिया। डर के मारे उसका पैर ठीक उसके पास पड़ गया। एक नादान-सी फुत्कार करता हुआ वह वापस बाड़ की ओर भाग गया। परन्तु उसे उछलता देखते ही अमृता चीख उठी, इतना ही नहीं भय-विह्वलता के कारण मूर्च्छित स्थिति में वह अनिकेत से लिपट गयी। अनिकेत का अल्हड़ और बेफ़िक्र पुरुष एकाएक मगरूर होकर प्रकट हो गया। और उसने आश्रय ढूँढ़ती आर्त अमृता को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में समा लिया। अमृता का हृदय इतनी तेज़ी से धड़क रहा था कि उसकी धड़कन स्पर्श द्वारा अनिकेत के रक्त में उतर गयी। किन्तु वह केवल अमृता के हृदय की धड़कन ही नहीं थी विकसित स्तन-युग्म का निविड़ स्पर्श भी था। अनिकेत के रुधिराभिसरण का संयमी विचलित हो उठा। अमृता के विह्वल और निःशेष आलिंगन से उस क्षण तो अनिकेत की समूची काया में किसी विशाल धनुष की खिंची हुई प्रत्यंचा झनझना उठी। यह तीव्र कम्पन अपूर्व था। उसे एक अपरिचित संवेग की शक्ति का अनुभव हुआ। धीरे-धीरे उसमें आनन्द घुलने लगा। अमृता के कटि प्रदेश से लिपटा उसका हाथ अब त्वचा का ऋजुल स्पर्श अनुभव करने लगा था। और उसके सुदीर्घ वक्ष पर टिका अमृता का दक्षिण कपोल इस तरह भिंचता जाता था मानो अभी भी निकटता में कमी हो। अमृता के सिर को अनिकेत का चिबुक स्पर्श कर चुका था... 'सृष्टि में इन दो हृदयों की धड़कनों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं'—ऐसी स्थिति पैदा होने से पूर्व अनिकेत अमृता को एक उद्धत आलिंगन में जकड़ने को प्रवृत्त होता है, उसी क्षण ब्लाउज़ में रखे पत्र की आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ सुननेवाले को अप्रिय लगी किन्तु आवाज़ विलीन हो जाये ऐसी स्थिति नहीं थी, अनिकेत के चित्त में गूँज उठी। आँखों को तुरन्त ही दिशा दिखाई दी।

दोनों हाथों से अमृता का मस्तक थोड़ा ऊँचा किया, उसे चूमकर अमृता को स्थिरता दी। दोनों ने चलना शुरू किया।

अमृता के पैर शिथिल पड़ गये थे। चलने का प्रयत्न करना पड़ता था।

अनिकेत चलता था पर बीच-बीच में उसकी गति की लय भंग हो जाती थी, उसका निर्णय बार-बार अनिर्णय बन जाता था। उसके मन में अभी अनिर्णय का ही प्रभुत्व था। अनिर्णय की यातना से वह एकदम अस्वस्थ हो गया था।

स्टेशन का प्रकाश अब पास ही था। वह एक ऐसी जगह से लौट रहा था, जहाँ न जाने का उसने निर्धार किया था। वहाँ पहुँचकर लौटना कितना दूभर है। इसका अनुभव करता हुआ वह चल रहा था।

निविड़ आश्लेष के बाद सजगता से प्रेरित बीच में खड़े किये अन्तराल को देख, अमृता दुःखी न हो इसका ध्यान रखकर वह कृत्रिम गति से चल रहा था। बुरा न लगे और निकटता प्रतीत हो, इसलिए उसने कुछ दूरी तक अमृता का हाथ अपने हाथ में पकड़े रखा।

धीरे-धीरे अमृता मुक्त हो रही थी।

"थक गयी होगी ?"

"हाँ, बहुत आगे निकल गये थे।"

अमृता की आवाज़ ने अब अपनी सहज स्थिति प्राप्त कर ली थी।

"मुझे अफ़सोस है अमृता! मैं मानता था, उससे मेरी निर्बलताएँ कहीं अधिक बड़ी साबित हुईं।"

"इस घटना का श्रेय तुम अकेले ही कैसे लेते हो ?"

"नहीं, अब तो लगता है, मुझे मेरा निर्णय नहीं, अमृता ही बचा सकती है।"

"मुझे इससे अलग कुछ नहीं कहना है।"

और वह हँस पड़ी। अनिकेत के चेहरे की गम्भीर रेखाएँ देखकर उसका हास्य बिखर गया।

अमृता को घर तक पहुँचाकर अनिकेत फल और नाश्ता लाने चल दिया।

पत्र हाथ में लिया। तह किये हुए पत्र पर एक सिलवट पड़ गयी थी। पढ़ने की इच्छा हो आयी। किन्तु एक बार खोलकर उसने पुनः पत्र तहाकर पर्स में रख दिया। पर्स को सूटकेस में रखकर ज्यों ही वह खड़ी हुई, उसे किसी अन्य की उपस्थिति का आभास हुआ। उसने अपनी ओर दबे पाँव बढ़ते साये को देख लिया। पीछे घूमकर देखे इतने में तो दो हाथों ने उसकी आँखों को दबा दिया।

अनिकेत होगा यह मानना केवल भ्रम ही हो सकता है। फिर भी उसने ऐसा मानने का प्रयत्न किया। किन्तु अन्त में वास्तविकता को स्वीकार करना ही पड़ा।

"बस भी! अब बहुत हो चुका।"

हाथ नहीं खुले। पर उसके नीचे दबी आँखें खुली पर अँधेरा ही दिखाई दिया। कमरे में लैम्प की रोशनी दिखाई न देने से वह अँधेरे में ही रही।

"अब छोड़ दे। तेरे श्वास से आती सिगरेट की कड़ुआहट मेरे चारों ओर फैल चुकी है।"

"गाड़ी चार घण्टे लेट हो गयी। इंजन बिगड़ गया था। मुझे लगा कि धक्के मारकर इंजन चालू कर दूँ। तुमसे मिलने की तीव्र इच्छा हो आयी थी, और हो क्यों न? मैं मानता था कि तू पालनपुर आ गयी होगी तो आषाढ़ की तप्त धरती की प्यास लिये तेरी आँखें मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

"जैसे तेरे विरह में जलकर खाक हो जानेवाली होऊँ। ऐसा होता तो— सब कुछ बहुत पहले हो चुका होता। चल अब मेरी आँखों को खुलने दे।"

"ओह! ऐसी बात है। किन्तु मुझे आश्चर्य नहीं होना चाहिए।"

उदयन ने अमृता की आँखों पर से हाथ हटा लिया। कमर पर हाथ रखे खड़ा-खड़ा वह अमृता को नख से शिख तक देखता रहा।

अमृता एक ओर खिसकने लगी, इतने में पता नहीं उसे क्या सूझा कि एक झटके में उसने अमृता को अपनी ओर घुमा दिया। उसके दोनों ढलते कन्धों को उसने पकड़ लिया। पकड़ इतनी कठोर थी कि अमृता को लगा जैसे यह किसी हिंस्र पशु के पंजे हैं। उदयन के क्रोध को वह समझ न सकी। देखती ही रह गयी।

उदयन ने अपने पंजे भींचे। मुट्ठियों में वह इस मांसल सौन्दर्य को मानो चूर-चूर कर देना चाहता था। उसने जोर से अमृता को झकझोर दिया। हचमचा दिया। अमृता के पैर लड़खड़ा गये। वह गिरते-गिरते बची।

"इतनी अधिक निर्बल है?" इतना कहकर उसने अमृता को छोड़ दिया। और उसके दाहिने गाल पर जोर से एक तमाचा जड़ दिया। अमृता गिर पड़ी। बायें हाथ की चूड़ियाँ फूट गयीं। काँच के दो टुकड़े हाथ में घुस गये। वहाँ लहू की बूँद छलक आयी।

"कितनी पाजी है तू अमृता! कैसी नादान। मैंने मजाक किया था, पत्र मिलते ही दौड़ी आयी। राह ताकती ही बैठी होगी, किससे मिलने दौड़ी आयी। नहीं जानता था कि तू इतनी अधिक कमजोर होगी? मैं सोचता था कि समय बीतते तुझमें वैचारिक परिपक्वता आ जायेगी। किन्तु तुझमें तो अभी भी उतनी

ही मुग्धता है।"

अमृता पड़ी-पड़ी सुन रही थी। वह विरोध नहीं कर रही है—यह देखकर उदयन ने एक हाथ से पकड़कर उसे खड़ा किया। क्रोध से काँपती आवाज़ में बोला :

"तुम-जैसी अनिश्चितताओं में जीनेवाली स्त्रियों को तो केवल एक ही अधिकार है, और वह है रोने का। आज ऐसा लगता है तेरी छाती चीरकर देखूँ, तेरे हृदय में किसका प्रतिविम्ब है ? या फिर तेरे अन्दर हृदय है भी या नहीं ?"

और वह आगे बढ़ा। दोनों हाथों से पकड़कर उसने अमृता का ब्लॉउज़ चीर डाला। ब्रेसियर के खिचने से उसके स्तनों में असह्य तीखा दर्द जाग उठा। पर उसके कण्ठ से वेदना का कोई उद्‌गार नहीं निकला, जैसे उसका गला सूख गया हो। इस अप्रत्याशित घटना के आघात ने मानो उसकी आवाज़ छीन ली थी। वह वैसी ही खड़ी रही। उदयन की ओर देखती रही। उसकी आँखों के कोने भी नहीं भीगे थे। वह रसोई में गयी। एक छुरी उठा लायी और उदयन के हाथ में थमाकर बोली :

"तू इतना आगे बढ़ ही चुका है तो इस छुरी से अपनी ताक़त और मेरी कमजोरी की तुलना करके देख ले। तुझे यदि विश्वास है कि तुझमें ताक़त है, तो उसका उपयोग कर। लेकिन तेरे हाथ काँप क्यों रहे हैं ? कहाँ गयी एक क्षण पूर्व की तेरी वहादुरी ? वास्तव में वह वहादुरी थी ही नहीं, कायरता थी। तू वहादुर होता तो मुझे ठोकर मारकर कभी का वाहर निकल गया होता। क्यों छूट गयी तेरे हाथ में से छुरी ? मेरी हत्या कर सकने जितनी ताक़त तुझमें नहीं। किन्तु हत्या तो कायर भी...अरे कायर ही कर सकते हैं। तू यह ज़रूर कर सकता है। तेरी योग्यता इस कोटि तक पहुँची हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा, किन्तु मैं जानती हूँ कि तू मेरी हत्या नहीं कर सकता। क्योंकि तू स्वार्थी है। तू मुझे जीती देखना चाहता है। मैं जीवित रहूँ इसमें तेरा स्वार्थ है। परन्तु अमृता के पास अपने को बचा लेने के लिए आत्मविलोपन का कवच है ही।"

भौचक्का-सा उदयन सुनता रहा। उसके नेत्र विस्फारित हो गये।

"मुझे रोती देखना चाहता है ? निष्ठुरता से आक्रान्त होकर स्त्री कभी रोती नहीं। दूसरों के दिये दुःख से वह नहीं रोती। रोने के लिए उसका अपना दुःख ही पर्याप्त होता है। किसी क्रूर आघात से वह नहीं चीखती। तुझे अभी उसकी सामर्थ्य का पता नहीं।"

उदयन कुछ कहना चाहता था किन्तु आवाज़ उसका साथ नहीं दे रही थी। अमृता को उत्तर दे या अपने भीतर चल रहे दुर्निवार संघर्ष को शान्त करे ? वह कुछ भी नहीं कर सका। वह देखता रहा या सुनता रहा। देखना-सुनना एक

साथ नहीं हो सका होगा। पीतल की प्रतिमा की सदा खुली रहनेवाली काँच की आँखों-सा उदयन ताक रहा था।

अमृता ने अपना फटा हुआ ब्लॉउज़ निकालकर हाथ पर निकला हुआ खून पोंछ डाला। फिर ब्लॉउज़ को ठीक तरह से तह कर सूटकेस में एक ओर रख दिया। और दूसरा पहना, उसी रंग का। दूसरा है, ऐसा किसी को खयाल ही न आये।

कुछ भी न हुआ हो, वह इस तरह रसोई में गयी। उदयन के लिए पानी लायी। उदयन की ओर छलकता पात्र बढ़ाया तब उसके चेहरे और आँखों में जो भाव था उसका अर्थ ऐसा हो सकता है, मानो उदयन अभी बाहर से आकर खड़ा हुआ है और अमृता उसका इस तरह स्वागत कर रही है।

पानी पीकर यानी कि गिलास मुँह में उँडेलकर हाथ से मुँह पोंछता हुआ उदयन धड़ाम से झूले पर बैठ गया।

"मैं क्या हूँ, यह तूने देखा न अमृता ?"

"क्यों, तू इसके बारे में अफ़सोस व्यक्त करना चाहता है ?"

"हाँ।"

"तो ऐसी स्पष्टता कर बचाव करने की आवश्यकता नहीं। तू अफ़सोस व्यक्त करे या क्षमा माँगे। इससे कुछ बनता नहीं। और तू मुझसे माफ़ी माँगे ऐसी अपेक्षा रखनेवाली मैं कौन ? किन्तु एक बात तूने देखी होगी—तूने वस्त्र चीर दिया तब, मेरे चेहरे पर कहीं लज्जा का भाव नहीं उभरा था। यह घटना तेरे पुरुषत्व की सबसे बड़ी पराजय है।"

"लज्जा की कोई आवश्यकता नहीं, इसके विपरीत मैं तो चाहता हूँ कि लज्जा दूर हो, क्योंकि लज्जा तो आवरण है, असलियत को छिपाती है। अतः यह एक प्रकार की वंचना है। मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति को अपने संवेग की वंचना रहित प्रतीति हो।"

"प्रतीति...संवेग की खुली प्रतीति ! क्यों ? पशु सहज। ठीक है न ?"

"हाँ, पशु मनुष्य-जैसा होशियार नहीं, इसलिए छिपाने की कला नहीं सीखा। किन्तु मनुष्य और पशु में बुद्धि के अतिरिक्त अन्य सब कुछ एक-जैसा है। अपनी वंचक बुद्धि से तरह-तरह की व्यवस्थाएँ खड़ी करके, पशु सहज कर्मों को छिपाने के लिए सुरक्षित अँधेरे की सुविधा पैदा की है। इस अन्धकार को मैं विदीर्ण कर डालना चाहता हूँ।"

"दूसरों की कीमत पर ?"

"हाँ, मेरे संवेग प्रबल होंगे तो तेरा भोग लेंगे ही। तुझे नियन्त्रण करेंगे। प्रेम में दूसरे की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ती ही है।"

ाज चर्चा करती अमृता को देखकर अनिकेत को लगा कि
सकी अपनी धारणा भ्रामक थी। अथवा उसने अमृता के
सोच लिया था, वही ठीक न था। पूर्व निश्चित धारणा से
वत नहीं। उसके व्यवहार से ही उसका सच्चा परिचय मिल
ार तो प्रासंगिक होता है। उसपर से क्या व्यक्तित्व के उन
मिल सकता है जिनमें सातत्य हो? ऐसा न हो सके तो
। धारणा भी भ्रामक है....अनुभव भी भ्रामक है...तो सत्य
भी धारणा है न? धारणा बिना मेरा निर्वाह नहीं।

, उग्र लापरवाही और कटु तर्कों से वह उदयन को जवाब
र अनिकेत बातचीत से विरत हो गया या फिर तटस्थ भाव
तटस्थता को भी वह झेल नहीं पाया, उसने साग्रह चर्चा

र उदास होता गया। उसके चेहरे पर अपराध की कालिमा

मन से जो माधुरी कमरे के वातावरण में व्याप्त होने लगी
स्तित्व को प्रतिकूल मालूम हुई। नाश्ता पूरा किये बिना ही
था। वह अपने को उन दोनों से बार-बार दूर होता देख

वह झूले पर बैठा। तब उसके मन में एक प्रश्न हुआ कि
पीड़ा पहुँचाने का उसे क्या अधिकार है? अमृता ने उस दिन
म्बन्ध में जो प्रश्न पूछा था, वह भी अभी अनुत्तरित ही है,
झा?

बढ़ गयी थी। इतने में एकाएक अमृता ने बन्द हुई चर्चा
:

ा न होने पर बहुत-से लोग आत्महत्या कर लेते हैं—बहुत-से

नहीं, तो कुछ तो अवश्य ही।"

इस समय उदयन ने ही चर्चा रोकनी चाही—"बस अमृता ! मेहरबानी कर। यह चर्चा अब रहने दे। आज मैं तुझसे हार गया हूँ।"

"पराजय की भी स्वीकृति का गौरव न ले तो फिर उदयन उदयन नहीं।" सौंफ-सुपारी सामने रखते हुए अनिकेत बोला। अमृता हँस पड़ी। यह देख उदयन ने कहकहा लगाया। ठीक उसी तरह जैसा कि वह महमूद बेगड़ा का अभिनय करते समय स्टेज पर लगाता था। उदयन के इस अट्टहास पर अनिकेत मुसकराया। उदयन तो अमृता को खिझाने के लिए हँसा था, किन्तु उसे तो विपरीत उत्तर मिला। अनिकेत की मुसकान से वह अधिक व्यग्र हो गया।

शान्ति। शान्ति अर्थात् आवाजों का अभाव। इसलिए वास्तव में तो अशान्त शान्ति।

"इण्टरव्यू का जवाब मिल गया या बाकी है ?"

"मिल गया।"

"क्या ?"

"नौकरी।"

"अभिनन्दन।"

"आभार।" उसने देखा कि अमृता कुछ भी नहीं बोली है।

"तेरा काम किस तरह का होगा ?"

"छह मास भारत में छह मास जापान, इण्डोनेशिया, सिलोन, बर्मा वगैरह में बिताना होगा। जहाँ आग बरस रही हो, वहाँ दौड़ना और उसपर लिखना। फोटो खींचना।"

"तूने जवाब दिया ?"

"मैंने कहा कि अक्टूबर में ज्वाइन कर सकूँगा। बीच में एकाध महीने बैठे रहने की इच्छा है। देखता हूँ, उस वक्त इच्छा रही तो ज्वाइन करूँगा।"

"अभी से निर्णय कर लेने में क्या दिक्कत है ?"

"लगता है मुझे देश-निकाला देने में तुझे बड़ा रस है।"

"तेरे लिए देश-विदेश कहाँ अलग-अलग है ? मैं तो केवल निर्णय लेने को कह रहा हूँ। हाँ या ना, जो करना है अभी से कर दे, ताकि उन लोगों को भी अनुकूल रहे।"

"उनकी अनुकूलता की चिन्ता भला तू क्यों करता है ? अमृता को अकेले छोड़कर, बम्बई से जाना अच्छा लगेगा या नहीं—यह प्रश्न है।"

"इसे साथ ले जाना।"

अमृता हिली, सिर उठाकर वह बोली :

"मैं इसके साथ नहीं जाऊँगी। मुझे कहीं खो आये, इसकी इसे खब
न रहे।"

"ऐसा कहीं होता होगा अमृता! तेरे लिए मैं समस्त पूर्व एशिया खो
तैयार हूँ।" उदयन ने इस तरह कहा कि अनिकेत को सच लगे। और
"चलो तास खेलें।" कहते हुए वह खड़ा हो गया।

"कहाँ हैं तास। मैं तो खेलता नहीं।"

"मैंने आज गाड़ी में खरीदे थे। तीन लड़कियाँ फटे हुए पत्तों से खेल
थीं, मुझे लगा कि यह ठीक नहीं। एक स्टेशन पर उतरकर दौड़कर नयी
खरीद लाया। उन्हें देने लगा पर लोग कैसे होते हैं? एक ने भी हाथ
लगाया। मुझे गुस्सा आ गया। मन हुआ कि कोई अच्छा स्टेशन आये तो
को प्लेटफ़ॉर्म पर धकेल दूँ, उतार दूँ और दरवाज़ा बन्द कर दूँ। फिर क
जगह नहीं है दूसरे डिब्बे में जाओ। या फिर जहाँ जाना हो जाओ मुझे व
इस तरह सोच रहा था कि ऊपर की बर्थ पर सोया एक प्रौढ़ मुझे दीखा।
सो रहा था फिर भी बीच-बीच में जागकर चुपचाप लड़कियों की गिनती
लेता था।

मेरे तास ऑफ़र करने के बाद वे पुराने पत्तों से भी नहीं खेल पायीं।
पान खाने की ऐसी आदत थी कि हर स्टेशर पर मँगवाया करती थीं।
दूसरी आदत भी थी—हँसते-हँसते होठ दबाकर एक दूसरे के घुटने को ट
मारना और कभी-कभी तो कमर के पीछे हाथ ले जाकर चिकोटी काटना
उनमें से एक ने मुझे पान दिया, मैंने खा लिया। वह कुछ शिक्षित लगती
वह मेरी पार्टनर बनी और हमने खेलना शुरू किया। आधे घण्टे तक मैं
साथ खेलता रहा और जीतता रहा, किन्तु बाद में उन लोगों के कुछ पारस्प
चोंचले देखकर जी ऊब गया। देखे बिना पत्ते फेंकता गया और जीतता ग
बाद में पता चला कि मेरे विरुद्ध खेलनेवाली अपना हाथ बनने पर भी उसे
ही ढेरी में रख देती थी। मैं उनकी इस स्वैच्छिक हार से खीझ उठा।
डिब्बे में जाकर बैठ गया। मुझे लगा स्त्रियाँ कैसी होती हैं? मुझे इतना ग़
रहा आया कि यहाँ आकर अमृता को स्त्री देखकर उसे एक तमाचा जड़ दिया

"सच है अमृता?"

"इसे आगे बोलने दो। बोल फिर क्या हुआ?"

"फिर अनिकेत आया। चलो जाने दो यह बात। मुझे तास खेलने से सन
नहीं मिला। तुम लोगों की इच्छा न हो तो भी खेलें, एक ओर तुम दोनों
दूसरी ओर मैं और डमी खेलें। हर वक़्त तुरुप मैं बोलूँगा। तुम दोनों मिल
मुझे हराकर देखो।"

"और हार गया तो ?" अमृता ने पूछा।

"मैं हार ही नहीं सकता। ताश खेलने में मैं कूटनीतिज्ञ हूँ। यही एक ऐसी चीज है, जिसमें सत्य-असत्य का भेद एक ओर रखकर मैं आगे बढ़ सकता हूँ। तुम्हारी भाषा में कहूँ तो इस क्षेत्र में अनीति से भी मैं विजेता बन सकता हूँ। वैसे तो तुम जानते ही हो कि जीवन में तो हम परम नीतिवान् ठहरे, आध्यात्मिक व्यक्ति....व्यक्ति नहीं विभूति..."

"शब्दों का उपहास क्यों करता है ?"

"तुझे शब्दों पर दया आयी ?"

"ना ! तुझपर।"

"मुझपर दया ! हे ममतामयी देवि ! तुम्हारा कृपाप्रसाद मुझे नहीं खपता। और इन शब्दों का उपहास मैं कर रहा हूँ, इसका अर्थ मुझे आपको समझाना पड़े, यह देखते हुए तो आप ही दयापात्र कहलायेंगी। इन और ऐसे अनेक शब्दों का मैं उपहास करता रहूँगा क्योंकि जिस समाज में मैं जीता हूँ, उसमें तो दम्भ पर छत्रछाया किये ये शब्द खड़े हैं। मैं इनका मूलोच्छेद कर देना चाहता हूँ।"

"मैं बीच में बोलूँ ?"

"अपनी चर्चा में इसे भाग लेने देंगे, अमृता ?"

"अमृता हँसना नहीं चाहती थी, पर उसका बस न चला।

"कहते हैं कि स्त्रियों का मौन स्वीकार-सूचक होता है, तो तू बोल सकता है, अनिकेत। तुझे हस्तक्षेप करने की छूट है।"

"धन्यवाद। तो सुन ! यह समाज और यह विश्व तुझे अच्छे नहीं लगते इसका कारण तू स्वयं है। पहले अपने-आपको पहचानने की जरूरत है क्योंकि तेरा यह बहिर्विश्व भी तेरे आन्तरिक विश्व का ही विभाव है। इसलिए वास्तविक विश्व तो तेरे भीतर बसता है। अपने से पृथक् किया हुआ—यह बाह्य, जिसे तू देखता है यह तो मात्र भ्रम है।"

"उदाहरणार्थ, अनिकेत और अमृता मेरे लिए भ्रम हैं। यही न ?"

"हाँ, हम तेरे लिए भ्रम ही रहेंगे, यदि तू अपने को नहीं पहचानेगा।" अमृता बोल पड़ी।

"मैं तो अपने को पहचानता हूँ। मैं उदयन हूँ। पुरुष हूँ। मुझमें मेरा अपना प्रचण्ड बल है। मैं किसी भी प्रवंचक को क्षमा नहीं करता। हाँ, मैं उदार भी हूँ और इसीलिए तो तुम्हारी दुनिया में जीता हूँ।"

"फिर ?"

"सुनना ही है ?"

"हाँ।"

"तो सुनो, कान खोलकर सुनो। मुझे अब तक दो आदमियों पर विश्वास था...अमृता और अनिकेत पर। पर वे भी औरों-जैसे निकले गहरे; चतुर... व्यभिचारी।"

अनिकेत की आँखों में रक्तिम ज्वाला भड़की। उसका खून खौल उठा। उसके दायें हाथ की नसें खिच चुकी थीं। किन्तु उसने कुरसी का हत्था पकड़ रखा था। हाथ छूटने नहीं दिया। एक ओर झुकने के कारण कुसी का हत्था टूट गया। उदयन ने यह देखा, अमृता ने भी। दोनों ने अलग-अलग अनुभव किया।

कुछ ऐसा है जो अनिकेत को जल्दबाज़ी करने से रोक सकता है। हाँ, ऐसा है ही जो इसे रोक सका। अनिकेत को प्रतीत हुआ कि हाँ, ऐसा कुछ है ही।

वह सीढ़ियाँ उतरकर नीचे पहुँचा। चक्कर काटने लगा। आगे बढ़ा। पानवाले की नज़र पड़ी।

"साऽऽव ! पान नहीं लेंगे ?"

"हाँ, तीन पान दे दो।"

पान लेकर अनिकेत वापस मुड़ा। वह जीना चढ़ रहा था तब कल्पना सृष्टि में एक अनिकेत वैतरणी पार कर रहा था।

उदयन तेज़ी से झूल रहा था। अनिकेत पान देने उसके पास गया। उसके पैर से टकराकर झूला रुक गया। अमृता खिड़की के पास खड़ी बाहर देख रही थी। अनिकेत के आने पर भी वह वैसी ही खड़ी रही, इसलिए अनिकेत उसके पास जाकर खड़ा हो गया, पान दिया और वापस लौट आया। वह उदयन से सटकर झूले पर बैठा। बोला :

"आज मैंने तुझे माफ़ कर दिया।"

"आभार।"

"ऐसी किसी भूल का पुनरावर्तन न हो।"

"जैसी आज्ञा।"

"अनिकेत ने सामने देखा। उसकी तनी हुई विशाल काली भौंहें देखकर उदयन की आँखें झुक गयीं।

"आदमी का व्यवहार दो दिशाओं में होता है—एक स्वयं की ओर दूसरा अन्य की ओर। जहाँ तक प्रथम दिशा में व्यवहार का प्रश्न है तू स्वतन्त्र है। दूसरी दिशा स्वीकार करते समय दूसरों की स्वतन्त्रता स्वीकारनी पड़ती है। मैं अपने लिए स्वतन्त्रता माँगता हूँ, उसके साथ-साथ समग्र विश्व के स्वातन्त्र्य के अधिकार को स्वीकार लेता हूँ। तू अभी मुझे और अमृता को जो उपाधि दे बैठा, उसका कारण है कि तू इस दूसरी दिशा से बेखबर है। मैं देख रहा हूँ कि विवेक के अभाव में तेरी प्रतिभा का क्षय होने लगा है। तू सावधान नहीं होगा तो....

तो...परिणाम के समय तेरा एकमात्र मित्र भी आँसू नहीं बहायेगा।"

"परिणामों की चिन्ता करने की मेरी आदत नहीं, मित्र !"

"क्योंकि अपने परिणामों का नियन्ता तू स्वयं को मानता है।" आते-आते अमृता ने कहा।

"मैं परिणाम में विश्वास नही करता, कर्म को मानता हूँ। सेल्फ़ मेड डेस्टिनी को मानता हूँ।"

"केवल मानने से ही तो काम नहीं चलता, प्रतीति भी होनी चाहिए अनुभव द्वारा।"

"मेरा अनुभव-जगत् तुझसे कहीं अधिक व्यापक है, मैंने दुनिया देखी है, जानी है। मैं अनुभूत बोलता हूँ। तेरी तरह उधार लिये मूल्यों का उच्चारण करने में अपनी जीभ नहीं घिसता। मुझे इस जगत् का अनुभव हो चुका है। मुझे इसका सारांश समझ में आ गया।"

"अभी से तूने सारांश भी समझ लिया? अपने लिए आशा छोड़ दी?"

"मतलब? तू मुझसे क्या पूछना चाहती है? मैं कोई संन्यास नही लेनेवाला हूँ।"

सुनकर अमृता और अनिकेत दोनों हँस पड़े।

"इतना ही नही मैं जीनेवाला भी हूँ। मेरी ओर प्रलय की लहरें भी धँसती आती होंगी तो भी उनसे डरकर एक ओर नही हटूँगा, उन्हें जीऊँगा। प्रलय की अन्तिम लहर के उछाल तक जीऊँगा। और जब तक तेरे इस सागर के खारेपन को पी सकूँगा, पीऊँगा। मैं ऊपर तैरूँगा, मुझे मोती की कामना नहीं इसलिए इस सागर में नीचे उतरने के लिए अपना स्थान नही छोड़ूँगा। हाँ, इसका खारापन पीता रहूँगा।"

अनिकेत खड़ा हुआ। आलमारी में से पुस्तक लेकर पढ़ने बैठा। अमृता उदयन को सम्बोधित करती बोली—

"तुझे हलाहल पी जानेवाले शंकर-जैसे विचार आते हैं।"

"किन्तु मैं शंकर की भाँति प्रतिष्ठित होकर कैलेण्डरों में अपने फ़ोटो छपाने को इच्छुक नही।"

"तू कहाँ शंकर से कम स्मार्ट है? तू तो मानो गोरा यमराज। वेजीटेबल घीवाले भी तेरा फ़ोटो छापकर कुछ कमाई न कर पायें।"

"मेरा कैमरा खो गया अमृता, अब तेरा काम में लेना होगा। बम्बई से आते समय पूरा सूटकेस ही कोई उठा ले गया, मेरा बोझ हलका कर गया। वह कहानी भी चली गयी। यह समाचार सुनकर तू दुखी नही हुई?"

"तेरा कैमरा अब तुझसे अच्छी दृष्टिवाले के हाथ में लगे तो खुशी की बात

है। और कहानी तो वैसे भी छपने योग्य नहीं थी।"

"क्या था कहानी में ?" अनिकेत ने पूछा।

"अरे, कुछ खास नहीं। केवल भाषा। पूरी कहानी का सारांश इतना कि एक पुरुष और एक स्त्री चलते-चलते साँप बन जाते हैं और तालाब किनारे कीचड़ में अदृश्य हो जाते हैं।"

"अच्छा ! साँप अर्थात् काम। तालाब अर्थात् समाज, कीचड़ अर्थात् वास विकता। क्यों यही न उदयन ?...और कमल अर्थात् अमृता। किन्तु....कि तेरी कहानी में तो कमल उगता ही नहीं।"

"तेरी की हुई व्याख्या सुनकर तो कहानी लिखना ही छोड़ देने की इच होती है, किन्तु नहीं, मैं लिखूँगा ही। उस कहानी को नया रूप दूँगा। जि एक साँप और सर्पिणी मनुष्य का रूप धारण करेंगे। शहर तक आ पहुँचेंगे, व सड़क पर वे एक 'नोलवेल' की खोज करते हुए नेवला पकड़ेंगे और दोनों दो त से उसे निगलने लगेंगे। उसके बाद..."

"तू तो कहानी को अन्त से भी आगे ले गया।"

अनिकेत की आलोचना उदयन ने नहीं सुनी। अमृता बोली—

"नेवला तो साँप और सर्पिणी दोनों को ही परास्त कर सकता है, कहानी का अन्त प्रतीतिजनक नहीं है।"

"बोल दिया—'प्रतीतिजनक नहीं !' अरी मुग्धे ! यही तो मेरी कहानी चमत्कृति है। जरा विचार तो करना था—कोलतार की सड़क पर नेव 'नोलवेल' कहाँ से पायेगा ? अब तो साँप की ही विजय है, समझी ? किसी ने कहा है न—'समय-समय बलवान् है'..."

"चलो, इस चर्चा का समापन करें। इस हास-परिहास का अन्त भी न अर्थ भी नहीं, क्योंकि इसमें प्रतिपक्षी को न समझने का ही एकमात्र लक्ष्य है है। बोलो, बालाराम जाने के लिए कितने बजे निकलने का विचार है ? शाम तक रुकेंगे, ठीक ?"

"कल की बात कल, अभी क्या चिन्ता है ?"

"मेरी इच्छा नहीं है, तुम दोनों हो आओ। मैं यहीं रुकूँगी।"

"यह नहीं चलेगा, नहीं तो मैं तेरा हरण करूँगा। इसपर बुरा नहीं मान नहीं तो बम्बई में अकेली पड़ जायेगी।"

"बम्बई जाऊँ ही नहीं तो ?"

"तो तू क्या समझती है कि बम्बई यहाँ आयेगी ? कैसी मूर्ख है ? मैं खुश करने की चाबी जानता हूँ। अनिकेत तू एक गीत गा। तेरे अतिथि वि के रूप में मैं माँग करता हूँ कि एक गीत गा। 'अतिथिदेवो भव' यह सूत्र

तुझे याद होगा ही। इसलिए तू मना नहीं कर सकता।"

"तू सुनेगा या समझेगा?"

"सुनकर नींद आ जावे, इतना अधिक मधुर नहीं होना चाहिए। इस शर्त का तू निर्वाह करेगा तो मैं सुनूँगा भी और समझूँगा भी, किन्तु हाँ, केवल आज के दिन ही, फिर नहीं। तू जानता है कि गीत मुझे पसन्द नहीं आते।"

"तो सुन, सुनो—

दे दो मुझको अधिक वेदना,

यही हमारी 'प्रीति'...।"

उदयन सुन रहा था, अमृता समझ रही थी। यह बात न थी कि उदयन समझ नहीं पाता था, किन्तु उसको इसमें समझने-जैसा कुछ लगा ही नहीं।

तीसरे पहर की रात बीत रही थी। गीत पूरा हुआ तब तक उदयन अनुशासित बैठा रहा, फिर जल्दी-जल्दी जम्हाई लेने लगा। गीत सुनते समय वह सदा एक उदासीन श्रोता बन जाता है। वह मानता है कि वर्तमान सन्दर्भ गीत के अनुकूल नहीं है. इसलिए गीत नहीं लिखे जाने चाहिए। जो गीत लिखते हैं, वे लोग भावुक हैं। उन्हें स्वर्णयुग के प्रतिनिधि के रूप में ही जीने का अधिकार है। वर्तमान की वास्तविकता से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं। गीत में अगर कुछ सुनने योग्य होता है तो मात्र उसकी लय....जिससे भूतकाल की—जिसका विनाश हो चुका है की—याद आवे और वर्तमान से पर्याप्त निराश हुआ जा सके। एक बार पूरी तरह से हताश हुए बिना कुछ भी कर सकना अपने लिए सम्भव नहीं। आज हम लोग संशयात्माएँ हैं किन्तु अर्जुन-जैसे नहीं। उसके पास तो पथ-प्रदर्शक थे, गीताकार थे। हमें अपने संशयों का हल स्वयं ढूँढ लेना है। गीताकार के लम्बे वक्तव्य सुनाने की हमारे पास समय भी नहीं। और फिर यहाँ सामने खड़े हुए लोगों का संहार करने की भी आवश्यकता नहीं; जरूरत है अपने में कुण्डली मारकर बैठे मुग्धता और व्यामोह के तत्त्वों को दूर करने की। आवश्यकता है आरोपित श्रद्धाओं और संस्कारों का कवच उतार डालने की। वे कवच जो अपने शरीर के साथ एकरूप हो गये हों, उन्हें उधेड़ डालना है। इन्हें उधेड़ते समय जरा भी वेदना न होगी ऐसा अडिग निर्धारण कर अपने-आपको निर्भ्रान्त किये बिना नहीं चलेगा। जो सामने है—उस समग्र का बोध प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करना है। विनम्र छोड़कर विरोधी अब हमारे प्रकोष्ठ में प्रवेश कर चुके हैं। अभिमन्यु-जैसे अनेक पुरुषार्थ सातवें प्रकोष्ठ में जाकर टूट भी जावें तो भी इससे निराश नहीं होना है। संशय का हल सचाई से नहीं ढूँढेंगे तो विनाश होनेवाला है अर्थात् अब तो सच्ची संशयात्माएँ जियेंगी। जिनमें संशय हैं, वे ही मूलतः मनस्दा को समझ सकेंगे। जबतक उनकी जिज्ञासा तुष्ट न होगी, तब-

तक वे संघर्ष करते रहेंगे। जो संशयात्मा नहीं, अबोध श्रद्धालु है, वह तो व्यामोह में फँसकर गुरु के पास नतमस्तक खड़ा रहेगा। हम गुरु के पास नहीं जानेवाले। हमसे बड़ा अर्थात् गुरु अब कोई बचा नहीं। हम अकेले हैं और अकेले रहने के लिए सजित हैं....हमारे रक्त में एकरूप हो चुकी परम्परागत अशुद्धियाँ किसी परम्परा या संस्कृति की प्रेरणा से दूर नहीं होनेवाली। अनेक अनुभवों के बावजूद हिरोशिमा और नागासाकी का खेल क्यों खेलते रहते हैं? क्योंकि हिरोशिमा और नागासाकी वर्तमान की सिद्धियों के प्रतीक हैं, और ये प्रतीक ऐसे हैं जो स्वयं घटना भी हैं। वर्तमान का समग्र उत्तरदायित्व हमारे सिर है। जो इस दायित्व को नहीं समझता वही गीत रच सकता है। वही सीमित क्षेत्र में रम सकता है। पूरे गीत में मात्र एक ध्रुव पंक्ति ही अलापी जाती है। इस आलाप के लिए अब हमारे पास समय नहीं। हमें प्रत्येक शब्द में आगे बढ़ना है। आवर्त को सुनने में कुछ बचनेवाला नहीं....गीत खुद भी नहीं। क्योंकि वह एक उद्गार है, मुग्ध उद्गार। हमें तो विधान करना है....।

ये उद्गार उदयन पहले भी व्यक्त कर चुका है। अनिकेत और अमृता इन उद्गारों से परिचित हैं, इसलिए आज मन में फिर से जग उठे इन विचारों को उसने व्यक्त नहीं किया। और ऐसा न करने के लिए वह मजबूर था। पूरा गीत सहन कर लेने की तैयारी उसने पहले से ही कर रखी थी।

...वेदना माँगता है! वेदना माँग रहा है या अमृता! माँगने से कुछ भी नहीं मिलता। उसके लिए तो संघर्ष करना पड़ता है। धूल, हवा और झंखाड़ों के छोटे-छोटे तूफ़ान को रोकने के लिए—रेगिस्तान को रोकने के लिए निकले हैं। इसका मरु मात्र भौगोलिक है। भीड़ की विकराल परछाइयों-सा रेगिस्तान मनुष्य के हृदय में आकार ले रहा है। उसे रोकने में कोई रस नहीं। एक अमृता को तो पूर्णतः छोड़ नहीं सकता फिर वेदना को क्या समझेगा? क्या प्राप्त करेगा!... उदयन खड़ा हो गया और पलंग पर जा बैठा। फिर सो गया। अभी तक सुरक्षित रख छोड़े अपने मौन के साथ अमृता बग़ल के कमरे में चली गयी। अनिकेत पढ़ रहा है।

चार

जीप में से सामान उतारकर मन्दिर के पासवाली धर्मशाला में रखा। जीप

पाँच बजे लेने आयेगी। यहाँ नौ घण्टे ही रुकना है ? बालाराम के नैसर्गिक सौन्दर्य ने प्रथम दृष्टि में ही जकड़ लिया। इसलिए अमृता को यह अच्छा नहीं लगा कि यहाँ से रवाना होने का समय पहले से ही निश्चित हो जाये। उसका अनुभव है कि जिस जगह कम रुकना होता है, उस जगह के साथ जल्दी ममता हो जाती है, फिर चाहे वह पालनपुर हो या बालाराम। तीनों धर्मशाला से नदी के ढाल की ओर मुड़े। अमृता सबसे आगे थी। बायीं ओर की घुटने तक ऊँची हरी-भरी घास अपनी पत्तियों पर झेली हुई रम्य ओस-बिन्दुओं से अमृता को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। उर्दू कवि इन जलकणों को शबनम कहते हैं। और दूसरे भी इसी नाम से जानें ऐसा वे चाहते हैं। अमृता को शबनम की चमक से प्रीति है, उसकी क्षणिकता के प्रति मोह है, उसके आकार के साथ आत्मीयता है। शिशु के अश्रु-सा शबनम का आकार उसे सदा निर्दोष और निर्मल लगा है। उसने घास का नाम पूछा, अनिकेत ने कहा कि इसे 'चीड़ा' या 'चीया' कहते हैं। पानी हो तो यह कहीं भी उग सकता है। अमृता रास्ता छोड़कर घास के बीच में जा खड़ी थी। अत: उसने घास के साथ अन्तर अनुभव किया। वह बैठ गयी। सफेद रेशमी सलवार का स्पर्श होते ही ओस-कण वस्त्र के तार-तार में एकरूप हो गये थे। अनिकेत ने कैमरा खोला। कैमरे की लैन्स में दिखाई देती अमृता को उसके परिवेश के साथ देखता रह गया। घास की पत्तियों पर से उठाकर वह शबनम को अपनी हथेली में रखने लगी थी। एक, दो, तीन....प्रत्येक का व्यक्तित्व सुरक्षित रहे, इसका पूरा ध्यान रखती थी। एक शबनम का अमृता के हाथ से फिसलना और एकाएक उसका 'ओह !' बोल पड़ना, अनिकेत ने कैमरे के लैन्स में देखा। उदयन का आधा शरीर भी दिखाई दिया। वह अमृता के निकट जा रहा था। एक फ़ोटो खींच लिया गया। उदयन नीचे झुका। उसने धीरे से अमृता की हथेली के नीचे अपनी हथेली रखी और घास पर घुटने टिका सभी ओसकण पी गया। अनिकेत ने क्लिक किया और गतिशील फ़ोटो ले लिया।

उदयन खड़ा हुआ। अमृता फिर से ओसकण बीनने लगी थी। उसे हाथ से पकड़कर खड़ा किया। फिर सहजता से उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला—"यस सर, रेडी।"

अनिकेत ने तीसरा फोटो लिया।

कौन-कौन-सा पोज़ खींचा है, यह जानकर उदयन बाग-बाग हो गया। वह एकाएक गरज उठा—

"डाकुमेण्टरी प्रूफ़।"

"किसका ?"

"प्यार का।"

"धत् मक्कार !"

अमृता ने ऐसा धक्का दिया कि अपने को गिरने से बचाने के लिए उदयन को ढाल की ओर कूदना पड़ा। सामने से स्नान कर लौट रहे एक भले आदमी से जा टकराया। सब हँस पड़े।

अनिकेत ने देखा कि अमृता के उदयन को दिये गये इस धक्के में घृणा नहीं ही थी। उसने अमृता के चेहरे की ओर देखा। हँसी के निशान अब भी शेष थे। पंजाबी वेश में उसका लावण्य खिल उठा था। उसका अंग-सौष्ठव व्यक्त हो रहा है। इस वेश-भूषा में भी उसने अमृता की अभिरुचि का स्पर्श देखा। श्वेत रंग, काट में नवीनता। इस परिधान में वह कुछ छोटी दिखाई देती थी। नारी मानो कन्या बन गयी थी। सिलाई करनेवाले ने अवकाश नहीं छोड़ा था। वस्त्र मानो वक्ष को रौंद रहा था। और इसके जवाब में वस्त्र के नीचे के प्रफुल्ल वसन्त का वैभव अपना अस्तित्व अधिक तीव्रता से प्रकट कर रहा था। बालाराम की सघन वनराजि की पार्श्वभूमि में विचरण करती श्वेत वस्त्रावृता क़दम-क़दम पर ऐसा अभिनव स्पन्दन जगा रही थी। स्पन्दन जो एक के हृदय में स्वप्निल माधुरी के रूप में और दूसरे के हृदय में तीव्र तीखेपन के रूप में जाग रहा था। एक ही निमित्त के दो परिणाम—एक ही आलम्बनवाले स्पन्दन के द्विविध रूपान्तर से अमृता एकदम अनभिज्ञ हो ऐसा नहीं हो सकता, पर आज वह अपने पर नियन्त्रण नहीं रख पा रही थी।

तीनों नदी के किनारे आकर खड़े हो गये। नदी के बँधे किनारे को देखते रहे। नदी को देखते रहे। नदी यानी गतिशील जल को देखते रहे। जहाँ ये लोग खड़े थे, वहाँ से थोड़ी दूर पूर्व की ओर नदी के बीच बाँध बनाया गया था। बाँध क्या था मानो एक विशाल दीवार! उसके बीच के भाग में रोके गये पानी को आगे जाने देने के लिए रास्ता बना दिया गया था। वहाँ छोटा प्रपात-जैसा बन रहा था। सम्पूर्ण नदी की अवरुद्ध गति वहाँ दौड़ आती थी। अभी इस नदी का यौवनकाल बह रहा है। पूर्व से होकर आता उसका प्रवाह यहाँ खड़े-खड़े भी दूर तक दिखाई देता है। यहाँ आकर नदी दक्षिणी किनारे पर बने मोड़ को छूती हुई वायव्य दिशा की ओर मुड़ जाती है। बाँध के पूरब की ओर पानी की गहराई अधिक और पश्चिम की ओर कम। दक्षिणी किनारा वक्राकार रूप में बाँधा हुआ, दोनों ओर वृक्ष और विविध वनस्पति का वैभव। अमृता को लगा कि यह स्थल प्राकृतिक सौन्दर्य का जीता-जागता दृष्टान्त है।

उदयन की दृष्टि उत्तर-पश्चिम क्षितिज की ओर घूम रही थी। वायव्य दिशा में नदी के पास उसे एक इमारत दिखाई दी, जिसके बारे में उसने तुरन्त पूछ लिया और जाना कि वह एक महल है। कहा जाता है कि इसे किसी नवाब ने

बनवाया था। नवाबों के उल्लेख से ही उदयन व्यग्र हो उठता है—

"ऐसे स्थानों में भी ये लोग दखलन्दाज़ी से बाज़ नहीं आये। निसर्ग-निर्मित शान्ति में यह व्यवधान उत्पन्न करने का इन्हें क्या अधिकार था? यहाँ भी विलास की सामग्री?"

इस ओर के घटादार पेड़ों पर लटके हुए घोसलों में अनाघ्रात कलियों की चीत्कारें कलपती होंगी। उसे लगा कि मदिरा-पात्र की रणकारें अभी भी इस महल के झाड़-फ़ानूसों के नीचे तड़पती होंगी। वह बोला—

"यह महल यदि खण्डहर होता तो इसे देखकर मैं आनन्दित होता।"

"एक सुन्दर रचना को नष्ट हुई देख तुझे आनन्द मिलता?"

"विलासिता के साधनों को मैं सुन्दर नहीं कहता। क्या मालूम आज भी इस इमारत का क्या उपयोग होता होगा?"

"तेरी इस शंकालु दृष्टि को ऐसा ही सूझता रहेगा।" अमृता बोली।

"इसके व्यवस्थापक अच्छे हैं, अनुरोध करने पर रहने की व्यवस्था कर देते हैं।"

"तुम लोगों को ऐसी व्यवस्था प्राप्त करनी चाहिए। प्राकृतिक सौन्दर्य का रसपान भी कर सको और ऐशो-आराम भी। मैं तो ऐसी जगहों में भीगी रेत या फिर किसी शिला की खुरदुरी छाती पर पड़ा रहना अधिक पसन्द करूँगा। मैं तो प्रकृति को देखकर आदिवासी बन जाता हूँ।"

"तूने अपने लिए कहा, वह भी ग़लत और जो हमारे लिए कहा वह भी ग़लत।" अमृता ने विश्वासपूर्वक कहा और पेड़ के तने से सटकर खड़ी रही।

उदयन ने बुश्शर्ट उतारी और पैंट भी। बनियान और छोटी-सी चड्डी में उसने एक बार अपना निरीक्षण कर लिया। कुछ क़दम पीछे जाकर ज़ोर से नदी की ओर दौड़ा। वह किनारे तक पहुँचे उसके पहले तो अनिकेत बीच में आ गया रुकना पड़ा—

"यहाँ पानी गहरा नहीं है। किसी [illegible] से टकरा गया तो तेरे [illegible] का सामान लेने मुझे उस महल की ओर जाना पड़ेगा, जो तुझे पसन्द न[illegible]"

"जो स्वयं डरते हैं, वे दूसरों को भी डराते हैं।"

"नहीं, जो सुरक्षा चाहते हैं, वे दूसरों की सुरक्षा का भी ध्यान [illegible]"

"जो लोग वास्तव में [illegible] [illegible] चाहते हैं वे दूसरों [illegible] चाहते हैं।"

अमृता इतने पर [illegible] [illegible]—"एक उदयन है [illegible] रत है।"

र चल देख कि उस किनारे पर लगे पेड़ों के नीचे कपड़े ।"

ही रहोगे ?"

कि अमृता प्रवाह में कूदना चाहती है या नहीं।"

ी हूँ।"

। दूब उसके हाथ का स्पर्श पाकर स्पन्दित हो उठी। आह्लादक छाया के बीच कहीं-कहीं प्रवेश मिलने से धूप भूमि घासरूप में पल्लवित हो चुकी है। ऊँची-नीची मिलन आँखों को बाँध लेता है। इस हरित सृष्टि में से बेखबर हो इस तरह बैठा है। अदब से हाथ मोड़कर की प्राणमयता के बीच वह तेज का द्वीप मालूम पड़ता तृप्तिप्रद दर्शन के बाद जगी शान्ति है। उसकी झुकी कित हो उठी है।

र लुढ़क जाने का मन हुआ। पर यह अभद्रता होगी— पर कोहनी टिकाकर और हथेली पर मुँह टेककर आराम ं। नदी के प्रवाह के साथ खेल करते उदयन को देखक ाद अनिकेत बोला—

च में झरते प्रपात-जैसा लगता है यह व्यक्ति।"

निर्मल नहीं और निकट भविष्य में जिसके निर्मल होने की कती।"

ात तो ठीक, किन्तु गति का गौरव तो कम नहीं आँका जा

शून्य है।"

वह दिशा को नाम नहीं देना चाहता। बाक़ी दिशा बिना ा हो कैसे हो सकती है ?"

ा पर पड़े अनिकेत के बायें हाथ पर आ चढ़ा, घड़ी ढँक ई देखकर अनुमानित समय की गति को ढँकने के लिए आ रण ने अनिकेत का ध्यान बरबस खींचा। उसने फिर नज़रें

नदी को ओर दौड़ायीं। दीवार-जैसे छोटे-से बाँध पर उदयन चल रहा था। पश्चिम की ओर पानी की सतह पर उसकी परछाईं तैरती थी। झरने के पास जाकर वह कूदा। स्प्रिंग के धक्के के साथ जैसे सरकस का खिलाड़ी कूदा हो। थोड़ी देर तक वह दिखाई न पड़ा। अमृता बैठ गयी। अनिकेत के होठों पर स्मित थिरका यह अमृता ने देखा। उदयन अब भी दिखाई न दिया। अमृता खड़ी हो गयी। दुपट्टे का छोर अनिकेत के चश्मे के फ्रेम को स्पर्श करता हुआ ऊपर गया। अनिकेत तो जानता है कि उदयन ठेठ नीचे पहुँच जाये तो भी इस बाँध को टक्कर मारकर फोड़ दे और निकल आये ऐसा है। इत्ते से पानी में वह डूब नहीं सकता। उस दिन जुहू के तूफानी समुद्र के साथ उसने जैसा व्यवहार किया वह भुलाये नहीं भूलता।

"अरे! कितना दूर निकल गया। आधे फर्लांग जितना अन्तर तो उसने पानी के अन्दर ही पार किया। मैंने तो निराश होकर दूर देखा और वह तो वहाँ दिखाई दिया।"

जहाँ उदयन पहुँचा था उस भाग में नदी के बीच छोटी-मोटी अनेक शिलाएँ पड़ी थीं। एक शिला पर बैठकर उदयन थोड़ी धूप खाने लगा था। उसे आश्चर्य हुआ कि उसे देखने अमृता खड़ी हुई है। हँसते हुए वह अमृता को देखता रहा, किन्तु इतनी दूर से तो केवल शरीर ही दिखाई दे सकता है चेहरे का हास्य नहीं यह सोचकर हँसना बन्द किया।

उदयन के दिखाई देने के बाद उस जल-विस्तार में अमृता की दृष्टि को केन्द्र मिला था। उस केन्द्र के चारों ओर चमकता जल और जल के इर्द-गिर्द लहराता प्रकृतिसभर परिवेश अमृता की आँखों में समग्र रूप से समा गया।

किन्तु उदयन ने केन्द्र तोड़ा। वह प्रवाह के विरुद्ध तैरता हुआ आ रहा था। अनिकेत को लगा कि भाईजान केवल अपने आनन्द के लिए इस प्रवाह के साथ स्पर्द्धा नहीं कर रहे हैं इनका चित्त अज्ञात रूप से प्रभावित करने के लिए प्रवृत्त हो तो आश्चर्य नहीं। जो भी हो विजयी होने के लिए संघर्षरत व्यक्ति के उद्यम को देख अनिकेत आनन्दित होता है।

'हे तटस्थ दर्शको! आ जाओ। यह प्रवाह बहा जाता है। इसमें प्रवेश किये बिना जो बहा जा रहा है उसका खयाल नहीं आ सकता। देखने से तुमको केवल तरल सतह ही दिखाई देगी। गति को देखा नहीं जा सकता अनुभव करना होता है, इसलिए मेरे आमन्त्रण को स्वीकारो। इसका मैं अपनी उद्दण्ड भुजाओं द्वारा विश्वास दिलाता हूँ कि तुम बह नहीं जाओगे। और नदी के इस वीर किन्तु मग़रूर प्रवाह की ओर से तुमको चुनौती देता हूँ। तुम केवल मौन से ही प्रतिकार करोगे और मेरे आमन्त्रण को नहीं स्वीकारोगे तो मैं मानूँगा

कि तुम लोग जिन्दगी से बच-बचकर चलना चाहते हो।"

"अमृता ! अपनी ओर से जवाब दो।"

"एक ज़िन्दगी किनारे की भी होती है, जो वह जानेवाले को आर्द्र दृष्टि से देखती रहती है।"

"ले, तेरी दृष्टि को पूरी तरह आर्द्र बनाऊँ।"

नज़दीक आकर अमृता के मुँह पर पानी छाँटा। उसकी छाती भी भीग गयी थी।

"दुष्ट कहीं का ! यह कोई कालिन्दी नहीं है।"

"किन्तु जरा आँखें फाड़कर देख कि सामने पलाशवन है और तेरे सिर पर कदम्ब वृक्ष की नहीं तो किसी अन्य वृक्ष की छाया है। इस वृक्ष का नाम अनिकेत से पूछ देख। वह पेड़ों को अधिक पहचानता है।"

"यह अर्जुन वृक्ष है।"

अमृता का चेहरा पीछे को देखने के लिए आकाशोन्मुख हुआ और इस अवसर का लाभ उठाकर उदयन ने पानी फेंका।

"तुझे एक बार तो कहा, पानी मत फेंक। इस तरह यह क्या बचपना करता है?"

अपने को बचाने के लिए उसने पास में पड़े उदयन के कपड़े हाथ में लेकर ढाल की तरह सामने किये। यह युक्ति भी कारगर सिद्ध न होने से उदयन के पैण्ट में से सिगरेट केस खोलकर आगे धर दिया।

"ऐ, प्लीज़। इसमें से एक सिगरेट मेरे मुख में रख दे न !"

"ले !"

अमृता ने पूरा सिगरेट केस खुला ही उदयन की ओर फेंका। उसने उछलकर पकड़ लिया। एक भी सिगरेट पानी में नहीं गिरी। सिगरेटों पर एक रेशमी धागा बँधा था। अपनी भीगी हुई अँगुलियों की छाप सिगरेटों पर पड़ी देखकर उदयन गुस्सा हो गया।

अनिकेत ने प्रवाह में पैर रखे थे, वह नहाने के लिए आगे बढ़ा।

उदयन किनारे पर आया। छूटकर भागने को तत्पर अमृता को पकड़ लिया और फिर पानी के निकट लाकर उसे मानो निर्ममता से धकेल दिया।

अनिकेत गहरे प्रवाह तक पहुँच गया था। वह कन्धे तक पानी में था।

उदयन के धक्के के साथ ही अमृता ने छलाँग लगायी, अन्यथा शायद पानी में इस तरह पछड़ाती कि उसकी छाती पर पानी की सतह से सख्त चोट भी लग जाती। छलाँग के कारण वह बच गयी। इतना ही नहीं उसे एक आकस्मिक लाभ भी मिला। उसके हाथों को अनिकेत की पीठ का आधार मिला, और वे

अनिकेत के गले में हार की तरह लिपट गये।

"यह शोभास्पद नहीं है उदयन ! कोई अनजान आदमी देखे तो तेरे व्य की अरुचिकर विचित्रता पर व्यग्र हो उठे।"

अनिकेत से लिपटी अमृता को देखकर मुँह नीचा किये उदयन बोला :

"यह सब रोमांचक प्रसंग उस समय याद करने के काम आयेंगे जब दाम्पत्य में जड़ता आयेगी।"

"अब भी तू देख नहीं सकता ? देख, आँखें फाड़कर देख ले। स्पष्ट में सुन ले, मैं अनिकेत को चाहती हूँ, अनिकेत को ही, तुझे नहीं।"

और इतना बोलते ही आवेशवश उसने अनिकेत के कन्धे पर से मुँ की ओर किया और उसके दायें गाल पर चुम्बन किया। यह सब इतनी श से हुआ कि उसके लिए नारी-सुलभ लज्जा की गति भी शायद कम पड़े।

अपनी प्रतिक्रिया छिपाने के लिए अनिकेत ने पानी में डुबकी ल अमृता का चेहरा पानी के बाहर रह गया। कमल सदा जल के बाहर देता है, इस कारण से उसकी अमृता के चेहरे से तुलना नहीं हो सकती। तो नदी के दोनों किनारे की वनराजि भी स्वीकार करेगी जिसकी हर अमृता के होठ की तरह अभी स्पन्दित हो उठी थी।

दूर जाकर तैरते हुए अनिकेत ने गम्भीर स्वर में कहा :

"बोलने में बहुत जल्दबाजी कर गयी, अमृता ! बोला हुआ फैल ज उसे वापस नहीं लिया जा सकता। इसलिए बाद में विचारशून्य घोषणा क कर-करके तड़पना पड़ता है। तुमने प्रकृति को साक्षी में प्रतिक्रिया के व हो अपना ही अपमान किया है। उदयन तुम्हारा पराभव देखकर शायद अ भी अधिक खुमारी दिखायेगा !"

"एक शरारत को तुमने बहुत अधिक महत्त्व दे दिया, अनिकेत ! इसवे तुम्हें अफसोस हो यह मैं समझ सकती हूँ। किन्तु एक बार जो बोल निकर जो कह बैठी हूँ, उसके लिए यदि सहन करना होगा, तो करूँगी। तुमको वि दिलाती हूँ कि इसका पुनरावर्त्तन नहीं करूँगी। मैं जानती हूँ कि तुम अधिक उदयन को चाहते हो।"

"मैं यह मानने को तैयार नहीं। वह मुझसे अधिक अपने विचारों को है। मैं आशा करता हूँ कि वह अपने विचारों को जीकर बतायेगा।"

अनिकेत सामनेवाले किनारे की ओर खिसक रहा था। उदयन को सु बाद उसे उत्तर देने की आवश्यकता नहीं लगी, और वह दूर खिसक गया।

उदयन ने अमृता की ओर देखा। उसकी पलकें झुक गयीं। उनमें ना थी या शर्म अथवा विवशता थी यह समझ में नहीं आया।

"अमृता, इस प्रकृति के निर्दोष साहचर्य का अनादर करके दूर चले जाने के बावजूद नज़दीक लगते अनिकेत की अवहेलना करके, सूर्य के तेज की उपेक्षा करके मेरा पौरुष—मेरा तिरस्कृत अस्तित्व अपने भीतर ज्वालामुखी के विस्फोट की कामना कर रहा है। तेरी खुमारी-भरी स्वाधीनता इस समय मेरे लिए असह्य हो उठी है। बाहुपाश में भींचकर तेरी दृढ़ निर्णय शक्ति को चूर-चूर करने को आतुर मेरे रक्त का वेग इस नदी के जल से बिलकुल अस्पृष्ट हो गया है...तू दूर चली जा नहीं तो तेरे वक्ष में आज तक संगोपित सुधा को मेरी आग एक ही क्षण में कालकूट बना देगी। तू अपने स्नायु पर से नियन्त्रण खो देगी और तेरी संवेदनाओं का कौमार्य इस प्रवाह में बह जायेगा....ओह! तुझे मुग्धा मानकर इससे पूर्व अनेक अवसरों पर तेरी हिफ़ाज़त करने की मैंने कितनी भूल की है। तेरी चंचलता से गूँजते अनेक प्रसंगों पर मैंने अपनी कामनाओं को कितना नियन्त्रित रखा है, यह शायद तू नहीं जानती। तेरे अनेक अबोध स्पर्शों को यदि चाहता तो किसी भी दिशा में मोड़ देता, किन्तु नारी की मुग्धता का लाभ उठाने की अप्रामाणिकता की कल्पना से डर गया...अनिकेत से भी मैंने अपने सम्बन्धों के रहस्य का ज़िक्र जल्दी नहीं किया। शायद मेरा अहम् मुझे रोकता था। किन्तु याद कर देख अपने वय:सन्धि के उन आवेगों को, उस परिस्थिति में आज अपने को रख देख, फिर उसपर विचार कर जिसके लिए तू तैयार हो गयी है...मेरी उपेक्षा करने की हिम्मत कर देख। मैंने अपने संवेदन के प्रति जितनी निष्ठा नहीं बरती उससे कहीं अधिक तुझसे व्यवहार करने में बरती है...मैं भी उन खोखले सुभाषितों से परिचित हूँ....सच्चा प्रेम निरपेक्ष होता है। सच्चा प्रेम त्याग-परायण होता है। किन्तु प्रेम के आस-पास 'सच्चा' या 'निरपेक्ष' कोई विशेषण शोभा नहीं देता। अनेक विशेषणों का उपयोग किया। किन्तु यह शब्द बच नहीं पाया। इसे फिर से अर्थ देना है। मेरी इच्छा थी कि तू यह कर सके इस हद तक जागृत हो। आज मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैं तेरा त्याग कर सकता हूँ किन्तु त्याग करके प्रेम में शहीद होने की शुभाकांक्षा मुझे एक सनक सी लगती है। और प्रथम दृष्टि के प्रेम को मानकर समर्पण करना भी एक सनक ही है। अब यदि मैं तेरा त्याग करूँ तो यह तेरे कौमार्य की रक्षा करने में किये गये त्याग की तुलना में कुछ भी नहीं। और इसके बावजूद आत्मगौरव के तीव्र क्षणों में तुझे हमेशा के लिए छोड़ देने की वृत्ति पैदा होती है। किन्तु मेरे ऐसा करने में तेरा हित नहीं। कठिनाई यह है कि मेरे होते हुए अनिकेत तुझे अपनाये ऐसी किसी स्थिति की सम्भावना नहीं। सम्भावना की एक ही स्थिति है, और वह यह कि तू अकेली हो...ऐसा होना ग़लत है यह मैं नहीं कहता। कई स्त्रियाँ मृत्यु के क्षण तक अकेलापन जी सकती हैं। किन्तु वे और ही होंगी; यह तेरे वश

का रोग नहीं....मैं मजबूर था अमृता, यह कड़वी बात कहनी पड़ी। देर-सबेर कहनी ही पड़ती। आज तूने ही इसके लिए अवसर दिया। तू मेरी दृष्टि से अपने को देख सकती तो तुझे मालूम होता कि एक सुन्दर नारी के मुक्त सान्निध्य में अपने को नियन्त्रित रखकर, तेरी स्वाधीनता को विकसाकर, तेरे निर्माण में क्या योग दिया है? इसपर विचारकर देख। सोचने पर तुझे लगेगा कि जिसे तू नास्तिक कहकर चिढ़ाती है, उसके अन्तरंग में कितना विधेयात्मक बल विद्यमान है। यह युग ही कुछ ऐसा है कि अपने विषय में बात करनी ही पड़ती है। किसी को भी दूसरों की नही पड़ी....तुझे अपने नारीत्व को निर्भ्रान्ति प्रतीति हो और मेरी मित्रता की अनिवार्यता को तू अपनी स्वस्थ समझ द्वारा स्वीकार कर सके ऐसी स्थिति का निर्माण होने के बाद ही हम जुड़ेंगे—ऐसा मैं मानता था। किन्तु खैर तेरी मुग्धता तो चिरन्तन निकली। मैंने उसकी अवहेलना करनी शुरू की तो उसने अनिकेत का सौम्य आश्रय ग्रहण किया। और अनिकेत मुग्धता को दोष नहीं मानता। वह मुग्धता को श्रद्धा की भाँति विधेयात्मक मानता है। अनिकेत मेरा मित्र न होता तो कितना अच्छा होता! मेरी धृति के कारण उपस्थित समस्या का अन्त आ गया होता। अनिकेत तुझे स्वीकार नही सकता। मैं तुझे भूल नहीं सकता।"

यह अन्तिम वाक्य बोलते समय उसने किनारे की ओर मुँह फेर लिया था। पानी के बाहर निकलकर अमृता के दुपट्टे से अपना शरीर पोंछा, तौलिया नही था। एक ओर झाडी के पीछे जाकर अपने कपडे बदलकर आया। बनियान और चड्ढी निचोड़कर सुखाये। धर्मशाला के कमरे से तौलिया और अमृता की अन्य वस्तुओंवाली थैली ले आया।

अमृता जब उदयन को सुन रही थी तब उसके सुनने की शक्ति प्रतिपल क्षीण होती जा रही थी। वह इस प्रवाह में बह जायेगी इसका भी उसे पता चलेगा या नही...लगता था उदयन सुनने के लिए बिल्कुल तैयार न था। वह बोलता ही गया। अमृता कुछ बोले, इसकी मानो उदयन को कोई आवश्यकता नहीं लगती थी। और जब वह बोल चुका तो विमुख होकर चला गया।

अब वह किनारे बैठा था। क्या देख रहा था? कुछ नहीं। 'कुछ नही' को देखता था। एक के बाद एक सिगरेट फूँक रहा था। अमृता बाहर निकलने की इच्छा नहीं कर पा रही थी। उदयन किनारे से दूर चला गया। वनराजि के पीछे अदृश्य हो गया। बाद में अमृता बाहर निकली।

तीन घण्टे बाद। ये तीन घण्टे केवल बीते हुए हैं, जिये हुए नहीं।

स्वयं से ऊबा उदयन अपनी जागृति को पूर्णतः भुलाकर विस्मृति के गर्त में डूब जाने हेतु संघर्ष कर रहा था।

अनिकेत मानसिक दशा में से मार्ग ढूँढ़कर कागज पर सीधी-तिरछी रेखाएँ खींच रहा था।

अकल्प्य दुर्घटना से आदमी कुछ खोये और फिर जो कुछ खो गया है, उसका अनुभव करता रहे, कुछ ऐसी ही दशा में अमृता जहाँ बैठी थी—वहाँ से तीन वार उठी। तीनों बार दूर लेकिन सामने बैठे उदयन के गोगल्स में अमृता का प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। गोगल्स स्थिर थे। गोगल्स के पीछे आँखें खुली थीं।

स्थिरता और जड़ता के बीच भी कोई स्थिति होनी चाहिए। उदयन को उसी स्थिति में रखा जा सकता है। अलबत्ता इस क्षण भी वह अपने समग्र इन्द्रिय-बोध के साथ उपस्थित था। भेद इतना ही था कि उसे जो बोध हो रहा था, वह प्रत्यक्ष सृष्टि का नहीं था, स्मरणशेष सृष्टि का था। लम्बे अरसे के बाद वह आज निविड़ भाव से स्मरणवश हो सका था। उसके पिता कहते थे—उदयन छोटा था तब अकेला रहता था। किसी के साथ खेलता नहीं था। इसलिए वह किसी के साथ लड़ता भी नहीं। किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा किया भी होगा तो भी उनकी जानकारी में न था। उदयन की माँ कुछ और कहती थी—इसके मन में सदा प्रतिस्पर्द्धा का ही भाव रहता है। इसी कारण वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है, किन्तु यह भी कोई शिक्षा है। बच्चा सबसे घुल-मिल जाये, दूसरों के अनुकूल होना सीखे—इसी में वास्तविक शिक्षण निहित नहीं है। यह प्रथम-द्वितीय श्रेणी की प्रथा ही खराब है। उदयन की माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, उन्हें हिस्टीरिया था। वे सुशिक्षित थीं। कोई शराब पिये, यह उन्हें पसन्द न था। और उदयन के पिता केवल शराब ही पीते हों ऐसा नहीं था। वे लकड़ी का व्यापार पहले से ही करते थे, किन्तु बाद में अध्यापकी भी छोड़ दी। फिर तो कमाते रहे और खुले हाथों खर्च करते रहे। एक दिन वे लड़खड़ाते हुए दरवाजे में घुसे, किसी का नाम लेकर कुछ बड़बड़ाते भी थे। उदयन की माँ सीढ़ियाँ उतर रही थीं। हिस्टीरिया तो उन्हें था ही, आज आँखों के आगे अँधेरा छा गया, गिर पड़ीं। उनका सिर एक ओर लुढ़क गया। माँ के श्राद्ध के एक सप्ताह बाद घर में आग लगी। उदयन दूर जा, एक पेड़ के नीचे बैठकर मजे से देखता रहा कि घर कैसे जलता है। उसने आज तय किया पिता का श्राद्ध नहीं करेगा। छुट्टियों के बाद उन्हें मनाकर वह बम्बई चला जायेगा। मौसी ने कहा है। बम्बई से वह पिताजी को पत्र लिखेगा, मिलने नहीं आयेगा। पिताजी की मृत्यु पर वह रोयेगा नहीं। शायद अब जीवन में रोने का कोई प्रसंग ही नहीं होगा। उसने देखा—जलते घर को बुझाने के लिए आदमियों के झुण्ड पर झुण्ड दौड़ रहे हैं। पानी डाला जा रहा है। उसे लगा कि यह तो उसके घर पर जुल्म किया जा रहा है। किस लिए इतने सारे लोग मेरे घर को बुझाने के लिए संघर्ष

कर रहे हैं। क्या इसलिए कि ये सब अड़ोसी-पड़ोसी हैं? हाँ, केवल इसलिए कि वे पड़ोस में रहते हैं और आग उनके घर को भी नही छोड़ेगी। अपनी सुरक्षा के लिए ही दौड़ आये हैं किन्तु बोलेंगे उपकार की भाषा। उसे तो अपने घर के जलते रहने में ही दिलचस्पी थी, पर लोगों ने बुझा दिया। यह देखकर वह पता लगाने गया—कितना जल सका है?

अमृता के खड़े होने और बैठने का प्रतिबिम्ब केवल उदयन के गोगल्स में ही पड़ सकता था, आँखों में नही। उसका और उसके आस-पास का वर्तमान उसके लिए इस समय जड़वत् था। उसे लगा कि भूतकाल अर्थात् अपरिवर्तन-शीलता जिसमें अब कोई गतिसंचार नहीं हो सकता। जो घर अधजला बुझ गया, उसे फिर से जलाकर पूरी तरह खाक हुआ नही देखा जा सकता। भूतकाल अर्थात्...

उसने जम्हाई ली। नदी के प्रवाह पर होकर बहने के कारण विमल हुई तथा पेड़ों की छाया से गुजरने के कारण शीतल बनी हवा उदयन को छू नही पायी।

उसने घास के बीच पड़े एक पत्थर की ओर देखा। देखा कि पत्थर पर घास नही उगी है।

अनिकेत एयरबैग में से एक पुस्तक ले आया। पढ़ने लगा। वह पढता था, साथ ही साथ सोचता था। कुल मिलाकर वह न तो पढ़ता था न ही सोचता था।

अमृता समय की मन्द गति से त्रस्त हो उठी थी। समय उसे एकदम निःसंग लगा। समय मनोवेग की गति से क्यों नही बीतता? किस लिए वह आज विवाह की चुनरी से मिलती-जुलती साड़ी ले आयी? उस दिन भी उसने यही साडी पहनी थी। वह उदयन को छोड़कर आ रही थी और रास्ते में अनिकेत को देखकर साथ ले लिया था—साग्रह। कार में लगे शीशे में एक-दूसरे का प्रति-बिम्ब दिखाई देता था, किन्तु साथ में नही। अनिकेत ने कहा था—...! आज वह उतनी सुन्दर लग रही होनी चाहिए।

जो सुन्दर हो वह उदास होने के कारण असुन्दर लगे ऐसा तो नही होता। चुनरी के साथ जुडी अन्य प्रसाधन सामग्री अमृता को याद आयी। और अन्त में उसे दिखाई दिया मंगलसूत्र...वह खड़ी हो गयी...मंगलसूत्र इन्द्रधनुष-जैसा आकर्षक, फिर भी उसे अवास्तविक लगा। वह फिर से बैठ गयी। उसे लगा कि वह स्वयं कोई सजीव सत्ता नही, जो समय को देख और अनुभव कर सके। यहाँ की सम्पर्क सृष्टि और उसके बीच एक रिक्तता व्याप गयी थी। वहाँ के वृक्ष-घटाएँ, नदी का प्रवाह, लोगों का आवागमन, पक्षियों का कलरव...सब कुछ था, किन्तु अमृता इन सबको नहीं देख रही थी, सम्भव है कि वे सब [illegible]

को देख रहे हों।

स्मृति भी उसका साथ नहीं दे रही थी। कुछ याद आता और कुछ क्षणों में ही उसकी शृंखला टूट जाती...तब वह बीमार थी। एक दिन देर से शाम को आकर उदयन ने उसके सिर पर हाथ रखा था। उसका स्पर्श कितना पवित्र था!....हाँ, उदयन की बात सही है। उसने मेरी मुग्धावस्था का लाभ उठाया होता तो! तो? प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश में ही उसका हृदय अशान्त हो गया। चित्त में फिर से रिक्तता फैल गयी।

अनिकेत को एकाएक प्रवास के दौरान देखी हुई एक घटना याद आयी। एक पागल ज़मीन पर सिर टिकाकर नमस्कार किया करता था। हाँ, इस सन्दर्भ में अमृता को पत्र में कुछ लिखा था। एक पागल का नमस्कार! किन्तु हाँ, यह नमस्कार ही तो कहलायेगा।

"शायद मैं अपने और अमृता के सम्बन्धों के बारे में अभी तक पर्याप्त सावधान नहीं हो पाया हूँ। अमृता की दृष्टिक्षेप के साथ मेरे स्पन्दनों का और मेरी दृष्टिक्षेप से अमृता के स्पन्दनों का सम्बन्ध है ही। मैं अपने को रोक नहीं पाया। आज तक मैंने कितनी बड़ी ग़लती की है। प्रेम की सप्रेम अस्वीकृति सम्भव है भला? मैं सप्रेम अस्वीकार करता रहा इसलिए इस इनकार की अपेक्षा प्रेम कहीं विशेष है, निरी निःस्पृहता अथवा घृणा। घृणा न की जा सके तो शान्त उपेक्षा। हाँ यही एकमात्र रास्ता है।"

उसने देखा: सवा चार बजे थे। पौन घण्टा और है। इन लोगों को पूर्व की ओर घुमाने ले जाऊँ। मौन जितनी जल्दी टूटे उतना अच्छा।

वह आगे बढ़ा। उसका अनुसरण करनेवाले को रास्ता तैयार मिलता था। उदयन देख-देखकर आस-पास के काँटों पर पैर रखकर चल रहा था। आवश्यकता न थी, फिर भी टूटते काँटों की आवाज़ सुनना उसे अच्छा लगता था।

नदी-किनारे की इस ओर की सृष्टि आरण्यक थी। एक बरगद की नीचे तक फैली हुई बरोहें देखकर उदयन ने झूलना शुरू कर दिया। उसने एक पतली बरोह पकड़ी; जोर से झूलने लगा। फिर भी बरोह टूटी नहीं, उसे आश्चर्य हुआ।

उदयन को इस तरह झूलता देखकर अनिकेत ने अमृता के चेहरे की ओर देखा। तब वह मन ही मन बोल उठा—"एण्ड टु इमेजिन इज ओनली टू अण्डरस्टैण्ड वन सेल्फ।"

पाँच

उदयन की अनुपस्थिति में शाम का समय बीत रहा था। अभी तक क्यों नहीं आया? शहर में यों ही मटरगश्ती करने गया है। निरुद्देश्य भ्रमण करने गया है किन्तु 'मुग्ध भ्रमण' करते नहीं। एक-डेढ़ घण्टा हुआ जाता। अभी तक नहीं आया इससे उसकी बात चल पड़ी :

"बम्बई में उपद्रव हुए थे तब भीड़ में से एक बार उदयन मुझे बाहर लाया था। वे लोग मुझसे कहलवाना चाहते थे कि बम्बई उनकी है। मैं कहता था कि जो रहते हैं, या जो रहने आयेंगे, बम्बई उन सबकी है। मुझसे तुम अपनी इच्छानुसार कहलवाओगे इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। वे मुझे छोड़ना नहीं चाहते थे। मैं उनसे झगड़ना नहीं चाहता था। इतने में उदयन आया। उसने भीड़ की मातृभाषा में बात की और समझाया कि बम्बई तो क्या पूरा देश उनका है। ऐसा हम मानते हैं, जाओ प्रचार करो।"

"उदयन के बारे में मेरी मम्मी का अच्छा अभिप्राय था।"

"यह तो अच्छी बात है।"

"उनका ऐसा मानना था कि उदयन के सहयोग के कारण ही परीक्षा में मैं अच्छे अंक प्राप्त करती हूँ। ट्यूशन देनेवाले शिक्षकों से बच्चों को कोई लाभ नहीं होता। केवल उनके साथ घूमना-फिरना ही बढ़ता है। हमारे परिवार में पढ़ाई में सभी एक-सा ही परिणाम लाते थे। अध्ययन में मेरी रुचि का कारण उदयन है, ऐसा मम्मी मानती थी। वह उनका आदर करता था।...किन्तु तुम तो जानते ही हो कि वह अपने पिता की तो अवहेलना ही करता रहा।"

"मैं यह नहीं जानता।"

"गत वर्ष उनकी मृत्यु हुई।"

"यह तो मैं जानता हूँ।"

"मृत्यु का समाचार पा वह घर गया। उसे पता चला कि एक भील लड़की ने उनके सिर पर पत्थर मारा था। क्रिया-कर्म किये बगैर वह लौट आया। अभी जाकर सब कुछ बेच आया है। एक मकान रहने दिया है। बीच में ऊब गया था तब वहाँ—मिलोडा जाकर रहने की बात कर रहा था।"

अनिकेत खड़ा हुआ। खिड़की से बाहर झाँका। उसका अभिप्राय था कि

उदयन को अब आना चाहिए। आया क्यों नहीं, इनके कारण तो अनेक हो सकते हैं, अथवा कोई कारण भी न हो। हो सकता है किसी बग़ीचे में बैठा हो। और मरमर पवन के स्पर्श से सो गया हो। या फिर स्टेशन-रोड के छोटे-मोटे होटल की बेंच पर बैठा एक के बाद एक सिगरेट फूँक रहा हो। अथवा कोई मिल गया हो तो उसके साथ गपशप कर रहा हो।

अमृता और अनिकेत उदयन के सम्बन्ध में अभी और भी बातें करना चाहते थे। उदयन के विषय में घण्टों बातें की जा सकती हैं। किन्तु उसकी बात करते-करते अपनी बात कब शुरू हो जाये यह कहना कठिन था।

पुस्तक लेकर बैठना तो इस समय अस्वाभाविक-सा लगता। गीत गाने के लिए इस समय आवाज़ नहीं थी। अमृता अनिकेत की ओर देख नहीं पा रही थी। और अनिकेत अब जिस दृष्टि से अमृता को देखना चाहता था वह अभी उसे नहीं मिल पा रही थी। बात न करने की स्थिति में दोनों एक-दूसरे के प्रति अधिक सतर्क हो रहे थे। इस समय अमृता अपनी अनामिका की अँगूठी निकालकर पहन लेती फिर उतारती थी और फिर देखती रहती थी। अनिकेत घड़ी की सेकेण्ड की सुई पर दृष्टि जमाये बैठा था। उसकी दृष्टि सुई के साथ झटकों का अनुभव करती गोल-गोल घूम रही थी। पूर्वघटित घटनाओं के स्मरण का भार वे झेल नहीं पा रहे थे या अन्य कोई भी कारण रहा हो, किन्तु वे किसी अन्य की उपस्थिति चाहते थे।

वे चाहते थे कि बोलना न पड़े। यह बात तो ठीक है किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनके पास बोलने के लिए कुछ न था, कदापि नहीं। वस्तु-स्थिति तो यह थी कि उनके पास इतना था कि वे ज़िन्दगी-भर बोलते रह सकते थे। वे ऐसा भी नहीं मानते होंगे कि अधिक बोलने से थक जायेंगे। लगता था कि कहे जाने को अनकहा ही छोड़ देने से जो आन्तरिक तनाव सहना पड़ता है उसे सहने का निर्णय उन्होंने कर लिया था। शायद वे जानते होंगे कि बात शुरू होने के बाद उसका कोई अन्त नहीं। और माना कि बात पूरी भी हो जाये तो भी मन को राहत मिलेगी ही इसका विश्वास नहीं।

उदयन नहीं आया।

क्या उदयन नहीं आयेगा?

तो क्या किया जाये? अनिकेत बग़लवाले कमरे में बेचैनी से इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। फिर उसे वापस आते देखकर अमृता को एकाएक बोलने की सूझी:

"मुझे तुम्हारे मकान का किराया देना है।"

"देना तो मुझे चाहिए—हाँ, उसे किराया नहीं कहा जा सकता।"

"मैं समझी नहीं।"

"मेरा मकान अभी तुम्हारे संरक्षण में होने से उसपर तुम्हारा सार्वभौमत्व इसलिए मुझे तुम्हें खिराज देना चाहिए।"

बोलते-बोलते अनिकेत को लगा कि सुबह निश्चित किया था उससे भिन्न कार की ही भाषा का उपयोग हो गया था। इसके साथ बातचीत में शब्द-शब्द स्पृहा क्यों आ जाती है?

अमृता ने झूले की छड़ थामते हुए कहा :

"आज इच्छा हो रही है कि स्वजनों के साथ रहने चली जाऊँ, मुझे एकान्त ातन्त्र्य ही नहीं संवादिता भी चाहिए, स्नेह भी चाहिए।"

"मुझे पहले पता होता तो तुम्हें घर छोड़ने से रोकता। और अब नहीं कह कता कि वहाँ जाकर तुम्हारा रहना कितना ठीक होगा? अब तुम 'छाया' में लें जाओ तो तुमने घर छोड़ा उस दिन और वापस लौटनेवाले दिन के बीच धिक अन्तर न होने पर भी उसे जल्दी पाटा नहीं जा सकता। शायद तुम्हें च्छा भी न लगे। पराजित होकर वापस लौटने की ग्लानि तुम्हें हो, यह भी म्भव है। यह तो मुझे जो लगा सो कहा। अधिक विचार करने पर शायद कुछ सरा ही महसूस हो। आखिर जो तुम्हें महसूस हो वही ठीक है। जो तुम्हें लगे, ही उचित।"

"यह तो मैं भी महसूस करती हूँ कि अब वहाँ रहने जाऊँगी तो सभी के ाथ अलगाव का अनुभव करूँगी।"

"जहाँ रह रही हो, वहाँ ठीक नहीं?"

"वहाँ भी चारों ओर अवकाश है। अब तो लगता है जहाँ भी जाऊँगी वहीं ारों ओर का अवकाश मुझे ढोना पड़ेगा।"

"एक मार्ग भी है और वह यह कि तुम्हारा अवकाश किसी दूसरे को अर्पित र दिया जाये और फिर उसके सजीव स्पर्श से यह अवकाश सभर हो उठे।"

"आज तो मैं इतनी आशावादी नहीं हो सकती।"

क्या जवाब दे, यह न सूझने पर कुछ देर निरुपाय शान्ति सहने के बाद मृता से अनुमति लेकर अनिकेत उदयन को ढूँढने चल दिया।

स्टेशन की ओर मुड़ा। दरवाज़े के बाहर निकलते ही उसने सोचा कि सम्भव , वह तालाब की ओर गया हो। मानसरोवर!' बढ़िया नाम है इस छोटे-से ालाब का। वहाँ की निर्जन शान्ति उसे रास आ गयी हो, तो शायद वहीं बैठा ा। उसके लिए निर्जनता असह्य नहीं। वह वहाँ बैठा हुआ मिलेगा तो कहेगा ़ शून्य के संग जी रहा था; किन्तु तालाब तो है ही। हाँ, अन्धकार होगा। न्धकार-भरी हवा होगी, हवा से भरा तालाब का किनारा होगा। फिर उसका

रिक्त शून्य उसे किस रूप में दिखाई देगा ? निःशेष रिक्त को वह कैसे अनुभवता होगा ? निःशेष रिक्तता कैसे सम्भव है ? वह स्वयं तो होगा ही न ? और आदमी अकेला भी हो तो क्या यह कोई साधारण बात है ? फिर रिक्तता कैसी ?...यह उदयन की मनःस्थिति है या मेरी ?

सिगरेट जलाकर खाली पैकेट हाथ से मसलकर एक ओर फेंकनेवाली आकृति को देख अनिकेत ठिठका। धारणा सही निकली। अनिकेत बात सुन सके इतने पास पहुँचते ही वह बोला :

"यह दुनिया बहुत नहीं चलेगी।"

"तेरी बात सही है। जब तक हम हैं तभी तक दुनिया हमारे लिए है और हम लोग अधिक टिकनेवाले नहीं।"

"यह दर्शन तो हमारे गाँव का हरेक भक्त जानता है। मैं तो कुछ और ही कह रहा था। तुझे थोड़ा सविस्तार समझाना पड़ेगा, सुन—यह जो एक गोला है न, जिसे अपनी पृथ्वी के नाम से पहचानते हैं, उसमें अब कई दरारें पड़ जानी चाहिए। इसकी सतह पर घूमनेवालों के अनेक विष इसमें गहरे उतर गये होंगे। उनका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। मुझे लगता है कि आदमी का दुराशय ही उग्रतम विष है। मुझसे किसी ने कहा था। वह गप हो तो भी सच मानकर तुझसे कहता हूँ कि एक ऐसा विष आता है जिसके शरीर में प्रवेश करने के साथ मनुष्य तुरन्त ही पटाखे की तरह फूट जाता है। आदमी के दुराशय और आत्मघात का विष पृथ्वी के केन्द्र में पर्याप्त मात्रा में एकत्रित हो चुका है, उसका अब परमाणु बम की भाँति विस्फोट होगा। होगा ही। और तब सूर्य भी वह चीत्कार नहीं सुनेगा।"

"तू जिस घटना का उपसंहार कह रहा है, उसके सम्बन्ध में अब मेरा कौतूहल जाग चुका है। उसका सविस्तार वर्णन कर ताकि रास्ता कटे।"

—मैं स्टेशन के पास घूम रहा था। घूम रहा था या खड़ा था। वहाँ सुना कि पुलिस ने एक युगल को पकड़ा है। समाचार लानेवाले और सुननेवालों के कौतूहल और आनन्द की कोई सीमा न थी। कितने तो बात करते-करते तालियाँ बजाने लगे। 'आबू गये थे! हनीमून करने, अब पता चलेगा।' ऐसे-वैसे उद्गार सुनकर मैं बेचैन हो गया। उन दोनों के सुख की इतनी ईर्ष्या लोगों को क्यों होती होगी ? मैंने इस प्रश्न में सक्रिय रुचि लेने का निश्चय किया।"

पुलिस को यह सूचना लड़की के पिता ने दी थी कि फ़लाँ ट्रेन से ये लोग अहमदाबाद पहुँच रहे हैं। यहीं पर इन्हें अलग करके लड़की को अधिकार में ले लिया जाये—ऐसी माँग की होगी। भीड़ इकट्ठी हो गयी। लड़की सिर झुकाये

खडी थी, किन्तु लड़का होशियार था। उसने पुलिस को साफ-साफ बता दिया कि उन्होंने सिविल मैरेज कर ली है। उन्हें इस तरह नही रोका जा सकता। किन्तु सुने तो वह हवलदार कैसा ? उसने दस्तावेज देखने में भी समय नही बिगाड जेब में डाल लिये और दोनों को बाहर लाकर जीप में बिठा दिया। लड़के के चेहरे पर रोष झलक रहा था। ओ, सारी ! मुझे उसे लड़का नही 'युवक' कहना चाहिए। हाँ, तो युवक के चेहरे पर रोष था। यह देख मुझे आनन्द हुआ। जीप रवाना हुई। तांगा करके मैं भी पीछे हो लिया।

वहाँ पहुँचकर क्या देखता हूँ कि उस युवक की दलीलों का जवाब तमाचों से दिया जा रहा है। मुझे हुआ—देखूं वह कितने तमाचे खा सकता है ? अपनी प्रेयसी बल्कि पत्नी की हाजिरी मे उससे अपमानजनक त्रास सहन नही हो रहा था। किन्तु वह अपनी स्थिति समझ गया था। लाल चेहरा लिये वह खड़ा था :

"अच्छा ! मैं इसे सौंपकर जाता हूँ, वे कागजात मुझे दे दो।"

दो कान्स्टेबल उस लडकी पर पहरा देते खडे थे। बार-बार उसकी ओर देखकर आश्वस्त हो रहे थे कि वह है और वह है यह जानकर उसकी ओर देखे जा रहे थे। शायद उसकी स्थिति दुस्सह थी।

शायद हवलदार ऊँचा सुनता है—ऐसा मानकर युवक ने जरा ऊँची आवाज में पुन: अपने कागजातों की माँग की।

"वे नही मिलेंगे। तुझे जाना हो तो जा। तुझे जाने दे रहा हूँ, क्या यह कम है, जो कागजातो की माँग कर रहा है ?"

"नही मिलेंगे। अच्छा तो मैं देख लूँगा।"

"क्या देख लेगा तू ?"

युवक की पीठ पर डण्डा पडा। इससे आवाज हुई। मैं एक-दो अन्य प्रेक्षकों का साथ छोड़कर जल्दी से सीढियाँ चढकर अन्दर घुस गया। मेरे आगमन को कोई जान पाये मैंने इससे पहले ही अलाउद्दीन के स्वर मे कहा

"ऐ पशु ! यह क्या कोई जंगल है ? जो जी मे आया किया। तू हवलदार है या गुण्डा ? कुछ कायदा-वायदा भी जानता है ? ऐसे केस में डण्डे का उपयोग करते हुए थोड़ा भी विचार नही करता ?"

हवलदार का सबसे बडा सहायक हो, ऐसो [illegible] ने एक सिपाही [illegible] सुनकर अपने साहब के हाथ मे से डण्डा लेने [illegible] मैंने शान्ति से कहा :

"देख तेरी कमर में मोटे चमडे का [illegible] है न [illegible] व्यवस्था है। मुझे बताने की जरूरत [illegible] डरनेवाला नही। मैंने बडे-बडे पेड़ देखे हैं

फिर उस सिपाही की ओर [illegible]

पर बैठकर मैं बोला :

"देखिए हवलदार साहब—वैसे तो आपके लिए एकवचन का ही उपयोग करता, किन्तु कुछ पुलिसवाले भले आदमी होते हैं इसलिए उनके सम्मान में आपके लिए भी आदरार्थ बहुवचन का उपयोग कर रहा हूँ। आपने क़ानून का उल्लंघन कर गम्भीर अपराध किया है। आज तक काफ़ी कमा न लिया हो और अभी भी नौकरी करनी हो तो वे काग़ज़ लौटा दो। और इन लोगों को सम्मानपूर्वक यहाँ से जाने दो। इस युवक का साहस देखकर ही आपको मालूम हो जाना चाहिए था कि क़ानून इसके साथ है। उसने आपको काग़ज़ दिये हैं, यह मैंने देखा है। कोई बहाना बनाकर आप बच नहीं सकते।"

हवलदार ने दो-तीन बार 'गेट आउट'-'गेट-आउट' कहा। फिर मैंने उन्हें थोड़ी अँगरेज़ी सुनायी। और उस युवक से कहा—"सदर थाने जाओ और कहो कि कहानीकार, पत्रकार उदयन बुला रहा है। वहाँ कोई न सुने तो कलेक्टर से मिलना। वे मुझे जानते हैं। चिन्ता किये बग़ैर जाओ। तुम्हारी पत्नी की मैं रक्षा करूँगा।"

"देखिए साहब! आप पूरा केस नहीं जानते। इस लड़की की सगाई किसी दूसरी जगह हुई थी और यह आदमी उसे उठा लाया है। किन्तु यदि आप गवाह बनते हों, तो मैं छोड़ दूँ।"

"अपनी गरज़ से छोड़ेंगे, मैं तो तुमने जो व्यवहार किया है, उसका साक्षी हूँ। बोलिए, कितना कमाया है इस केस में?"

"आप कैसी बातें करते हैं? ऐसा कहीं होता है? हम तो केवल शिकायतें सुनते हैं।"

"शिकायत के काग़ज़ात कहाँ हैं?"

"अरे साहब! छोड़ो न यह सब पचड़ा। अपना समय क्यों बिगाड़ते हैं? चलो, इन्हें छोड़ देता हूँ।"

उन्हें मैं स्टेशन तक छोड़ आया। रास्ते में लड़की ने कहा कि उसके पिता एक प्रौढ़ रईस के साथ सौदा कर चुके थे, तीन हज़ार तो ले भी चुके थे। शादी के बाद दो हज़ार और भी मिलनेवाले थे।

सुनकर तो मेरी बुद्धि ही शून्य हो गयी। आज इस स्वातन्त्र्य युग में भी लोग इस स्तर पर जीते हैं?

"हवलदार के साथ तूने काफ़ी निडरता से व्यवहार किया।"

"वह नहीं मानता तो बात और भी आगे बढ़ती।"

"किन्तु मान लो कि क़ानून उसके पक्ष में होता तो?"

"देख, इसमें भी तू गणित लगाने बैठ गया? क़ानून उसके पक्ष में होता,

तो मैं क़ानून को गलत साबित करता। तू कैसे भूल गया कि मैं एल. एल. बी. भी हूँ। वकालत इसलिए नही की कि कोर्ट में सभी कानूनों को गलत साबित करने में कई वकील समर्थ है। हम तो केवल गलत वस्तु को ही गलत साबित कर सकते है। और यह तो साधारण आदमी भी कर सकता है। फिर वकील बनने का क्या अर्थ ?"

"हूँ।"

"क्या ? बोलता क्यो नही ?"

"सोच रहा हूँ।"

"यह भला कब से शुरू किया ?"

"तूने बन्द किया, तब से।"

"तू सोचता रहे, मैं धमाचौकडी मचाता रहूँगा।"

"मैं तेरी धमाल के बारे मे ही सोच रहा हूँ।"

"क्या ?"

"तू बम्बई में ही रुककर एक समाचार पत्र शुरू कर। पाँचेक वर्ष उसके पीछे लगा रहेगा, तो जम जायेगा। पूँजी लगाने की और घाटा न आये इसकी व्यवस्था मैं सँभाल लूँगा। मैंने पिताजी को वचन दिया है कि आवश्यकता पड़ने पर पैसे अवश्य लूँगा। उन्होंने मुझे प्रयोगशाला प्रारम्भ करने की सलाह दी थी। किन्तु मैंने कहा—अभी देर है। तू जानता है कि दानवीर बनने की उनकी बहुत इच्छा थी, इसलिए इस प्रवृत्ति में तुझ-जैसे लोगों द्वारा पैसे बिगडें तो उन्हें अच्छा ही लगेगा। फिलहाल तो पचीस-तीस लाख से काम शुरू करें।"

"तूने जैसा उनसे कहा न कि अभी देर है वैसे ही मेरे लिए भी अभी देर है। और कसम से मैं अपने को इतनी बडी जिम्मेदारी के योग्य नही मानता। अभी तो घूम-फिर लेने की इच्छा है। यह जो नौकरी मिल रही है, रास आ जाये ऐसी है। स्वीकार कर लूँगा। फिलहाल तो अनुभवार्थी रहना ही ठीक है।"

"तू बम्बई में रहे यह अधिक अच्छा है।"

"तू अपनी मरुयात्रा पूरी कर ले, फिर मैं भी आ जाऊँगा। नौकरी करूँगा, तो भी तीन वर्ष से अधिक नही कर पाऊँगा। तू तो जानता है कि मैं एक नौकरी अधिक से अधिक कितने समय तक चला सकता हूँ ?"

"मैं तो तेरे स्थायी होने की बात करता हूँ, और तू लापरवाही से हँसकर उड़ा देता है।"

"हाँ भई, मुझे स्थायित्व पसन्द नही है। थोडे धक्के न हो, थोडी उत्तेजना न हो, आघात-प्रत्याघात का उद्वेलन न हो तो फिर जीने का अर्थ क्या ? अपनी

आबोहवा सदा स्पन्दनशील रहनी चाहिए। सीना धड़कता रहना चाहिए। रक्त तरंगित रहना चाहिए। अनिकेत! स्थायित्व तो केवल शून्य में ही सम्भव है। मैं तो पृथ्वी के साथ अहर्निश गुरुत्वाकर्षण महसूसता रहता हूँ।"

बोलने के बाद उसने अनिकेत के कन्धे पर हाथ रखा और उसे जोर से झिझोड़ने का प्रयत्न किया। किन्तु अनिकेत की दृढ़ गति डगमगायी नहीं। उसने उदयन की ओर देखा तक नहीं।

ट्रेन का प्रथम श्रेणी का डिब्बा।

खिड़की के बाहर का स्थल। मेहसाना से आंबलियासन की दिशा में तीन मील प्रति घण्टे की गति से बाहर की सृष्टि पीछे सरक रही थी। खेत-बाड़, बाड़ों के कोने में और कहीं-कहीं खेतों के बीच वृक्ष, बाजरा गदराया था। पाँच-छह फ़ीट ऊँचे हो गये थे। बीच-बीच में कहीं पर परती ज़मीन भी आती। जो कुछ भी आता, वह पीछे छूट जाता। नज़दीक का जल्दी खिसक जाता है, दूर का आँखों में समा सकता है।

मध्यम वातावरण।

उदयन ने भी पढ़ना बन्द किया।

"मैं समझता था कि तू मेरे साथ नहीं आयेगी।"

"तेरी बात सही है। मैं तेरे साथ नहीं आ रही हूँ।"

"तो क्या मैं अपने सामने किसी की छाया देख रहा हूँ, अमृता नहीं।"

"मैं ही हूँ। तू चाहे जैसे पहचान सकता है। मैं अहमदाबाद रुकनेवाली हूँ, इसलिए कहती हूँ कि तेरे साथ नहीं आ रही हूँ।"

"मेरे साथ न आने के लिए तुझे अहमदाबाद में रुकना पड़ता हो तो मैं वापस चला जाऊँ। तू जा।"

"अहमदाबाद में एक पाण्डुलिपि पर काम करना है, हमारे डायरेक्टर ने कहा है कि उधर जाओ तो इतना काम कर आना।"

"कहाँ ठहरोगी?"

"मैं कहाँ ठहरनेवाली हूँ, इसकी भी जानकारी तुझे रखनी पड़ेगी?"

"हाँ, इसलिए कि कहीं तू एकाएक याद आ जाये तो तेरे पते के साथ तेरी कल्पना कर सकूँ न! विशिष्ट स्थल-काल के साथ की गयी कल्पना चित्त में अधिक समय तक टिकी रहती है।"

"कल्पना करनी ही पड़े तो मेरे अकेलेपन की ही कल्पना किया कर।"

"क्यों, अभी इस डिब्बे में कोई नहीं?"

"लगता है, तुझे कम दिखाई देता है ? मैं तो हूं।"

"मैं तेरे सामने नहीं देखता वरना अवश्य लगे कि तू है।"

"उदयन ! इस पृथ्वी पर कितने सारे लोग हैं अथवा यों कहना चाहिए कि कितने सारे होंगे ?"

"जन-गणना नहीं की जा सकती, क्योंकि आँकड़ा बोलने से पहले ही बदल जाता है।"

"तुझे इस सृष्टि के आदि-अन्त के सम्बन्ध में विचार आते हैं ?"

"अन्त के बारे में विचार आते हैं। इसके आदि के सम्बन्ध में तो इतिहास की बालपोथी में लिखा ही है। किन्तु उस बारे में विचार आये न आये कोई अन्तर नहीं पड़ता। अपने जन्म और मृत्यु की तरह यह भी आकस्मिक है।"

"कुछ भी आकस्मिक नहीं, सभी कुछ क्रमिक है।"

"तो मैं तुझे उठाकर बाहर फेंक दूँ।"

"सरस्वती तो गयी अब साबरमती आये तो फेंक देना।"

"फिर अनिकेत के पूछने पर क्या जवाब दूँ ?"

"मुझे विश्वास है कि अब वह मेरे बारे में तुझसे कुछ नहीं पूछेगा।"

"सीधा तुझसे ही पूछता रहेगा ?"

"तू मुझे अभी बाहर फेंक देगा, तो तेरा उपकार मानूँगी। थोड़ी देर के लिए मुझे मेरे हाल पर छोड़ दे।"

उदयन फिर से पढ़ने लगा।

स्टेशन आया।

कई आवाज़ें 'गरम चाय' का विज्ञापन कर रही थीं। मिट्टी के कुल्हड़ में चाय मिलती है, यह देख उदयन को चाय की तलब हुई। वह जब छोटा था तब एक बार तुरन्त भरे गये पानीवाले सकोरे की किनारी खा गया था। गरम चाय के साथ कोरे कुल्हड़ के सोंधेपन को पीने की उसे इच्छा हुई।

चायवाले ने उत्साह से दो कुल्हड़ भरे। दूसरा कुल्हड़ हाथ में लेते हुए वह बोला :

"मैं नहीं पियूँगी, इन्हें अपने हाल पर छोड़ दो।"

यह मानकर कि ये लोग सिनेमा की भाषा में बात कर रहे हैं, चायवाला अपने दूसरे साथी को बुला लाया। वे लोग यह याद करने का प्रयास कर रहे थे कि यह कौन-सी अभिनेत्री है ? उदयन उनकी परेशानी समझ गया।

"अभिनेत्री तो नहीं है, किन्तु अभिनय जानती है।"

अमृता खीझने को हुई किन्तु हँस पड़ी। उदयन ने उसके सामने चाय का कुल्हड़ रख दिया।

"गरम है ?"

"हां, गरम है। पीने लायक पानी जितनी।"

गाड़ी रवाना हुई।

"पैसे ?"

"लो।"

"खुल्ले नहीं हैं साहब।"

"फुरसत से करा लेना।"

अमृता का हास्य गोगल्स के रंग से मिलकर मनोरम हो उठा। उसे देख उदयन आराम से पढ़ने लगा।

किन्तु बिजली का करेण्ट चले जाने से जैसे अँधेरा हो जाता है, वैसे अ ग़मगीन हो गयी।

उसने अनिकेत का दिया पत्र कल रात पढ़ा था। वैसे तो उसने उसे ‹ न पढ़ने का निर्णय कर रखा था। किन्तु जब अनिकेत उदयन को ढूँढ़ने निक तब वह अकेली नहीं रह सकी, पत्र से अलग न रह सकी।

वह खुद तो एक ही है, तब अपने सम्बन्ध में इन दो व्यक्तियों के परस विरोधी रुखों का वह क्यों अनुभव करती है। या फिर वह विरोध वास्तव विरोध नही है ? अथवा वह विरोध हो तो इसका कारण कौन ? मैं स्वयं हो सकती हूँ। उसने देखा कि उदयन पुस्तक से मुँह ढाँपकर सोने की कोशि कर रहा है।

उदयन को नींद नहीं आयी। बल्कि विचार आया कि यात्रा हमेशा प्रथम श्रे में ही करनी चाहिए। आराम रहता है या फिर अमृता साथ में है, इसलिए फ़स क्लास फ़र्स्ट क्लास लगता। भविष्य में उसकी याद में फ़र्स्ट क्लास में ही सफ़ करना होगा। किन्तु यह केवल इच्छा का ही प्रश्न नहीं पैसे का भी है! सभ यात्रियों के लिए गाड़ी में समान सुविधा क्यों न की जाये ? लेकिन ऐसा हो जा तो लम्बा सफ़र करनेवालों की नींद का क्या होगा ? अधिकतर लोग तो ऐसे है जो सोये हुओं पर आकर बैठेंगे....सब बराबर करने से नहीं चलेगा। समाजवाद सम्भव नहीं—वाद के रूप में सम्भव नहीं। विवेक के रूप में ठीक है।

"अमृता !"

"क्या ?"

"खुशी का समाचार।"

"यह कहते हुए तू खुश क्यों नहीं दिखाई देता ?"

"यह खुश खबर मात्र तेरे लिए है।"

"क्यों ?"

"मैं अब अधिकतर बम्बई के बाहर रहूँगा।"

"यह तो केवल खबर है। इसमें खुश होने जैसा क्या है?"

"कालिदास ने स्त्रियों के बारे में बिलकुल ठीक कहा था।"

"क्या?"

"मुझे याद नही लेकिन कुछ कहा अवश्य था।"

"कालिदास ने केवल स्त्रियों के सम्बन्ध में ही नही कहा, बल्कि उनके पैरो में पड़ते नायकों के लिए भी कहा है। पर यदि वह शाश्वत हो तो तुझ-जैसे क्षणवादी के लिए किस काम का?"

"प्रत्येक क्षण की पीठ पर समग्र भूतकाल का भार होता है। हाँ, उस क्षण के बाद आनेवाले क्षण की मुझे खबर नहीं, और इसके बावजूद मैं जीता हूँ। तुम लोगों की तरह ही। मैं भविष्य को नही मानता। फिर भी जरा कहना तुझको मैं हड़प क्यों न गया?"

"यह कोई तेरे अकेले की इच्छा पर ही थोड़े निर्भर है।"

"तू जो कुछ अभी बोल रही है, क्या सचमुच सत्य है?"

"हाँ।"

"तो मैं तुझे पहचान नही सकता। शायद अथवा अवश्य ही मैं तुझे पहचान नही सकूँगा। अच्छा हुआ कि अनिकेत ने एक वैकेशन शान्ति-निकेतन में गुजारा। और बाग्ला सीख आया। नही तो मैं वे दो पंक्तियाँ कैसे जान पाता? हे नर, हे नारी मैं तुम्हारी पृथ्वी को कभी भी पहचान नही सकता, मैं किसी अन्य नक्षत्र का जीव नही, फिर भी। मुझसे पहले जीवनानन्ददास का भी ऐसा ही अनुभव था। इससे मैं आश्वस्त हूँ। अमृता! आज मैं घोषणा करता हूँ कि मैं तुझे पहचान नही सकता। उस सच्चे आदमी ने मेरे लिए ही लिखा है:

हे नर, हे नारी
तोमादेर पृथिविके चिनिनि कोनोदिन
आमि अन्य नक्षत्रेर जीव नई॥

छह

लोग!

न समझा गया एक शब्द, लोगो द्वारा।

मैं तो समझता हूँ, लोग अर्थात् प्रणालियाँ, कपड़े-लत्ते, कुछ औपचारिकताएँ, समूह में से मनुष्य को निकालने के बाद जो शेष रहे वह।

कहते हैं कि मैं लोगों की अवहेलना करता हूँ। जहाँ मनुष्य ही न हो, वहाँ माना किसे जाये! उद्दण्ड, अहम्‌निष्ठ, अस्वस्थ, नास्तिक...मनुष्य का दमन करने हेतु लोगों के पास शब्दों का अभाव नहीं। उनकी ओर से भेंट किये गये शब्दों को मैं सहज भाव से सुनता रहता हूँ, यह भी उन्हें पसन्द नहीं। उन्हें सुनकर मुझे उत्तेजित होकर अपना बचाव करना चाहिए। तभी तो आक्षेप करनेवालों को अपनी सफलता का अहसास हो सकता है, यदि मैं उत्तेजित होकर जवाब दूँ तो कहेंगे - इतना भी सहन नहीं कर सकता? कैसा टेढ़ा आदमी है? खुद सबको सुनाता रहता है, पर जब सुनने की बारी आये तो व्यग्र हो जाता है? किन्तु मैं व्यग्र होऊँ और ऊपर से सौम्य बना रहूँ, ऐसा तो हुआ नहीं...जो लोग मुझे विरोधी मान बैठे हैं, वे तो मैं कुछ भी बोलूँ, कुछ भी लिखूँ तो भी हर समय विरोध ही करते रहेंगे। उनके एक-एक प्रश्न अर्थात् उनके एक-एक अविश्वास पर मुझे अपनी कैफ़ियत देते रहना है। ऐसा लगता है कि भूगर्भ में चला जाऊँ और सब मुझे भूल चुके हों तभी बाहर आऊँ। किन्तु यह तो पलायन हुआ, ऐसा मुझसे न होगा। मैं कोई अनिकेत नहीं हूँ।

एक परिचित पत्रकार पूछता है—तेरे और अमृता के सम्बन्ध किस प्रकार के हैं? उसे क्या जवाब दूँ?

खुद को मेरा बुजुर्ग माननेवाले एक लेखक ने मेरी कहानी पढ़ी थी। तुम यह सब लिखते हो तो क्या तुम समाज को स्वीकार नहीं करते? मैंने उनसे पूछा—समाज से आपका मतलब? उनके उत्तर से लगा कि समाज अर्थात् वे, उनका परिवार और सम्बन्धी। उनके साथ कहानी पर क्या चर्चा करूँ?

एक पुरानी छात्रा पत्र लिखती है। अभी उसका चौथा पत्र आया था। न मालूम वह क्या लिखती रहती है? कहती है—मैं जवाब क्यों नहीं देता? कौन जाने जवाब के रूप में वह क्या पढ़ना चाहती होगी? और अपने को जताती है, छात्रा!

एक भ्रष्टाचार विभाग का अधिकारी मुझे साक्षी बनाकर ले गया था। लोग पकड़े गये। अब वह अधिकारी मुझे कहने लगा कि मैं अपनी गवाही बदल दूँ, वे लोग खतरनाक हैं, आपको हैरान करेंगे! उसे मेरी कितनी चिन्ता है! कौन खतरनाक? और किसकी चिन्ता?

एक पुराने सहकर्मी के घर गोष्ठी थी। वे अपने को ग़ज़लकार मानते हैं। महफ़िल में सभी ने एक साथ सवाल पूछा—मैं इन्‌हिबिशॅन्स में—निषेधों को नहीं मानता तो फिर शराब क्यों नहीं पीता? मैंने कहा—"आपको ऐसा कोई

व्यसन हो तो इससे मैं आपको हीन नही समझता, किन्तु मुझे ऐसा व्यसन हो तो अपने मूल्यांकन में ऐसी बातों का ख़याल अवश्य ही रखूंगा।" एक शायर बोल उठे—'दकियानूस !' मैंने कहा—"आपने मेरे मुंह की बात छीन ली।" उन्हें जिस तरह समझना था समझे। शायद प्रोत्साहन मिला और जाम को सीने से लगाकर बोले—"पीना हराम है न पिलाना हराम है, पीने के बाद होश में आना हराम है।" वातावरण 'वाह-वाह !' से छलक गया। उनका खाली जाम देख मैं बोला—"पीनेवाले एक-दो होते हैं, मुफ़्त सारा मयकदा बदनाम है।" वे जनाब अपने को 'एक-दो' मे ही रखते थे। मुझे कहना पडा—"ये एक-दो ऐसी बासी चीजें पीनेवालों में से नही।" मैं महफ़िल को सलाम कर चला आया। आप सबका ध्यान रखते रहें, सबको सन्तुष्ट करते रहें तो लोकप्रियता प्राप्त होती है। फिर इस लोकप्रियता को टिकाये रखने के लिए आपको क्या-क्या करना पड़ता है ? यह तो आसानी से समझा जा सकता है। मित्रो ! (हैं कोई ?) 'लोग' शब्द से सावधान रहना अगर आपको 'रहना' हो तो। बाक़ी ग़फ़लत में रहना हो तो अलग बात है। ऐसा करने के लिए सभी स्वतन्त्र है। सबके सामने वह प्रश्न तो है ही—टु बी ऑर नॉट टु बी।

लिखते-लिखते उदयन को प्रश्न हुआ—किस लिए मैंने यह सब लिखा ? यह कोई लेख तो है नही कि लोगो तक पहुँचे...यह कोई पत्र नही कि मित्र इसका उत्तर दे... तो क्या मैं ही अपना श्रोता और मैं ही मित्र !...मित्र ! अर्थात् क्या ? मित्र ! अर्थात् अनिकेत ? किन्तु यह तो उदाहरण हुआ। फिर अनिकेत मित्र बने रहने के लिए कहां राज़ी है ? वह तो मेरा संरक्षक बनना चाहता है।

किस लिए मैंने ऐसा लिखा ? खुद से ही कहने के लिए ? अमीबा-जैसे एककोषीय जीव की कुछ विशिष्टताएँ आदमी में होनी चाहिए। ऐसा होता तो मैं अपने ही कल्पित अर्द्ध के साथ बातों में लग गया होता। अपने अर्द्ध को शंकर की तरह कोई विजातीय बना सके तो कोई कमी न रहे। निज में निमग्न रह सके। क्या अर्द्धनारीश्वर का यह प्रतीक आत्मरति का सूचक नही ? अमृता कहेगी—यह तो अद्वैत का प्रतीक है किन्तु ऐसे कल्पित अद्वैत से मुझे सन्तोष नहीं। और यदि सन्तोष हो तो भी वैचारिक सन्तोष से क्या ? सन्तोष नही तृप्ति चाहिए। 'सेटिस्फ़ेक्शन' और 'फुलफिलमेण्ट' में बहुत अन्तर है।

रात देर तक उदयन सो न सका। उसे अन्धकार में अधिक दिखाई देता है। रतौंधीवालों से उसकी स्थिति एकदम विपरीत है। उसे रात में ही अधिक दीखता है।

पश्चिम ओर की खिड़की के पास कुरसी ले जाकर हाथ पर सिर टिकाकर,

वह खिड़की के पार देखने लगा। वह नक्षत्रों को नहीं देख रहा था। नक्षत्रों के ऊपर-नीचे का आकाश भी उसे नहीं दिखाई पड़ रहा था। दीख रहा था—केवल अन्तराल। यह अन्तराल नीचे की ओर समुद्र तक फैला हुआ था। इस समय उदयन को समुद्र ठोस अन्धकार के रूप में दिखाई दिया।

जब-जब उदयन ने खिड़की के बाहर देखा है, तब-तब उसे सबसे पहले समुद्र ही दीख पड़ा है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह निरा साधारण ही दिखाई दिया है। कभी रंग बनकर, कभी विस्तार बनकर, कभी सभरता के रूप में, कभी आवाज़ के रूप में, कभी शून्य के रूप में...समुद्र के साथ उसका सम्बन्ध अनादि है।

इस समय समुद्र उसे अन्तराल के रूप में दीख पड़ा।

समुद्र पर से वह वापस अन्तराल में पहुँच गया।

अन्तराल में उसकी दृष्टि को आधार मिला....यह आधार उसकी दृष्टि से ही जन्मा होना चाहिए। इस आधार ने उदयन को किसी अचेतन, अर्द्ध- जागृति में पहुँचा दिया।

आकाश के केन्द्र में से एक कमलपत्र चमक उठा। मानो चमकते नील के काँच में से वह रचा गया हो। उसमें रोशनी नहीं, तेज था।

उसके बाद कमलपत्र के केन्द्र में से एक फ़ौव्वारा फूटा। यह फ़ौव्वारा फ़ीट ऊँचा उछलकर धीरे-धीरे मन्द होता गया और गोलाकार रूप में बिखर फैलने लगा। फ़ौव्वारा सिकुड़कर सघन होता गया। एक अबोध पल में उ एक पद्म में रूपान्तर हो गया।

बन्द पद्म विकसित होने लगा। केवल चार पंखुड़ियाँ फूटीं। ये पंखुड़ियाँ चारों दिशाओं के बदले चार कोने सूचित करती थीं।

वायव्य की ओर संकेत करनेवाली पंखुड़ी पर एक अभिराम आकार हुआ, वह एक शिशु था। मानो अनाविल शैशव-शिशु से भी अधिक स्वैरा और सम्मोहक। पीछे मुड़कर भूतकाल की अनन्त खाई में कहीं भटक गये शैशव को देखने की अभिलाषा जागी। उसे रोके रखा। उसे डर था कि उसे देखने में, जो सामने है वह भी अदृश्य न हो जाये और इतना सोच की देर थी! हुआ भी वही। विचार से मुक्त होकर देखता है। तब र वह शिशु विस्तार पाकर केवल आकारवत् हो गया। यह आकार अपना ते कर रहा था। अधिक विस्तार प्राप्त करने पर वह मन्द-स्फीत बन गया लगा कि मोम की मूर्ति-जैसा वह आकार उसकी शरीर रचना से मिलता है। उसके लिए छाया का नहीं वेदना का परिवेश है। वह वेदना को पा का प्रयास करने लगा। आत्मसात् करने की कोशिश में तो वह आकार पि

टपकने लगा। ऐसा लगता था मानो एक-एक बूँद नीचे आते-आते बादल बनती जा रही हैं।

यह भ्रम है या कुछ और? क्योंकि बादल का जन्म तो समुद्र से ही होता है।

विचारों की इस सजगता को त्यागकर वह देखता है कि आग्नेय दिशा-वाली पंखुडी पर अँगूठा रखे, एक विशालकाय पुरुष आकर खड़ा है। उसके कन्धे से थोडा खिसका हुआ, कमर तक लटकता सफेद उत्तरीय सरस्वती मन्दिर के वितान के काम आने-जैसा था। उस पुरुष की धोती की कलात्मक चुन्नटें भगवान् कौटिल्य को याद दिलाती थी। हाथ के ग्रन्थ पतंजलि की-सी सावधानी से पकड़े हुए थे। बायें हाथ में कालिदास के स्वभावानुरूप आम्रमंजरी थी। उदयन को लगा कि यह तो वह खुद ही है। अपना यह रूप देख वह मगरूर हो गया। और स्वाभिमान दूसरी पखुडी पर पैर रखने को हुआ। उसका स्पर्श होते ही उसकी पार्थिवता और सजग वृत्ति का भार न सह सकी। वह पंखुडी टूटी नही, झुक गयी। उदयन नैऋत्य दिशा में गिरा। अगस्त्य मुनि द्वारा पी जाने के बाद सूखा पड़ा समुद्र धधक रहा था। उदयन धीरे-धीरे गिर रहा था। उसे लगा कि वह गिर नही रहा वरन् उतर रहा है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अधिक न था, फिर भी उसके अनुभव से उसे आनन्द हुआ। ठेठ नीचे पहुँचने पर मरु सदृश समुद्र देखकर वह क्रोधित हुआ। एक बार तो मनुष्य की अदम्य प्यास ने समुद्र को रेगिस्तान में बदल दिया है, और फिर से भला यह स्थिति किसने सृजन की। उसका क्रोध बढता गया। और क्रोधित हो जाने पर वह विश्वामित्र होकर अगस्त्य मुनि को भला-बुरा कहने लगा। उसी ने यह युक्ति ढूँढ निकाली थी। समुद्र को पीकर उसी ने सर्वप्रथम मरु बनाया था। क्या समझता था वह अपने मन में? लोपामुद्रा-जैसी सौम्या, विदुषी को छोड़कर चला गया। प्रवंचक! विन्ध्याचल के विस्तार को रोककर गया फिर वापस ही नही आया। ये सब खूसट बुड्ढे विकासशील युवकों को—पर्वत की भाँति गर्वोन्नत युवकों को, वचनबद्ध कराकर छलते हैं। अँगूठा कटवाकर अपने गुरुपद की रक्षा करते हैं। शिखण्डियों को आगे रखकर उनकी आड़ से लड़नेवाले पराक्रमी बन बैठते हैं।.. छोड़ो! ये सब वैराग्य की बातें। बातें छोड़ो और जियो...फिर बातें छोड़ो और जियो...यह सूत्र बोलते-बोलते विश्वामित्र से चारवाक बन गया और वह तीव्र वेग से इतिहास को रौंदते हुए आगे बढने लगा। कही भी कीर्तिस्तम्भ दिखाई पडता तो वह रास्ता बदलकर वहाँ पहुँचता और उसे बायें पैर से ठोकर मारता। स्तम्भ के टुकड़े इधर-उधर उछलते और गहरी खाइयों के अन्धकार में जा गिरते। हाथ बढ़ाकर वह उनपर लिखे विजय लेख मिटा देता था। कीर्तिगाथाओं की रक्षा

करते पुस्तकागारों को फूँक मारकर भस्म कर डालता था। एक-एक क्षण पर वह अट्टहास कर उठता। मार्ग में पड़नेवाले पर्वत उसे शंकर की समाधि से मालूम देते थे, यह देखकर उसके चरणों का बल बढ़ता था। विजयलेख...कीर्ति-गाथाएँ...मनुष्य का खून बहाकर विजयी बननेवालों की भला कीर्तिगाथा? उसके अभ्यन्तर से शब्द निकला। मेघ गर्जना-सा वह बोला—"हे मानवजाति! युद्ध आत्महत्या नहीं तो और क्या है?" उसका स्वर बिखर गया। सामने से कोई प्रतिघोष नहीं उठा। कोई सुननेवाला न था, कारण कि इतिहास में कोई उपस्थित नहीं होता—मात्र इतिहास ही होता है। वह भी अनेक भ्रमों के समुच्चय के रूप में। कोई प्रतिशब्द न हुआ तो वह चारों ओर देखने लगा। ईशान की ओर देखने लगा तो एकाएक काले बादल सुलग उठे। धुआँ, आग और हवा ने कैसा रूप धारण किया था। जहाँ उसका वर्तमान अब इतिहास बन गया है, उस मानवजाति के सबसे बड़े श्मशान—हीरोशिमा की ओर गयी अपनी दृष्टि के पीछे-पीछे वह दौड़ पड़ा किन्तु रास्ते में दिखाई पड़ते अन्य अनेक श्मशानों की वह अवहेलना नहीं कर सका। कुरुक्षेत्र में ठण्डी पड़ी राख की चुटकी भर उसने अपनी बायीं भृकुटि रंगी और वह सम्पूर्ण उदयन बन गया। वह धरती पर पैर रखकर चलने लगा। चलते-चलते वह श्मशान के राजमार्ग पर पहुँचा। उसके अस्तित्व में से एकाएक उग्र रिक्त अलख पुकार जगी। वह आगे बढ़ा। वह समझ न सका कि वह अन्धकार के पहाड़ों की तलहटी में उतर रहा है या अतलान्त खाई में। उसे पता नहीं चल पाया कि दिन है या रात। सभी कुछ धूमिल और धुँधला था। तभी वह समतल भूमि तक पहुँच गया। अन्धेरे में भी उसे कुछ आकार दीख पड़े, वे वृक्ष थे। आगे बढ़ने पर वृक्षों के झुण्ड आये। दोनों दिशाओं में से एक साथ हवा आ रही थी, पश्चिम से नमीयुक्त, शीतलता-भरी हवा, तथा उत्तर की ओर से सूखी शीतल स्फूर्ति-भरी। एक के स्पर्श में नशा था दूसरी के स्पर्श में स्फूर्ति थी। वह पुलकित हो उठा। उसे संलग्न वृक्षों की निविड़ छाया के अपारदर्शी अन्धकार में तैरते जुगनुओं के पंखों की चमक देखने को मिली। इस चमक की क्षणिकता से आश्वस्त हो वह आगे बढ़ा।

अब वह एक मृत पर्वत के सामने खड़ा था। उसकी निर्जन और घनी काली चट्टानों के केन्द्र में उसे अपने समकालीन मनुष्य की आँखें जकड़ी हुई लगीं। उसने शब्द के वज्राघात किये। उसके शब्द टूट गये पर चट्टान नहीं टूटी। विफलता के प्रत्याघात से उसका अभिमान प्रज्वलित हो उठा। शिखा काँपने लगी। उसके होठ पर अंगारे की चमक आ गयी। उसकी बाहुओं में अन्धे धृतराष्ट्र का बल आ गया। उन सब चट्टानों को आलिंगन में भरकर चूर्ण-चूर्ण कर डालने की उसकी इच्छा हुई। किन्तु उसे लगा कि दूर की कोई वस्तु उसे

बुला रही है। उसके लिए अपने को रोक सकना सम्भव न था।

अब उसकी गति में भगवान् नृसिंह का आक्रोश था, आँखों में परशुराम की संकल्प शक्ति थी, भाल पर विद्रोह का ताम्रपत्र जड़ा हुआ था। इस ताम्रपत्र में अपना प्रतिबिम्ब देखकर रास्ते में पड़नेवाले गाँव के गाँव काँप उठते थे। वह समस्त जनपदों का त्याग करता-करता आरण्यक भूमि तक पहुँच गया। सूखे महासागरों का निराश्रित बड़वानल उसके वक्ष-कवच को तोड़कर बाहर निकलने के लिए कसमसा रहा था। उसकी आँखों में पुतलियों के स्थान पर अब दो शनीचर घूम रहे थे। वीरान चट्टानों से पटी भूमि पार करता-करता लदे हुए खेतों के दृश्य से राहत अनुभव करता, आम के बगीचों और चीकू की बाड़ियों को देख मृत चट्टानों को माफ़ कर सका। उसे ध्यान आया कि वह जिस पर गुस्सा हुआ था वह तो मृत सृष्टि है। ऐसी सामान्य बात में वह भ्रम में पड़ गया? और वह पागल की तरह हँस पड़ा। उसके हास्य की तीखी तरंगें सामने के अरब सागर के उतरते ज्वार में बह गयीं। शायद समुद्र उसे आता देखकर पीछे हट गया था, किन्तु नहीं। समुद्र तो बड़ा उदार है। वह अपनी लहरों में भीकर उछाल-उछालकर उदयन के निर्वेद को सन्तृप्त करने लगा। उसने देख लिया था कि यह आदमी अकेला है, सबसे अलग है। आजकल जब मरीन ड्राइव के बँधे किनारे से टकराकर उछलती लहरों की छलक से बचने के लिए सभी दूर चले जाते हैं तब यह आदमी तो अपनी छाया को पानी में डालकर बैठा है। भीगने से इसे एतराज नहीं।

उदयन बैठा ही रहा। एक ओर कृत्रिम रोशनी और दूसरी ओर उछलता आर्द्र अन्धकार। दोनों के बीच भेदक रेखा बनकर बैठा है वह। रोने के अनुभव के अभाव के कारण उसकी आँखों की रिक्त शुष्कता अमावस्या की रात्रि से भी अधिक रात्रिमय थी। वह रात्रिमयता निहार रहा था। तभी सामने से एक सुन्दर छाया पानी पर चलती-चलती उसकी ओर आने लगी। उसके सम्मान में समुद्र की लहरें समतल हो गयीं। यह छाया केवल छाया मात्र न थी, किसी अस्तित्व का रहस्यमय रूप था। उसने सम्बोधन किया—

"समग्र युग को अमावस्या मान बैठनेवाले चक्रवाक! यह तेरा निर्वेद नहीं असन्तोष है, अतः विलाप है। उठो! अनेक विद्रोही सर्जकों के विलोपित स्वप्न इस धरती पर तेरी प्रतीक्षा करते हैं। इन स्वप्नों की वेदना को अभी शब्द नहीं मिल पाये हैं। तेरा शब्द उनके लिए है। तू क्यों शब्द को शस्त्र मानने लग गया? तेरे सामने जो हो वह तो मात्र सीमित पार्थिवता है। तेरे शब्द-ब्रह्माण्ड में सोलह-सोलह सूर्य भासमान हैं। वहाँ कुछ भी बाधित नहीं। सब कुछ पूर्ण है, विपुल है, अनन्त है। तेरी प्रतीक्षा वहाँ हो रही है। उठो जागृत हो...."

दायें हाथ पर से सिर झुक जाने से उदयन चौंक उठा। उसका हाथ सुन्न हो गया था। जड़वत् बन गया था। उसे लगा कि उसकी आँखें नींद में भी खुली रह गयी थीं। शायद वह सोया ही नहीं था। यह सब तो जागृत का ही विहार, सर्जकता के अणुओं की लीला!

वह खड़ा हुआ। उसे लगा कि इस समय तक पूर्व दिशा में धूमकेतु उग आया होगा। किन्तु इस मकान की तो पूर्व दिशा ही नहीं। व्यग्र होकर बैठ गया। वह सोचने लगा कि अभी जो अनुभव किया है उसे विषयवस्तु बनाकर एक लम्बी कहानी लिखी जा सकती है। इस कहानी के दो खण्ड रखे जायें। पहले खण्ड के अन्त में हिरोशिमा का वर्णन करना चाहिए। और फिर तुरन्त मध्यान्तर। फिर देखा जाये कि मध्यान्तर के बाद कहानी कितनी आगे बढ़ती है। कहानी को अन्तहीन छोड़ दिया जाये। पाठक अपने मनोनुकूल अन्त देख सके। जो लोग भविष्य में विश्वास करते होंगे, वे अन्त को दूर ही दूर धकेलते रहेंगे। भविष्य, कहाँ है भविष्य? जो है वह तो वर्तमान तक फैला हुआ भूतकाल का अजगर है। वर्तमान के रूप में प्रकट होते प्रत्येक क्षण को वह अपने श्वास के साथ खींचकर अपने पेट के तल में पहुँचा देता है। आसानी से समा लेता है। थोड़ा-बहुत जो उसकी जीभ पर रह जाता है वह कुछ समय तक देख सकनेवाले को दिखाई देता है।

सिगरेट जलाकर वह पलंग पर लेट गया। उसे लगा कि पलंग बहुत बड़ा है। इसलिए खाली-खाली लगता है।

उदयन अधिक नहीं सो पाया। सुबह दस बजे के क़रीब उठा। पलंग से नीचे पैर रखते ही उसे लगा कि अमृता अब तो आ गयी होगी। दो हफ़्ते बीत गये। वह तैयार हुआ। लिफ़्ट का बटन दबाया किन्तु जल्दी के कारण सीढ़ियाँ उतरने लगा। टैक्सी ली। 'सिक्का नगर।' चूँकि वह अमृता से मिलने जा रहा था अतः रास्ते में सभी ओर से आँखें मूँदे रहा।

दरवाज़ा खुला था।

"अमृता आ गयी?"

"जी, अन्दर खाना बना रही है।"

"वह क्यों बना रही है?"

"काम में मन लगाना चाहती है।"

"तो फिर तुम क्या करोगी?"

"बहुत काम है। खरीदी, सफ़ाई, अतिथियों का स्वागत-सत्कार। आपके लिए पानी ले आऊँ?"

"नहीं, अमृता से बोलो कि मैं आया हूँ।"

"जी, बोलती हूँ। शायद उन्होंने आपकी आवाज सुन ली होगी।"

बुढिया रसोई-घर से लौट आयी। अमृता को न आता देख उदयन ने पूछा—

"क्या कहा उसने ?"

"कहा—'अच्छा' !"

थोड़ी देर बैठे रहने के बाद पुस्तकें पलटने लगा। पुस्तक मे देखते-देखते वह अनुभव करता रहा कि यह अनिकेत का मकान है।

पुस्तकें देख चुकने के बाद वह बग़ल के कमरे में गया।

कमरे से लौटकर वह झूले पर बैठ गया।

झूले पर बैठे-बैठे उसने सिगरेट सुलगायी। एक पूरी हुई, दूसरी पूरी हुई। तीसरी सुलगायी और वह खड़ा हो गया। नीचे देखता हुआ ज़ीना उतरने लगा।

कार पर उसकी दृष्टि पडी। अगला दरवाज़ा बन्द होने के बावजूद तीनेक इंच खुला रह गया था। उसने धीरे से हॉर्न बजाया। बुढिया ने खिड़की से झाँका।

"यह कांच बन्द नही है।"

बुढिया ने क्या उत्तर दिया यह स्पष्ट नही सुनाई दिया, किन्तु वह समझ गया। बगलवाली खिडकी से झाँकता अमृता का चेहरा दीखा। दृष्टि मिलते ही उसके पैरों में गति आ गयी। रोड पर टैक्सी खडी थी, वह बैठ गया।

"कहाँ जायेंगे, साहब ?"

"तुम्हारी इच्छा किधर जाने की है ?"

"आप कहें नही तब तक मुझे पता नही चल सकता।"

"चलो, रवाना तो करो।"

उदयन को याद आया : "कहाँ जायेंगे ?" जवाब दिया—"जहाँ भाग्य ले जाये वहाँ।" अब मुझे कहना होगा—"यन्त्र ले जाये वहाँ।" होटल देखकर उसने टैक्सी रुकवायी। खाया, चलने लगा। पुस्तक की दुकान पर गया। 'पेपर बैक्स' में आयी नयी पुस्तकें खरीदी। सन्तोष न हुआ तो फिर से पुस्तकें देखने लगा। एक लम्बी युवती ने आकर एक ही साथ पुस्तकों पर नजर घुमाना शुरू किया। उदयन ने देखा और ग़ौर किया कि कैसी पुस्तकें खरीदती है ? हाँ, वही है। लेक्चरर थी, आज क्या होगी, मालूम नही। वह पुस्तकें देखते-देखते बात कर रही थी। जो पूछना होता, पूछती रहती थी। अपने को सबसे अलग रखकर गौरवशाली बने रहना चाहती थी। वह किर्केगॉर्द, दोस्तोयवस्की, नीत्शे, हेइगर, सार्त्र और कॉफ्का की पुस्तकें माँग रही थी। चार-पाँच पुस्तकें निकली। शेष के लिए पुस्तक विक्रेता ने मँगवा देने का आश्वासन दिया। किन्तु वह विदुषी

तो चार दिन के बाद 'अस्तित्ववाद' पर एक क्लब में बोलने का वचन दे चुकी थी। उसने सविस्तार बात की। उदयन उसकी ओर पीठ किये बातें सुन रहा था और मुसकरा रहा था। मन में कहा—हे देवीजी! जिस विषय को पढ़ा न हो उसपर बोलने की स्वीकृति कौन दे सकता है? इससे तो आमन्त्रित करनेवालों के स्तर का भी पता चलता है।

अफ़सोस करते-करते वह चार पुस्तकें और शेष पुस्तकों का सूची पत्र लेकर जाने लगी।

"मेरे पास ये सभी पुस्तकें हैं, आपको चाहिए उससे भी अधिक। यास्पर्स मार्शल और कामू की पुस्तकें भी हैं। आपको चाहिए तो..."

"आपको देखते ही पूछने की इच्छा हुई थी मिस्टर उदयन! आपका बहुत-बहुत आभार। मैं आपकी कहानियाँ पढ़ती हूँ।"

"आभार।"

"तो ..."

उदयन के साथ निगाहें मिलने पर वह अधिक बोल न पायी।

"आपको पुस्तकें कब पहुँचा दूँ?"

"मेरे पास गाड़ी है। आपको एतराज़ न हो, तो अभी ही ले जाऊँ।"

गाड़ी में बैठने के बाद उदयन कुछ बोला नहीं। उसे लगा कि वह थोड़ा भी बोलेगा तो यह 'मिस' या 'मिसेज़' संवाद को बढ़ाती रहेंगी।

"मेरी एक प्रार्थना है।"

"मुझ-जैसे सामान्य आदमी से प्रार्थना नहीं की जाती।"

"सामान्य दीखते तो नहीं।" उसने निश्चित कर लिया कि उदयन सामान्य तो नहीं है। "मेरी जगह यदि आप बोलें तो कितना अच्छा हो।"

"इस क्लब में तो आप ही बोलें, यही उचित है। वहाँ तो आप पढ़े बिना ही बोलेंगी तो उन लोगों को अधिक समझ में आयेगा।"

उन्होंने समझा कि उदयन ने उनकी प्रशंसा की है। वे मुसकरायीं और फिर होठों पर जीभ फेरकर उन्हें भींच लिया।

मानवमन्दिर रोड आ गयी।

"हाँ, यहीं पर कार रोकिए। आपको अधिक इन्तज़ार नहीं करना पड़ेगा। पाँचेक मिनट में आ जाऊँगा।"

उन्हें बुरा लगा। कार को साइड में लिया।

उदयन ने दो बाल्टी-भर पुस्तकें लाकर कार की पिछली सीट पर उड़ेल दिया। दोनों बाल्टियाँ एक हाथ में पकड़कर बोला:

"बोलना, न बोलना तो ठीक है, मगर रुचि जगे तो इन्हें पढ़ना। पाँच-छह

माह में आराम से पढ सकोगी। और पढने के बाद वही बोलो तो मुझे बताना। मैं सुनने आऊँगा। हालांकि, अच्छी तरह पढ़ लेने के बाद आपकी भी 'अस्तित्व-वाद' पर बोलने की इच्छा शायद ही बची रहेगी।"

"आपने तो घर भी नही बताया ?"

"मेरा घर, किसी सम्पन्न और स्वस्थ युवती को देखकर बेचैन बन जाता है। आपका योग्य स्वागत न हो सके तो मेरा अतिथिधर्म भी दूषित हो जायेगा।"

"तो ये पुस्तकें आपको लौटाने मैं कब आऊँ ? इन्हें लेने भी आप इसी राजमार्ग पर आयेंगे न ' मैं एकाध महीने में पढ लूँगी। इसमें कुछेक तो मेरी पढी हुई होंगी।"

कौन-कौन-सी पढी है ? पूछने का मन हुआ किन्तु मन ही मन हँस लिया।

"मैं थोड़े ही दिनों के बाद बाहर जानेवाला हूँ, आप पुरातत्त्व मन्दिर में अमृता को दे देना।"

"अमृता ! सुन्दर नाम है।"

"सम्पूर्णतः सुन्दर है। उससे मिलेगी तो प्रेम में पड जायेंगी।"

"ओह ! आभार !...आभार...अच्छा आना।"

कार स्टार्ट हुई। रवाना होने से पहले दो फुट पीछे हटी...बेचारी को थोड़ा तो पढना ही पड़ेगा...बालटियाँ हिलाता-हिलाता वह चलने लगा। कार घूमकर वापस आयी।

"आप कब बाहर जानेवाले हैं ?"

"कुछ निश्चित नही, पर जानेवाला हूँ यह तय है।"

"मैं पुस्तकें आपको ही लौटाऊँगी। नाहक अमृता को चिन्ता हो, यह भला कौन ?"

"नही, वह तो राहत अनुभव करेगी...ऐनी वे—जैसा आप उचित समझें, नही लौटायेंगी तो भी चलेगा। अच्छा !"

इसको भला मैंने क्यों पुस्तकें दे दी ? प्रचार करती फिरेगी कि उदयन ने मुझे पुस्तकें दी। पहले रईस होने का कैसे दिखावा करती थी ? अब कौन उसे डिस्टर्ब करे ? नही तो पन्द्रह दिन में शान ठिकाने लगा दूँ। बता दूँ कि देवीजी कितने पानी में है ? विद्या के नाम पर भी फ़ैशन....। अध्ययन और वक्तव्य की भी व्यसन के तौर पर स्वीकृति ?...वंचना कितनी सहज हो गयी है ? और कहानी का जन्म।

किसी अपरिचित के नजदीक से गुजरने पर स्थिर खड़े व्यक्ति की आँखों में क्षणिक कौतूहल पैदा हो—यह बात समझ में न आने-जैसी नहीं। अमृता यह समझ सकती है कि विजातीय को देखकर युवा आँखें सजग हो उठती हैं। किन्तु कॉलेजों के सामने खड़ी भीड़ में उसे देख जो तहलका मच गया है, उसका क्या अर्थ हो सकता है ? कैसी लापरवाह चंचलता ! मानो छोटे-छोटे पिरामिडों पर बिजली गिर पड़ी हो। दो कॉलेजों के सामने उसे एक-सा अनुभव हुआ। तो क्या इसमें यहाँ तालीम दी जाती है। वह वहाँ से पैदल गुजर रही थी। उनके वाचिक और आंगिक नखरे देख वह स्तब्ध हो गयी। तो क्या यह बम्बई और अहमदाबाद का भेद प्रकट करनेवाला कोई लक्षण है ?

अमृता को खेद हुआ। वह जानती थी कि यहाँ तो कोई युवती गुजरे और उसे इस तरह का 'रिस्पान्स' मिले तो वह गुस्सा करने के बजाय अपने सौन्दर्य की 'अपील' की स्वीकृति समझेगी।

एक दूसरे कॉलेज में वह व्याख्यान देने गयी थी। उसकी सहपाठिन वहाँ अध्यापिका थी। टैक्सी की प्रतीक्षा में वह टाउनहाल के सामने खड़ी, किन्तु बस आ जाने पर वह उसमें बैठ गयी थी। यहाँ आने के बाद वह रिक्शा में एक ही बार बैठी थी।

रिक्शा की आवाज और हिचकोले उसे त्रासदायक लगे थे।

बस में से उतरकर वह पैदल ही कॉलेज तक गयी। प्रवेशद्वार तक का रास्ता उसने निगाह नीची कर पार किया। उसने कोई शिकायत न की। स्वागत हुआ। समय होने पर उसे सभागृह में ले जाया गया। प्राचार्य प्रमुख थे। अमृता की अध्यापिका मित्र ने परिचय दिया—"कुमारी अमृता के नाम से बम्बई के शिक्षण जगत् में तो शायद ही कोई अपरिचित होगा ? इनका कैरियर उज्ज्वल रहा है। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि केवल इसीलिए ये प्रसिद्ध हैं। एक बार जब ये सन्तरण-स्पर्द्धा में विजयी हुई तब 'बाँध' पर ली गयी इनकी तसवीर की प्रतियाँ काला बाजार में बिकी थीं।"

अमृता सबके साथ हँस न सकी। प्रशंसा सुनकर शरमायी भी नहीं।

"मैंने इनका अभिनय देखा है। मुझे आज भी याद हैं वेणी संहार के कुछ दृश्य। कर्ण के रूप में श्री उदयन का अभिनय और द्रौपदी के रूप में कुमारी अमृता का अभिनय आज भी मेरे चित्त से हटा नहीं। यह तो केवल बाहरी परिचय हुआ। इनका वास्तविक परिचय तो यह है कि ये एक विदुषी हैं। पारिवारिक सुख-सुविधाओं का उपयोग इन्होंने अपने अध्ययन में ही किया है, विशेषकर प्राचीन भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व और संस्कृत भाषा-साहित्य का इनका अध्ययन इनके लेखों में छिपा नहीं रहता। ये अँगरेजी में भी लिखती हैं।

आप एक सफल वक्ता हैं, इसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। आप सभी जानते हैं, ऐसा मान लेती हूँ। आप सबकी इतनी संख्या में उपस्थिति ही इसका द्योतक है। मैं इनसे अपना व्याख्यान आरम्भ करने की प्रार्थना करती हूँ। इनका आज का विषय है—'प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी'।"

अमृता खड़ी हुई कि श्रोता तुरन्त ही आमूल द्रष्टा बन गये। सबको सम्बोधन करने के बाद वह बोली—

"इतनी अधिक संख्या में आप सब मुझे सुनने के लिए उपस्थित हुए हैं इसके लिए आप सबकी आभारी हूँ। और साथ ही साथ इतनी अधिक संख्या में आपको देखकर मुझे अपने अध्येता होने के बारे में सन्देह होता है। किसी भी अध्येता को सुननेवालों की संख्या मैं जानती हूँ....आप लोगों की उपस्थिति का रहस्य भी मैं जानती हूँ। इसकी स्पष्टता करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ आपका अनादर करना मेरा अभिप्रेत नहीं है।"

श्रोताओं के चेहरे पर भिन्न-भिन्न तरह की मुसकराहट दौड़ गयी। छात्राओं-वाले कोने में थोड़ी कानाफूसी भी शुरू हो गयी।

" 'प्राचीन भारतीय नारी' विषय पर बोलने का प्रारम्भ यहीं से हो जाता है। पुरुष ने इस नारी को सुना नहीं, देखा है। समझा नहीं, सँभाला है। पुरुष को नारी को पहचानने में दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए उसने इसे परम रहस्य कहकर उसका अभिवादन किया है। वास्तव में तो गौरवान्वित करने के बहाने उसकी सत्ता की उपेक्षा की है। इस बारे में आज भी कुछ नया कहने-जैसा नहीं है।

शकुन्तला को अनाघ्रात पुष्परूप में देख सौन्दर्यपिपासु दुष्यन्त भारी चिन्ता में पड़ गये थे। विधाता किसे इसका भोक्ता बनायेगा? भोग्य और भोक्ता—नारी और नर के लिए उपयोग किये जानेवाले ये विशेषण उस काल में भी व्यतिक्रम प्राप्त किये हुए देखने को मिलेंगे। मैं यहाँ यम-यमी के संवाद की याद नहीं दिलाना चाहती। उस युग में यौन सम्बन्धों पर पुरुष-स्त्री में से किसका वर्चस्व था, यह निश्चित करके नारी का स्थान समझने का प्रयास करना निरर्थक है। क्योंकि यह तो स्वीकार करके चलने की बात है। यह तो सामान्यमेतद् है। यह अनुसन्धान का विषय नहीं हो सकता। किन्तु आज उस युग की नारी के सम्बन्ध में विचार करते समय विचारक, अध्येता यौन सम्बन्धों की चर्चा को अग्रस्थान देते हैं क्योंकि स्त्री-पुरुष-अस्तित्व को समझने का दृष्टिकोण अब भी सीमित ही है। प्राचीनकाल में भी यही स्थिति थी। विचार कीजिए—स्पष्ट होगा कि महाकवि एक मुद्रिका के प्रतीक में समा सके बस इतना ही शकुन्तला के स्मरण का अंकन किया है। दुष्यन्त के प्रतापी नामवाली मुद्रिका पानी में गर्क

गयी और शकुन्तला का समग्र अस्तित्व शून्य हो गया। वह भुला दी गयी। मूलकथानक में तो दुष्यन्त ने शकुन्तला को भूलने के लिए मुद्रिका का बहाना भी न ढूँढ़ा। इस युग में पुरुष की समष्टि भीरुता ने नारी के साथ अन्याय किया है।

नाटकों में स्त्री प्राकृत बोलती है। संस्कृत और प्राकृत में संस्कृत ऊँची और प्राकृत नीची भाषा है, ऐसा आज के भाषाशास्त्री नहीं कहेंगे, किन्तु नाटककार तो उस युग की मान्यताओं के वशवर्ती थे कि स्त्री का संस्कृत बोलना उसके अधिकार के बाहर है।

स्त्री के भाग्य का निर्णय करने बैठे मनु भगवान् ने उसके स्वातन्त्र्य को तो ताक़ पर रख दिया। इतना ही नहीं उन्होंने तो स्वातन्त्र्य के निषेध का भी निर्देश किया, भले ही उसके पूजने की बात की। पूज्य बनने के बजाय नारी स्वतन्त्र होना अधिक पसन्द करती है, पर उसे पूछे कौन?

आम्रपाली इतनी अधिक सुन्दर थी कि उसे सामाजिक सम्पत्ति बना दिया गया—नगरवधू बना दी गयी। नारी अपने सौन्दर्य का विज्ञापन नहीं चाहती, किसी हृदय में प्रतिष्ठित होना चाहती है और वह भी समर्पण द्वारा। फिर अपने प्रेम का वात्सल्य में रूपान्तर चाहती है। प्राचीन युग में किसी नारी ने अपने आँसुओं के बलबूते पर यह सब प्राप्त भी किया है पर अपवाद रूप में ही। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि प्रेम और समर्पण में नारी की समग्रता नहीं आ जाती, उसकी भी जिज्ञासा होती है, आकांक्षा होती है। मैत्रेयी क्या पूछती है? याद करो। उसे तो उत्तर मिला, पर गार्गी को तो सुनना पड़ा कि तू इतने अधिक प्रश्न न कर, तेरा सिर फट जायेगा। यह कोई सामान्य अपमान नहीं है। पण्डितों ने ऐसे मामलों में नारी हृदय की कोमलता की बात उठाकर विचारों के भार के नीचे दब जाने से उसकी रक्षा की है। यह भी एक तरह का निषेध है, जो नारी को आत्मनिर्णय के मार्ग पर बढ़ने से रोकता रहा है। इसी कारण प्राचीन साहित्य में नारी का अस्तित्व उसकी समग्रता में अभिव्यक्त नहीं हो सका है—यह कहने के पर्याप्त कारण हैं।

महामानवों के संशय को दूर करने के लिए अग्निपरीक्षा भी कम पड़ी और निर्दोषिता सिद्ध न हो सकने पर अन्त में धरती में मार्ग ढूँढ़ना पड़ा और यह अग्निपरीक्षा लेनेवाले की उदारता भी कैसी? किन्तु वह तो भगवान् का अवतार! भगवान् ने सभी अवतार पुरुष रूप में ही लिये हैं। एक अर्द्धनारीश्वर की कल्पना इसमें अपवाद है, किन्तु अध्येतागण इसका क्या अर्थ करते होंगे? यह एक प्रश्न है।

कर्ण से वंचित द्रौपदी की सर्वानुमति से क्या दुर्दशा हुई यह तो आप जानते ही हैं। वासवदत्ता और वसन्तसेना को लेखकों की सहानुभूति अवश्य मिली थी

किन्तु उनके युग की नहीं।

उस युग के समाज का विचार करने पर लगता है कि स्वाधीन होना चाहती नारी और आधिपत्य त्याग न करने को उद्यत पुरुष में विरोध है, किन्तु इस विरोध की साहित्य में कही भी निःशेष अभिव्यक्ति नही हुई है।

यहाँ नारी की स्वाधीनता की बात करके मैं दाम्पत्य जीवन से मुक्त होने की बात नही करती। नारी की स्वतन्त्रता क्या है? यह मैं अन्त में बताऊँगी। अब एक के बाद दूसरे युग की चर्चा करके अपनी बात को स्पष्ट करती हूँ—

अमृता का व्याख्यान घण्टे-भर चला। सभाखण्ड में अपूर्व शान्ति रही। प्रमुख महोदय को थोड़ा-बहुत संस्कृत श्लोक आते थे, वे सब बोलकर एक-दो जगहों पर अमृता के साथ नम्रतापूर्वक असहमत होने का प्रयास किया। अन्त में अमृता की प्रशंसा कर उन्होने मधुरेण समापन किया।

तीसरे दिन अमृता को विदा करने कुछ छात्राएँ आयी थी। अमृता के व्याख्यान के प्रभाव से वे अभी भी मुक्त नही हो पायी थी। उनके स्नेह के प्रति आभार व्यक्त करके उसने उन्हें सलाह दी कि मेरी और तुम्हारी यह मुग्धता वस्तुतः मानसिक पराधीनता की सूचक है। इस तरह उन्हें सतर्क करते समय उसे उदयन याद आया। उसे प्रतीत हुआ कि वह स्वयं जो बोली वह भाषा तो उदयन की है।

वह बम्बई आयी उसके दो दिन बाद उदयन आया। वह रसोईघर तक आयेगा, यह मानकर वह बैठी ही रही। शायद चलकर उसका साक्षात्कार करने की उसकी तैयारी न थी। उदयन बाहर बैठा रहा। वह क्यों नही आया? उसे रोकने के लिए किसी को बिठा थोड़े ही रखा है? और रोकनेवाला हो तो भी वह किसी के रोकने से रुकनेवाला कब है? हाँ, वह रोकने से नहीं रुकता। चला गया। कौन जाने मन में कितने ही तूफान भरकर चला गया होगा! आवाज़ सुनकर नीचे देखा तो नजर मिलते ही एक प्रलयकारी दृष्टिक्षेप करता हुआ वह चला गया।

उसे बुरा लगे, ऐसा मैंने क्या किया है? बालाराम में वह जो कुछ बोला, जैसा व्यवहार किया उसका अफ़सोस उसे होना चाहिए इसमें मेरा क्या दोष? प्रतिक्रियास्वरूप मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए भी वही उत्तरदायी है। किन्तु अनिकेत ने मेरा पक्ष न लिया। अनिकेत ने कहा कि उदयन के साथ मेरा भूतकाल इस तरह गुँथ गया है कि...तो क्या उदयन बिना आज मैं जो हूँ, वह न होती? तो फिर मेरे निरपेक्ष अस्तित्व का कोई मूल्य नही? उदयन होता तो भी अमृता तो अमृता ही रहती। शायद अमृता की छाया भिन्न होती है....वह निमित्त न बना होता तो क्या मैं जहाँ हूँ, वहाँ तक न पहुँच सकी होती? उसके सम्पर्क

विना भी मेरा सत्त्व तो यही होता। उदयन सत्त्व को नहीं अस्तित्व को प्राधान्य देता है। सत्त्व को प्रधानता देने का मतलव है—नियति की स्वीकृति। उसकी वात कुछ प्रतीति भी कराती है। आदमी उसके अस्तित्व से पहचाना जाता है। मेरे नर्तकी होने या साहित्यिक होने में कोई फ़र्क न पड़ता। वह अव भी मुझे मुग्धा मानता है....वह मेरे सम्वन्ध में क्या सोचता है, इसकी मैंने सदा परवाह की है। मैं उसकी ओर से लापरवाह हो सकूँ, यह सम्भव नहीं। तो क्या करूँ? आज तक मुझे उसका सहयोग मिला है, यह कोई सामान्य वात नहीं। तो क्या उसके सहयोग की क़ीमत समर्पित होकर चुकानी पड़ेगी? मेरा सहयोग क्या उसने निःस्वार्थ भाव से दिया होगा? अनिकेत इस वारे में उससे भिन्न है। वह न होता तो? नहीं; अनिकेत न हो यह सम्भव नहीं। उसके मन में मुझे पाने की इच्छा नहीं है? कहता है—जो पाया है, वह भी कम नहीं है। उसने क्या पाया होगा? मेरी तरह क्या वह भी पिपासु नहीं होगा? तो क्या उसका त्याग मात्र 'पोज़' होगा? नहीं, उसके त्याग में प्रेमी की अनपेक्षता है, त्यागी का दिखावा नहीं, कोई उपेक्षा भी नहीं। इसी कारण उसकी स्मृति अभिलाषा जगाती है....हृदय में मधुर तृषा छा जाती है। अंग-अंग में परवाना वनने की कामना जगती है। उसके सान्निध्य में मैंने कभी स्वतन्त्रता की वात क्यों नहीं की? शायद उसके सामने ऐसी जागृति नहीं रह पाती। स्वतन्त्रता नहीं; स्नेह.... ऐसा भी नहीं। स्नेह में स्वतन्त्रता का समावेश होगा। उसका व्यवहार देखकर तो यही लगता है कि उसकी स्वतन्त्रता का सम्पूर्ण स्वीकार ही स्नेह है। जवकि उदयन? वह तो स्नेह की जगह विचार को महत्त्व देता है। कहता है कि वैचारिक भूमिका पर ही हम निकट आ सकते हैं। प्रेम नाम का कोई शाश्वत सूत्र नहीं जो हमें अपनी उपस्थिति की आजीवन प्रतीति कराता रहे। प्रेम तो हरेक प्रसंग में अलग-अलग रूप में सामने आता है। समान लगती विभिन्न घटनाओं और प्रसंगों का अनुभव भी भिन्न होता है। विभिन्न घटनाओं में प्रवर्तित हो ऐसा कोई व्यावर्तक तत्त्व—प्रेम नहीं। वह कहता है कि अनिकेत की ओर मेरा झुकाव प्रेम का नहीं मुग्धता का द्योतक है। प्रेम तो है ही नहीं। और मुग्धता एक भ्रामक तत्त्व है। अपने और अपनी संवित् के वीच मुग्धता एक रंगीन आवरण बन जाती है। अनिकेत के प्रति मेरे आकर्षण का कारण वही रंगीन आवरण है जिसका जन्म मेरी मनोसृष्टि में ही हुआ है। यह अपरिपक्वता का सूचक है अतः मुझे विचार करना चाहिए। क्या है यह 'विचार!' क्या मैं उसके विना नहीं जी सकती? तो क्या जीने के लिए प्रयत्न करना होता है? विचार और प्रेम...विचार या प्रेम? इन विभाजनों और विकल्पों की सृष्टि में क्या समग्र को पा लेना सम्भव है?

वह खरीदी के लिए निकली। वह अब नौसिखिए की तरह कार चला रही थी। स्पीड कम थी। ब्रेक का अधिक उपयोग कर रही थी। उसे लगता था मानो सीधे रास्तों की अपेक्षा क्रॉसिंग अधिक है।

आज क्या खरीदना है? दुकानें देखकर ही तय करूँगी। जो जरूरी हो वही नही, जो मन भाये उसे भी खरीदूँ।

यह आदत ठीक नही। अब वेतन को ध्यान रखकर ही खर्च करना चाहिए। थोड़ी बचत भी करनी चाहिए। वक्त-बेवक्त काम आये। खराब दिन तो बहुत आ सकते हैं, क्योंकि वे आकस्मिक होते हैं। अच्छे अवसरों की चिन्ता करने की आवश्यकता नही। फ़िलहाल ऐसे किसी अवसर के आने की सम्भावना नही।

एक वस्त्र-भण्डार में रखे 'ऐश-कलर' के ऊन पर उसकी दृष्टि गयी। "यह रंग अनिकेत को प्रिय है।....अब सर्दी के दिन आयेंगे। रेगिस्तान में यात्रा करते समय, वह मेरे हाथ का बुना हुआ स्वेटर पहने—मैं भेजूँगी तो वह अवश्य पहनेगा। वह पहनेगा तो मुझे अच्छा लगेगा।"

उसने अपने भतीजों के लिए कुछ खिलौने और बाल-साहित्य खरीदा। जुहू के लिए रवाना हुई। अपरिचित मेहमान की तरह 'छाया' के दरवाज़े के पास कार रोकी। नौकर को वस्तुएँ दीं, जैसे किसी की अमानत पहुँचा रही हो, और लौट गयी। उसने देखा कि लिंक रोड कितनी जल्दी आ गया। समय अनुभव रहित छोड़कर बह जाता है।

रात को देर से उसे अनिकेत का प्रथम पत्र याद आया, जो उसे दो-ढाई महीने पहले मिला था। पढ़ने बैठी—

"प्रिय अमृता,

प्रणाम!

तुमको पत्र लिखने में मुझे कोई झिझक नही हुई। आश्चर्य होगा तुमको? मुझे भी आश्चर्य हुआ कि तुम्हें पत्र लिखने निःसंकोच बैठ गया हूँ, निर्णय के विरुद्ध जाकर। स्पष्टता करने की मेरी इस आदत से तुझे बुरा लगे तो क्षमा करना। अन्तस् में कुछ अनिर्वचनीय गूँजता रहता है। कुछ ऐसा है जिसे भाषा के माध्यम से पकड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो शब्द-शब्द के बीच रहनेवाले अवकाश में से छटक जाता है। एक शब्द लिखने के बाद दूसरे पर पहुँचने के लिए अवकाश पार करना पड़ता है। जब कि जो अनिर्वचनीय है वह तो अखण्ड है। शब्द-बद्ध करने में वह झर जायेगा। नानालाल का वह गीत है न—'फूलड़ां कटोरी गूँथ लाव! अंजली मां अमृत नही झीलूँ रे लोल....झीलूँ-झीलूँ ने झरि जाय...' व्यवहार में लापरवाही के पूर्ण प्रयोग से दूषित हुई भाषा क्या मेरी अनुभूति को झेल सकेगी? शब्दस्थ होने के बाद क्या सन्तपर्क रह सकेगी?

अन्तःकरण रहस्य से सभर है। उसके स्पर्श से आनन्द है। आँखें विनत हैं। वह रहस्य भीतर-बाहर सब ओर छाकर बौद्धिक जागृति से दूर किसी निस्तब्ध अंचल में खींच ले जाता है। कौन है यह ? यह तुम हो, ऐसा नहीं कह सकता। पर तुम नहीं हो, यह भी नहीं कह सकता। यह कौन है, इतना भर जानने के लिए तुम तक आ रहा हूँ।

आज्ञा लिये बग़ैर आ रहा हूँ। तुम समझदार हो। मेरी एक याचना स्वीकारोगी ? मुझे वापस लौटा देना। मैं अपने को रोक नहीं सकता। इतना स्वीकारकर मैं हलका होना चाहता हूँ। 'मेरा अपने पर नियन्त्रण है, मैं अपने को तुमसे दूर रख सकूँगा'—ऐसी किसी एषणा में अपने संवेदन की सचाई की अवहेलना करके मैं अपने को महान् बना सकूँ यह सम्भव नहीं। मुझे तुम्हारे सामने यह स्पष्ट करना है कि कैसा अबोध बनकर मैं तुम्हारे द्वार तक दौड़ आता हूँ और इसके बाद याचना-भरा निवेदन करके कहता हूँ कि मुझे लौटा देना। मैं चाहता हूँ कि तुम माँगो और मैं विमुख होऊँ, इसके बदले स्थिति यह हो कि मैं माँगूँ और तुम विमुख होओ।

आज मेरा वातावरण प्रसन्न हो। अंगुलियों के पोरों पर निखालसता थिरक रही है। सत्य कह देने का उत्साह जागा है—मैं तुम्हारा त्याग कर यहाँ आया, ऐसा भविष्य में कोई जाने और मुझे तुमसे महान् समझे तो वह मात्र असत्य होगा। मेरे प्रति कितनी बड़ी वंचना होगी ! इसलिए मैंने इसमें से बचने का रास्ता ढूँढ़ा है। हे ममतामयि ! मुझे लौटा देना। तुम छोटी न बन जाना, तुम छोटी बन भी कैसे सकती हो ? तुम तो आकाश-सी अनन्त हो। मेरे ऊपर विस्मृति के बादल का छप्पर डालना, जिसकी छाया ओढ़कर मैं नतमस्तक लौट जाऊँ। पत्रोत्तर न देना।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसके आगे लिखना अटक गया था। बीच में काम आ पड़ा था और आगे लिखने के लिए जब पहलेवाला पढ़ गया तो लगा कि यह तो पागलपन है। मेरी दृष्टि में दर्प घुला और मैंने लिखा हुआ फाड़ डालने का विचार किया, इतने में मुझे कल रात का स्वप्न याद हो आया। मुझे लगा कि स्वीकारने में कैसी शर्म ?

उपरिलिखित सच ही है। उसकी पुनरुक्ति करूँगा पर विस्तार नहीं। पत्र में कुछ और ही लिखूँगा। जो तुम्हारे-मेरे बीच के भौगोलिक अन्तर को प्रकट करे और महसूस कराये कि मैं तुमसे कितनी दूर आ गया हूँ ?

बम्बई के रेलवे स्टेशन पर हम अलग हुए। वहीं से मेरे चित्त में कुछ न कुछ उभरने लगा था। वह सब पत्र में नहीं लिखूँगा वरना पूरा पत्र तुम्हारे बारे में ही हो जायेगा, जबकि पत्र में मैं अपने को रखना चाहता हूँ।

यहाँ का बाह्य अवकाश एकत्रित और अवगुण्ठित कामनाओं को मुक्ति प्रदान करता है। दृष्टि के सहारे अन्तःसृष्टि शुभ्र बादलों तक पहुँचती है, राहत का अनुभव होता है। तुम जानती हो कि आकाश मुझे बेहद प्रिय है।

हमने जिसकी देवरूप में प्रतिष्ठा की उस अग्नि का जन्म समुद्रमन्थन से हुआ था। अर्थात् अग्निदेव का वास समुद्र के भीतर है। मैं अपने चित्त को समुद्रमन्थन में से राजस्थान की इस बाह्य सृष्टि में लाया, तब जाना कि इसका सादृश्य तो इस मरु में भी ढूँढा जा सकता है।

मेरे अन्तःकरण में पहले समुद्र था, अब रेगिस्तान है।

इतिहास के अनुसार सैकड़ों वर्ष पूर्व राजस्थान की भूमि पर 'टॅनेस' सागर लहराता था। इस मरुस्थल की ठोस वास्तविकता को उधेड़कर किसी सागर की लहरों का उन्मत्त नाद मैं आज भी सुन रहा हूँ। धीरे-धीरे सागर खिसक जाता है। भूमि प्रकट होती है। आसपास से आनेवाले इस भूमि पर बसना शुरू करते हैं। आनेवाला कोई एक नहीं, वह एक तो है ही—उसके साथ समग्र है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम एक न रहकर समग्र बन जाओ।

यह जो रेत है, समुद्र की रेत से मिलती-जुलती है। अन्तर की रेत बार-बार भीनी होती रहती है। भले ही आज यह प्रदेश समुद्र नहीं है, पर यहाँ यत्र-तत्र आज भी समुद्र के अंश अवश्य हैं। भारत का खारे पानी का सरोवर साँभर समुद्र की सतह से १२०० फुट ऊँचा है। किसी जमाने में यह समुद्र का भाग था। अमृता! इतिहास कितनी सरलता से कह देता है कि यह और वह एक ही हैं। विभिन्न रूपों में विलसती समग्रता एक ही का रूपान्तर है। इसलिए प्रदेशों या देशों का इतिहास जानने के बदले हमारे लिए पृथ्वी का इतिहास जानना जरूरी है। पृथ्वी का इतिहास, सूर्य का इतिहास, निखिल का इतिहास यदि हम जानेंगे तो लगेगा कि आदि और अन्त के मध्य का इतिहास तो एक ही तत्त्व के रूपान्तरों की लीला है। इसलिए हम इस एक को प्राप्त करें, यह आवश्यक है। हम एक-दूसरे के निमित्त प्रेम को जानें यह जरूरी है। क्योंकि हम नहीं होंगे तब भी यह तो होगा ही। प्राणवायु कब नहीं थी और कब नहीं होगी? तुम तो जानती ही हो कि जगत् मात्र दो आदमियों का बना हुआ नहीं है। हम जानते हैं अपनी दुनियावी शब्दावली का सर्वोत्तम विशेषण जिसे प्रयुक्त करने के लिए मैं तैयार हूँ। अनेक युगल इसे प्राप्त हुए हैं और होते रहेंगे, क्योंकि यह चिरन्तन है। अनेक का इसने उन्नयन किया है, क्योंकि यह परिशुद्ध है। किन्तु हम? सम्भव है इसके नाम पर ही इसे भूल जायें, और सवेग विवश हो जायें। यह तो सूक्ष्म है। हाथ से छटक जायेगा। दो शरीरधारी साहचर्य देखते रहेंगे। मुझे बार-बार प्रतीत होता रहता है कि इस समग्र पृथ्वी के सन्दर्भ में दो आद-

मियों का होना नहिवत् है। वे नितान्त सीमित स्थल-काल में जीते हैं। यह बात तो मैंने पृथ्वी की तुलना में कही। समग्र विश्व को तो छोटे-छोटे नक़्शों में भी अभी पूरी तरह नहीं पहचाना जा सका है। यदि हम केवल प्रेमी ही रहें और प्रेम न बन पाये तो लघुता ही अपने जीवन की फलश्रुति होगी। इसलिए अपना केन्द्र सुरक्षित रखने के बावजूद समग्र तक विस्तृत होना आवश्यक है।

मैं तुमको उपदेश देने लगा। मुझ को उपदेशना नहीं पड़ता पर उससे ही कुछ कहने की इच्छा होती है। कहना नहीं चाहिए यह जानता हूँ। और न कहने के लिए पर्याप्त नियन्त्रण नहीं। कमलताल की लहरियों पर तैरते राजहंस की भाँति अनिश्चय के कारण न तो वह जा सकता है, न ही स्थिर रहा जा सकता है।

अश्वघोष ने नन्द के लिए ठीक कहा है...कालिदास ने भी कहा है—'न ययौ न तस्थौ'...

चलो, बातें छोड़कर गति का प्रारम्भ करो। बातों में कई बार भ्रम भी पैदा होता है। गति से जीवन का अनुभव होता है।

जोधपुर से जैसलमेर जा रहा था, सुबह दस से लेकर साँझ के छह बजे तक का समय गाड़ी में बीता—जोधपुर से पोकरण तक। जैसे-जैसे जोधपुर दूर होता गया, वैसे-वैसे हरियाली घटती गयी। निर्जनता बढ़ती गयी। यह प्रदेश केवल रेतीला ही नहीं, पथरीला भी है। रेतीले मालूम दें, ऐसे प्रदेश कम हैं, किन्तु ऐसा कोई भेद करना ज़रूरी नहीं, क्योंकि यहाँ जो रेती उड़ती है, वह पत्थर में से ही बनी होती है। रेत अर्थात् पत्थर के अणु। रेत बनकर पत्थर निर्जीव रहने के श्राप से मुक्त हो जाता है। रेत को गति मिलती है। जल का निविड़ स्पर्श होता है तब उसकी अनभिव्यक्त गन्ध व्यक्त होती है। इस जलसिक्त सुगन्ध से बीज का अंकुरण होता है—अरे, मैं तो फिर बतियाता हुआ, रेगिस्तान से बाहर निकल गया।

यहाँ जहाँ रेत है, वहाँ केवल रेत नहीं, पवन भी है। पवन गति देता है, रेत की यात्रा जारी रहती है। मनुष्य की जगह रेत जिन्दा रहती है। यहाँ प्रकाश भी है। इस प्रकाश ने रास्ता बताने का दायित्व सिर पर नहीं उठाया है। किसी भी दिशा में जाओ, तुम्हारा रास्ता रोकने के लिए कोई नहीं आनेवाला। हाँ, पवन पदचिह्नों को अवश्य मिटा सकता है। देखते ही देखते प्रकाश आग में बदल जाता है। अग्निहीन ज्वालामुखी शिखाओं का स्पर्श करके बहती लू। केवल लू ही नहीं, आंधी। चारों ओर बहता धुंधकार! यहाँ के लोग वात्या-चक्र को भूतेला कहते हैं। कहते हैं कि अतृप्त कामनाओं को लेकर मरनेवाले लोग भूत बन जाते हैं और वात्याचक्र में उनके प्राण होते हैं। इसी कारण वह

अकुलाया फिरता है। इसमें मनुष्य के असन्तोष का, उसकी अतृप्ति का ;बल होता है। यहाँ के दवण्डर इतने प्रचण्ड होते हैं कि मानो मरुमन्थन के लिए केन्द्र की खोज में मेरु पर्वत के दूत दौड़ते आते हों।

मरु-मन्थन ! क्या मिलेगा मुझे। समुद्र-मन्थन में अमृत से पहले कालकूट निकला था। उदयन क्या करता है, इन दिनों ? कालकूट और अमृत....उसे अमृत मिले, क्योंकि उसने मन्थन किया है। उदयन के बारे में मैं तो क्या लिखूँ ?

एक पागल मनुष्य छाया-चित्र बनकर अभी भी मरुभूमि पर घूमता फिर रहा है। फलौदी नामक स्टेशन था। दोपहर के तीन बजे के क़रीब वह आया था। गाड़ी कुछ देर तक रुकी थी। प्लेटफ़ॉर्म पर नीम का एक पेड़ था। इस वृक्ष की छाया के किनारे-किनारे प्रौढ़ आयु का एक कृशकाय पागल घूम रहा था। कभी-कभी छाया को लाँघ कर वह उसके बाहर आ जाता था। वह त्वचा के आवरण में ढँका अस्थि-पिंजर-सा प्रतीत होता था। फिर भी मैं उसे मनुष्य कहता हूँ। जो पागल होता है उसे मैं सम्पूर्ण मनुष्य कहता हूँ। उसकी समग्रता केन्द्रित होकर व्यक्त होती है। वह पागल पूर्णतः प्रसन्न था। मानो प्रसन्नवदना काष्ठ-मूर्ति। काष्ठमूर्ति स्थिर होती है, यह आदमी घूम रहा था। उसके दाहिने हाथ में टीन का एक छोटा-सा डिब्बा था, जिसमें थोड़ा पानी था। वह चलता-चलता बैठ जाता था, थोड़ा पानी हाथ में लेता। उसे ललाट पर, हाथ पर, घुटने पर लगाता। फिर पूरी तरह झुककर धरती पर सिर छुआता और प्रणाम करता। खड़ा होता, चलता, बैठ जाता। पानी लगाता, प्रणाम करता। जिस क्षण वह पानी का स्पर्श करता उसकी प्रसन्नता असीमित हो जाया करती। फिर खड़ा हो जाता। पानी समाप्त हो गया हो तो उसके लिए भीख माँगता। कोई उसके डिब्बे में पानी उड़ेलता तो उसकी प्रसन्नता बढ़ जाती। आश्चर्य है कि वह आदमी इतनी अधिक प्रसन्नता को कैसे सहन कर पाता होगा ? मेरे पास पानी से भरी एक सुराही थी। मैंने उसे थोड़ा पानी दिया। उसकी आँखों में स्वर्गिक चमक उत्पन्न हुई। उसके आनन्द की तुलना करूँ ? पहली बार जब मैंने तुम्हें अपने द्वार पर देखा तब मेरी आँखों में भी स्वर्ग तैर आया था। उस दिन तुम आयी, इस घटना को समय भी नहीं भुला सकता। उस दिन तुम स्वतः आयी थीं, अतः सम्पूर्णतः आयी थीं। ओह, कितनी बड़ी घटना है यह ! इससे बड़ी कोई घटना नहीं हो सकती। मुझे याद है, उस दिन तुमने नूपुर पहने थे। किंकिण की झंकार सुनने के लिए वातावरण कान लगाकर बैठा था ..शायद कुछ अघटित भी कह बैठूँ .. माफ़ करना !— मैं सौरभ से सन्तुष्ट हूँ, पुष्प पर अधिकार करने की उत्कण्ठा मैं नहीं पालता। मैं एक ऐसा प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ, जिसे तुम पूछोगी नहीं। उदयन न होता तो ? तो तुम्हारे प्रति मेरा क्या रुख होता ?

जो है, उसके अभाव की कल्पना करके मैं कभी तर्क नहीं करता। तब भी कहता हूँ उस स्थिति में भी मैं तुझे चाहता, आज की तरह ही। सौरभ से सन्तुष्ट होता। मेरी याचना उस स्थिति में भी केवल सौरभ के लिए होती। मैं कामना नहीं करता, कामना स्वार्थ का सूचक है। जो कामनावश होता है, दूसरे के स्वातन्त्र्य को भूल जाता है। नारी के समर्पण में उन्नयन देखनेवाली बात से मैं सहमत हूँ। किन्तु समर्पण किसका? स्वातन्त्र्य का या अहम् का? दूसरे की स्वतन्त्रता की पूर्ण स्वीकृति अर्थात् प्रेम। स्वामी और स्वामिनीजैसे शब्दों के अर्थ संकेत मुझे पसन्द नहीं, क्योंकि ये सौरभशून्य शब्द हैं....यहाँ शरीर और शारीरिक सम्बन्ध के बारे में स्पष्टता करनी आवश्यक लगती है, मैं मौन रहूँगा। जिसके साथ कुछ लेना-देना न हो, उस सम्बन्ध में बात करना एकदम अप्रस्तुत समझा जायेगा।

हाँ, मैं उस पागल आदमी के बारे में बात कर रहा था, जो व्यवहारगत औपचारिकताओं का आवरण उतारकर फेंक देता है, उसे हम पागल कहते हैं। पागल होने का कैसा आनन्द होता होगा? यह तो वही जाने। राजस्थान में होऊँ और मीरा याद न आये, हो सकता है कभी? घायल की वेदना और पागल की प्रसन्नता समान होगी? उस पागल को प्यास लगी थी। यहाँ मैं उसकी और उदयन की तुलना नहीं करता। अलबत्ता पागल की सचाई उदयन में मुझसे कहीं अधिक है। पत्रारम्भ में मैंने जो याचना की है, उसे ढँकने के लिए ही मानो यह सब कुछ लिख रहा हूँ।"

अमृता ने ऊपर देखा। "अनिकेत अनिश्चय में जीता है और चाहता है मैं निश्चय को जीऊँ। याचना करता है? किस लिए मुझे इतनी महान् बना देना चाहता है? सौरभ का उसके निकट क्या अर्थ है? इस काया की अवहेलना कर वह बात कर सकता होगा। उसके अन्तर्द्वन्द्व का यह स्वरूप तो जितना वह कहता है, उससे अधिक सूचित करता है, किन्तु मानो मेरे पक्ष में किसी अन्तर्द्वन्द्व को स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि वह मुझे काया नहीं, कल्पना मानता है। उससे अब मैं कैसे कहूँ कि..."

उसने पत्र आगे पढ़ना शुरू किया।

"इलियट की 'ऊसर भूमि' कविता की पंक्तियाँ यहाँ याद आ गयीं। उस पागल की छाया के प्रभाव में अनवस्था छा गयी थी। कविता का अन्तिम अंश खयाल आया। मृत्यु के बाद पुनरुत्थान प्राप्त किये हुए ईशु की यात्रा का वर्णन और युद्धोत्तर वास्तविकता का वर्णन तुम पढ़ना। उदयन से कहोगी तो वह बड़े मजे से तुमको सुनायेगा। उसे यह काव्य खण्ड बहुत प्रिय है। जीवन का विनाश, जीवन का अभाव और जीवन की सम्भावना का अभाव....पर्वत के चारों ओर

फुफकारता रेतीला रास्ता, वहाँ से गुज़रता विचार-शून्य चित्त। मृत पर्वत का मुख, उसके थूक रोक लेनेवाले बीभत्स दाँत,. शान्ति के स्थान पर वन्ध्य शुष्क-गर्जना, दरारोंवाले दरवाजों की झोपड़ियों से अपमानजनक गुर्राहट करते लाल उदास चेहरे। इन बिम्बों को याद करने के बाद इन्हें मैंने आँखों के सामने सँजोये रखा है। गाडी की गतिमय लय के साथ ये बिम्ब बिखरते गये। फिर तो महसूस होने लगा कि इस रेगिस्तान में भी जीवन है। आश्चर्यचकित कर देनेवाले यहाँ के लोगों के सुन्दर नाक-नक्श और पुष्ट शरीर। एक स्टेशन पर एक युवती देखी। शायद अपने बडे भाई को देख उसने सिर झुकाया। उसने उसके सिर पर हाथ फेरा। कितना ऊँचा था वह! प्रचण्ड दीख पड़ता था, उसका शरीर साँचे में ढला लगता था। मुझे लगा कि आदमी हिम्मत न हारे तो ज्यों-ज्यों अधिक सहन करे, त्यों-त्यों अधिक विकसित हो।

पोकरण से जैसलमेर तक बस में जाना पड़ता है। जमीन रेतीली कम, पथरीली अधिक। सडक पक्की, बीच में कही-कही गाँव बसे है। गाँव इतने छोटे दिखाई पड़ते है मानो बनते-बनते रह गये हो। इन छोटे-छोटे आकारों में से एक गोलाकार घर बहुत अच्छा लगा। घर की तरह छत भी गोलाकार, जैसे चोटीवाली गरम टोपी सिर पर रखे कोई बाँका युवक शोभा देता हो। कही-कही पर पत्थरों की छतवाले घर भी। यहाँ के लोगों के लिए ये प्रगति के सूचक होगे पर हमारे लिए तो ये मकान पुराने है।

पीलूँ, बबूल, झरबेर, आका। आका के पेड। देखा है न आक वृक्ष? पौधे के रूप में ही देखा होगा। पारिजात-जैसे आका वृक्ष देखे। आका के फूलों से परिचय है न? मानो अर्द्ध-विकसित लघुतम कमल!

भ्रमजन्य आनन्द भले ही क्षणिक हो, पर है यह भी एक अनुभव। मैं जैसलमेर के किले के दक्षिणी कँगूरे पर से नीचे फैली वीरान धरती को आँखों में भरकर लौटा था। जैन मन्दिर के ज्ञान-भण्डार को खुलवाकर प्राचीन ग्रन्थो को देख मैं खड़ा था। इस भण्डार के बारे में जितना सुना था उतना लगा नही। अनेक ग्रन्थ बाहरी लोगों को बेच दिये गये हैं। अन्यत्र अप्राप्य हो ऐसा बहुत कम यहाँ पर बचा है। इसी सोच-विचार मे डूबा खडा था कि इतने में बगल से गुजरती एक युवती ध्यान खींच गयी। उसके चले जाने के बाद मुझे उसके आगमन का ख़याल आया। उसकी पीठ के सादृश्य से भ्रम पैदा हुआ, अमृता तो नही है? नही तो इस तरह मेरा ध्यान क्यों खिंचता? किन्तु अमृता यहाँ तक आये? मैं यहाँ होऊँगा, ऐसा मानकर आये? मैं समझ गया कि यह भ्रम था। किन्तु भ्रम को यथार्थ रूप में स्वीकारने के लिए मैं उद्यत हुआ था। युवती को अपनी पीठ के पीछे की दृष्टि का ख़याल हो गया होगा। उसके नत चेहरे पर

दर्प और अव्यक्त लज्जा का सौन्दर्य था, अभिराम ग्रीवा भंग....मुझे लगा कि मैंने उसका चेहरा पूरी तरह क्यों नहीं देखा ? बायें कपोल की कान्ति से मैं अनुमान कर रहा था। कुछ लोगों के सौन्दर्य का ख़याल तो उनकी छाया देखकर ही आ जाता है। मैं देखता ही रहा और वह अदृश्य हो गयी। मुझे लगा कि उसकी गति में सौन्दर्य का संचार अवश्य है, अमृता की गम्भीर स्फूर्ति नहीं। उसे देखकर एक क्षण तो ऐसा लगा कि अमृता अद्वितीय नहीं, किन्तु फिर भूल स्वीकारनी ही पड़ी।

यह क़िला बारहवीं सदी में बना है। इसकी दीवार को लोग परकोटा कहते हैं। कहते हैं महारावल जैसलजी ने यह नगर बसाया था। जैनियों ने इस नगर के विकास में बहुत रुचि ली है। अभी जिसका ज़िक्र किया वह ज्ञानभण्डार जैन साहित्य का संग्रहालय है। परिवर्तित वातावरण से या कालतत्त्व का कोई असर न हो, इस तरह यहाँ वर्षों से पुस्तकों की हिफ़ाज़त की गयी है। गाइड से पूछे बिना तो संग्रहालय का पता ही न चले। मन्दिर के पूर्व में एक छोटी-सी खिड़की है। यही है भण्डार का प्रवेशद्वार। इससे होकर सावधानी से एक ही व्यक्ति प्रवेश कर सकता है। विदेशी आक्रमणों के खतरों की कम से कम सम्भावना को ध्यान में रखकर मरुप्रदेश के बीच जैनियों ने पुस्तकों की सुरक्षा की योजना बनायी थी। जिस जगह मैंने उस युवती में तुम्हें देखा उस जगह तुम एक बार अवश्य आओ। तुम आओ, उदयन आये। सर्दियों में इस ओर की यात्रा अधिक अनुकूल रहती है।

सहकर्मियों के साथ मेरी जोधपुर में पहली बातचीत हुई। मैंने यहाँ के लोक-जीवन पर लिखने का काम भी स्वीकार किया। अभी हम लोग आठ हैं। अन्य चार और आयेंगे। जो हैं वे सब बड़े मज़ेदार लोग हैं। कोई प्रवास में रुचि रखता है, तो कोई गृहस्थ जीवन से छुटकारा अनुभव करने की इच्छा से आया है। कोई नशाबन्दी के विरोधी होने की ग़रज़ से; तो कोई अन्य कारणों से इस कार्य में लगा है। एक ने रेगिस्तान के विकास के लिए अच्छा सुझाव दिया—राजस्थान की राजधानी जैसलमेर होनी चाहिए। ऐसा होने पर इस प्रदेश का शीघ्र विकास देखने को मिलेगा। हाँ, बाहर के तत्त्वों का सम्पर्क बढ़ जाये, यह यहाँ के लोगों को पसन्द न आये। वर्षों पूर्व महारावल की कुँवरी के व्याह में पोकरण से जैसलमेर तक रेलवे लाइन बिछाने की बात हुई थी। यहाँ के लोगों ने विरोध किया। बाहर के लोग यहाँ आने लगे, तो बहू-बेटियों की चिन्ता बढ़ जाती है। उन्होंने योजना रुकवा दी।

यहाँ के लोग पशुपालन और खेती के अतिरिक्त चोरी का धन्धा भी करते हैं। महारावल ने तीसरे धन्धे में कुछ सुधार सूचित किये थे। दूर से एक बड़ा

गिरोह आया और महारावल को उठा ले गया। ऐसा मैंने सुना है। किन्तु इससे लोगों की शक्ति का तो पता अवश्य चलता है। कुछ गाँव तो यहाँ के डाकुओं के ही हैं। जो युवक एक बार डाका न डाल आये, उसकी शादी नहीं होती। जो आदमी डाका डालने न जाये उसे 'बकरी' कहा जाता है।

यहाँ कोई-कोई गाँव नाचिराग़ी होता है। नीचे से मिलता पानी सूख जाये तो बोरिया-बिस्तर बाँधना पड़ता है। नयी जगह ढूँढ़नी पड़ती है। पानी का प्रश्न कितना उग्र है! स्टेशन पर गाड़ी के इंजन से निकाल दिया जानेवाला पानी लेने के लिए दूर-दूर से मटके लिये औरतें आती हैं। इस गरम पानी का रंग गहरा हरा लगता है। एक बार बस के रास्ते में आती झोपड़ीनुमा कैण्टीन की एक जीर्ण टेबल पर भरकर रखे गिलास में रखे नीबू का शरबत देख मुझे पीने की इच्छा हो आयी—'साब! यह तो पानी है।' जैसलमेर का पानी अच्छा है। पत्थर भी अच्छे हैं, लोग भी। पत्थर की कला-कारीगरी बार-बार देखने की इच्छा हो ऐसी है। नगर का पश्चिमी भाग खण्डहर। पत्थरों का रंग पीला, चिकना पीला।

कभी-कभी तो दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक पानी की एक बूँद भी न बरसे। ऊपर मेघाच्छादित गगन बहता रहे, नीचे की भूमि अवाक् निहारती रहे। बादल पथभ्रष्ट पथिक की भाँति निराश होकर भी आगे बढ़ने की जल्दी में होते हैं। धरती की कामनाएँ दहकती रहती हैं। अब पातालकुओं का विचार भी किया गया है। प्रश्न केवल पानी का ही नहीं है अमृता! यह धरती सतत कुण्ठित होकर मानो खारी हो गयी है। ऊपर से बरसता पानी भी इसके तप्त अणुओं के स्पर्श से खारा हो जाता है। पर पानी को तो बरसना ही रहा, अमृता! बरसना ही रहा। उदयन भले ही न माने, हमें तो मानना ही पड़ेगा कि 'होना' पर्याप्त नहीं। होने में से आगे बढ़कर कुछ 'बनना' ही पड़ेगा। विस्तृत होने की प्रक्रिया में अस्तित्व को प्रमाणित कर देखना है।

अन्त में प्रणाम निवेदित करके विदा लेता हूँ—

—अनिकेत"

पत्र पढ़ चुकने के बाद अमृता को लगा कि वह तो यहाँ इस मकान में है। कहाँ-कहाँ पहुँच गयी थी। अनिकेत की संवेदना पत्र द्वारा उसके लिए भी संवेद्य बन गयी थी।

पालनपुर में हाथों-हाथ मिले पत्र का उत्तर भी बाकी है। इस पत्र को पहली बार पढ़ा और उसी दिन उत्तर लिखना शुरू किया था। आँसुओं ने व्यवधान उपस्थित न किया होता तो उदयन के आने से पहले यह पूरा हो जाता। अनिकेत के पत्र में उसने अपने को ढूँढ़ा था। उसने अपना पत्र पढ़ना शुरू किया।

"प्रिय अनिकेत,

तुम्हारा पत्र पढ़ते हुए मैं तुम्हारे शब्दों की गति में बह गयी थी। हाँ, जहाँ-जहाँ तुम मेरा उल्लेख कर लेते थे, वहाँ-वहाँ मैं विछुड़ जाती थी। तुम्हारे पत्र का वर्णन आस्वाद्य था। उससे भी अधिक, उक्त सबमें तुम्हारी उपस्थिति के अनुभव में दिलचस्पी रही। अनजाने ही मैं कभी-कभी तुम्हारे साथ जुड़ जाती थी। इस पत्र में तीन पात्र थे—अनिकेत, रेगिस्तान और अमृता। एक चौथा पात्र भी था, जो नेपथ्य में रहकर तुमसे कुछ बुलवाता था। मैं उसे बीच में नहीं लाऊँगी। वह स्वयं अपने वल से ही बीच में आ जाता है।

तुम्हारे जाने से यहाँ की आबोहवा ही बदल गयी है। घर में रहूँ या बाहर, मैं तो आगन्तुका ही लगती हूँ। अकेली हो गयी हूँ। 'छाया' छोड़कर तुम्हारे घर में—नहीं, तुम्हारे मकान में रहती हूँ। नौकरी करती हूँ। आज तक पैतृक-सम्पत्ति के आश्रय में निश्चिन्त थी। मेरे विचार और व्यवहार पर अँगुली उठायी गयी। मैंने आश्रय छोड़ दिया। दायित्व स्वीकारा। अपना समस्त दायित्व स्वीकार कर जीते हुए स्वाधीनता का अनुभव कर रही हूँ—इस खुमारी में अकेलेपन का दुःख भोग रही हूँ। समय के साथ वह भी बीत जायेगा। और फिर वीत जाने पर वह नये रूप में शुरू होगा।

उदयन बार-बार मिलने आता है। जैसे मेरा संरक्षक हो। पर व्यवहार, शत्रु-सहाय! कुछ व्यंग्य, कुछ चोटें और चलते-चलते मर्म-विदारक स्मित...कौन जाने उसने मुझमें कौन-सी ऐसी कमजोरी देखी है कि मुझे हमेशा सताया करता है। लगता है मेरी मुग्धता दूर करने के बाद क्या परिणाम आता है यह देखने के लिए मुझपर प्रयोग कर रहा है। उसके मुँह से मुग्धता सुनती हूँ, तो मुझे अपशब्द-सा लगता है। ऐसी इच्छा होती है कि उसे 'मुग्ध' कह सकूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि वह किसी भी स्थिति में उत्तेजित ही करता रहेगा। कहता है—'घर छोड़ा, अब उधार ली हुई श्रद्धाएँ छोड़। एकदम निरालम्ब हो जा। अपनी ही शक्ति में से आलम्बन खड़ा कर। परम्परा का बोझ दूर फेंककर अपने चित्त को हलका बना और फिर विचार कर। ऐसा करने पर तुझे महसूस होगा कि, 'लाइफ़ बिगिन्स ऑन दी अदर साइड ऑफ़ डेस्पेयर' हम बात-चीत में किसी सूत्र का उपयोग करते हैं तो वह मुँह बिचकाकर दूसरी ओर देखता रहता है। परन्तु उसके मुख से एक सूत्र मैंने अभी-अभी तीसरी बार सुना—'आइ थिंक देअरफोर आइ एम'। मैंने उसे टोका तो कहने लगा यह सूत्र नहीं, सत्य है। यह एक आदमी की आत्मकथा है। मैं कहती हूँ कि विचार में हमारी समग्रता का समावेश नहीं हो जाता, तो वह अविलम्ब उत्तर देता है—'विचार के बिना समग्रता नहीं समझी जा सकती।' उसमें दूसरों की मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ा

सकने की तर्कशक्ति है। उसके साथ मैं संघर्ष का अनुभव करती हूँ, संवाद का नहीं। इसलिए मेरी अभिलाषा तुम्हारी ओर...यह स्पष्टता करने-जैसी नहीं थी। किस लिए स्पष्टता? तुम्हें चाहकर मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैं तुमको चाहती हूँ यह वस्तुस्थिति है और वह किसी आकस्मिकता पर आधारित नहीं। यह मेरा चयन है—'फ्रीडम ऑफ़ च्वाइस'।

चयन! मेरा चयन मात्र पसन्दगी नहीं है। तुम्हारे समक्ष अथवा तुम्हारे स्मरण से मैं विवशता का अनुभव करती हूँ, परवश हो जाती हूँ। इसीलिए तुम्हारा वरण मेरे लिए अनिवार्य बन गया है। ऐसा लगता है कि किसी निगूढ़ तत्त्व ने भी मुझे इसके लिए प्रेरित किया है। परसों वी. पी. रोड की ओर मुड़ी ही थी कि बरसात टूट पड़ी। एक क्षण पहले पता भी न हो और यह मूसलाधार बरसने लगती है। रास्ते से एक ओर हटकर बचने का मुझे नहीं सूझा। वस्त्र भीग गये। अंग-अंग की आर्द्रता निविड़ता का स्पर्श कर गयी। वर्षा की अजस्र धाराएँ मानो आक्रोशपूर्वक मेरे अलग अस्तित्व का मर्दन करने पर उतारू हो गयी हों। एक क्षण के लिए तो ऐसा लगा कि मैं अनिकेत के घर जा रही हूँ। ऐसा मानने से मेरे मन को यह भाया कि भले ही यह आकाश लक्षातीत धाराओं के रूप में बरसता रहे और मेरे सुरक्षित पार्थक्य को पिघला दे। मैं वायुलहरी बनकर इन धाराओं के बीच के अवकाश में थिरक उठूँ। सब कुछ भरा-भरा हो जाये और वातावरण में से एक अदृश्य आकृति में ढलकर तुम्हारे गवाक्ष-द्वार पर छा जाऊँ। ऐसी कल्पित अनुभूति से मैं मुक्ति का अनुभव कर रही थी और इसी अनुभूति में मैंने सिक्कानगर के प्रवेशद्वार पर क़दम रखा। मकानों से घिरे खाली मैदान ने मेरा स्वागत किया। तुम्हारे घर में पैर रखने से पहले ही अनुभव की हुई मुक्ति तिरोहित हो गयी थी। अनिकेत! जहाँ तुम हो वहाँ केवल भावना बनकर उड़ आऊँ और तुम्हारा परिवेश बनकर तुम्हारी सहयात्री बनूँ। मैं जानती हूँ कि इस तरह विगलित हो सकने की शक्ति का मुझमें अभाव है। फिर भी, यह मेरी स्वयंप्रभूत पीड़ा है। तुम कहते हो कि प्रेम—अर्थात् 'दूसरे के स्वातन्त्र्य की स्वीकृति' तो तुम मुझे स्वतन्त्रता दो। तुम देखोगे कि मेरा अस्तित्व धूप बनकर तुम्हारे गतिशील परिवेश को सुरभित करता रहेगा। सौरभ से तुम्हें कोई एतराज़ नहीं। मुझे अनुमति न दोगे तो मैं मानूँगी कि तुम मुझे मरुस्थल के गगन में भटकती बदली बना देना चाहते हो।"

उस दिन अमृता ने पत्र यहीं पर अधूरा छोड़ दिया था। उसे लगा कि भाषा रोमान्टिक बन रही है। अनिकेत को यह सब अतिशयोक्तिपूर्ण लगेगा। "तो क्या करूँ? पत्र लिखना छोड़ दूँ? मौन रहूँ? स्वयं जो कहना चाहती हूँ, वह सूक्ष्म होने के बावजूद अपार्थिव तो नहीं। पत्र की भाषा में तो यह सब

भिन्न अर्थ धारण कर बैठता है। जिस शब्द से ग़लतफ़हमी पैदा होने की सम्भावना हो, उसका उच्चारण ही न किया जाये तो अच्छा !"

इसलिए उसने पत्र आगे नहीं लिखा।

"अब उत्तर देना आवश्यक है ? पालनपुर में सामने बैठकर उसने मेरे आँसू देखे हैं। फिर भी समझा नहीं होगा ? वहाँ बालाराम में नदी के प्रवाह के बीच उदयन को कह सकने जितना मैंने कह डाला, तब अनिकेत ने कहा था—'तुमने अपना अपमान किया है।' वह मुझे क्या समझता है ? 'स्वर्गीय', 'देवी' 'ममतामयी'-जैसे विशेषणों से सम्मानित कर सन्तुष्ट करना चाहता है, इन शब्दों से मुझे बहला देना चाहता है। 'स्वर्गीय !' किन्तु स्वर्ग तो मृत्यु के बाद की अवस्था है। ये शब्द अपने अनुभवों से विच्छिन्न हैं। उसके कहने और अनुभव करने में भेद है। मांसल सौन्दर्य की तृषा उसकी आँखों में चमक उठी थी। उसके श्वास में छटपटाती हिंस्र गन्ध को मैं न पहचान सकूँ, इतनी अबोध हूँ ! उसके विमुख होते चेहरे की एक रेखा ही सब कुछ कह देती है। उसकी आँख का असमाधानकारी कोना कुछ भी अव्यक्त नहीं रहने देता, फिर भी कहता रहता है—'मुझे सौरभ से सन्तोष है...' दूर जाने से उसके लिए ऐसा कहना सहज हो गया है, किन्तु ये मात्र उद्‌गार हैं, यह केवल वाणी है। उसके लहू की लय तो कुछ और ही कहती है। वह किस लिए स्वयं को सन्तप्त कर रहा है ?"

विकास—उन्नयन...यह सिद्ध न हो ऐसा तो नहीं। किन्तु यौवन के आरम्भ में ही, इस तरह विदेह की तरह सोचना...

साढ़े आठ बजे थे, वह कार लेकर निकली। समुद्र के बद्ध किनारे पहुँची। बम्बई से मुँह फेरकर समुद्र के अन्धकार की ओर मुँह किये लोग, किसी बालक-निर्मित चित्र की रंग-रेखाओं की भाँति क्रमहीन स्थिति में बैठे थे। युगलों, परिवारों और एकाकियों को लांघती अमृता समुद्र की ओर देख रही थी।

"आण्टी।"

अमृता ने छोटे भतीजे की आवाज़ पहचानी। वह रुकी। बच्चा पास आ गया। अमृता ने उसे उछालकर गोद में लिया। सीने से लगाकर चूम लिया। अमृता को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बड़ी भाभी और उनके दो बच्चे सीधे यहाँ तक आये हैं। बच्चे मौसी के घर गये थे, गिरगाँव। बड़े भाई कम्पनी के काम से बाहर गये हैं।

भाभी को पास आती देख अमृता उनकी ओर बढ़ी। सभी लोग काफ़ी देर तक बैठे रहे। बहुत-सी बातें हुईं। अमृता खिलौने दे आयी थी उसके बाद भाभी काफ़ी आश्वस्त हो गयी थी। वह मानती थी कि अमृता ने उसी के कारण घर

छोड़ा। उन्होंने अमृता से प्रार्थना की। अमृता ने कहा सोचूँगी, आज आप स
आइए।

'तुम्हारे बड़े भाई कल प्रातः जल्दी आनेवाले हैं', कहकर उन्होंने असमर्थ
प्रकट की। छोटा लड़का अमृता का हाथ ही नहीं छोड़ता था। अमृता उसे सा
ले गयी। नौकरानी भी परिचित थी, अतः बच्चे को रुच गया।

"यह अपना घर है?"

"ना।"

"आपको यहाँ अच्छा लगता है?"

"हाँ!"

"अकेली रहती हैं, तो भी?"

"हाँ।"

"अब जुहू नहीं आयेंगी?"

"आऊँगी।"

बच्चा आश्वस्त हुआ होगा, वह दो मिनट मौन रहा।

"यह किसका फ़ोटो है?"

"अनिकेत का।"

"वे कौन हैं?"

"परदेशी।"

"वे आपको जानते हैं?"

"नहीं।"

अमृता मेज पर से पत्र उठाकर उसे तह करने लगी।

"किसका पत्र है?"

अमृता कुछ बोली नहीं, बालक प्रश्न भूल गया। टेबल पर पड़े पेन से व
हथेली पर लिखने बैठा। उसे अक्षर-ज्ञान है—उसने 'अनिकेत' नाम याद र
था। "लाओ लिखूँ।" कहकर उसने अमृता की हथेली पर लिखा—'अनिकेत

"कोई ग़लती?"

"ना।"

"क्या दोगी?"

"तुझे क्या चाहिए?"

बालक सोच में पड़ गया। कुछ सूझा नहीं, फिर उसे युक्ति सूझी कि ब
भाई जो माँगेगा, वही मैं भी माँग लूँगा। अतः उसने अमृता को कल जुहू आ
के लिए कहा।

अमृता अस्वीकार न कर सकी।

बालक रात में देर तक जागता रहा। उसने सविस्तार बताया कि अमृता के भेजे सभी खिलौने उसने किस तरह हज़म कर लिये। उसे माँ की बग़ल में दुबककर सोने की आदत है। नींद आ जाने के बाद कहीं भी सुलाया जा सकता है। वह अमृता के वक्ष में मुँह दबाकर सो गया। उसके सो जाने के बाद भी अमृता धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरती रही। अचेतन अवस्था में भी चिपके रहे बच्चे की सम्पूर्ण आधीनता को वह देखती रही। जागृति का समर्पण करने पर उससे मिलनेवाले विश्रान्ति सुख के विषय में सोचती रही। बच्चे के प्रफुल्ल कपोल की सरल ताज़गी पर हाथ रखकर, आँखें बिछाकर उसने अपूर्व सार्थकता का अनुभव किया।

अनिकेत के स्मरण से जगनेवाली व्याकुलता अब न थी।

निद्राधीन होते-होते वह सोच रही थी कि उसमें निहित वात्सल्य से आज तक वह अनजान कैसे रही?...तो फिर जब वात्सल्य शिशु रूप में अवतरित होकर उछंग को भर देता होगा, उन क्षणों के अनुभव की उत्कटता में तो नारी मात्र माता बन जाती होगी। कैसी होगी यह वेदना-प्रसूत वत्सलता? और वे प्रासि-पूर्व की संक्रान्तकालीन अनुभूतियाँ? और इसके पूर्व का इन्द्रिय तर्पण....।

आज स्वप्न में देखी-अनदेखी सृष्टि के साहचर्य में चरम तीव्रता का अनुभव हुआ। कमलताल के किनारे उड़ते हंस के पंखों की लय देखती वह खड़ी थी। सघन वनराजि की छाया भेदकर चन्द्रकिरण उसके कपोल की मोहक ताज़गी को उजागर कर देती है। उसका आगमन होता है....अपनी कामनाओं का निर्बन्ध प्रकटीकरण...सूक्ष्म भावोन्मेष और मांसल आवेश का सायुज्य...हाँ, यह अनिकेत ही सच्चा है।

कई दिनों तक अमृता उस स्वप्न को याद करती रही। हाँ, वह अनिकेत ही सच्चा है: पत्र लिखनेवाला अनिकेत तो रहस्यावरण धारण कर घूमता है। वही वास्तविक: संकल्प से विचलित मेरु पर्वत का झुकना, बहती नदी का एका-एक उससे लिपट जाना।

अक्टूबर में वह पालनपुर छोड़कर सामान के साथ जोधपुर पहुँच गया। वहाँ चारेक मास गुज़ारे। स्कूल के छात्रों के साथ ममता हो गयी थी। नवीं कक्षा का एक असाधारण तेजस्वी छात्र मन में बस गया था। एक निर्धन विधवा के इस पुत्र के चेहरे पर कोई लाचारी नहीं, विकास की चमक थी।

एक दिन शाम को वह शहर में पूर्व की ओर घूमने गया था। गुल्ली डण्डे का खेल चल रहा था। खेलना छोड़कर एक किशोर दौड़ता आया, "साब।"

उसने अनिकेत का हाथ पकड़ लिया। ज़िद करके अपने घर ले गया। छोटे लेकिन लिपे-पुते सुघड़ घर के आँगन में बैठ सूप में गेहूँ बीनती युवती ने ऊपर देखा। वह खड़ी हुई। प्रणाम किया।

युवती—एक ऐसी युवती जो प्रौढ़ा नहीं लगती थी, पर उसके चेहरे पर जीवन का गहरा अनुभव झलकता था। उसकी आँखों में नारीत्व स्थिर हो गया था। पुत्र और भाई दोनों को एक साथ देखने का आनन्द उसके होठों पर थिरक गया था।

अनिकेत को भोजन करना पड़ा। बातचीत के दौरान उसे बहन का सम्बोधन ही सूझा। उसे लगा कि आज जीवन की अज्ञात वेदनाओं से परिचित होने का अलभ्य अवसर मिला है। संकल्प कठिन मार्ग है। पर वह एकाकी हृदय की यात्रा देखता रह गया। बहन शिक्षिका है। दस वर्ष से नौकरी कर रही है। उस समय लड़का दो वर्ष का था। अनिकेत ने मन ही मन निश्चय किया कि फिर कभी इधर आना हुआ तो बहन से जरूर मिलेगा।

स्कूल में अन्तिम बार गया तो उसने प्रधानाध्यापक के साथ अकेले बैठकर बातें की। उस लड़के के नाम बारह सौ रुपये जमा कराये। तीन वर्ष में यह रकम उसे देनी है। हाई स्कूल के बाद वह और आवश्यक सहायता प्राप्त करेगा। प्राइमरी स्कूल की शिक्षिका के वेतन में से क्या बचे? बहन को बुरा न लगे, इसलिए उसने लड़के को एक चिट्ठी दी।

पिताजी की सम्पन्नता का विशेष लाभ अब अनिकेत की समझ में आया। उदयन की मदद उसने की है, किन्तु उससे उसे सन्तोष नहीं होगा। उससे तो उसे खर्च करने का आनन्द प्राप्त हुआ है। अमृता मेरे घर में रहती है। किन्तु यह कोई मदद नहीं कहलाती। यह आनन्द उपकार करने का नहीं....शायद गुप्त अभिलाषाएँ इससे सन्तुष्ट होती हों तो इसमें आश्चर्य नहीं।

जोधपुर पहुँचने के बाद उस किशोर और उसकी माँ की याद उसे फिर आयी। पालनपुर में उसने एक लोकगीत सुना था—"सखी री! में तो आज सपनां मां डोलतां डुगर दीठा..."

सहानुभूति से किसी के आँसू पोंछे जा सकते हैं। किन्तु क्या अन्तस्-स्रोता वेदना को निर्मूल किया जा सकता है? शायद, कुछ वेदनाएँ तो अपरिहार्य हैं.... वेदना के भार से पृथ्वी की धुरी सन्तुलन क़ायम रखती है, यह भी माना जा सकता है....उस दिन अमृता के आँसू पोंछने की इच्छा हुई, किन्तु सम्भाव्य स्पर्श उसे दूर रखे हुए था। अन्त में तो वह स्थिति भी न रह पायी।

यहाँ बिछुड़ने के लिए ही मिलते हैं। प्रत्येक आरम्भ अन्त की ओर ही ले जाता है...इस समग्रता का योग भी है—एक शून्य। शून्य को पराबिन्दु कहो

या कि पूर्णत्व। जो भी हो, वही अन्तिम सत्य है। इस अन्तिम सत्य की प्रतीति हो और निर्वेद की अवस्था तक पहुँचा जा सके, तो....केवल जान लेना पर्याप्त नहीं है, जब तक जाना हुआ रक्त की लय में घुलकर अ-पर न हो जाये वहाँ तक तो जाना हुआ भारस्वरूप ही रहेगा।

"ऐसा लगता है कि इस भार को फेंक दूँ। समग्र के योग को इतना जल्दी स्वीकारने में जल्दबाज़ी होगी। पूर्णतः निरपेक्ष हो जाना तो मृत्यु को जीना है। जहाँ तक अमृता स्मृति में भी रहेगी, निरपेक्ष होना असम्भव लगता है। नम्र गौरव को धारण करने के बाद भी वास्तव में इस उन्मत्त सौन्दर्य के आवाहन का उत्तर देने का मन होता है...किन्तु उदयन ? प्रश्न इस तीसरे की उपस्थिति का ही है। दो व्यक्ति तो अपनी पारस्परिक समझ से रह सकते हैं। तीसरे की उपस्थिति में तीनों को समाज बन जाना पड़ता है। समाज समस्त सापेक्षता को व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इसमें संकल्प को भी स्थान है। अपने अस्तित्व के गलन बिन्दु तक एक बार संकल्प शक्ति को आज़माकर देखूँगा। अमृता ! मैं तेरे सम्बन्ध में निरपेक्ष होने के लिए संघर्ष करूँगा। तुझे पाया है उससे अधिक पाने की जो उत्कण्ठा जगी है, उसे कम करते-करते एक दिन बिलकुल निर्मूल कर दूँगा और विरक्ति ग्रहण करूँगा। यह विरक्ति मेरी सफलता होगी। भले ही तू मेरी मरुभूमि में मरीचिका बन-बनकर मेरे दृष्टि-पथ को अपनी ओर खींच ले, मैं तुझे अपनी संकल्प-शक्ति से उठाकर क्षितिज के उस पार रख दूँगा। क्षितिज के आड़ से मरीचिका दिखाई नहीं पड़ेगी। नीलगगन के असीम विस्तार में अमृता व्यक्तित्वरहित द्युति बनकर उन्नयन के लिए आमन्त्रित करेगी।

जो अमृता है, उसे मैं मरीचिका रूप में देख ही नहीं सकता। उसे द्युति रूप में देखूँगा।

इस मरुभूमि में दीख पड़ती मरीचिकाएँ तो भ्रमजन्य हैं। परन्तु ये कभी वास्तविक बन जायें तो ? जो दिखता है, वह अस्तित्व धारण कर ले तो ? आकर्षण जगाता है, वह उर्मिल जल, यह वनराजि का शाश्वत, गोष्ठी समारम्भ, यह हरीतिमा का नितनूतन ऐश्वर्य...."

... जो भ्रामक है, वह वास्तविक बन जाये तो ?

डाक आयी।

अनिकेत के सहायक का पत्र था। पत्र लम्बा था, और उसमें लिखा गया वर्णन सतही थी। बीकानेर के निकट वर्षा-पूर्व का एकदम सूखा प्रदेश, वर्षा के बाद कैसा हरा-भरा हो गया है—इसी आनन्द का वर्णन था। पत्र में इतनी अधिक भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ थीं कि सही क्या है ? यह ढूँढ़ना पड़े ! फिर भी उसने कतिपय

काव्यात्मक शब्द प्रयोग किये थे। अनिकेत को लगा कि श्रीमान् ने दो बार यात्रा की है। इस ढंग से उसने उसके पत्र का संक्षेपीकरण करके उसके पास भेजा—उसे बुरा न लगे इस तरह। वर्षा-पूर्व का इस स्थल पर कोड़े बरसता 'दारुण सुनसान' जलसिंचन के बाद 'हरित शान्ति' में पलट गया था। पानी के अभाव में और पानी के प्रभाव से एक ही स्थल पर कैसे दो विरोधी स्वरूप! धरती को माता कहा जाता है, यह वस्तुतः योग्य ही है। सूखी धरती भी बीजों की रक्षा करती है। वर्षा ऋतु के आने पर ये बीज अंकुरा जाते हैं। बरसात के बाद कितनी प्रचुर मखमली घास! दूसरा कोई रंग नहीं है इतना प्रासन्नेय!

अनिकेत एक दिन अपराह्न में वनस्पतिशास्त्र के स्थानीय अध्यापक के साथ मंडोर गया था। रास्ते में पड़नेवाले एक मकान के बारे में बात चल निकली। वह खाली था। किराये पर मिल सकता था। मकान के सामने सूखा हुआ एक बगीचा था। पेड़ थे। नया बाग लगा सकने की सम्भावना थी। यहाँ रेगिस्तान की यात्रा के दौरान एकत्र की गयी सामग्री पर आराम से काम किया जा सकता है। विचार आया कि जोधपुर छोड़ने से पहले मकान किराये पर रखकर ही जायेगा।

यह मकान खरीद ही लिया जाये तो क्या बुरा है? यहाँ भी ऑफ़िस शुरू किया जा सकता है, और अब तो संयोजक का दायित्व भी निबाहना है। चर्चा-परिचर्चा के लिए सभी शोधकर्ताओं को यदा-कदा मिलना ही चाहिए, ताकि समस्याओं का हल भी जल्दी ढूँढा जा सके और यह मरुभूमि इतनी भयंकर नहीं, असाध्य भी नहीं।

वह खड़ा हुआ। बाहर जाने की तैयारी करने लगा। दर्पण के सामने खड़े होकर उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा। 'थोड़े कृश हुए होंगे किन्तु उससे चेहरे की चमक कम नहीं हुई। अब तुम्हारा वर्ण तप्त काचन लगता है।'—अमृता ने कहा था। अमृता के स्मरण के साथ उसने दर्पण में देखा। उसके प्रतिबिम्ब की प्रसन्नता बढ़ गयी थी।

नया पता सूचित करने हेतु उसने उदयन को पत्र लिखा। नवम्बर तक जोधपुर से निकल जाऊँगा। पोकरण को केन्द्र बनाकर काम करना है। जमीन के प्रकारों एवं वहाँ उपलब्ध जल की विशिष्टताओं की जाँच करनी है। इस दृष्टि से समग्र प्रदेश का सर्वेक्षण करना है। जीप कब तक आ जायेगी?

"अमृता को पत्र नहीं लिखूँगा।

वह मुझे भूल पायेगी?

मुझे माफ़ कर सकेगी?

उसे पत्र नहीं लिखना है। अन्तराल का अनुभव होता रहेगा। अवकाश फैलता रहेगा। फिर स्मृतियों की उत्कटता भी बुझ जायेगी। वह मुझे भुला

सकेगी और उदयन वहाँ है ही। उदयन का प्रभाव उसपर कहाँ कम है ? इतना ही नहीं उदयन का प्रच्छन्न वर्चस्व भी उसके चित्त में है। उसके द्वारा व्यक्त होती प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट करती हैं कि वह वर्चस्व से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रही है। कभी-कभी उसकी उदासी सूचित करती है कि अतीत की स्मृतियों के बोझ से दबकर वह मानो अपने को दण्ड देना चाहती हो। वह उदयन के प्रति अभिमुख होने के लिए संघर्ष कर रही है....किन्तु ऐसा हो नहीं पाता, क्योंकि अनिकेत है...मेरा वश चले तो उसकी दुनिया में से छिटक जाऊँ, अपनी वेदना लेकर। किन्तु छिटककर कहाँ जाऊँ ? यहाँ तक तो आ गया ! यह तो केवल भौगोलिक अन्तर हुआ। इस बाह्य सृष्टि में स्थानान्तरण करने से काम नहीं चलेगा। यह जो दृश्यमान है, वह तो मात्र भौतिकता है। इसका परित्याग करने से अमृता से दूर न हो सका। अवान्तर भूमि में भी संवेदन तो पूर्ववत् बना रहा। उसके स्मरण की वेदना से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। चिन्तक सच ही कहते हैं—'यह पूरा प्रश्न आन्तरिक है।' बम्बई में था तभी उसके निकट रहकर मुक्त हो गया होता तो उबर जाता। श्री रमण महर्षि ने ठीक ही कहा है—'दुःख इसलिए है कि तुम दुनिया को अपने से बाहर देखते हो और सोचते हो कि इसमें वेदना है, किन्तु दुनिया और वेदना दोनों ही तुम्हारे भीतर हैं। यदि तुम अपने भीतर देखोगे तो कोई वेदना नहीं रहेगी।' अन्तर्मुख होना चाहिए। मेरा विश्व मेरे भीतर बसता है, किन्तु इस विश्व में तो मानो अमृता बसती है। इसमें और कुछ नहीं होता तब भी वह तो होती ही है। उसकी स्वप्निल छवि के दृष्टिक्षेप मात्र से ही नीरव शान्ति में लहरा उठता हूँ, निस्तरंग चित्त की अवस्था कैसे प्राप्त करूँ ? पढ़ा हुआ एक ओर ही रह जाता है। अस्तित्व के साथ उसका सायुज्य नहीं हो पाता—अनकान्सस अवेअर्नेस ! अकृत्रिम जागृति ! अचेतन संवित्ति ! कैसे प्राप्त करूँ ? अचेतन सम्प्रज्ञता तक—भरपूर मौन तक पहुँचने के लिए संघर्ष करना ही पड़ेगा। मौन से बढ़कर यहाँ और कुछ नहीं। तमाम कोलाहल मौन में बदलकर ही मुक्ति पाते हैं।"

"बाबू सा'ब ! चाय ले आऊँ ?" होटल के नौकर का हँसता हुआ चेहरा खुले दरवाजे में से झाँकता हुआ पूछता है। वह इतनी आत्मीयता से बोला मानो अनिकेत का पुराना नौकर हो।

"ले आओ।"

"और कुछ ?"

"ले आओ।"

"क्या ?"

"कुछ नहीं।"

अनिकेत को ध्यान आया कि उसने ध्यान दिये बिना ही नौकर को जवाब दिये हैं। इसलिए वह नौकर के सामने देखकर बोला—"सुनो! दो कप चाय लाओ। यहाँ बैठकर एक तुम पीना।"

नौकर गया। अनिकेत उठा।

अनायास एक स्वर उसके स्मरण में से एक लय के रूप में वह आया। केवल स्वर! स्थान-काल से मुक्त। कब सुना था यह स्वर....हाँ, शान्तिनिकेतन से कलकत्ता लौटते समय गाड़ी के डिब्बे में एक कन्या के कण्ठ से वातावरण में प्रसारित होता वह गीत....क्या शब्द थे? रवीन्द्रनाथ का गीत था वह? शब्द? शब्दों को पीछे ढकेलकर स्मरण ने केवल स्वर दिये, लयबद्ध स्वर।

वह कमरे में चक्कर लगाने लगा। गीत की लय गूँज उठी। शब्द धीरे-धीरे वह आये—

"आमि चिनि गो, चिनि तोमारे ओगो विदेशिनी!"

वह बाजार में गया। गया था उतनी ही जल्दी लौट आया। चाय ठण्डी हो रही थी। उसे ठण्डी चाय बहुत अच्छी लगी।

"मैं आकाश की ओर कान धरे तेरा गीत सुनता हूँ, मैंने अपने प्राण तुझे ही सौंप दिये।"

अनिकेत ने पूरा गीत गाया। एक बार-दो बार। उसे हुआ कि वीराने में अकेला होगा तब गायेगा, ताकि वह अकेला ही सुन सके, रेगिस्तान में रवीन्द्र-नाथ ठाकुर का स्वर! रेगिस्तान पर सुन्दर का आशीर्वाद। और वह फिर से गाने लगा—

"भुवन भ्रमिया शेषे आमि एसेछि नतून देशे,
आमि अतिथि तोमारि द्वारे ओगो विदेशिनी।"

—भुवन का भ्रमण कर अन्त में मैं नूतन देश में आया हूँ। मैं तुम्हारे द्वार पर अतिथि हूँ, हे विदेशिनी!

मैं तुझे जानता हूँ, जानता हूँ, हे विदेशिनी!

तृतीय सर्ग

निरुत्तर

"मनुष्य ज्यां लगी स्वेच्छाए पोताने सहुथी छेल्लो न मूके त्यां लगी एनी मुक्ति नथी ।"

—गान्धीजी

एक

समुद्र के निकट और एक दूसरे से दूर।

उस दिन समुद्र से दूर और एक दूसरे के निकट बैठे थे।

उस दिन कार पार्क करके मरीन ड्राइव पर उछलते पानी के साथ-साथ अमृता चल रही थी। पीछे से आकर उदयन ने हाथ पकड़कर उसे रोका था। वह पन्द्रह-बीस मिनट लेट था, इसलिए अमृता नाराज थी। उसे मनाना पड़ा था।

आज क्रॉसिंग पर नजर मिलने पर अमृता ने विवेक से काम लिया था और पुरानी आदत के अनुसार उदयन कार में बैठ गया था, पर पिछली सीट पर।

उस दिन आषाढ़ शुरू हुआ था।

आज आसोज की एक साँझ है।

इस बीच तीन वर्ष बीत गये है।

समुद्र की लहरों के उड़ते जल-बिन्दु एक दूसरे से टकरा-टकराकर बिखर जाते हैं। अपने अंशों को हवा में छोड़कर ये जल-बिन्दु निकट बैठे हुए लोगों के चेहरों तक पहुँचते हैं।

उस दिन हवा का स्पर्श उन्हें आर्द्रता का अनुभव करा रहा था। आषाढ़ के आक्रामक मेघ ने नगर की ऊमस को तहस-नहस करके उसे रास्तों पर बहा दिया था।

आज समुद्र के छलकते जल-बिन्दुओं में से एक उदयन की आँख में गिरा और उसमें खारापन आँज गया। वे आज उस स्थल पर नहीं बैठे थे जहाँ लहरें पिछले झाग को मुँह पर लेकर मन्थर गति से आगे बढ़ती हैं। लहरों की सीमा आँके बिना वे बैठे थे। समुद्र स्थल से बँधा होता है, काल से प्रभावित। यह बात अमृता जानती है। वह तो जुहू के समुद्र को क़रीब से पहचानती है। इसलिए दूर ही बैठती, किन्तु वह सीधा यहाँ तक चला आया। अमृता उसका अनुसरण कर रही थी।

'वह दिन' अमृता को याद आया है—

"उदयन !" पल्लू का सिरा हाथ में लेकर वह बोली थी।

"क्या ?" मानो उसे डिस्टर्ब किया गया है, वह ऐसे बोला। शायद बोला

भी नहीं, केवल हाज़िरी भरवायी थी।

"मैं तेरा ऋण किस तरह चुकाऊँगी ?"

"कहाँ से ऐसे शब्द बीन लायी है तू ? ऋण काहे का ? मुझे यह शब्द अच्छा नहीं लगता।"

"तो क्या अच्छा लगता है ?"

"इतनी धीमी स्वरलहरी, जो नज़दीक से सुनने को मिले—जिसे मात्र मैं ही सुन सकूँ, मुझे अच्छी लगती है।"

"तू तो फिर उपकार में वृद्धि करने लगा !"

"देख, फिर 'उपकार' ! दूसरों से प्रशंसा सुनकर जो फूल जाते हैं, उनका आत्म-विश्वास डाँवाडोल होता है। उसे दृढ़ किये बिना नहीं चलेगा।"

बोलते-बोलते उसने अमृता का हाथ पकड़कर दबा दिया था। पवन के झोंके से झुक जाती कदली की तरह अमृता दबाये जा रहे हाथ को खींचने के लिए झुक गयी थी। उदयन ने हाथ छोड़ा नहीं, अन्त में हवा में उछाल दिया था।

"देख तू इतना परेशान मत कर, तू इतना निष्ठुर क्यों है ?"

"वाह ! कैसा व्यतिक्रम ! अभी 'उपकार' कहा, अब निष्ठुर !"

"दुखी किये बग़ैर तू अपने को ठीक तरह से प्रकट नहीं कर सकता। इसी कारण मैंने तुझे निष्ठुर कहा। वैसे, सच कहूँ ? बस, कह ही डालूँ, उदयन ? तेरे इन निष्ठुर आघातों से जो दर्द जागता है न, जो दर्द, वह मेरे पूरे अन्तस्तल को झंकृत कर जाता है। तेरा आघात मुझमें दुःख के बदले ऐसी विरोधी भावनाएँ क्यों जनमाता है ?"

"इसका जवाब शब्दों में नहीं दिया जा सकता। इसके जवाब के लिए आज तू भले ही तत्पर हुई हो पर अभी तेरी पूर्ण तैयारी नहीं है। घर जाकर देखना, तेरी आँखों की बिल्लोरी झाँई में निरी मुग्धता तैरती है।"

"तू मेरी बात का अलग ही अर्थ दे रहा है। मेरा आशय कुछ और ही था।"

"बनो मत।"

"देख, फिर अविश्वास पर आ गया। अपनी आदत से तू इतना अधिक लाचार क्यों है ? बस अविश्वास, क़दम-क़दम पर अविश्वास। मैं कुछ और ही कह रही थी, मैं तेरे स्पर्श के लिए आतुर नहीं।"

"ऐसा ?"

उसने अमृता को बाँह पकड़कर निकट खींचा, लेकिन दूसरे ही क्षण वह दूर ख़िसककर बैठ गया। इसलिए अपने को छुड़ाकर खड़ी होने को उत्कण्ठित

अमृता फिर वैसी ही बैठी रही।

"एक शर्त है उदयन !"

"कैसी शर्त है ? किस लिए ?"

"तुझे इतना भी पता नहीं कि शर्त कुछ जीतने के लिए होती है।"

"मुझे हारने में रुचि हो तो ?"

"हारने का गौरव अनुभव करने का तुझे शौक है।"

"कबूल। कह अपनी शर्त।"

"तुझे सुधारना है।"

"किस बात में ?"

"बहुत-सी हैं। एक, तू सबकी अवहेलना करता है; दो, तू अपने को कुछ अधिक समझता है; तीन, तू अपने सामनेवाले की तो सुनता नहीं और उसे सुधारना चाहता है; चार, तू किसी की सिद्धि से विस्मित नहीं होता, सब कुछ शंकित नज़रों से देखता है। और, अन्तिम बात कि..."

"यह सब मैं मान लूँ और तेरे आदेशानुसार सुधर भी जाऊँ, किन्तु क्या मैं यह जान सकता हूँ कि ऐसा करने से मुझे क्या मिलनेवाला है ?"

"अमृता।"

"अर्थात् तू मेरे व्यक्तित्व को गिरवी रखवाकर अपने साथ मुझे ब्याह देना चाहती है ? तेरे-जैसी अगणित अमृताएँ मैं ऐसे शर्ती मामलों में हारने को तैयार हूँ। अमृता ! तेरे विचारों में बचपना है। तू सीखा हुआ बल्कि सुना बोलती है। तू मुझे सुधारना चाहती है अर्थात् मुझमें क्षतियाँ देखती है। अगर मैं यह जानता होता कि तू मेरा ऐसा मूल्यांकन करने लगेगी तो तेरे बौद्धिक विकास में रुचि लेकर समय नहीं बिगाड़ता। तुझे तो अस्तित्व के साथ कुछ लेना-देना ही नहीं। सदैव ऊपरटल्ली बातों से प्रेरित होती रहती है। तू मुझे समझती नहीं, अमृता। नहीं समझती और मुझे आशा है कि तू मुझे समझेगी भी नहीं।"

"समझती चाहे न होऊँ, पर चाहती हूँ। इससे प्रेरित होकर तेरी किसी अपूर्णता को नज़रअन्दाज़ करके चलने को मैं तैयार नहीं। तेरी प्रशंसा शुरू करूँ तो मेरा वक्तव्य, अपनी ज़िन्दगी उतना लम्बा चले। मगर जाने दे यह बात। तू समझेगा कि फिर से तुझे खुश करने के लिए बैठ गयी। ऐसा करने का आज इरादा नहीं। आज तो मैं तुझे एक बात कहकर ही रहूँगी—तू सबको सुधारने के मनसूबे रखता है। तेरे लेखों में, तेरे वक्तव्यों में सुधारक का असन्तोष प्रतिध्वनित होता है। किन्तु तू स्वयं सुधरना नहीं चाहता। न तुझमें शान्ति है, न धैर्य। हमें दूसरों पर इतना खीझने का क्या अधिकार है, उदयन। यदि सबको नगण्य मानेगा तो तू जियेगा क्या ? झगड़ा कर-करके हर वर्ष, कभी-कभी तो

वर्ष में एक से अधिक बार तू नौकरी छोड़ देता है। क्या यह सब ठीक है?"

"अब समझा कि तू अपनी सुरक्षा की चिन्ता से मुझे सुधारना चाहती है।"

और वह खड़ा हो गया।

"तो जा, यह तुझे छोड़कर चला।"

अमृता ने दौड़कर उसे पकड़ लिया था, मनाया था, उसके कन्धे पर हाथ रखा था। उसके नाक पर उँगली से टंकोर मारी थी। उसे अच्छे नहीं लगते किन्तु उदयन को अच्छे लगते हैं इसलिए तलें हुए काजू लेकर खूब-खूब खाये थे। फिर उदयन की दोनों जेबें भर दी थीं। उदयन की रुचि-अनुसार कार को पचास-साठ मील की गति से चलाकर नरीमन प्वाइण्ट तक एक-एक चक्कर मारकर उसे मलाबार हिल पर छोड़ दिया था। 'गुड नाइट' कहकर वह विदा हुई थी।

आज अभी तक अमृता एक शब्द भी नहीं बोली थी। बैठी है। आकाश में समस्त नगर से उपेक्षित पीले चाँद को कभी-कभी देख लेती है, तो कभी उसे आच्छद कर लेते बादल को देखती रहती है। बरस जाने के कारण वे बिलकुल शान्त लगते थे। चाँदनी के आगमन के कारण विवेकी अन्धकार समुद्र के गर्भ में जाकर सो गया है। वह जागेगा तो उसकी ओर दौड़ा आयेगा ऐसा उसे बार-बार लगता है।

"अमृता! कल मैं मद्रास जा रहा हूँ। थोड़ा ठहरूँगा फिर इन्दौर जाऊँगा। जयपुर, दिल्ली, लखनऊ और कलकत्ता में कुल मिलाकर चारेक महीने भारत में रहूँगा। फिर जापान जाना होगा। यह मेरा कार्यक्रम है।"

"मेरी मदद की कहीं जरूरत लगे तो बता। मैं किस तरह तेरे लिए उपयोगी हो सकती हूँ?"

"मुझे छिन्न-भिन्न करने में।"

"तेरी प्रतिक्रिया से मैं अनभिज्ञ नहीं। और इसका मेरे पास उपाय भी नहीं।"

"तू सच बोलने को तैयार हो, तो मैं बता दूँ।"

"तेरा यह वक्र और संशयग्रस्त उद्गार असह्य है, उदयन। अब मेरा उपहास करना तू छोड़ दे। मुझे मुझपर ही छोड़ दे। तेरे आरोपों से मैं दिग्भ्रान्त हो जाऊँगी। कृपा करके तू मुझे उपेक्षित कर दे। मेरी कठिनाई यह है कि मैं न तेरी उपेक्षा कर सकती हूँ, न तुझे स्वीकार ही पाती हूँ। अनिश्चय की अराजकता में जी रही हूँ। तेरी प्रतिक्रियाओं को मैं समझती हूँ, किन्तु..."

"समझती होती तो मुझे स्वीकार सकी होती।"

"नही। शायद तुझे समझती हूँ, इसलिए स्वीकार नही पाती। जिस मुग्धता में तेरे बिना अन्य कुछ भी नही दिखाई देता था उसे बीते तो वर्षों हो गये। आज मैं तटस्थतापूर्वक तुझे देख रही हूँ। धुरीहीन चक्र की भांति तू आगे बढ़ता जाता है। मुझे जीवन में केवल गति अभिप्रेत नही। मुझे आनन्द भी अभीष्ट है। हाँ, केवल सुख का नही, वेदना का आनन्द भी मुझे वांछित है। तू दुख और वेदना में अन्तर नही करता। तू संघर्षप्रिय है। मेरा इससे भी विरोध नही, किन्तु तेरे संघर्ष की मुझे कोई फलश्रुति दिखाई नही पड़ती। तेरा संघर्ष लक्ष्यहीन है, अथवा तेरे संघर्ष का लक्ष्य ही संघर्ष है। किसी को कुछ भी नहीं गिनने की वृत्ति के मूल में अश्रद्धा रही है। तूने पढ़ा है किन्तु ऐसा कि जिससे तेरी अश्रद्धा ही बढ़ी है। अलबत्ता अनिकेत यह सब पढ़कर भी अपनी धुरी को बनाये रख सका है। उसकी तरह मुझे भी लगता है कि दुनिया असुन्दर नही। हमारी मुग्धता को टिकाये रख सके ऐसा भी इसमें है अवश्य...आज तक के मेरे साहचर्य का तेरे व्यक्तित्व पर कुछ भी असर नही हुआ, तो फिर....तेरे साथ जुड़ने के बाद मेरे लिए पश्चात्ताप ही हो तो....खैर, जाने दे यह बात, तू बहाना समझेगा। किन्तु मेरा अनुरोध है कि तू मेरे अनिश्चय को समझने का प्रयास कर। जिसे स्वीकारने से—जिसे प्राप्त करने से मैं 'अमृता' न रहूँ उसे पाने से ही क्या? उसे पाकर मैं क्या करूँगी?"

उदयन खड़ा हो गया। समुद्र की ओर बढ़ा। वातावरण की खराश उसके श्वास-प्रश्वास द्वारा गहरे और गहरे उतर रही थी। उसका शरीर भी त्वचा के रन्ध्रों द्वारा वातावरण में से खराश तलाश रहा था। रक्त में कातिल जलन होने लगी थी। बवण्डर में फँसे पक्षी की भाँति उसकी जिजीविषा तड़प उठी। अपने पंखों की शक्ति से हाथ धो बैठा पक्षी जिस तरह पंख बन्द करके गहरी खाई में गिर जाना चाहता है, उसी तरह उदयन को अपना भार फेंक देने का मन हुआ। उसे लगा, "लौटती तरंगों को अपना शरीर सौंप दूँ। अथवा सामने से हँसती आती लहरों की ओर दौड़ जाऊँ। लहरों की गति ग्रहण कर उनके नीचे सरक जाऊँ। गहन नीर के अन्धकार में प्रवेश कर समाप्त हो जाऊँ और समुद्र बन जाऊँ। अमृता भले ही बाहर रहे और किनारे पर फेंके गये मेरे शव को देखकर अपने अन्तर्द्वन्द्व को क्षणिक अश्रु की भाँति अंजलि में घोलकर, थोड़े दिन मेरा स्मरण करने के बाद निर्विकल्प वरण कर सके। उसे शव सौंपकर मेरे प्राण वडवाग्नि में घुल जायेंगे। फिर भले ही यह वडवाग्नि लहरों में उछलकर फणिधर की तरह किनारों पर सिर पटकती रहे।"

निर्णय करने के लिए वह खड़ा रहा और फिर तो खड़ा ही रहा। यह तो

पलायन होगा। निर्णय नहीं कर सका। विचारशक्ति मन्द पड़ती गयी और अन्त में विचारशून्य बनकर वह खड़ा ही रहा। समुद्र की सतत चलनेवाली तरंग-लीला के स्पर्श से सजीवन प्रतीत होता गहरा सन्नाटा उसकी आँखों में प्रतिबिम्बित होने लगा। काला और अनन्त अवकाश उसके चित्त में गहराता गया। वह पुतला बनकर खड़ा था। अमृता पास आकर खड़ी हो गयी।

हाथ पकड़कर उसने उदयन को लौटाया। चौपाटी पार करके वे मरीन ड्राइव के बँधे हुए समुद्र के किनारे पर बने फ़ुटपाथ पर चलते रहे। उदयन थक गया हो, इस तरह खड़ा हो गया। पाल पर बैठ गया।

अमृता ने उसके कन्धे पर हाथ रखा।

"साथ-साथ व्यतीत किये गये समय की बुराइयाँ मुझे सहन करनी चाहिए—ऐसा तू मानता हो तो बता। तुझे मेरी अनिवार्यता महसूस होती हो तो बता। मैं अपनी बलि देने का संकल्प इस समुद्र की साक्षी में करने को तैयार हूँ।"

कन्धे पर से हाथ अलग फेंककर वह चारेक फ़ुट ऊँची पाल पर खड़ा हो गया। अमृता से उसकी ऊँचाई बढ़ गयी।

अमृता ने उसका हाथ पकड़ा।

"अरे हट, मुझे दया की जरूरत नहीं। जा किसी वीराने में जाकर बरस। भोग देने के लिए वह उचित स्थान है। आत्मनिर्धारित नियति के रूप में मैं एकाकीपन अपना लूँगा। मैं तेरे बिना जीऊँगा, अमृता। तेरे स्मरण के बग़ैर भी!"

और वह नीचे उतरने लगा। क्षणार्ध के लिए उसे लगा कि उसका भार समुद्र की ओर झुकना चाहता है। उसके अन्तर्व्यापी अन्धकार में विद्युत्-रेखाएँ चमक उठीं। कड़कड़ाहट हुई। अपने को सँभालता हुआ वह फ़ुटपाथ पर उतरा। चला।

चला गया।

अमृता वैसी ही खड़ी थी।

अब अमृता पीछे मुड़कर उसे देखना चाहे तो उसका दीख पड़ना सम्भव नहीं था। वह चल रहा था। अपने शरीर को लादकर, अपने चारों ओर घूमती रहती परछाइयों को खींचता-धकेलता वह चल रहा था।

अमृता कार लेकर उस दिशा में चली जिधर वह गया था। मलाबार हिल पहुँची। वहाँ उसके कमरे पर ताला था। थोड़ी देर खड़ी रही। धीरे-धीरे जीना उतरी। रास्ते पर भी उसे तलाशती रही। वह नहीं लौटा।

सिक्कानगर न जाकर वह जुहू पहुँची।

जीप आ जायेगी। अमृता ने कुछ सोचकर अनिकेत को सूचित करने का विचार त्याग दिया। "वह यहाँ आकर ले आये। उसे समाचार दिया जाये तो अवश्य ही आये वह। पर बम्बई तक आये और यहाँ अपने घर तक न आये तो...और कुछ याद न रहे और वह सीधा यहां चला आये तो...यहाँ एकान्त में मैं उसकी दृष्टि का स्पर्श सह सकूँगी? यहाँ तो पता चले कि वह किन हद तक दूरी बनाये रख सकता है? और उसे दूरी बनाये रखने की याद न रहे तो? स्वयं में तो उससे दूर रहने की शक्ति नहीं...नहीं। अब तो वह न आये, यही उचित है।"

"...नहीं, वह तो निरपेक्ष ही रहे, यह तो मेरा आरोपण है, अनपेक्षता उसका लक्ष्य है। यहाँ आने पर भी वह एकान्त के वश न हो। उसके स्पर्श से एकान्त अन्तहीन बन जाये।

फिर भी जीप को यहाँ से छुड़ाकर उसे जोधपुर रवाना करूँगी। उदयन यहाँ होता तो हम दोनों जीप चलाते हुए जोधपुर जाते। क्या उदयन अब मेरे साथ आयेगा?"

जीप मिलने के बाद अनिकेत आभार मानता है। इससे अधिक कुछ नहीं लिखता। अपनी डायरी के पहले पृष्ठ पर लिखता है:

"समय को भोगता हूँ, स्वादमुक्त।"

अमृता की अध्ययननिष्ठा और कार्यशीलता की पुरातत्त्व मन्दिर के संचालक क़द्र करते हैं।

अनिकेत जीप में एक सप्ताह का प्रवास कर आया है। सभी कैलेण्डरों पर से पन्ने फटते रहते हैं। अमृता और अनिकेत के कैलेण्डर पर से भी एक साथ पांच-पांच दस-दस पन्ने फटते रहते हैं। समय का पन्नों के कम होने के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। वह अपनी गति से बहता रहता है। अमृता जानती है कि समय निस्संग है।

अनिकेत प्रयत्न करता है, समय से निस्संग होने का। जोधपुर से मंडोर जानेवाली सड़क पर पड़नेवाले मकान में अब वह 'सेटल' हो गया है। आराम के क्षणों में जब वह बैठा होता है तो एक पक्षी युगल को देखता रहता है। गुलमोहर की डाल पर चोंच मारते ये पक्षी थकते नहीं। बंगाली सीखते समय 'सुनितिमुधा' नामक पाठमाला में उसने 'काठठोकर पाखी' की कहानी पढ़ी थी। नवपरिणित युवक से उसकी भगिनी कहती है कि घर में बिना ईंधन के परेशानी होती है। युवक वन-देश में ही निकल पड़ता है। वन में जाकर कुल्हाड़ी से वृक्ष पर वार करता है। वृक्ष उस वार की वेदना से तड़प उठता है और उसे अपनी पत्नी के साथ पक्षी बन जाने का शाप देता है। युवक भी शाप देता है। तभी

से वर-वधूरूप में ये पक्षी वृक्षों को कुतरते रहते हैं और इस तरह मनुष्य रूप में जीवित रहने के अवसर के छिन जाने का वदला लेते रहते हैं। उसने देखा—पक्षी-युगल गुलमोहर को कुतरते रहते हैं। उनके सिर पर कलगी है। उनके पंख यौवन—प्रिय रंगों से चमकते हैं।

उनकी चोंचों के वार से होती आवाज़ अनिकेत के कान में पड़ती है।

कई दिनों के वाद वह उसी तरह विरत वैठा होता है।

टक् टक् टक्....

टक् टक् टक्...

पक्षी की चोंच में से एक टुकड़ा गिरता है।

वह देखता रहता है।

उसे खयाल आता है कि पक्षी दो नहीं, एक ही है। दूसरा कहाँ गया? वह पेड़ के नीचे जाकर देखता है। दूसरा दिखाई नहीं देता। वह आवाज करता है।

पक्षी उड़ जाता है। उसके पीछे-पीछे उड़नेवाला नहीं है।

वह अवाक् हो खड़ा है। उस एक को उड़ा देने का उसे रंज है। नीम की डाली से पत्ते झरते हैं। आँगन के वाहर पीलू पर दो कौवे लड़ रहे हैं।

कठफोड़ा वापस आता है।

टक् टक् टक्...

टक् टक् टक्...

अमृता के सामने पड़ी पुस्तक के पृष्ठ फड़फड़ाते हैं। पवन है। वह खड़ी होती है। खिड़की के परदे गिरा देती है।

'ताकला-माकन'। एक मरु। भूगोलवेत्ता स्वेन हेडिन की आत्मकथा का एक प्रकरण उसके सामने खुल गया है। वह पढ़ती है।

यात्री की सामग्री समाप्त होती जा रही है। रेत के टीले पर से उतरता ऊँट वैठ जाता है। जहाँ पहुँचना है वह जगह कव आयेगी कुछ पता नहीं चलता है। पानी खतम हो गया है। साथियों और सामग्री को छोड़कर यात्री आगे वढ़ता है। गरमी से बचने के लिए रेत में खड्डा कर शरीर को धड़ तक नीचे उतार देता है। उसके पास और दूर सर्वत्र सन्नाटा ही सन्नाटा है। मुसाफ़िर की देह सूख गयी है। थक चुकी है उसकी देह। फिर भी वह घसीटता जाता है। अव मुसाफ़िर स्वेन हेडिन नहीं, अनिकेत है। रेत की दो-दो सौ फ़ुट ऊँचे टीलों के बीच छह फ़ुट की आकृति को फँसती देख अमृता पढ़ना वन्द कर देती है।

इधर कुछ ऐसी आदत हो गयी है कि वह काम की योजना वनाये विना ही निकल पड़ता है। कभी-कभी इधर-उधर साइड में देखे विना ही वह जीप को तेज़ी से दौड़ा देता है। देखना भूल जाता है। गड्ढे-रिगड्ढेवाले रास्तों पर

उछलती, झुकती जीप को देखने में उसे मजा आता है। पीछे की सीट के उछलने पर होनेवाली आवाज उसे सद गयी है। रेत में जीप के पहियों के फँस जाने पर वह स्टियरिंग पर सिर टिकाकर आराम करता है। उसने पथरीले रास्ते पर आड़ी-टेढ़ी जीप चलाना शुरू किया है। कभी सुबह आराम करता है, दोपहर में काम करता है।

एक वृद्ध को उसने लिफ्ट दी थी। उसने पूछा था :

"यहाँ क्या ढूँढते हो ?"

"जो नहीं है वह।"

अमृता ने इनकार नहीं किया। दो शोधछात्राओं के साथ वह उदयपुर, एकलिंगजी, नाथ द्वारा होती हुई चित्तौड़गढ़ पहुँची। केसरिया मिट्टी को सन्ध्या में ढँककर जब सूर्य जाने लगा तब उन्होंने नीचे उतरने का विचार किया।

"आपके जुहू समुद्र से अठारह सौ फुट की ऊँचाई पर हम लोग खड़े हैं, दीदी।"

"हूँ।"

"दीदी, इसने कहा उससे भी अधिक ऊँचाई पर हम लोग अभी थे। विजया-स्तम्भ की नवी मंज़िल पर आप दूर-दूर तक कुछ देखने का प्रयास कर रही थीं तब समुद्र की सतह से हम अठारह सौ पचास और एक सौ बाईस फुट की ऊँचाई पर थे। मुझे आश्चर्य होता है दीदी कि सभी समुद्रों की ऊँचाई एक-सी और पर्वतों की अलग-अलग।"

दीदी ने उत्तर नहीं दिया। इसलिए दूसरी छात्रा बोली :

"पर्वत ऊँचे हैं इसलिए तो उनकी ओर से नदियाँ समुद्र की तरफ दौड़ती हैं और समुद्र के खारेपन में घुलती-मिलती रहती हैं। दीदी आपका इस विजय-स्तम्भ के बारे में क्या मानना है ?

कला और स्थापत्य की दृष्टि से यह कुतुबमीनार से भी श्रेष्ठ माना जाता है। फर्ग्युसन इसे रोम के 'टॉवर ऑफ ट्रेजन' की अपेक्षा स्थापत्य की उच्च अभिरुचि का प्रतीक मानता है।"

"हूँ।"

"क्यों कुछ बोलती नहीं आप ?"

"मैं रोम तक पहुँची नहीं। केवल चित्रों पर से क्या खयाल आये ? फ़ोटोग्राफी भी एक कला है। फलत मूल वस्तु कमोबेश इसमें नया रूप प्राप्त कर लेती है। चलो। अब हम नीचे उतर जायें।"

"उतरने में तो देर नहीं लगेगी। करीब मील-भर का रास्ता है। चलो स्पर्धा करें। कौन पहले उतरता है ?"

"तुम्हें जल्दी उतरना हो तो यहाँ गौ-मुखी कुण्ड के पास सीधा ढलान है। हिम्मत हो तो चलो।"

"चलो दौड़ो।"

"सँभालना। थोड़ी-सी भी फिसली कि पता भी नहीं लगेगा।"

अनिकेत जैसलमेर से दक्षिण-पश्चिम में साठ मील दूर निकलकर मयाजलार गाँव के सिवान में ठहरा है। उसे यहाँ के आदमी अच्छे लगते हैं। वैसे आदमी यहाँ मुश्किल से ही दिखाई पड़ते हैं। मीलों तक कोई चेहरा नहीं दीखता। और जब दिखाई देता है तब होता है पूरा जवाँमर्द। पहाड़-जैसे ऊँचे लोग। बिना किसी अपवाद के मैत्री और दुश्मनी का निर्वाह करनेवाले। स्त्रियों की रक्षा करनेवाले। और स्त्रियाँ—सुन्दर, बालक उनसे भी सुन्दर।

अनिकेत की जीप तीनों ओर से रेत के टीलों से घिरी है। एक टीले पर बबूल की झाड़ी है। बीच की समतल भूमि पर एक खदिर वृक्ष है। गाइड मयाजलार गया है।

अमृता का पैर फिसल जाता है। वह पत्थर से रिसक पड़ती है। वह बैठकर उतरती जाती है। खड़ी होती है। उसके पैरों में फिर से लापरवाही दिखाई देती है। जल्दी से उतरने लगती है। खड़ी रहती है। छायाओं के पहुँचने तक वह खड़ी रहेगी। ढलान की बायीं ओर एक वृक्ष के पत्ते फरफराते हैं।

मीरा और पद्मिनी के महल के बीच का अवकाश फड़क उठता है। एक कृशकाय वृद्धा के हाथ में टूटा तानपूरा है। बगल में मंजीरे रखे हैं। भजनों की छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ रखी हैं। दीप जल रहा है। वर्तिका काली पड़ गयी है। मन्दिर की सीढ़ियाँ—

तालाब के मध्य पद्मिनी महल। एक ओर राजप्रासाद के गुम्बद में चारों दिशाओं में जड़े बड़े-बड़े आईने, एक आईने में पद्मिनी महल का खाली झरोखा।

मीराबाई के मन्दिर और पद्मिनी महल के बीच का अवकाश अब थिरकता नहीं। बीच में एक पुराना जर्जर कालिका मन्दिर है। ताम्रवर्णी मिट्टी पर उतरता अन्धकार—महाकाल का कृपा-प्रसाद...।

"चलो।"

नोट करने-जैसा आज कुछ भी नहीं दीखा। डायरी के पन्नों पर वह रेखाएँ खींच रहा है। कोई आकृति उभरती नहीं। जीप की पिछली सीट पर पर्याप्त आराम नहीं मिलेगा।

वह रेत के टीले पर चढ़ने लगा। तारिकाओं के मन्द प्रकाश में रेत पर पवन-खचित डिज़ाइनें दिखाई नहीं पड़ रही थीं, फिर भी वह देख सकता है। टीले की चोटी पर थोड़ा भाग समतल है। वहाँ बैठने के बाद उसे रेत में अपने

पदचिह्न दिखाई देते हैं। वह अब दूर का अन्धकार भी देख पाता है।

घण्टे-भर बैठने के बाद वह सो गया। बूटों को तकिया की जगह लगाया टेरी-वूल का काला पैण्ट और क्रीम-कलर की ऊनी कमीज पहनी है। इन दि चश्मा नही लगाता। आंख का नम्बर एक से आधा हो गया है। नींद के आसा दिखाई दिये। उसने करवट बदली। सो जाने के बाद चित्त हो गया।

अमृता गैलरी में बैठी पढ़ रही थी। कमरे में आकर उसने बत्ती जलायी छात्राएँ सो गयी थी। प्रवास में दोनों एक ही बेडिंग का उपयोग करती हैं लिपटकर सो गयी है। शाल ओढ रखी है।

दरवाजा बन्द किया। सिटकनी लगायी—ध्यान से। खिड़कियों में सलि लगे हैं। वह सो गयी। थकान महसूस हुई। ठण्ड है। सोचा, खिड़कियाँ ब कर दी जायें! पर उठ नही पायी।

वह नींद में लम्बे सांस लेता है। पृथुल वक्ष जब श्वास से भर जाता है कमीज के बटन तंग हो जाते हैं...इस श्वास को सूँघता-सूँघता एक साँप आ र है। अतीव मन्द गति से वह आ रहा है। वह काटता नही। अनिकेत के पैण्ट रंग की तुलना में उसकी त्वचा धुंधली है, किन्तु कोमलता के कारण वह चमक है। कपड़े पर वह धीमे से रेंगता है। कोई आवाज नही होती।

अनिकेत की छाती पर पहुँचकर वह थोडा मुँह उठाता है। देखता रह है। कहते हैं कि सांप के आंखें नही होती!

अनिकेत श्वास लेता है और साँप का उच्छ्‌वास उसमे घुल जाता है अनिकेत के उच्छ्‌वास में रुचि नही। अनिकेत फिर से सांस लेता है। सांप उच्छ्‌वास उसमें घुलता है। यह क्रम चलता रहता है। चारों ओर का अन्धका और अधिक गहरा हो जाता है। अनिकेत के फेफड़े में नशा छाता जाता है साँप जल्दबाजी का अभ्यस्त नही है। वह निश्चिन्त है।

टार्च की लाइट...साँप के लिए बैठे रहना अनुकूल नही आया। घसा देखकर गाइड उस ओर लपका। साँप धीरे-धीरे जा रहा था। गाइड के पहुँच से पहले ही उसे बिल मिल गया।

उसने अनिकेत की नाड़ी देखी। धड़कन सुनी। राहत की सांस ली अनिकेत को जगाया। दूध दिया। बेडिंग ले आया। उसपर गर्म कम्ब बिछाया। नीचे चारों कोनो में प्याज रखा। अनिकेत सो गया।

गाइड लगभग एक घण्टे तक बैठा रहा। फिर उसने अनिकेत के कपाल प हाथ रखा। बेफ़िक्र होकर खड़ा हो गया। उसके होंठ पर लोकगीत की ए पंक्ति थिरक उठी। वह जीप में जाकर गठरी बनकर लेट गया। आगे की सी पर ताल देकर वह गाने लगा।

अमृता जागती है। चार सौ वर्ष पूर्व का समय उसकी संविति में वर्तमान बन जाता है—'अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई।'

वह करवट बदलती है।

वह करवट बदलती है।

एक छोटा-सा सरोवर। उसके चारों ओर पत्थर से बाँधा हुआ रास्ता। रास्ते की ओर सरोवर के किनारे पर खजूर और नारियल के पेड़। उनके बीच की शान्ति में अवाचक नीहार। पूर्व की ओर पाँच नीम। इन पाँचों की एक-सी छाया। छाया में मंजरी की झर-झर महक। इस महक के दोनों ओर उटज, जिनके नाम उत्तरायण और दक्षिणायण।

सूर्य के उदय-अस्त के बदलते स्थान के अनुरूप रहने के लिए वे बारी-बारी से उटज में रहते हैं। गृहपति की गति का साथ देने का उसे शौक़ है। दक्षिणी कुटीर के सामने अश्वत्थ उत्तर कुटीर के सामने वह वृक्ष जिसकी बरोहें धरती तक नहीं पहुँचतीं। किन्तु एक शाखा पर रज्जु से बँधे झूले पर वह बैठता है तब उसके पैर धरती को छूते हैं।

वह झूले पर बैठता है तब पश्चिमी किनारे के फुल्ल कुसुमित उपवन में से केवड़े की सुगन्ध पवन के पंख भिगोकर सरोवर को लाँघती हुई उसके नेत्रराग को स्पर्श कर लेती है।

सरोवर के दक्षिण में एक पहाड़ी है, जिसकी ऊँचाई को उसकी दृष्टि अनायास ही नाप सकती है। उत्तर की ओर शिल्पमण्डित अतिथिगृह है। उसके पटांगण में यज्ञवेदी है। वेदी के पत्थर पर श्लोक का एक चरण उत्कीर्ण है—

"विद्यया अमृतम् अश्नुते।"

प्रातःकालीन नीहार और सन्ध्याकालीन सुवर्ण रेणु उसे रम्य लगते हैं। प्रदोष काल पूर्व वह प्रतिदिन ताड़पत्र पर लिखे हुए उपनिषद् हाथ में उठाकर खड़ा होता है। एक श्लोक पढ़ता है और फिर अपने विश्व को निरखता श्लोक का अर्थविस्तार करता है।

एक श्लोक पढ़ने के बाद वह खड़ा है। सामने वायव्य की ओर धूल के बवण्डर उठ रहे हैं, नज़दीक और नज़दीक आ रहे हैं। वह ध्यान केन्द्रित करता है। एक काला अश्व आता दिखाई देता है। उसके मस्तक पर ध्वजा फहरा रही है, गले में बँधी घण्टी टनटना रही है। अश्व के पीछे-पीछे आता है एक ऊँट। उसकी आकृति प्रचण्ड है। उसके अंगों पर तमाम शृंगार हैं। उसका सवार सरोवर देखकर खड़ा हो जाता है और भौंहें तानता है। कमर पर हाथ रखकर भौंहें नीची करता है।

उसने दरबारी साफ़ा बाँध रखा है। इसमें तुर्रे की जगह साँप का फन शोभा

दे रहा है। उसमें हरा हीरा तग रहा है। उसके कानो में बिच्छू के डंक आकार के कुण्डल झिलमिला रहे हैं। उसकी आँखों के नेपथ्य में रोका ग झंझावात उस प्रचण्ड ऊँट के हलक में प्रकट होता है।

आगन्तुक को देखकर उपनिषद् को अपने वेत्रासन पर रखा और वह साम गया। अश्व के खड़े न रहने पर उसकी अयाल पकड़कर उसने उसे रोका औ मस्तक पर से ध्वज उठा लिया। अश्व आगे के दो पैरों पर कूदा और हिनहिन कर उसे डराने लगा। उसने खुर के पास से अश्व का पैर पकड़ लिया और झट के साथ घुमाकर उछाला। अश्व पलटकर ऊँट के पैर के पास जा गिरा।

ऊँट पर खड़े पुरुष के होंठ खुले और उनमें से घनघोर आवाज फूटी।

"ए..." पर्वतों के बीच प्रतिध्वनित मेघ कोई विशाल शिला को तोड़ डाले आवाज हो। फिर वह शिला लुढ़कती-लुढ़कती नीचे स्थिर हो और शान्ति जन ऐसी शान्ति के अनुभव के बाद वह बोला :

"कौन है तू ? इस तपोभूमि में पशु पर सवार होकर प्रवेश करने निषेध है।"

"मैं भस्मासुर हूँ।"

"उसका तो कभी का नाश हो गया। छल मत कर।"

"हे अबोध युवक ! तू तपोवन काल में जीता है इसलिए तू मुझे न पहचानता। मैं भस्मासुर हूँ। यन्त्रों का कोलाहल आकाश में एकत्रित हुआ औ उसमें से मेरा जन्म हुआ। भगवान् कालपुरुष का मुझे आशीर्वाद है।"

"मैं तपोवन काल में जी रहा हूँ ऐसा कहकर उपहास करनेवाले का साह हास्यास्पद है। हे आगन्तुक ! मैं समग्र समय में जीता हूँ। मैं शाश्वतता का द्र हूँ। यहाँ जो कुछ है वह सब ईश्वरमय है। यहाँ आश्रय चाहिए तो नीचे उतर होगा। इस धरित्री का प्रत्येक कण मधुमय है। मेरा लालन-पालन यहाँ हुआ इसीलिए किसी की अवमानना नहीं करता। अतिथिरूप में आना हो तो स्वाग करने को तैयार हूँ। आक्रमणकारी को पराभूत करने की शक्ति मेरी बाहुओ संचित है।"

जो रथ पीछे था वह एकदम निकट आ गया। रथ पर कोई सारथी न था। चार श्वेत अश्व स्वयं नियन्त्रित मालूम पड़ते थे। रथ चारों ओर मखमली आवरण से ढँका था। आगे का परदा हिल उठा और उसे सरका हुआ एक हाथ बाहर आया।

"अमृता !"

उसे लगा कि हो न हो अमृता का हाथ है। वह आगे बढ़ा। चेह प्रकट हुआ।

वह क्षुब्ध हो उठा। पुनः परदा गिर गया। उसने एक विशेष गम्भीरता का अनुभव किया। ठीक वैसी ही जैसी कि मेघाच्छादित शान्त गगन में एकाएक विद्युत्क्षेप के बाद आकाश अनुभव करता है। वह उस पुरुष के पास पहुँचा।

"आप भस्मासुर नहीं हो सकते। आपके साथ यह कौन है? यह रहस्यमयी रूपसी कौन है? यन्त्रों के प्रातिनिधिक स्वरूप के साथ ऐसी सजीव उपस्थिति?"

"यह मेरी ही उपलब्धि है। मेरी शिष्या है। मेरी साधना का आनन्दांश इसने ग्रहण किया है। इसी ने मुझे इस ओर आने के लिए प्रेरित किया है। अतः इसके वचन की अवहेलना नहीं करता। यह मेरी एकमात्र शिष्या है।"

"भस्मासुर की शिष्या यह? अखिल सौन्दर्य का सार?"

"हे मुग्ध युवक! यह मात्र सुन्दर नहीं, विदुषी भी है।"

रथ आगे बढ़ा। उसके निकट आते ही मखमली आवरण अदृश्य हो गया।

उस चेहरे में सृष्टि के तमाम चेहरों का सौन्दर्य था। किन्तु सृष्टि के चेहरों में कुछ मानवीय होने के कारण परिचित तत्त्व था। वह चेहरा सृष्टि के चेहरों से सर्वथा भिन्न कुछ विशिष्ट था। उसका स्मित अधर, कपोल और नयनों में एक साथ उभरता था। वह उस स्मित का अनुभव भी नहीं कर पाया। शायद अनुभव प्राप्त कर सकने की पर्याप्त सज्जता का उसके पास अभाव था। उसे लगा कि इस चेहरे को चेहरा न कहकर अनन्त सौन्दर्य का बिम्ब कहना चाहिए। यही सत्य के अधिक निकट रहेगा।

"अतिथि के लिए आपके प्रांगण में स्थान नहीं, राजर्षि?"

"मैं राजर्षि नहीं। साधक हूँ। आप अतिथि होंगे इसका मुझे पता न था। मैं तो समझा था कि एक प्रकार का आक्रमण हो रहा है।"

"ओ हो! इसलिए आप विक्षुब्ध हो गये थे? डर गये थे क्या?"

"डर तो मैं जानता नहीं। विक्षुब्ध हो गया था यह भी आप कह रही हैं। आपको देखा न था। और देखने के बाद जो आश्चर्य हुआ वह इतना तीव्र और सबल था कि...."

"आश्चर्य किस बात का? मानव को देखकर आश्चर्य? आप एकान्तवासी लगते हैं।"

"प्रत्येक साधक को अपना एकान्त सुरक्षित रखना पड़ता है। आप मानुषी होंगी ऐसा मान लेता हूँ क्योंकि समग्र मानवलोक मैंने देखा नहीं है। आज से मैं एक मनुष्य रूप में गौरव का अनुभव करूँगा कि मैंने ऐसे चेहरे के दर्शन किये हैं जो मानव स्वरूप में ही मुझे दिखाई दिया था।

"बस करो साधक, मुझे आपकी स्तुति नहीं चाहिए। आतिथ्य चाहिए। आपके पास किसी परदेशी के लिए स्थान हो तो उपकृत कीजिए।"

"उपकृत तो मैं होऊँगा। पधारिए। अपने कल्पित सद्‌भाग्य को आज प्रत्यक्ष होता देखूँगा। पधारिए।"

वह आगे हो गया। उन्हें अतिथिगृह तक पहुँचाया। पुरुष भीतर चला गया। और उसने शंकर-स्तुति प्रारम्भ की।

"आपका नाम ?"

"अनिकेत।"

"अनिकेत ? एक ही जगह रहनेवाला ! सुन्दर नाम है आपका ! अनिकेत !!"

"मैं आपका नाम जानने का लोभ संवरण नही कर सकता।"

"मेरा कोई नाम नहीं। वे मुझे 'कन्या' कहते हैं। किन्तु आप यदि मुझे नाम से सम्बोधित करना चाहते हैं तो दे दीजिए कोई नाम। आपकी इस सृष्टि को देखकर आपकी अभिरुचि के बारे में उच्च अभिप्राय बना है। जो भी नाम देंगे, स्वीकार लूँगी।

"अमृता। नारीमात्र का एक ही नाम हो सकता है।"

"भले ही।"

"तो मैं चलूँ ? अनुज्ञा मिले तो।"

"जैसी आपकी इच्छा। किन्तु इस तरह जल्दबाजी करने का कोई कारण न था।"

"वे आपकी प्रतीक्षा करते होंगे।"

"नही। वे किसी की प्रतीक्षा नही करते...मुझे आश्चर्य होता है कि इस मरुभूमि के बीच आप इतना अधिक पानी किस तरह एकत्र कर पाये ? यह सरोवर तो संस्कृति की तरह पावन है।"

"मेरी साधना चलती है और इसका जल बढ़ता ही जाता है।"

"इसमें स्नान करने का निषेध होगा ?"

"नही।"

"तो रात्रि का प्रथम पहर पूरा होने के बाद जब चाँदनी की नीरन्ध्र वर्षा से धरातल आनन्दित हो उठे तब मैं सरोवर में होऊँ तो कितना अच्छा रहे !"

"यह सरोवर कृतार्थ होगा !"

"तो मेरी सुरक्षा की दृष्टि से आप किनारे पर बैठे रहिए। मेरे पीछे-पीछे एक घुड़सवार आया करता है। यदि वह मुझे अकेली देख ले तो उठा ले जाये। यद्यपि मेरा अनुमान है कि वह रास्ता भूल गया है, मुझे ढूँढ़ नही सकता।"

"मैं अवश्य आऊँगा। यहाँ निपट शान्ति पसरी होती है अतः अपनी कुटीर में बैठा-बैठा भी मैं आपका पदरव सुन सकूँगा। देखिए वह हंस के आकार की नौका है न ? उसका लंगर खोलकर मैं उसमें बैठूँगा। आप सरोवर की ... है

अधिक लहराइए नहीं वरना मेरी नौका डोल उठेगी।"

"आप तो बड़े सावधान पुरुष लगते हैं। अंग-सौष्ठव को देखते हुए तो अ निर्भीक लगते हैं। फिर ऐसी सावधानी किस लिए ? अच्छा, मैं चलूँ ?"

"भोजन के लिए फल-फलादि भेजता हूँ।"

"ठीक है, हमारे सेवकों को फल अच्छे लगते हैं।"

अनिकेत जब भोजन कर रहा तब उसे लगा कि यह अशिष्टता हो रही है मेज़बान के रूप में अपना धर्म नहीं निबाह रहा। अतिथि के साथ ही भोज करना चाहिए। किन्तु कन्या ? अमृता तो नहीं है न ?

दूसरा प्रहर प्रारम्भ हो गया। पदरव सुनते ही वहाँ का वातावरण सौर पूर्ण हो गया। वह प्रतीक्षा कर रहा था। गया। चाँदनी इस तरह गहरे उतर रही थी कि लगता था वह सरोवर में प्रतिच्छादित तटीय वृक्षों की छा को छूना चाहती हो। चीनांशुक धारण किये वह सामने किनारे पर खड़ी थी उसके वस्त्रों का रंग चाँदनी में घुल रहा था। अतः उसके अंगों पर सोनचम की आभा झलक रही थी। उसने पक्षिणी की भाँति सरोवर में प्रवेश किया सरोवर के जल में प्रविष्ट चाँदनी एकाएक बाहर आयी और सतह पर लह उठी। अनिकेत के चारों ओर का स्थिर मौन डोल उठा।

जलतरंग...कन्या की क्रीड़ा से लयान्वित जल का स्थिर नौका त पहुँचना...शान्ति ...उसके प्रकम्पित श्वास का जल की शीतलता में निरुपद्र भाव से घुल जाना...कन्या के तैरने में हाथ-पैर की तालबद्ध लहक का दिख देना....अनिकेत की आँखों में जल-नृत्य के विशिष्ट हाव-भावों का समावेश. अग्नि दिशा से कमलदण्ड तोड़कर उसे हाथ में लिये अनिकेत की ओर आना. कन्या के दृष्टिस्पर्श को एकाएक पहचान लिया जाना...उसका बोल उठना- "आमि चिनि गो चिनि तोमारे ओगो विदेशिनी !"

अनिकेत का कण्ठ-स्वर सरोवर और समग्र मरुद्वीप को आन्दोलित क गया। दूसरा प्रहर पूरा होने तक सरोवर बराबर लहराता रहा। एक द्वि अनिकेत के मन से निकलती नहीं थी। यह अमृता तो नहीं हो सकती ? अंग....एक ही चीनांशुक से ढँके अंग...इन अंगों को देखकर जागता अनुराग. उसके लोचनों में जागता प्रतिभाव...यह अमृता नहीं तो दूसरा कौन ? छद्मवेश में मेरी परीक्षा करने आयी हो तो आश्चर्य नहीं।

"अमृता !"

"कहो।"

"आप अमृता ही हैं न ?"

"अमृता ही तो, आपने ही तो नामकरण किया है !"

"मेरे द्वारा प्रदत्त नाम शेष कर जवाब दो। आप अमृता ही हैं न ?

"मैं तो मैं हूँ। वे मुझे कन्या कहते हैं। वह मेरे पीछे पड़ा घुड़सवार मुझे क्या कहता होगा मुझे नहीं मालूम। आप अमृता कहते हैं। आप मुझे जिस तरह पहचानना चाहते हैं, पहचानें।"

"हे नारी ! तू मुझे क्षितिज की तरह रहस्यमय और अप्राप्य लगती है। मैं जानता हूँ कि मैं ज्यों-ज्यों तेरे निकट आता जाऊँगा तू अधिकाधिक परायी बनती जाओगी।"

"तो मैं निकट आऊँ।"

उसने हाथ लम्बा कर उसे उठा लिया। नौका को खुद ब खुद गति मिल गयी, मानो वह हंसरूपा बन गयी हो। उसने अवश होकर अपने को अनिकेत की बाहुओं में सौंप दिया और नतनयना बनी खड़ी थी। यह स्पर्श तो परिचित है। तो क्या वह छल गया ? यह अमृता ही है ? नौका की गति को किस तरह रोका जाये ? और यह इसका वस्त्र भी भीगकर अब तो उसके अंगों को आवृत करने के स्थान पर अधिक सम्मोहक रूप में प्रकट करता है। कामनाओं को अधिक उद्दीप्त करता है। अनायास प्राप्त हुआ आश्लेष उसके लिए असह्य हो गया और उसकी रग-रग में हलचल मच गयी।

"एक सेवा करेंगे ?"

"आज्ञा कीजिए।"

"मेरे कपड़े वट वृक्ष के नीचे आपके झूले पर लटके हैं। जरा बाहर जाकर ले आयेंगे ? इन गीले और आपके स्पर्श से खिसक आये कपड़ों में मैं बाहर निकलूँगी तो यहाँ की निसर्गश्री को अनमना लगेगा।"

वह नौका से सरोवर में कूद पड़ा। तैरकर किनारे पहुँचा। कपड़े उठाये, आकर खड़ा रहा। कन्या सीढ़ियाँ चढ़ती बाहर आयी। अनिकेत ने देखा कि नौका अपने स्थान पर जाकर स्थिर हो गयी है। कन्या के अंग-अंग का लावण्य ...उसके चरणों का गतिलय...श्रेणीभारादलसगमना....।

क्षणमात्र में नये वस्त्र धारण कर वह सामने आयी। उसने विदा ली। वह कुछ पूछने जा रहा था पर पूछ नहीं पाया। उटज में पहुँचकर मन को नियन्त्रित करने के लिए संघर्ष करता रहा। शाम को जिसे हाथ में लेकर खड़ा था उस उपनिषद् की सहायता से भी वह अपने मन में बिखरे भावों को केन्द्रित नहीं कर पाया। तीसरा प्रहर पूरा होने तक वह शय्या पर करवटें बदलता रहा। अन्त में उठ बैठा और अतिथिगृह की ओर प्रस्थान किया।

"गाड़ी का समय हो गया दीदी !"

वह संकोच के साथ आगे बढ़ रहा था। पहुँचकर देखा तो अतिथिगृह खाली-

खाली। यज्ञवेदी पर से लुढ़के पत्थर पर पैर टेककर वह खड़ा रहा। सब कुछ खाली-खाली। उपवन की ओर गया। कोई संचार न था। बाहर निकलकर दक्षिण की ओर मुड़ा। ध्यान से देखा—पद-चिह्न किस ओर ले जाते हैं? हाँ, ये घोड़े के पद-चिह्न, ये ऊँट के। ये रथचक्र के चीले...वह चला। तेजी से चला....दौड़ा। दूर-सुदूर तक दृष्टि पहुँचती थी। कुछ दिखाई नहीं देता था। रास्ता ठीक नहीं था। रेत के ऊँचे-ऊँचे टीले लाँघकर आगे बढ़ रहा था। खड़े-खड़े चल पाना कठिन था। बैठे-बैठे आगे की ओर खिसकना पड़ता था। पैरों में खुरदरे और नुकीले पत्थरों के चुभन से चलना दूभर हो रहा था। ऐसी चोटें फिर भी वह तो हर प्रकार से आगे बढ़ने के लिए कृत-संकल्प था। दूर-दूर तक न तो पेड़ थे, न पानी, न ही कहीं पक्षी दिखाई पड़े। केवल रात थी। पिछले प्रहर की रात, जिसमें सूर्योदय का भ्रम भी नहीं जागता था। वह चलता चला जाता था।

चिमड़ाकर सूख गये एक छोटे-से पेड़ को देख कुछ आशा बँधी। उसके पदतल में कुछ खड़-खड़ हुई। उसने झुककर देखा—चांदनी के सिक्कों का ढेर। देखा अनदेखा कर वह आगे बढ़ गया। एक खण्डित दीवाल पर चित्रित आकृतियों ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। अन्तिम प्रहर के उजाले में वह सभी कुछ ठीक तरह से देख पा रहा था। वह एक गड्ढे की ओर मुड़ा। अन्दर उतरा। लकड़ी के जैसा कुछ उसके पैर में अटका। उसे उठाकर एक ओर फेंकने लगा तो एक पूरा कंकाल उठ आया। उसकी पलकें काँप गयीं, फिर भी उसे ध्यान से देखा। और भी कई छोटी-बड़ी खोपड़ियाँ भग्नावस्था में पड़ी थीं। वह आगे बढ़ा। अनेक वस्तुएँ उसे रोकने का प्रयास कर रही थीं। 'हमें भी पहचानता जा प्रवासी! हम भी हैं।' मरु के बीच इस मृत नगर की क्षणिक मुलाक़ात को भूलने की कोशिश करता हुआ वह आगे बढ़ता चला जा रहा था।

अब तो किसी के पद-चिह्न नहीं थे। जिस पर चल रहा था वह मात्र धरातल था, मार्ग नहीं। उसके चलने से कोई नयी पगडण्डी बने ऐसा भी नहीं था। मरुवासी पवन रेत पर की तमाम निशानियाँ मिटाकर अपनी मनमानी रेखाएँ रचता है—यह वह जानता था फिर भी चलता ही रहा। दिशा की भाँति वह किस लिए चल रहा है यह भी भूल गया था। जिसे ढूँढ़ने निकला था उसे भूलकर भी वह बढ़ रहा था। उसकी निरपेक्ष गति निर्बाध थी। वह अपने उमगित पैरों पर देह को ढोता हुआ चला जा रहा था।

गाइड ने देखा कि आज बाबूजी जरूरत से ज़्यादा ही सो रहे हैं। उसे वह साँप याद आ गया जो उसे देखकर भाग गया था। उसने अनिकेत को जगाया। पूरी तरह होश में आने में थोड़ा समय लगा।

"आज तो मैं लौटनेवाला था। जोधपुर में तेरे पते के अनुसार तुझे ढूँढ़ने का भरसक प्रयत्न किया। मकान मिला। एक चमगादड़ ने कहा कि तू नहीं है। डाकखाने से पता चला कि तू जैसलमेर गया है। वहाँ डाक बँगले में रुका होगा। यहाँ आया तो तेरा कुछ पता ही नहीं। तीन दिन हो गये। आज लौटने की तैयारी कर ही रहा था कि जीप की आवाज सुनाई दी।"

"अच्छा हुआ कि तू रुक गया। हमें मिले भी तो काफी समय बीत गया।"

दोनों डॉक्टर से मिलकर आ रहे थे। गाइड की बात से अनिकेत को लगा कि सतर्कता बरतना ठीक होगा। हालाँ कि उसने कहा था कि साँप पूरी रात छाती पर बैठा रहे तब कहीं उसके जहर का कुछ प्रभाव हो सकता है। चिन्ताजनक कुछ नहीं था। फिर भी गफलत में रहना उसे उचित नहीं लगा और यों जैसलमेर छोड़े भी काफी दिन हो गये थे। वह यहाँ आया। दोनों थोड़ा बैठे। फिर डॉक्टर से मिलने गये। अनिकेत की तबीयत ठीक थी। उदयन की खाँसी के लिए दवा दी। यद्यपि अनिकेत को विश्वास नहीं था कि वह उसका उपयोग करेगा ही।

"कैसा लगा जैसलमेर ?"

"पुराना-धुराना।"

"पसन्द आया कि नहीं ?"

"कुछेक फोटो खींच लिये हैं। सालमसिंह की हवेली का स्थापत्य विशिष्ट लगा। कहते हैं ऊपर की दो मंजिलें तो उतार ली हैं। इसकी पाँचवीं मंजिल का स्थापत्य ध्यान आकर्षित करता है। 'एकदण्डिया महल' का आभास कराता है। बिना लोहे का उपयोग किये ऊपर का भाग कुशलतापूर्वक टिकाया गया है। नगर से लगभग वायव्य की ओर स्थित यह एकाकी हवेली ऐसा लगता मानो बिलखती रहती हो। मैंने इसकी अटारियों पर अधिक से अधिक समय बिताया, सहानुभूति प्रकट की। मुझे लगता है हमें पत्थरों और मनुष्यों में बहुत भेद नहीं करना चाहिए। पदार्थ-विज्ञान तो कहता है कि पदार्थ का शक्ति में और शक्ति का पदार्थ में रूपान्तर किया जा सकता है। क्यों न हमें भी संवेगशून्य होकर एक वस्तु के रूप में जीना चाहिए ? दूसरों की दृष्टि में तो हम सदा 'ऑब्जेक्ट' ही होते हैं न ?"

अनिकेत ने स्टोव बन्द कर चाय छाननी शुरू की। दो कप और एक गिलास भरकर चाय रखी। सामने बैठा।

"आगे बोलूँ ?"

"हाँ, हम दूसरों के लिए तो 'ऑबजेक्ट' ही हो सकते हैं, 'सबजेक्ट' नहीं। शक्ति का पदार्थ में रूपान्तर हो सके इसलिए जो सचेतन है उसे पदार्थवत् नहीं माना जा सकता। किन्तु, तेरा दृष्टिकोण मैं सकारण समझता हूँ। आगे बढ़।"

"दीवान नथमल की हवेली का शिल्प भी अपना खासा महत्त्व रखता है। दक्षिण की ओर वह टीला ऊपर से आधे कटे हुए पिरामिड-सा प्रतीत होता है। उसका व्यक्तित्व धूल से ढँक गया है। यह नगर खण्डहर बने बिना टिका हुआ है, यही मेरे लिए भारी आश्चर्य की बात है।"

"तुझे आश्चर्य होने लगा यह एक शुभ चिह्न है।"

"आश्चर्य क्यों न हो मित्र ! कल्पनातीत अनुभव हुए हैं। तू जानता है न, बम्बई में 'अमृता' नाम की एक छोकरी है—युवती होते हुए भी वह लड़की है। उसके गुमान का पार नहीं। वह एक दिन मेरी ही आँखों से देखती थी और आज मुझे तीसरे नेत्र से देखने लगी है। अच्छा है कि तू उसे नहीं पहचानता।"

"क़िले के ऊपर बने जैनमन्दिर देखे ? ज्ञान-भण्डार ?"

"जैन और मन्दिर तथा भण्डार और ज्ञान एवं गन्दगी और अन्धकार सभी कुछ देखा। उन्मुक्तता और संकीर्णता—दोनों का अनुभव किया है। परकोटे के ठेठ ऊपरवाले पत्थर पर खड़े रहकर नजर घुमायी और चारों ओर वन्यविस्तार भी देखा। अच्छा है कि यहाँ बरसात नहीं होती अन्यथा ये सभी पीले पत्थर निपट काले पड़ गये होते। सिन्दूरी रंग के पत्थर मलिन हो गये होते।"

"चाय ले, ठण्डी होने आयी।"

उदयन ने चाय का कप उठाकर एक ओर रखा। अनिकेत ने बाहर देखा—

"समय का प्रभाव कितना तीव्र है ! एक क्षण पहले की गरमी कैसी अदृश्य हो जाती है।"

"यहाँ तीन दिन बेफ़िक्री से गुजारने से बोरियत कम हो गयी। जब लोगों को हँसते-मुसकराते, एक दूसरे के कान में कुछ कहते, ताली देकर कूदते देखता हूँ तो मुझे विचार आता है कि यदि ये सब मनुष्य हैं तो मैं मनुष्य नहीं और मैं मनुष्य हूँ तो ये सब मनुष्य नहीं। एक ही जाति में इतना अधिक अन्तर नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि मेरे सिर में सीसा भरा है। समय सीसा बन-बनकर इसमें एकत्र होता रहा है। इच्छा होती है कि आग में रखकर इसे पिघला दूँ.... कल राजकीय श्मशान देखने गया था। सूर्यास्त के बाद सभी कुछ धीरे-धीरे निस्पन्द हो गया। चारों ओर निरन्ध्र अन्धकार स्थिर हो गया। फिर जब श्मशान से बाहर निकला, लौटने को हुआ तो ऐसा लगा मानो श्मशान मेरे साथ आता हो। मुझे बड़ा मज़ा आया। फिर विचार आया कि ये भूत-प्रेत कभी मुझे

दिखाई क्यों नही पड़ते ? उन्हें नही देख पाने का मलाल रह गया है।"

"तुझे वे अपना मानकर....नही, नही, तेरे चित्त को भयशून्य जानकर न दिखाई पड़ते हों। तुझे सख्त सर्दी हो गयी लगती है। यह दवा लेगा ?"

दवा दी। उदयन लेट गया। उसके कपाल, गले और छाती पर बाम मलकर अनिकेत ने उसे सो जाने को कहा। पाँचेक मिनट तक आँखें दाब रखने के बाद वह उठ बैठा।

"क्यों ?"

"सो चुका।"

"इतनी-सी देर मे ?"

"तूने समय मर्यादा कहाँ बाँधी थी ? और मुझे लगता है कि मुझे कुछ नही हुआ। भले आदमी तूने जोधपुर में मंडोर के रास्ते पर मकान क्यो उठा रखा ?"

"एक दिन मंडोर जाते हुए मालूम हुआ कि वह मकान मिल सके ऐसा है। मंडोर घूमने जाना हो तो भी यहाँ से रोज जाया जा सकता है। बहुत अच्छी जगह है यह। चारों ओर पर्वतीय भूमि और बीच में वृक्षावली एवं बाग। लोगों का यह प्रिय स्थल है।"

"मैं भी वहाँ गया था। शाम को गया था। ताँगेवाले ने तारीफ की थी। सामान्य आदमियों में मेरा विश्वास है इसलिए मैं गया। उसकी बात गलत न थी। वहाँ की सिच्युएशन का अपना एक व्यक्तित्व है। वृक्ष भी ऐसे है कि अपने को बाँध रखें। किन्तु भीड़ बहुत थी। रुकने की इच्छा नहीं हुई। ऐसा लगा मानो कच्ची उम्र के लोग वहाँ सुरक्षित जगह ढूँढ़ने आते हो। ऊँचे-ऊँचे गिरजाघरों-से दिखाई पड़ते मकान ! मालूम हुआ कि ये तो राजाओं की समाधियाँ हैं, तब तो पूरी तरह ऊब गया। ताँगेवाला मुझे मडोर के पास शराब की भट्ठी बताने ले गया। तू तो जानता ही है कि मैं इसमे कतई विश्वास नही रखता—अमुक जगह जाया जा सकता है या अमुक जगह नही। ताँगेवाला गाँजा फूँके हुए था। बोला, 'ले चलूँ, साहब ?' मैं क्यों इनकार करूँ। मैं जब भट्ठी देखकर वापस लौटा तो मुझे लगा कि साहित्य की रचना-प्रक्रिया शराब बनाने की प्रक्रिया से बिलकुल मिलती-जुलती है। मूल वस्तु वाष्प बनकर फिर आकार ग्रहण करती है। उसने सोचा होगा कि साहब के साथ उसे भी पीने को मिलेगी। किन्तु मुझे वैसा ही वापस लौटते देख वह निराश हुआ, बल्कि झेंप गया।"

"तुझे पीने की इच्छा भी न हुई ?"

"इच्छा होने पर उसे तेरी तरह शायद ही कभी रोकूँ। कहते है कि शराब पीने से नशा चढता है और नशे के अभाव में जागृति की सत्ता नही रहती।

स्मृतियों से मनुष्य मुक्त हो जाता है। मैं भी थोड़ा-बहुत भूल जाऊँ तो राहत का अनुभव करूँ—सुखी हो जाऊँ। पर सुखी होने के लिए, कुछ भूलने के लिए नशे का आश्रय लूँ इतना तो निर्बल मैं नहीं।"

हवा के साथ थोड़ी धूल उड़ आती थी। अनिकेत देखता रहा।

"क्या सोच रहा है ?"

"दक्षिण की ओर, यहाँ से दस मील दूर जैसलमेर की पुरानी राजधानी है, लोद्रवा। पूरा नगर निश्शेष होकर धूल में बदल गया है। लोग कहते हैं कि मिट्टी में दफ़न हो गया है। वहाँ का जैनमन्दिर सुरक्षित है। मन्दिर के पास एक कल्पवृक्ष है। तुझे सुबह जीप में घुमा लाऊँगा।"

"तो अभी चल न ! सूर्यास्त में अभी देर है। देर न हो तो भी क्या ? विनाश को तो अँधेरे में ही देखना अच्छा, बल्कि विनाश में तो देखना ही क्या ? उसका तो अनुभव किया जाता है। उसके सान्निध्य में खुद का निरीक्षण कर और आश्वस्त होकर आगे बढ़ जाना होता है।"

ड्राइविंग उदयन ने की। सम नामक गाँव की ओर पक्की सड़क मुड़ गयी। बाद के उबड़-खाबड़ रास्ते पर उदयन ने लापरवाही से भरपूर हिम्मत बतायी। अनिकेत मन ही मन मुसकराता था—"यह सोचता होगा कि मैं इसे शान्ति से जीप चलाने को कहूँगा। किन्तु इसे क्या पता कि मैं...."

उदयन ने ब्रेक लगाया। सामने बड़ा पत्थर था। जीप 'रिवर्स' में लेकर रास्ते पर ली। कहा—

"मैंने सोचा इतना अच्छा पत्थर टूट जाये यह उचित नहीं।"

लोद्रवा पहुँचे। पाँचेक मिनट मन्दिर में घूमे-फिरे। पानी पिया। पुजारी के हाथ में एक रुपया थमाया। खण्डहर सदृश्य चार-पाँच मकानों को पार करके उत्तर-पश्चिम के कोने में पहुँचे। एक ऊँची खण्डित दीवार पर दोनों बैठे। कैमरे का उपयोग किया। फिर उदयन की एकाएक पीछे दृष्टि गयी :

"अरे, अपने पीछे भी मन्दिर-जैसा कुछ लगता है। इन मन्दिरों से तौबा ! जहाँ जाओ वहीं मन्दिर। चल, उठ चलें यहाँ से।"

सूर्यास्त की धूसर चमक विलीन होने लगी। धीरे-धीरे चमकहीन उत्तरोत्तर कालिमा बढ़ने लगी। अलग-अलग दिशाएँ अन्धकार लेकर इकट्ठी होने लग गयीं।

"अमृता कैसी है इन दिनों ?"

"बम्बई से तो तू आया है। मैं तो उससे पहले से दूर हूँ।"

"तद् दूरे तद् अन्तिके।"

उदयन खड़ा हो गया। अनिकेत ने उसे हाथ पकड़कर बिठाया।

"उदयन ! तुझे नहीं लगता कि मेरे कारण तेरा अहित हुआ है ?"

"नही।"

"सच ?"

"तू मेरा क्या अहित कर सकता है भला ? मुझे नही लगता कि ईश्व
मेरा अहित कर सके। अगर जो ऐसा मानता होता तो उसका अस्तित्व ही
स्वीकारता। हित-अहित का विचार किये बिना, अपने को बचाने की लेश
चिन्ता किये बिना मैं जीता हूँ।"

"किन्तु मुझे लगता है कि मेरी भूमिका ने तेरे लिए विपरीत परि
का रूप धारण कर लिया है। मैं तुझसे क्षमा चाहता हूँ।"

"मुझे भी तुझसे माफी माँगनी चाहिए। मैंने अमृता के बारे में तेरे
स्पर्धा के भाव का अनुभव किया है। और इस कारण मैंने उसे समझने में
जल्दबाजी की है...अब लगता है कि मैं उसे नही समझ सकता। मुझे अब
भूलना है। कारण कि वह याद आती है तो मैं व्यग्रता का अनुभव करता
मुझे उसे भूलना है...किन्तु वह कुहरा बनकर मेरे मन पर छा गयी है।"

"चल उठें। बहुत देर हो गयी है।"

"यह रेत मुझे अपने गाँव की मिट्टी का स्पर्श देती है। इससे पहले
इसके प्रति अधिक ममता जागे, जाना ही पड़ेगा, चल।"

अनिकेत ने धीरे-धीरे जीप चलायी। उदयन कहता है कि वह मेरे मन
कुहरा बनकर छा गयी है...कुहरा बनकर छा गयी है।

अमृता प्रायः जुहू जाकर अपने परिजनों से मिलती रहती थी। विशेष अ
पर वहाँ रात में रुक भी जाती थी। अपने पहलेवाले कमरे में जाकर बैठी र
थी। छत पर घूमती थी। समुद्र को सुनती थी। पुरातत्त्वमन्दिर में ध्या
काम करती थी। मरीन ड्राइव पर अनियमित रूप से घूमने जाती थी। शा
पढ़ती थी। उसे भय था कि अब वह कुछ लिख बैठेगी, इसलिए जब कभी
सहेली मिल जाती जिसके साथ बहुत दिनों से घूमने न गयी हो तो पिक्चर दे
चल देती और वहाँ सहेली द्वारा की जाती चित्र समीक्षा ध्यानपूर्वक सुनती र
थी। झूले पर बैठकर झूलती। इस तरह जो हो सकता था वह सब कुछ क
थी। बिना किसी की उपेक्षा एवं जल्दबाजी किये एक के बाद एक दिन

रही थी।

किसी के प्रति नाराज़गी का भाव रखकर उससे खिचे-खिचे रहने की आवश्यकता नहीं लगती थी। निजी एकान्त की खोज उसने छोड़ दी थी। मिल-जुलकर रहने से हिचकती न थी। सिक्कानगर के लिए प्रस्थान करते समय आभार मानने की औपचारिकता का बिना भूले निर्वाह करती थी। किसी की अरुचिकर बात का बुरा नहीं मानती थी। समझ गयी थी वह कि किसी भी बात का बुरा मानने का उसे अधिकार नहीं है। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष मोल लिया था अब स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी। वह जान चुकी थी कि उसकी अभीष्ट स्वतन्त्रता का अर्थ है—निस्संग, अकेलापन।

वह सबके साथ जीती थी और पूर्वपरिचित हर कोई उसे अनजान लगता था। सबके साथ वह एकाकिनी थी। इस समय उसकी एकमात्र सखी बन गयी थी रिक्तता।

लिखने की इच्छा हुई—एक पूरा युग पलट गया है।

उसके चेहरे पर सदैव एक मूक-मौन उदासी छायी रहती थी जो प्रायः अपरिवर्तित रहती थी। हाँ, कभी-कभी यह उदासी गहराकर उसकी पलकों पर और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों को ढँक देती थी। आँखों की स्तुत्य चमक अब निस्पन्द सफ़ेदी में रूपायित हो चुकी थी। दर्पण में देखने पर आँखों की सफ़ेदी का रंग किसी धुंधलाये काँच से मिलता-जुलता लगता था।

उसे भरोसा हो चुका था कि उसका जीवन जैसा वह चाहती है वैसा नहीं बन सकता था। इतना ही नहीं, जैसा वह नहीं चाहती वैसा भी जीवन उसका नहीं हो सकता था। अनिश्चयजनित विफलता उदासी में ढल गयी थी। उदासी यथासमय ग़मगीनी का रूप ग्रहण करती और ग़मगीनी विस्तर का आश्रय ढूँढ़ती।

सूर्यास्त के बाद खिड़की में से नीची नज़र किये वह इस तरह खड़ी रहती थी मानो कुछ भी नहीं देख रही हो।

दोपहर को ऑफ़िस में अकेले बैठी-बैठी पानी के खाली गिलास की ओर देखते वह थकती नहीं थी।

"जागृत होने का मूल्य चुकाना होगा। जागृत रहनेवाले को सुख नहीं मिलेगा। सुखी होने के लिए वंचना का खतरा उठाना होगा। और वंचना अर्थात् मृत्यु। किन्तु मृत्यु अर्थात् वंचना नहीं। मृत्यु—अन्तिम वास्तविकता, निश्चित निरर्थकता सभी को इसमें वापस लौटना है। जीवन अर्थशून्य है। या यों भी कह सकते हैं कि जो निरर्थक है वही जीवन के रूप में प्रत्यक्ष होता है।

जागृति को सबसे पहले दिखाई देती है—मृत्यु। एक निरर्थकता की एक

अर्थशून्यता में परिणति—जीवन और मृत्यु।

ऑल मेन आर ओवलाइरड टु डु इफ दे आर टु एस्केप ए मीनिंगलेस लाइफ। इस अर्थहीन जीवन से पलायन किया जा सके तो सभी उपकृत हों।

अनिकेत ने इस निरर्थकता को समझकर ही पलायन किया होगा? या फिर उसने जो स्वीकारा है वह पलायन नही अवान्तर स्थिति है?

उदयन इस निरर्थकता को अर्थ देने के लिए जूझ रहा है? तो फिर इतनी अस्वस्थता क्यों? किस लिए? व्यग्रता किस लिए? उपेक्षा क्यो? या फिर ये सब मेरे भ्रम है?

आज तक जीवन की जो व्याख्या सुनी, जो तत्त्वज्ञान पढा, जो रहस्य जाने उनके एवं इस जीवन के मध्य जिसे मैं जीती हूँ क्या कोई सम्बन्ध है? जिसे मैं प्रेम समझती थी वह तो अतीत का विषय मालूम पड़ता है। कुछ बीते हुए प्रसंगों में ही उसका अस्तित्व था। अब उसकी प्रतीति नही। अर्थात् समय के सातत्य में उसका कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए जो चिरजीवी नही वह प्रेम नही। और जो प्रेम नही वह सब मेरे लिए अर्थहीन है। प्रेम न बन सकूँ तो फिर अर्थहीन रहकर क्या करना?

मेरे साथ किसी ने अन्याय नहीं किया। स्वतन्त्र हूँ। सम्पन्न हूँ। स्वस्थ हूँ। मेरी स्थिति किसी नारी के लिए उत्तम कही जा सकती है। तो क्या उत्तम स्थिति पर पहुँचने के बाद हर एक को अर्थहीनता का अनुभव होता होगा? यह निस्संगता, यह अकेलापन, उदासी-भरा यह मौन प्राप्त करने के लिए मैं आगे बढ रही थी? मेरा चयन भी निर्दोष नही रह सका? एक को मैं व्यग्र और त्रस्त कर बैठी। दूसरे को तटस्थ और निस्पृह बनने के लिए प्रेरित कर बैठी। और मैं रही सूखी नदी की भाँति अतृप्त।

दोनों किनारों के बीच नदी आज सूखी है।

नदी अब अन्त:स्रोता है। निस्संग है। वास्तविक अर्थ में अकेली है।

मुझे अर्थशून्यता को जीना है? अथवा यह मेरी अतृप्ति का प्रतिघोष है? मैं असमर्पिता हूँ कही इसी कारण अर्थशून्यता प्रतीत नही हो रही है न? कही इस अस्तित्व के प्रति अनाघ्रात यौवन का भार असह्य बनने पर—वाछित के अभाव में पीडाएँ समस्त कोषों की शिकायत तो नही हैं न यह? निस्संगता की वेदना न सह पाने के कारण ही तो यही सब मान लेने के लिए प्रेरित नही हुई हूँ न मैं?

जहाँ से इस ग्रीष्म तक आयी हूँ, उस शिशिर में लौटना अब सम्भव होगा? शिशिर में से वसन्त तक पहुँचने के लिए समय के सिवाय अन्य किसी साथ की आवश्यकता नही। संगहीन वसन्त भी सहज भाव से ग्रीष्म तक पहुँच सकेगा।

परन्तु ग्रीष्म केवल समय के परिणामस्वरूप ही वर्षा में परिवर्तित नहीं हो सकेगा। मेघ का आगमन होना चाहिए। स्निग्ध गम्भीर घोष करके एक ओर बह जाये ऐसा मेघ नहीं, जो मूसलाधार बरसता रहे वह मेघ। जो आकाश की अवहेलना कर धरती पर छा जाये। मेघ के बिना ग्रीष्म ऋतु वर्षा में नहीं बदलती। फिर धरित्री के अन्तरंग में एक प्रक्रिया शुरू हो और वह अंकुरित होने लगे। जलसिक्त धरित्री की यह वेदना कैसी होगी? मेरे इन स्पन्दनहीन कोषों की अपरिवर्तनशील स्थिति...क्या यही मेरी नियति है?

तो यहाँ लौटने में क्या आपत्ति है? परिजनों ने कई बार कहा है। 'और नौकरी करने की क्या आवश्यकता? लिखो-पढ़ो पारिश्रमिक-रॉयल्टी तो इनमें से मिलेगी।'

"नहीं, अभी तो कुछ लिखना नहीं है। इसमें उतावली नहीं करूँगी। पर यहाँ रहने आऊँगी।"

"कब?" जो उपस्थित थे सभी ने एक साथ पूछा था।

"जब भी लगेगा कि अब तो जाना ही पड़ेगा उस दिन स्वाभिमान का प्रश्न रास्ते का रोड़ा बनकर भी मेरे सामने खड़ा नहीं होगा।"

निरुपाय सब शान्त रहे थे।

इन सबकी मेरे प्रति गहरी ममता है।

"तो जाऊँ?"

वह सामान तैयार करने लगी। उस दिन बच्चे ने ज़िद्द करके अनिकेत का फ़ोटो हाथ में ले लिया था। फिर उस फ़ोटो को वहीं न टाँगकर उसने आलमारी में पुस्तकों पर रख दिया था। आज पुस्तकें हटाते समय वह फ़ोटो नीचे गिर गया। काँच टूट गया। स्वस्थतापूर्वक टुकड़े इकट्ठे करके उसने फेंक दिये। काँचरहित फ़ोटो पुस्तकों के साथ रख दिया। उसे हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक देखते रहने की इच्छा न हुई। वसन्त, मात्र समय के साथ ही ग्रीष्म में बदल सकता है।

सिक्कानगर स्थित अनिकेत का यह मकान खाली है।

पाँचवीं अप्रैल को वह दिल्ली से जापान के लिए रवाना होगा। अनिकेत दिल्ली आया था। उसने जितना सम्भव था उतना समय उसे दिया। आज तक भारत-भर में घूमता रहा। विभिन्न प्रदेशों के विषय में लिखता रहा। उसने अपने कुछ अनुभवों के बारे में नहीं लिखा, उसके लिए वे सब नॉर्मल थे। जैसे कि एक बीमार मज़दूर को अब अधिक छुट्टियाँ नहीं मिल सकती थीं इसलिए

बदले में उसके टिकट पर चोरी-छुपे पाँच दिन काम किया था और उसके घर अपना पर्स भूल आया था....हैदराबाद में एक वृद्धा नर्तकी के घर सप्ताह भर पेईंग-गेस्ट के रूप में भोजन करके उसकी कहानी सुनी थी और माँ बनने की उसकी कामना किस तरह धूल में मिल गयी यह जानकर वह पैसेवालों पर क्रोधित हुआ था... 'विवेकानन्द रॉक' से आगे बढ़कर कन्याकुमारी के समुद्र में स्नान करते समय वह दो बार डूबते-डूबते बचा था, अथवा दो बार डूबा था। और इसके बाद भी देर तक नहाया था....पाण्डिचेरी से मद्रास जाती गाड़ी में गालियाँ बकते एक शराबी को बाँह पकड़कर सावधानी से किसी स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर उतार दिया था, और जब वह पुनः चढ़ने लगा तो एक सिगरेट देकर पीछा छुड़ाया था...मदुरा के निकट एक बस में बिना टिकट यात्रा करते एक लड़के को मार मारते एक कण्डक्टर के फटाफट दो झापड़ रसीद कर दिये थे और अखबार में फ़ोटो छापने की धमकी देकर कैमरा बताया था.... कलकत्ता में मजदूरों की हड़ताल में शरीक हो नारे लगाने लगा था। चलते-चलते पीछे से किसी के पैर से उलझने पर वह नीचे गिर गया था, चोट आ गयी थी। फिर भी टियर गैस के न छूटने तक वह जुलूस के साथ रहा था और पुलिस के कहने पर ट्रक में बैठकर थाने तक गया था। वहाँ जाकर पुलिस के कर्तव्य पर उसने एक लम्बा-चौड़ा भाषण दिया था। उससे मिलकर वहाँ के अधिकारी बहुत प्रसन्न हुए थे...लखनऊ के एक फ़ुटपाथ पर क़व्वाली की महफ़िल में सुबह पाँच बजे तक सजग हाज़िरी दी थी और नींद आने पर बीच में दो बार नाचा था। एक शायर बनने को उत्सुक युवक के लिए पाँच मिनट में एक बेहतरीन कव्वाली लिख दी थी...नवम्बर से मार्च तक की अवधि में वह तीन बार बम्बई हो आया था। वहाँ न तो समुद्र के किनारे ही घूमने गया था और न ही किसी से मिला था।

उसे सपने तो आते हैं पर वे छोटे लगते हैं। उसकी मान्यता है कि स्वप्न-सृष्टि पर अपना नियन्त्रण नहीं तो फिर उसका सम्बन्ध अपने साथ किस तरह जोड़ा जा सकता है? स्वप्न को भूलना ही उचित है। क्योंकि वह कभी भी मूल रूप में याद नहीं आता। याद करने पर उसमें कल्पना का अंश जोड़ना पड़ता है। एक तो स्वप्न खुद ही वायव्य और फिर उसमें जुड़नेवाली कल्पना भी वायव्य! फ़ालतू बेकार। आदमी का तो ठोसपन से ही सरोकार रहता है।

जापान में वह पैंतीस दिन रुका। इनमें तेरह दिन उसने हिरोशिमा में बिताये। कितने मनुष्यों का संहार हुआ था उसने पढ़ा था। पर यहाँ आकर उसने जाना कि यह संख्या साठ हजार की नहीं परन्तु आबाल, वृद्ध सब मिलाकर अस्सी हजार की है। और ये सब विस्फोट के साथ ही समाप्त हो गये थे। अधिक

गहरे उतरने पर उसने जाना कि संहार की संख्या जितनी अधिक रखी जाये उतना ही सत्य के अधिक निकट रहा जा सकेगा। एक लाख आदमी घायल हुए थे। ढाई लाख आदमियों की बस्तीवाला बन्दरगाह आग की लपटों में भस्मीभूत हो गया था।

मृतकों की संख्या प्राप्त करने के लिए वह कितनी सतर्कता बरत रहा है और वह भी इतने वर्षों के बाद! वह अपनी कुशलता पर हँस पड़ा। उसे याद आया—आल्बेरकामू के 'प्लेग' में डॉक्टर 'रियो' का कहा एक वाक्य—'किन्तु अब हम मृत्यु के आँकड़े रखते हैं। तुमको मानना पड़ेगा कि इसका नाम प्रगति है।' एक शुभ प्रसंग पर वर्षों पहले उसने अमृता को कामू के तीन उपन्यास भेंट दिये थे। उनमें 'प्लेग' देखकर वह खीझ उठी थी। उसकी खीझ पर आज उदयन फिर हँसा।

उसे लगा कि यह पूरा हिरोशिमा काण्ड हास्यास्पद है। "प्रगति प्रगति, प्रगति....यह तुम्हारी प्रगति की फलश्रुति! भला, दौड़ते किस लिए हो? पहले ज़रा अपनी ओर दृष्टिपात तो कर लो, देखो तो सही कि तुम क्या हो?'

मानव जाति के विकास का एक सीमाचिह्न—यह एक हत्याकाण्ड! हमारे विकास का प्रतीक!

ईसवी सन् १९४५, छठी अगस्त, सुबह के आठ बजकर पचपन मिनट पर एक उग्र प्रकाश की दुर्दान्त चिनगारी और उसके बाद की दारुण अशान्ति।

प्रकृति ने भी कभी इतने वेग से प्रलय किया होगा इसमें सन्देह है। वर्षों के अन्वेषण और प्रयोगों के बाद की सिद्धि! इस शोध-कार्य में अकेले अमरीकन वैज्ञानिक ही न थे, अलग-अलग देशों के चुनिन्दे वैज्ञानिक काम में जुटे हुए थे, उसमें जापानी भी थे।

ईसवी सन् १९४५, छठी अगस्त की सुबह। बीसवीं शताब्दी के दो महान् अन्वेषणों की समन्वित उपलब्धि! आइन्सटीन ने कहा था कि पदार्थ को शक्ति में रूपान्तर किया जा सकता है और इसके विपरीत शक्ति को पदार्थ में रूपान्तर किया जा सकता है। इसका नाम है सापेक्षता का सिद्धान्त और एक दूसरा सिद्धान्त है नील्स बोर का परमाणु सिद्धान्त। परमाणु जो ग्रीक अर्थ के अनुसार अविभाज्य था, अब विभाज्य बना। सूर्य की परिक्रमा करते हुए अन्य ग्रहों की गति। इस ग्रहमाला-जैसा ही यह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा दिखाई देता है परमाणु का विश्व। 'न्यूक्लियस'—परमाणु का केन्द्र। इसके चारों ओर इलेक्ट्रोन्स की व्यस्त परिक्रमा कितने छोटे कणों की कितनी असाधारण शक्ति! दस करोड़ परमाणु इस तरह रखे जायें कि एक दूसरे का स्पर्श करें तो केवल एक इंच जगह रोकें....

तो इन प्रोटोन और इलेक्ट्रोन में जो स्वतः धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत् है वह किसके बल पर है ? किसने यह शक्ति वहाँ रखी है ? यह आत्मनियन्त्रित गति किसकी है ?

तो मैं जिसे जड़ पदार्थ कहता हूँ उसके लघुतम घटक की शक्ति मुझसे कई गुना अधिक है।

परमाणु में जो है वह कौन-सी शक्ति है ? उसकी अपनी ही ? पदार्थ की ही प्रक्रिया या फिर यह वही है जिसे आस्तिक चैतन्य कहते है ? कही यह चैतन्य ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित न कर बैठे। इसलिए ईश्वर को नकारने के लिए इस पदार्थ के विज्ञान को जानना होगा।

इस घटना को ईश्वरेच्छा का परिणाम मान लूँ तो सब सरल हो जाये। निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ! तो क्या वह हिरोशिमा पॉयलट मात्र निमित्त था ? ना। ईश्वर हो और वह प्रयत्न करे फिर भी तो इस युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध नही कर सकता। अर्जुन के युद्ध का महद् अंश धर्म्य था। इसलिए श्रीकृष्ण ने उसे युद्ध की अनिवार्यता समझायी और विश्वरूप दर्शन कराया। किन्तु यह तो युद्ध नही, छल है। एक पक्ष की ओर तो सम्पूर्ण सुरक्षा है। यह तो हुई राजनीतिक चाल। यहाँ मनुष्य दोषी है। इसे परम चैतन्य की लीला कहकर पूरा दोष उसके सिर मढ़ देनेवाले आस्तिक भी कैसे हैं ? इस कारण तो ईश्वर के प्रति सहानुभूति जागे ! परम चैतन्य ! इसपर विचार करना होगा ? जो वह हो तो हमें क्या आपत्ति है ? जिसे भौतिक घटना कहता हूँ उसे चैतन्य का आविष्कार कहूँगा।"

आज वह प्रसन्न था। उसे लगा कि उसकी संचित अभावात्मकता कम हो रही है। उसे जगह-जगह कोमलता के दर्शन होने लगे। एक होटल के नृत्य हॉल में सहृदय प्रेक्षक के रूप में काफी समय बिताया। एक चलचित्र देखा। उसने देखा कि हिरोशिमा के नागरिक प्रसन्न है। कोई उदास नही। किस शक्ति के बल पर वे उस घटना की मूर्च्छा में से मुक्त हुए ? किसी से पूछा जाये कि बन्धु ! पन्द्रह वर्ष पहले की घटना इस तरह इतनी सरलता से कैसे भूल सके ?

दूसरे शहरो में होती है वैसी विलास की सामग्री की यहाँ लेशमात्र भी कमी नही। वैसा ही रागरंग, वैसी ही लीला।

"इतनी बड़ी घटना को पचा सकनेवाले लोगो की सहनशक्ति और स्वस्थता स्तुत्य है। ये सब जो मस्ती में घूम रहे हैं इनमें से किसी का स्वजन उस महान् हॉस्पिटल में नही होगा ? किन्तु अपना स्वजन पीड़ित हो इसलिए खुद भी कराहते रहें यह कैसा धर्म ?

इस हत्याकाण्ड से सबसे अधिक दुःखी तो हुआ निमित्त बननेवाला वह

पॉयलट इथर्ली। नीरो की तरह जलते नगर को देखकर उसने बाँसुरी नह
बजायी। वह अशोक की भाँति एक सच्चा पुरुष निकला। वह न्यायाधीश के पा
पहुँचा। बोला—'मैं अस्सी हज़ार लोगों का हत्यारा हूँ। मुझे सजा दो। मु
प्रायश्चित्त करने का मौक़ा दो। किन्तु कौन सुनता है? उसके पराक्रम की प्रशं
हो रही थी। उसने व्योम-युद्ध में नया विक्रम स्थापित किया था। अभिनन्द
देने के लिए उसके सामने हाथ बढ़ाये जाते थे। जबकि उसका अस्तित्व डँवाडो
था। उसने अपनी धुरी गुमा दी थी। उसे पागलखाने में सुरक्षित रखा गया
मान्यता के अनुसार इस युग के सबसे बड़े जल्लाद के रूप में वार्षिक अनुद
प्राप्त कर वह जी रहा है। उसके अनुसार आज का जागृत मनुष्य अपने को अ
ही व्यंग्य से आहत करना चाहता है। यह आत्मघात नहीं तो और क्या है
१९५० में ट्रूमेन ने जब हाइड्रोजन बम बनाया तब उसने आत्महत्या का प्रय
किया। अनिकेत को इस आदमी के बारे में जानना अच्छा लगेगा। उसे लिखूं
वह कहेगा इस आदमी के प्रायश्चित्त में शेष बचे मानव जाति के प्रति प्रेम
कारण तीसरा विश्व युद्ध नहीं होगा। उसे पत्र लिखूं? पर वह शायद जान
भी होगा। उसे लगेगा कि उदयन ने कितनी देर के बाद जाना है। उसे य
ऐसा लगे तो यह सच ही होगा। उसे लिखूंगा। रेडियो-सक्रियता के शिकार
लोगों की हॉस्पिटल के बारे में तो मुझे उसे लिखना ही है।"

उदयन इस अस्पताल में सतत चार दिन तक जाता रहा। पाँचवें
डॉक्टर ने विनम्रतापूर्वक नहीं आने के लिए कहा था। उस दिन वह एक रो
से बात-चीत कर रहा था। जो उसका हमउम्र ही रहा होगा। वह भाषाशा
का विद्वान् था और हिन्दी अच्छी तरह जानता था। विस्फोट के आठ वर्ष ब
उसके शरीर में विकृति आयी थी। वनस्पति और [illegible] के [illegible] 'रेडि
स्ट्रोन्शियम' उसके [illegible] में प्रवेश कर गया था। पिछले [illegible] य
अस्पताल में है। [illegible] और बरौनियों के झड़ जाने
गया था। उसका [illegible] देखकर उदयन को धक्का
भी हर रोज उसके [illegible] कर ही खड़ा रहता था।
फफोले उठ आये थे। [illegible] हाथ-पैरों की अँगुलि
नखहीन पैरों पर रो [illegible] मांस प्रवाही बनकर झर
करवट भी नहीं ले [illegible]। किन्तु उसकी चेतना
ही किसी से बात [illegible] उदयन ने उसकी [illegible]
इसके लिए उसे बधा [illegible]। उसका [illegible]
लेकर अभिनन्दन [illegible] बाद उस आदमी
उदयन को लगा कि [illegible] उसके प्रश्न [illegible]

उसने पूछा :

"आपको आशा है कि आप ठीक हो जायेंगे ?"

"नही।"

"तो किस तरह जी रहे हैं ?"

"जिस तरह मौत की सजा पाया आदमी जीता है।"

"माफ़ करना बन्धु, न पूछने-जैसा मैंने पूछ लिया। आदत से मजबूर हूँ।"

"माफ़ करने की कोई बात ही नही, मित्र! मैं तो एक बलहीन विवश प्राणी हूँ। मेरी जीभ अभी काम करती है इससे लगता है कि मैं आदमी हूँ। करवट बदलने के लिए भी नक़ाबपोश परिचारिका की मदद लेता हूँ। और आपका यह सहृदय स्पर्श!....आशा और भविष्य से वंचित मनुष्य के भाग्य में जीवन का ऐसा स्पर्श कहाँ ? मैं केवल वर्तमान में जीता हूँ। बस इतना ही कह सकता हूँ कि जीवित हूँ। और फिर भी यदि आपका भार हलका होता हैं तो कह देता हूँ जाओ, मैंने आपको माफ़ किया। परमाणुशक्ति का ऐसा विघटनात्मक उपयोग खोजनेवाले वैज्ञानिकों को भी मैंने माफ़ कर दिया है...हमें भोग लिये जाने के बाद यदि नवनिर्मित हाइड्रोजन और कोबाल्ट बमों का प्रयोग न हो तो हमारा भोग सार्थक है। और यह अस्सी हजार का विनाश समग्र विश्वक्रम में बहुत बड़ी घटना नही। आप तो भारतीय हैं। आपके यहाँ तो महाकाल को देवता कहा जाता है। आपके पास डॉक्टर खड़े हैं। मैं मानता हूँ और चाहता हूँ कि वह आपको अब यहाँ न आने के लिए समझा सकेंगे।"

उसके मरीज को बोलने में सुख मिल रहा है यह देखकर डॉक्टर शान्त खड़ा था। वह उदयन को अपने कमरे में ले गया। बिठाया। एक घण्टे तक उदयन के प्रश्नों के उत्तर दिये। फिर उसे प्रयोगशाला में ले गया। डॉक्टर अमरीकन था और पिछले दस वर्षों से इस अस्पताल में अवैतनिक सेवाएँ दे रहा था। उसने अपने कुछ लेख उदयन को भेंट किये। उदयन ने भी अनुवाद करने की सम्मति प्राप्त कर ली।

जापान का प्रवास पूरा कर उदयन दिल्ली पहुँचा। उसके दो दिन ही पूर्व 'विज्ञान की अपूर्व सिद्धियाँ' शीर्षक से उसका एक सचित्र लेख एक अँगरेजी पत्रिका में छपा था। दिल्ली में अपनी संस्था के कार्यालय को जापान के विषय में लिखा लेख सौंपकर वह अहमदाबाद के लिए रवाना हो गया।

गाड़ी में उनकी भेंट एक वृद्ध साहित्यकार से हो गयी। उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर उदयन ने इनकी मर्यादाओं पर एक खोजपूर्ण लेख लिखा था। एक परिसंवाद में वे अध्यक्ष थे और उदयन वक्ता था। विषयान्तर न लगे ऐसी कुशलता के साथ उदयन ने अध्यक्ष की साहित्यिक प्रतिष्ठा की धज्जियाँ उड़ायी

थीं। किन्तु समापन करते समय उन्होंने उदयन की जागृति और परिशीलन द्वारा विकसित अभिरुचि की प्रशंसा की थी। उदयन का लेशमात्र भी विरोध नहीं किया था और न ही अपना बचाव। इससे उदयन ही कहीं बेचैन हो गया था। उनकी स्वस्थता से वह उकता गया था। इस घटना को दो-ढाई वर्ष बीत गये थे। उसके बाद मिलना नहीं हो सका था। उदयन कभी किसी बुजुर्ग से मिलने नहीं जाता है इसलिए उनके घर भी नहीं गया। उसकी एक कहानी का उन्होंने अपनी पत्रिका में पुनर्मुद्रण किया था। वर्तमान भारतीय साहित्य नामक पुस्तक में 'गुजराती' पर उन्होंने लिखा था और कहानी में उदयन द्वारा लाये गये मोड़ की महत्त्वपूर्ण चर्चा की थी। उन्होंने वह पुस्तक उदयन को भेंट की।

"मैं तो आपको अपना विरोधी मानता था।"

"इससे क्या ?"

"आपको मेरा विरोध करना चाहिए।"

"ऐसा ! विरोध तो तुम्हारी पीढ़ी की विशिष्टता है। आज के युग सन्दर्भ को जीनेवाले और जाननेवाले साहित्यकार के चेहरे पर एकाध भी अहंजन्य विरोध की रेखा न दिखाई दे तो मुझे आश्चर्य होगा। यह तो नयी पीढ़ी की विशेषता है। तुम लोग जो अर्थ और मूल्य जगत् को देने के लिए जूझ रहे हो उन्हें जगत् स्वीकार लेगा। उसके बाद नये अर्थ और नये मूल्य लेकर आनेवाली पीढ़ी तुम्हारा विरोध करेगी। इसलिए मूलतः यह विरोध नहीं। संवाद की एक विशिष्ट प्रक्रिया है।"

"आपका मुद्दा विचारणीय है....मैं सिगरेट पी सकता हूँ ? आपको एतराज़ न हो तो..."

"खुशी से पियो।"

पाँचेक मिनट मौन।

"थोड़े दिन पहले तुम्हारा एक लेख देखा था। उसपर से लगा कि तुम जापान घूम आये हो। मजे का देश है, क्यों ?"

"आप भी शायद जापान गये थे। मैंने यह समाचार पढ़ा था।"

"हाँ, मैं गया था। वहाँ काफ़ी दिन तक रुका भी था।"

"हिरोशिमा गये थे ?"

"हाँ, उस विस्फोट के इतिहास को सुरक्षित रखनेवाले म्यूज़ियम में देखा हुआ एक पदार्थ मुझे अब भी याद है। आदमी के पैर की हड्डी और मकान की दीवारों का चूना विस्फोट की ज्वालाओं के प्रभाव से एकमेव होकर गट्ठा बन गये थे। यह गट्ठा इस पूरी घटना का रहस्य कह सकता है।"

"मुझे वहाँ सुरक्षित उस विशाल भवन का लोहे के सलियों के रूप में

बचा हुआ अस्थिपंजर याद रह गया है। अपनी सिद्धियों की रिक्तता और अपनी उच्च आकांक्षाओं का खोखलापन मुझे इसमें दिखाई दिया। हिरोशिमा आज के लेखक की अश्रद्धा का उद्गम-स्थल है।"

"ऐसा तो कैसे कहा जा सकता है ? मैं तो शायद इससे उलटा ही कहूँगा। तुमको शायद ध्यान होगा कि हिरोशिमा के एक नगरपति ने एक बार कहा था—जब परमाणु बम किसी पर गिरने ही वाला था, तो ठीक ही हुआ कि हमारे ऊपर गिरा। भविष्य में अन्य किसी पर भी परमाणु बम न गिरे अत. अच्छा ही हुआ कि हमारे ऊपर गिरा।"

"हाँ, जानता हूँ। वहाँ के एक भाषातत्त्वविद् रोगी ने भी इसी आशय की बात कही थी।"

और तत्क्षण वह रोगी की याद से अकुला उठा। उसकी आँख के सामने वह पूरा अस्पताल सजीव हो उठा। वह दारुण किन्तु मूक वेदना....मुरदा शरीरों में वे बुझती आँखें...मानव देहों के वे छिन्न-भिन्न अंग...वह अनन्त सन्नाटा... मौत को सजा पाये जीवन....उदयन को कँपकँपी छूट गयी थी। एकदम खड़ा हो गया और गाड़ी का दरवाजा खोल बाहर देखने लगा।

जून और जुलाई के दो महीने केन्द्र सरकार से पत्र-व्यवहार में बीत गये। संस्था को दी जानेवाली स्वीकृत राशि में कटौती आ रही थी। अब चूँकि संस्था के संचालक का दायित्व अनिकेत पर था इसलिए उसने जहमत उठाकर अधिकारियों को प्रतीत करवाया कि इस संस्था को पर्याप्त सहायता देना आवश्यक है। उदयन ने भी इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहायता की थी।

इस ओर से निश्चिन्त होकर वह काम करने लगा। किन्तु यह निश्चिन्तता बहुत नहीं टिकी। सहकर्मी एक-दूसरे के विरुद्ध शिकायतें करने लगे थे। उसने मीटिंग बुलाकर नम्रतापूर्वक कहा कि वह इस तरह की शिकायतें नहीं सुनेगा। किसी पर अविश्वास रखकर वह उसका साथ प्राप्त नहीं कर सकता। किसी को कठिनाई हो तो अवश्य ही चर्चा करने के लिए आये। किन्तु इस स्तर पर आत्मनिरीक्षण के बदले दूसरों की चिन्ता करना शोभा नहीं देता। आकलन की अनुकूलता के लिए वह हर एक शोधकर्ता का काम जानना चाहता है। हर एक से तीन-तीन दिन का समय चाहेगा। अतः सब अपनी-अपनी अनुकूलता के अनुसार सूचित करें।

संस्था के मकान के लिए उसने सिच्युएशन देखना शुरू की। पिताजी को लिखा कि वहाँ से जो भी सम्भव हो सके सहायता भेजें। देश में अपने मित्रों

को भी पत्र लिखे। जितना सार्वजनिक फ़ण्ड इकट्ठा होगा उतनी सहायता सरकार भी देगी ऐसा निश्चित हुआ है। पूर्वनिश्चित योजना में कटौती का निश्चय करके सरकार ने उसे थोड़ा बेचैन कर दिया था। शायद इसी की प्रतिक्रिया में अथवा वैसे ही सार्वजनिक फ़ण्ड की बहुत बड़ी धनराशि इकट्ठी कर दिखाने का उसने निश्चय किया।

उसने अपने सहयोगियों का काम देखा और उनसे निकट का परिचय पाया। उनका स्तर जाना। चिन्ता हुई। किस तरह सहयोगियों का उत्साह बढ़ाया जाये यह मार्ग खोजना ही होगा। मन ही मन निश्चय कर हर-एक में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत अच्छाई थी, उस ओर उनका ध्यान आकर्पित किया, उसे विकसित करने का अनुरोध किया, "जिस स्तर का आपका यह काम है न; उसी स्तर का पूरा काम होना चाहिए। आपके सहयोग के लिए आभार! स्वेच्छा से इस काम में आयें ऐसे व्यक्ति ही कहाँ हैं?"

इस सम्बन्ध में उसने द्वैमासिक परिसंवाद की योजना पर विचार कर इस विपय के प्रसिद्ध विद्वानों का लाभ लेने का निश्चय किया। एक सचित्र त्रैमासिक प्रारम्भ करने की घोपणा की।

उदयन का पत्र था। वह सिलोन का प्रवास अधूरा छोड़कर वम्बई आ गया है। काम में मन नहीं लगता। शरीर भारी-भारी लगता है। कमर के नीचे दर्द होता है। इसलिए पूरे सितम्बर वम्बई में रुककर आराम करना और लिखना है। आराम के विना लम्वा-लम्वा प्रवास करते रहने से ऐसा हुआ होगा। यह लिखकर उसने चिन्ता न करने को कहा था।

वम्वई छोड़े क़रीब सवा साल हो गया था। इससे अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा नव प्रकाशित पुस्तकों से जैसे कट गया है। वम्बई जाना चाहिए। किन्तु। किन्तु क्या? जाना ही चाहिए।

ढलती शाम को वह बरामदे में जा वैठा। गुलमोहर के चौक में एक कठ-फोड़ा आकर वैठा हुआ था। अकेला ही था। उसकी चोंच स्थिर थी। अनिकेत को लगा—यह क्यों वैठा है? चोंच से प्रहार करे और आवाज हो तो वाता-वरण में कुछ संचार का अनुभव हो। किन्तु पक्षी वैसा ही वैठा रहा। उसकी चोंच नहीं उठ रही थी।

देर रात गये उसने अपने पुराने लेख निकाले। सोचा, रखने योग्य रखकर बाक़ी फाड़कर फेंक दिये जायें। वह एक के बाद एक लेख हाथ में लेने लगा। फाड़-फाड़कर फेंकने लगा। ग़ौर से देखने पर उसे लगा कि कुछ भी रखने योग्य नहीं था। एक कहानी जो उदयन को पसन्द आयी थी वह आज उसे वाग्मिता-प्रचुर लगी। प्रकाशित नहीं हुई थी इसलिए उसका सम्पूर्ण नाश किया

जा सका। कुछ अधूरे गीत थे। याद में वे भी फाड़ दिये। कागज़ के टुकड़े इकट्ठे करके बाहर फेंकने चला। अखबार के एक लम्बे कागज में सारे टुकड़े इकट्ठे किये थे। बाहर आने पर पवन के झोंके ने उनमें से कई टुकड़े उड़ाकर आँगन में फैला दिये।

"अब लिखूं ? न लिखूं ? आह्वान का अनुभव होगा तो उत्तर दिये बिना नही चलेगा। किन्तु आजकल तो बहिर्विश्व कुछ कम संवेदनशील लगता है।"

"और लिखकर भी क्या ? लिखने लायक़ जो स्फुटित होता है वह भी न लिखे जाने पर विस्मृत हो जाये तो भी क्या ? कितने थोड़े लोगों को इस प्रवृत्ति में रुचि है ? जिन्हें रुचि है उनमें से कितने मेरी रचना पढ़ सकेंगे ? जो पढ़ेंगे उनमें भी कितने समझ पायेंगे ? तो, तो इस कीर्ति की बात कितनी भ्रामक है ? और आज के विश्वसन्दर्भ को देखते हुए साहित्य द्वारा अमर होने की बात कोई जागृत आदमी नहीं कर सकता। निरपेक्ष बनना ही पड़ेगा। अपनी कृति के परिणाम के बारे में निरपेक्ष बनना ही पर्याप्त नहीं। कृति रचने की कामना से भी निरपेक्ष होना चाहिए। तभी शायद कुछ लिखा जा सकेगा, वही कुछ होगा। उसका मुझसे निरपेक्ष एक अस्तित्व होगा। कृति के बहाने अपने को स्थापित करने के लिए संघर्ष करनेवाला बेचैन रहेगा। जो बेचैन हो वह निरपेक्ष नही हो सकता। और निरपेक्ष हुए बिना छुटकारा नही। आखिर तो अनन्त में घुल जाना है। अन्तिम वास्तविकता के रूप में अपरिहार्य रूप से निरपेक्षता तो स्वीकारनी ही है तो पहले से ही क्यों न सावधान रहूँ ?"

"जगत् में पूर्णाहुति की महिमा क्यों है ? इसलिए कि पूर्णाहुति अथवा मृत्यु अन्तिम वास्तविकता है। मृत्यु को प्राप्त कर मनुष्य अनन्त में मिल जाता है। मृत्यु को जाने बिना जीवन को प्रमाणित नहीं किया जा सकता। और मृत्यु का ज्ञान अर्थात् निरपेक्षता का ज्ञान...किन्तु इस निरपेक्षता की मैं तो बातें ही करता रहता हूँ। इसे कभी पहचाना भी है ? आज तक तो अपनी निष्फलता को ही जान पाया हूँ।"

वह खड़ा हुआ। आकाश में सफ़ेद बादल छाये हुए थे। इस वर्ष बरसात कम हुई। हाँ, सभी कहते हैं कि इस वर्ष बरसात कम हुई।

तीन

एक प्रयोगशील लेखक की कहानी प्रकाशित हुई थी। ऊपर लिखा था—लघुकथा। उदयन, अमृता और अनिकेत ने वह पढ़ी थी। इस पत्रिका के वे तीनों ग्राहक थे। लघुकथा के आरम्भ के पूर्व कोष्ठक में एक पैराग्रॉफ़ था :

"मुझे लगता है कि तमाम लेखकों को आदिकाल से प्रारम्भ करके आज तक आना चाहिए। हमारे 'आज' को पहचानने के लिए उसके पूर्व के समूचे समय को पचा डालना चाहिए। प्राचीन भारतीय साहित्य में जो रूपक मिलते हैं उन सभी पर नये सिरे से लघुकथाएँ लिखी जानी चाहिए। पुनः एक बार पशुओं की भाषा में पंचतन्त्र लिखे जाना चाहिए। पात्र वही, अभिनय आज का। अभी-अभी जो लघुकथा मैंने लिखी है उसे पढ़ने का आप सबको अवसर मिले इसलिए प्रकाशित करा रहा हूँ। इसकी नक़ल करने की सभी को छूट है। ऐसे पुराने विषय पर मेरा कोई कॉपीराइट नहीं। यह कथा अब सार्वजनिक है।"

वह भी एक जमाना था। जबकि मनुष्य नगण्य था। देव और दानव के दो समूह थे। देवों के समूह में सभी देव। प्रत्येक सम्पूर्ण देव था। उस देव में देवत्व की लेशमात्र भी कमी नहीं थी। दानवों के समूह में सभी के सभी दानव। प्रत्येक सम्पूर्ण दानव था। उसमें दानवत्व की लेशमात्र भी कमी नहीं थी।

तब मनुष्य केवल दो थे। एक का नाम 'अ' और दूसरे का नाम 'उ' था। दोनों के स्वभाव में अन्तर था किन्तु दोनों उत्साही और महत्त्वाकांक्षी थे। इसलिए प्रवास करते-करते वे ठेठ समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ कालकूट नामक जहर निकला। वह फल-फूल और वनस्पति का नाश करने लगा। यह देखकर देव परम तपस्वी महादेव के पास गये और उनकी खुशामद करने लगे। अन्त में महादेव स्मित हुए और दया से प्रेरित हो वे सारा कालकूट पी गये। उनका कण्ठ नीला हो गया। इससे उनकी शोभा और बढ़ गयी।

'अ' और 'उ' महादेव की ओर आकर्षित हुए। पास में पहुँचे। वे मान बैठे कि हलाहल शिवजी ने पिया है तो अब जब अमृत निकलेगा उसका प्रसाद भी इन्हें ही अर्पित किया जायेगा। कालकूट पीते समय जो नीचे गिर गया वह बिच्छू, साँप आदि को प्राप्त हुआ। इसी तरह यह लापरवाह तपस्वी अमृत पीते-पीते भी कुछ तो गिरायेगा ही और अपने काम लायक़ मिल जायेगा। उन्होंने परस्पर

निश्चित किया कि अमृत के लिए लड़ेंगे नहीं, जिसकी ओर यह गिरे वही उसका अधिकारी।

उस ओर समुद्र-मन्थन का कार्यक्रम फिर से शुरू हो गया था। जहर पीने के बाद शिवजी निद्राधीन हो गये थे। इसलिए कैलास पर्वत से भी ऊँचे उनके कन्धों पर चढ़कर दोनों समुद्र-मन्थन का विराट् दृश्य देखने लगे। इसी बीच 'उ' की इच्छा हुई कि शिव का तीसरा नेत्र कैसा है जरा देख लेना चाहिए। किन्तु 'अ' इस बारे में तटस्थ रहा। उसे लगा कि किसी के छिद्र नहीं देखने चाहिए। वे भले ही बन्द रहें। शिव का यह तीसरा नेत्र हिमक कहलाता है। नींद में भी यह खुले तो नाहक भोग बन जाये।

'अ' और 'उ' देव और दानवों का उत्साह देख रहे थे। दोनों दायें-बायें कन्धों पर खड़े थे। इतने में भगवान् शिव को लगा कि ये लोग नींद में बाधा पहुँचा रहे हैं। कोई भी चौंककर नीचे न गिर पड़े ऐसे शान्त स्वर में उन्होंने कहा—"तुम्हें वहाँ तक जाना हो और सब कुछ नजदीक से देखना हो तो मैं भाई विष्णु से कहूँ। गरुड़ भेजकर तुम्हें वहाँ पहुँचा देंगे। 'अ' और 'उ' अब समझे कि महादेवजी आशुतोष क्यों कहलाते हैं। उनकी कृपा से वे तुरत ही समुद्र-मन्थन के स्थल पर पहुँच गये।

"अरे भई, इनमें देव कौन-से हैं?"

"इतनी-सी देर में भूल गया। देख न वे वासुकि की पूँछ पकड़कर इस तरह खीच रहे हैं कि थकान न लगे।"

"ये दानव पहले से कुछ मन्द पड़ गये लगते हैं। वासुकि का मुख भाग इन्होंने पकड़ रखा है इसलिए आँखों में से और मुख की श्वासों में से निकलती जहरीली ज्वालाओं से इनकी कान्ति चली गयी है।"

"देखा न? तेरा ईश्वर भी कितना पक्षपाती है?"

"नहीं। वह तो न्यायी है। देख तो सही दानवों की ओर मन्दराचल मुड़ा हुआ है। भगवान् कूर्म का रूप धारण कर अपनी पीठ पर इस मेरु की विशाल मथनी को टिकाये हुए हैं। लगता है जैसे कछुए की पीठ को कोई खुजला रहा हो।"

"अरे देख, नहीं तो रह जायेगा। दानवों की उस पीछेवाली जोड़ी ने द्वन्द्व प्रारम्भ कर दिया है। देख, उसने पीछे खड़े दानव के बाल पकड़े और उसे पानी में डुबा दिया। किन्तु समुद्र के पानी में खारास की अधिकता होने से वह धनाधन बाहर उछल आया। और देख, उसने भी अपने प्रतिद्वन्द्वी को हुडु मारकर आकाश में उछाल दिया। आकाश की हवा बहुत पतली होने से उसके सहारे वह टहर नहीं पाया और अपने स्थान पर आ गया। इतनी देर में तो दोनों वैमनस्य

भूल गये और सबके साथ हुंकार भर के मथनी की डोरी फिर खींचने ल
ये लोग अन्दर ही अन्दर लड़ते तो हैं, किन्तु इनकी संगठित शक्ति ग
की है !"

"मुझे इनके झगड़े में रुचि नहीं, नाहक ही लड़ते हैं !"

"किन्तु इन दोनों को तो एक-दूसरे में इतना भी रस नहीं कि वे पर
लड़ें। आवश्यकतानुसार शक्ति लगाकर जी-तोड़ काम करते रहते हैं।"

"हम लोग एक ओर खड़े होकर देखते रहें, यह शोभा नहीं देता। च
देवों के साथ हो जायें।"

"नहीं, मुझे तो दानवों के प्रति आकर्षण है। ये लोग अपने कार्य में अ
सक्रिय दिखाई देते हैं।"

"एक प्रश्न होता है कि वासुकि की डोरी बनाकर ये लोग इतनी अ
खींचतान कर रहे हैं तो फिर खुरदरी मथनी के साथ घिसने पर उसकी त्व
पर जलन नहीं होती होगी ?"

"तू भोला है। सभी साँप कोमल होते हैं और यह तो उनका राजा।
तरह खींचे जाने पर इसके विष का भार हलका होता होगा। ठीक, चल इ
साथ सम्मिलित हो जायें।"

'अ' और 'उ' सम्मिलित हो गये और निष्ठापूर्वक अपनी शक्ति आज़
लगे। मन्थन का वेग बढ़ने पर उसमें से कामधेनु गाय निकली। दूर ताकते
ब्रह्मवादी ऋषि उसे दान में ले गये। 'अ' और 'उ' को गाय में रुचि न थ
वे तो भैंस का दूध पीते थे। फिर चन्द्रमा सा उज्ज्वल उच्चैःश्रवा घोड़ा निकल
वह 'अ' को पसन्द आया। किन्तु बलिराजा ने उसका कान पकड़ कर अ
ओर खींच लिया। फिर ऐरावत हाथी निकला। उसे देखते ही इन्द्र ने अ
दावा घोषित कर दिया। 'अ' और 'उ' को लगा कि इसमें से चाहे कुछ
निकले अपने भाग में कुछ भी नहीं आने का। यहाँ खाओ और खाने दो
सिद्धान्त पूर्णतः प्रवर्तमान है।

वासुकि के श्वास के प्रभाव से 'उ' की कान्ति मन्द हो रही थी। इ
गुस्सा होकर उसने वासुकि के मुँह पर चिकोटी भरी। वासुकि ने भी
फूत्कार किया। 'उ' को और अधिक गुस्सा आया। उसने उसका एक ज़हरी
दाँत खट्ट से तोड़ डाला। इधर 'अ' देवों के साथ यहाँ-वहाँ की बातों में
गया था।

भगवान् शिव ने पलकें ऊँची करके मदभरी आँखों से देखा। 'अ' दान
की क़तार में और 'उ' देवों की क़तार में दिखाई पड़ा। उन्होंने एक
आँखें मलीं और फिर से देखा तो 'उ' दानवों की क़तार में और 'अ' देवों

क़तार में खड़े थे। उन्होंने मन ही मन कहा कि 'यह सब भ्रम है। ये लोग किसी भी कतार मे खड़े रहें, कोई फ़र्क नही पड़ता। ये देव या दानव तो हैं नहो ? ये तो मानव हैं। इन्हें जहाँ भी ठीक लगे खड़े रहें और आँखें बन्द करने से पहले उन्होंने दृष्टि डाली तो 'अ' और 'उ' दोनों एक-से दिखाई दिये। जैसा 'अ' वैसा 'उ' अथवा जैसा 'उ' वैसा 'अ'।

इसी बीच बलवा मच गया। देव हो-हल्ला करने लगे। कुछ शक्तिशाली दैत्य धन्वन्तरि के हाथ मे अमृत-कुम्भ छीनकर भाग गये। कुछ निर्बल दानव भी देवों की भाँति मुँह फाड़े रह गये। बेचारे ईर्ष्यावश कहने लगे—'देवों का भी अधिकार है, क्योंकि इन्होंने भी समान परिश्रम किया है।' लेकिन बात हवा में उड़ गयी।

'उ' देवों के समूह के पास गया। वे सब एकमत होकर दैत्यों की निन्दा कर रहे थे। यह सुनकर उसने कहा, "तुम दैत्यों के बारे में ऐसा-वैसा बोल रहे हो। किन्तु तुममें से किसी को यह अवसर मिला होता तो क्या दूसरों का विचार करते ? तुम अमृत पीकर जीना चाहते हो तो क्या उनकी ऐसी इच्छा न हो ? तुम इसके लिए उनसे अधिक योग्य हो तो अपनी योग्यता सिद्ध कर दिखाओ !"

'अ' शान्त खड़ा था। उसने 'उ' को एक ओर ले जाना चाहा। 'उ' देखना चाहता था कि अब ये देव क्या षड्यन्त्र रचते हैं। किन्तु 'अ' उसे आग्रहपूर्वक खींच ले गया और कहने लगा :

"देख, ये देव और दानव हैं लड़ते रहेंगे। हम चलें अपनी भूमि पर। लेकिन इससे पहले शिवजी से भेंट करते चलें। इन सबने उन्हें ज़हर तो पिलाया पर अमृत प्राप्त होने की सूचना भी नहीं दी। लेकिन शिवजी सब कुछ जानते हैं। मन ही मन हँस कर वे समाधिस्थ हो जायेंगे। लगता है, देव-दानव के वर्गसंघर्ष से वे ऊब गये हैं। उन्हें किसी भी ओर न्याय नहीं लगता। इसलिए अलग रहते हैं। उनके हाथ में अमृत-कुम्भ रखा गया होता तो निश्चित ही सारी धरती का हृदय अमीय हो जाता। चल, हम उन्हें मिलकर जायें। देवों या दानवों के किसी संगठन में हमें रुचि नहीं। और अमर होने के लिए किसी के के साथ झगड़ना भी नहीं।"

"नहीं, तुझे जाना हो तो जा। मेरी तो फिलहाल इनके इस संघर्ष में रुचि है। मैं भी कोई अमर होने के लिए नहीं झगड़ना चाहता, हाँ, न्याय के लिए अवश्य सक्रिय रहना चाहता हूँ।"

'अ' भगवान् शिव के पास गया।

'उ' की रुचि झगड़े में ही नहीं थी, उसका मन कुम्भ की ओर भी था।

'मैंने भी मन्थन में योग दिया है। वासुकि की विपाक्त फूत्कार से टक्कर लेकर
मैंने जो कुछ श्रम किया है उसका फल मुझे क्यों नहीं मिले?' एकाएक मोहिनी
के हाथ में अमृत-कुम्भ देखकर वह वस्तुस्थिति समझ गया। देवों और दानवों
की इस सभा में वह प्रवेश नहीं कर सकता था। एक गवाक्ष से झांक कर वह
मोहिनी की लीला देखने लगा।

तृपित दैत्य उन्नत नासिकायुक्त मुखवाली मोहिनी को देखते रह गये।
कुछेक देवों की दृष्टि उसके नवयौवन से विकसित स्तनप्रदेश तक पहुँच जाती थी।
'उ' ने देखा कि मोहिनी के केशपाश में खिले मल्लिका पुष्पों की माला किसी की
वेणी की याद दिलाती है। किसकी वेणी की याद दिलाती है? उसने प्रयत्न किया
किन्तु याद नहीं आया। वह मोहिनी की सुन्दर भुजाओं के बाजूबन्द देखता
रहा। उसके नेत्र उद्विग्न होने लगे थे। इसी बीच राहु, जो सूर्य और चन्द्रमा
के बीच देव रूप धारण कर आ घुसा था, अमृत पीते-पीते चित्त हो गया।
चन्द्र ने देखते ही चुगली कर दी। फलतः सुदर्शन-चक्र से उसका मस्तक छिद
गया। 'उ' समझ गया कि यह सब तो ऐसे ही चलेगा। चलकर 'अ' से बात
की जाये।

भगवान् शिव 'अ' के प्रश्न का समाधान कर रहे थे। उन्होंने कहा कि देव
या दानव जिसे अमृत मिलेगा उसे जीवन-तत्त्व मिलेगा। यहाँ देव या दानवों
की योग्यता का प्रश्न नहीं। प्रश्न है मोहिनी रूप धारण किये हुए चैतन्य के
वरण का। उसे माया रूप में देखनेवाले भी वहाँ हैं और श्रद्धा से देखने-
वाले भी।

"तो भगवन्, मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं उससे अनपेक्ष रहकर स्वयं
पनी श्रद्धा पर जी सकूँ।"

"हे युवक! तू निर्भ्रान्त होकर अपनी श्रद्धा को प्राप्त कर सकेगा तो फिर
ो ऐसे किसी बाह्य अमृत की आवश्यकता नहीं रहेगी। तुझे अनुभव होगा
उसका तेरे हृदय में निवास है। इस श्रद्धाजन्य अमृत का दूसरा नाम है
। हाँ, साथ ही साथ तुझे जगत् में जिसकी सत्ता कहीं-कहीं दीख पड़ती है
जहर को भी पहचानना होगा। कभी वह पीना भी पड़े तो उसके लिए
रहना होगा। अपने अनुभव से ही तुझे कहता हूँ कि इसमें आवश्यकता
त्र निडर रहने की। तू अपने अन्तस्थल के अमृत को पहचानता होगा तो
ो आसानी से पचा सकेगा। और जो पचा सकता है उसके लिए तो विष
-वर्धक है। यह तो मैंने अपना मन्तव्य तुझे बताया, निर्णय तो तुझे ही
है।"

किन्तु दादा, एक प्रश्न है।" दौड़कर आने के कारण 'उ' हांफते-हांफते

बोला।

"मैंने अपना मन्तव्य 'अ' को प्रकट कर दिया है। इससे पूछ लेना।"

"परन्तु...."

"तुझे मेरे वचन में संशय है ? ठीक, पूछ ले।"

"आदमी को ऐसा लगे कि उसके हृदय में अमृत नहीं बसता। इसके बावजूद उसे जहर पी लेने को सलाह दी जाये तो उसे क्या करना चाहिए ?"

"पी लेना चाहिए। जो भयरहित होकर विश्वास से पी जाता है, उसके लिए जहर जहर नहीं रहता।"

"जहर तो जहर ही रहेगा। विश्वास का ऐसा क्या प्रभाव हो सकता है कि जहर में परिवर्तन आ जाये ? दादा, आप अपनी महानता का लाभ लेकर हमें बहकाते हैं। आप यदि उस मोहिनी को एक बार देखें तो हमें इस तरह बहकाने नहीं बैठेंगे।"

'उ' की ओर से 'अ' ने क्षमा माँगी और चल दिया। दोनों थोड़ी देर गुमसुम चलते रहे। फिर 'अ' 'उ' की मनःस्थिति को दृढ़ता प्रदान करने के लिए एक ही बात बार-बार कहने लगा :

"तुझमें अमृत बसता है। तू भले ही इनकार करे किन्तु मैं जानता हूँ कि तुझमें अमृत बसता है। एक दिन तुझे इसकी प्रतीति जरूर होगी।"

"बस रहने दे अब, बहुत हुआ। अपने बारे में किसी दूसरे की धारणा को मैं मान्यता नहीं देता। मुझे भला दूसरा व्यक्ति क्या समझ सकता है ? मैं अकेला हूँ।"

इतना कहकर उसने 'अ' को आगे बढ़ने दिया और अपना मार्ग मिलते ही पूरजोश से चलने लगा।

चार

बम्बई 'सेन्ट्रल' के प्लेटफ़ॉर्म पर पैर रखते ही अनिकेत देखता है कि भीड़ नहीं है। किसी समारोह में जानेवाले अनामन्त्रित की मनोदशा लिये उसने शहर में पैर रखा। टैक्सीवाले ने पहले सुना—'सिक्कानगर' और फिर सुना—'मलाबार हिल'। टैक्सीवाले ने समझा होगा कि यह मेहमान होगा और कौन-से मेजबान के यहाँ जाना है, यह निश्चित नहीं कर पा रहा है।

अनिकेत को मालूम न था कि अमृता अब सिक्कानगर छोड़ गयी है। वह इतना जानता था कि अमृता जहाँ रहती हो वहाँ नहीं जाना चाहिए। और इसलिए वह अपने घर नहीं गया।

हाथ के छूते ही उदयन के कमरे का दरवाज़ा खुल गया। कमरे के मायूस खालीपन में उसने पैर रखा।

बाहर सर्वत्र सुबह का समय था। उदयन के कमरे की सुबह का रंग शाम जैसा था।

वह दीवार से सटकर बैठा था। पूर्णतः स्थिर। अनिकेत आया यह उसने देखा या नहीं अनिकेत को पता नहीं चला।

उदयन का हाथ नहीं उठा। उसके होंठ नहीं हिले। उसकी पलकें नहीं चौंकीं। उसके चेहरे की किसी भी रेखा ने गहराई में भी कहीं कुछ व्यक्त करने का प्रयास नहीं किया।

दरवाज़े से दो क़दम आगे बढ़कर अनिकेत खड़ा रहा। पैर में बिजली का करेंण्ट लगे और हाथ का सूटकेस अचानक गिर जाये कुछ ऐसी ही जड़ता के आघात का अनुभव उसे हुआ।

अनिकेत को इस तरह आश्चर्यमूढ़ देखकर भी उदयन हिला-डुला नहीं।

यह उदयन नहीं—ऐसा कहना ग़लत था। और यह उदयन है—ऐसा मानना आसान न था। मोम के पिघलने आये पुतले की तरह उदयन लोंदे-जैसा पड़ा था। उसकी दृष्टि एकदम अचेतन थी। होंठ इस तरह बन्द थे मानो उन्हें खुलने का अभ्यास ही न हो।

"मैं आया हूँ, पर उदयन को ऐसा ही लगता है कि मानो मैं नहीं आया," अनिकेत सोचता है।

उसे देखकर अनिकेत दिग्मूढ़ हो गया। उदयन को यह देख आश्चर्य नहीं हुआ। उसके चेहरे पर छायी विरति पूर्ववत् रही। खिड़की में से वह आया पवन उसके चेहरे का स्पर्श किये बिना ही खुले दरवाज़े से बाहर निकल गया। अनिकेत ने दरवाज़ा बन्द किया।

वह उदयन के पास जाकर बैठा। जिस ओर वह पहले से ही देख रहा था, उस ओर ही वह देखता रहा। अभी भी जो नहीं है वही उसे दिखाई दे रहा था। अनिकेत खिसककर उसके अधिक नज़दीक गया। हाथ से पकड़कर उसका मुँह अपनी ओर किया। उसका धड़ वैसे ही रहा, गरदन घुमी और उसका चेहरा अनिकेत की ओर उन्मुख हुआ। उसकी आँखें अधिक मोटी और अधिक खाली लगीं, जैसे बड़े-बड़े वृक्षों की शाखाओं के नीचे लुंज-पुंज लटकते घोंसले, पक्षियों के उड़ जाने के कारण लगते हैं। शायद उससे भी अधिक खाली-खाली आँखें देखकर

अनिकेत को भय लगा। उसने उदयन का हाथ अपने हाथ में लिया। कुछ कहने के लिए उसके होंठ खुले और उदयन ने एकाएक हाथ खींच लिया। अनिकेत के स्पर्श से उसकी त्वचा ने कुछ सिहरन का अनुभव किया था।

"उदयन !"

पूर्ववत् स्थिति।

"उदयन, तुझे यह क्या हो गया ?"

उदयन ने नीचे देखा।

"क्यों कुछ बोलता नहीं है ?"

उसने अनिकेत के सामने देखा।

"उदयन तेरी यह दशा ?"

"तू कुछ बोल मत ऐसे ही बैठा रह। तुझ जैसे स्वस्थ आदमी को ऐसे बेचैन नहीं होना चाहिए, अनिकेत ! तू मेरे सामने वह आरामकुरसी ला और उसमें बैठ। रात को गाड़ी में पर्याप्त आराम न मिला हो तो सो जा। या फिर जागते-जागते मेरी ओर नज़र रख। हम बातें न करें। हम केवल नजदीक रहें। अभी तो मैं मात्र इतना ही चाहता हूँ कि हम सन्नाटे को बनाये रखें। दो आदमियों के बीच एकान्त कितना टिक सकता है, यह जान लें।"

"परन्तु तुझे हुआ क्या है ?"

"मुझे कुछ हुआ तो है। क्या हुआ है, यह नहीं जानता। मैं दुःखी हूँ या नहीं इसका भी मुझे पता नहीं। किन्तु मैं निविड़भाव से अनुभव कर रहा हूँ कि मैं हूँ। विचार कर सकता हूँ कि जो है उसे कुछ तो होता ही रहता है।"

"इतना निर्मम होकर बात न कर।"

"निर्ममता कैसी, जो मेरे लिए सहज है उसे तू ऐसा नाम न दे। तू मानता है कि अपने को दुःखी मानकर अथवा प्रकट करके मैं किसी की अनुकम्पा नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि तू अनुकम्पाशील नहीं, स्नेही है। आज तो मैं प्रेम भी नहीं चाहता। उपस्थिति चाहता हूँ। कोई ऐसा क्षण आता है कि मुझे स्वयं अपनी कमी लगने लगती है। तब ऐसा लगता है कि कोई मेरे पास हो तो अच्छा। कम सोचना पड़े।"

"हाँ कोई हो तो अच्छा।"

"मैंने तुझे पत्र लिखा था तब मैंने सोचा था कि तू थोड़े दिनों में आ जायेगा। किन्तु तू आया नहीं। आने की इच्छा को जिस कारण से तूने रोका होगा उसे समझा जा सकता है। वह कारण ग़लत निकला। तू आया पर बहुत देर से आया। मैंने तेरी राह देखना छोड़ दिया तब तू आया।"

"किन्तु पत्र में तूने कुछ गम्भीर तो लिखा नहीं था।"

अनिकेत को मालूम न था कि अमृता अब सिक्कानगर छोड़ गयी है। वह इतना जानता था कि अमृता जहाँ रहती हो वहाँ नहीं जाना चाहिए। और इसलिए वह अपने घर नहीं गया।

हाथ के छूते ही उदयन के कमरे का दरवाज़ा खुल गया। कमरे के मायूस खालीपन में उसने पैर रखा।

बाहर सर्वत्र सुबह का समय था। उदयन के कमरे की सुबह का रंग शाम जैसा था।

वह दीवार से सटकर बैठा था। पूर्णतः स्थिर। अनिकेत आया यह उसने देखा या नहीं अनिकेत को पता नहीं चला।

उदयन का हाथ नहीं उठा। उसके होंठ नहीं हिले। उसकी पलकें नहीं चौंकीं। उसके चेहरे की किसी भी रेखा ने गहराई में भी कहीं कुछ व्यक्त करने का प्रयास नहीं किया।

दरवाज़े से दो क़दम आगे बढ़कर अनिकेत खड़ा रहा। पैर में बिजली का करैण्ट लगे और हाथ का सूटकेस अचानक गिर जाये कुछ ऐसी ही जड़ता के आघात का अनुभव उसे हुआ।

अनिकेत को इस तरह आश्चर्यमूढ़ देखकर भी उदयन हिला-डुला नहीं।

यह उदयन नहीं—ऐसा कहना ग़लत था। और यह उदयन है—ऐसा मानना आसान न था। मोम के पिघलने आये पुतले की तरह उदयन लोंदे-जैसा पड़ा था। उसकी दृष्टि एकदम अचेतन थी। होंठ इस तरह बन्द थे मानो उन्हें खुलने का अभ्यास ही न हो।

"मैं आया हूँ, पर उदयन को ऐसा ही लगता है कि मानो मैं नहीं आया," अनिकेत सोचता है।

उसे देखकर अनिकेत दिग्मूढ़ हो गया। उदयन को यह देख आश्चर्य नहीं हुआ। उसके चेहरे पर छायी विरति पूर्ववत् रही। खिड़की में से वह आया पवन उसके चेहरे का स्पर्श किये बिना ही खुले दरवाज़े से बाहर निकल गया। अनिकेत ने दरवाज़ा बन्द किया।

वह उदयन के पास जाकर बैठा। जिस ओर वह पहले से ही देख रहा था, उस ओर ही वह देखता रहा। अभी भी जो नहीं है वही उसे दिखाई दे रहा था। अनिकेत खिसककर उसके अधिक नज़दीक गया। हाथ से पकड़कर उसका मुँह अपनी ओर किया। उसका धड़ वैसे ही रहा, गरदन घुमी और उसका चेहरा अनिकेत की ओर उन्मुख हुआ। उसकी आँखें अधिक मोटी और अधिक खाली लगीं, जैसे बड़े-बड़े वृक्षों की शाखाओं के नीचे लुंज-पुंज लटकते घोंसले, पक्षियों के उड़ जाने के कारण लगते हैं। शायद उससे भी अधिक ख़ाली-ख़ाली आँखें देखकर

सहायक भी होना चाहिए। इसीलिए दो दिन से कुछ भी नहीं खाया। कमरे के बाहर भी नहीं निकला। रोग के अनुकूल बनकर उसका मार्ग सरल कर रहा हूँ। उसके विकास में रुचि ले रहा हूँ। कारण कि उसे पहचानना चाहता हूँ। आशा करता हूँ कि निकट भविष्य में इसका व्यक्तित्व पूर्णतः प्रकट होगा। प्राचीन युग में कुछ योद्धा अपने पास दो तलवारें रखते थे। शत्रु सामने मिले और वह शस्त्रहीन हो तो एक उसे दे देते। मैं उस योद्धा का अनुकरण कर रहा हूँ। रोग सज्जित होकर मेरे सामने आये फिर उसके बाद उसके साथ लड़ लूँगा।''

अनिकेत को अपने कान बड़े ही विवश लगे। उदयन जो कुछ बोले सुनना पड़ता था। उसे निष्क्रियता का अनुभव हुआ। कमरे के वातावरण के अणु-अणु में एक ठण्डी निष्क्रियता का भारीपन था। वह गड़ा हुआ। घूमने के बदले यहाँ-वहाँ खड़ा हो जाता था। पके नारियल की छाल उतारने के लिए उसका पोला नरम भाग ढूँढ़ते हुए नारियल को गोल-गोल घुमाना पड़े—इस तरह अनिकेत अपने मौन का छोर ढूँढ़ रहा था।

''तो लगभग एक महीने से इसकी तबीयत ठीक नहीं। ऐसी स्थिति में भी इस तरह अकेला रहता है। इसे नौकर रख लेना चाहिए था किन्तु नहीं रखेगा। पहले भी इस बारे में इसके साथ बात हो चुकी है। 'किसी आदमी को अपने नौकर के रूप में देखना मुझे सहन नहीं। और मुझमें दूसरों को इस रूप में देखने की आदत पड़ जाये तो फिर मैं अपने को माफ़ नहीं कर सकता।' हो सकता है कि इसके कथन में थोड़ी अतिशयोक्ति हो किन्तु इसने आज तक नौकर नहीं रखा यह सच है। छोटे-बड़े का भेद किये बिना सबके साथ वह समान रूप से व्यवहार करता है। 'स्वामी और सेवक...आदमी और आदमी के बीच यह व्यवहार शोभा नहीं देता'....किन्तु कोई अपना काम करे इससे उसे नौकर ही मानो यह किसने कहा? वैसे, कार्य भेद तो रहेगा ही।'' यह वक़्त उदयन के साथ बहस करने का नहीं था। इसलिए अनिकेत ने अपने चित्त में चलते संवाद को भी शान्त किया। अब तो उदयन जो है वह है। उसे इस रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। मेरी मित्रता का दायित्व भी यही कहता है। एक बार यह स्वस्थ हो जाये और अमृता....।

उदयन के पलंग की खिड़की के पास जाकर वह खड़ा हो गया। कुछ टूटे-फूटे खिलौने पड़े थे।

''यह क्या उदयन?''

''कबाड़।''

''किसका कबाड़?''

''कबाड़ पर से तू मूल आकृति की कल्पना नहीं कर सकता?''

अनिकेत उन टूटे-फूटे खिलौनों को हाथ में लेकर देखने लगा। इस समय तो मलवे के रूप में ही पहचाना जा सकता है। उसने दोनों हाथ काम में लगाये। टीन के रंग-विरंगे टुकड़े और एक-एक दो-दो इंच की छड़ें उनमें से बाहर खींचकर वह रखने लगा। कल्पना के सहारे टुकड़ों का संयोजन करके खिलौनों की सर्वांग-सम्पूर्ण आकृति वह नहीं बना सका। कोई आकार खड़ा नहीं हुआ।

"ला मेरे पास।"

हाथ में लेकर उदयन ने सभी टुकड़ों को दिलचस्पी से देखा। फिर उन्हें दो भागों से बाँट लिया। तरतीब देने लगा, सफलता की बिना आशा के। अनिकेत उसके पास सरक आया।

"अब तो टुकड़ों को जोड़ सकना सम्भव नहीं। मेरी भाषा से तुझे खयाल आ जायेगा। ये टुकड़े पहले स्पुतनिक नामक खिलौने के अंग थे। चाबी भरने से आवाज़ होती थी। उसमें से स्पुतनिक छूटता था। बीच में छत आ जाने पर सिर पटककर वह नीचे गिरता था। यहाँ पलंग पर ही गिरता था इसलिए हाथ से उठाकर मैं उसे फिर व्यवस्थित करता था, चाबी भरता था और फिर आवाज़ होती थी। खिलौना दूसरे का था, मेरे लिए नहीं खरीदा गया था। भूल से यहाँ रह गया था। उन दिनों भूल से या बिना भूल के बहुत कुछ यहाँ रह जाता था। मैं भी सब कुछ भूलकर अपनी अँगुलियों की क्रिया देखता रहा था। चाबी, आवाज़, उछलना, टकराना, गिरना....एकरूपता निभ रही थी। इतने में स्पुतनिक मेरी ओर छूटा और मेरे सिर में लगा। मेरे सुप्त मस्तिष्क ने विस्फोट की आवाज़ सुनी। पूरी घटना का रहस्य उद्घाटित हो गया। मुझे लगा कि खेल पूरा हो गया। अब खेल चुके...कुछ सूझता न था...समय जा रहा था। इसे हाथ में लेकर दबाने लगा। ऐसा लगा कि यह तोड़ा जा सकता है। किन्तु ऐसा न करके बूट से पीट-पीटकर इसका 'शेप' ही बदल डाला, ताकि पहचाना न जा सके।"

उदयन ने दीवार का सहारा लिया मानो उसे बोलने से थकान हुई हो। अनिकेत उन तमाम जीर्ण अवशेषों को इकट्ठा कर फेंक देने के लिए उन्हें बटोरने लगा।

"फेंक मत देना।"

"क्यों?"

"दूसरे खिलौने के बारे में तो तूने जाना ही नहीं।"

"मुझे नहीं जानना, तू आराम कर। आराम की ज़रूरत है तुझे।"

"आराम करना हो तो भी वह सुलभ थोड़े ही है। पड़े रहने से आराम मिलता हो तो वह मुझे आवश्यकता से अधिक मिल चुका है....तू इतने दिनों बाद

आया है। जिज्ञासा जिज्ञासा रह जाये यह मैं नहीं सह सकता।"

वह बायीं ओर झुककर लेट गया।

"यह झूला था।"

उसने आँखें बन्द कीं।

"मेरा बचपन भी था।"

उसने ऊपर सपाट छत की ओर देखा। चूने की सफ़ेदी उसकी आँखों में व्याप गयी।

"शामलाजी के मेले जाता तब हिंडोले पर बैठता ही।"

वह बैठ गया।

"छतरी के आकार के चकडोल की बजाय रहट की गति से घूमते ऊँचे चकडोल पर बैठना मैं अधिक पसन्द करता...ठेठ ऊपर पहुँचता तब मेरे चेहरे पर स्मित थिरक उठता। सब कुछ मुझे अपने से नीचा दिखाई देता। और तब सामनेवाले पहाड़ों के जंगलों में सूँ-सूँ करके बहते पवन को श्वास में भरकर मैं नीचे उतरता।"

अनिकेत ने सारे टुकड़े फेंक दिये थे।

"वह खिलौना चालू करके मैं देखता रहा। वह घूमता रहता। उसकी बैठकों पर चिपकाये लोगों को चुन-चुनकर मैं एक ओर रखने लगा। एक ही आदमी बच गया। फिर चाबी भरी। चकडोल शुरू हुआ। उसकी गति में परिवर्तन आ गया था। उसे रुकते देर न लगी। सन्तुलन बिगड़ गया था। इसके बावजूद मेरी इच्छा थी कि चकडोल को चलाना चाहिए। चाबी भरता रहा। स्प्रिंग टूट गयी। फिर अँगुलियों की पोरों से मैं उसे घुमाता रहा। घुमाते-घुमाते अँगुलियाँ थक गयी थीं। इसलिए बूट उठाया और उसे भी कूट-पीस डाला। फिर निश्चिन्त होकर सो गया....तेरे शब्दों में कहूँ तो आराम करने लगा।"

अनिकेत ने सूटकेस में से रेगिस्तान और उसके आस-पास के प्राकृतिक दृश्यों के फ़ोटोग्राफ़ निकाले। उदयन के पास रखे और स्नान करने चल दिया। थोड़ी देर में तैयार होकर उसने कहा—

"उदयन, मैं एकाध घण्टे में - जितनी जल्दी हो सकेगा, आ जाऊँगा। तुझे अब शान्त रहना है। अपने में लेश मात्र भी रुचि नहीं लेनी है। जो होता है, होने देना है। भविष्य के सम्बन्ध में विचार आयें और किसी तरह की आशा जन्म ले तो उसे रोकना मत, तुझे प्रयत्नपूर्वक किसी भी तरह की शंका से ग्रस्त नहीं होना है। उदयन, तुझे मानना ही होगा कि हर एक व्यक्ति को जीना चाहिए। इसलिए तुझे भी जीना पड़ेगा। तू एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी ...

शक्ति उसे हर स्थिति में ज़िन्दा रख सकती है।"

"हूँ....हूँ।"

"अच्छा मैं घण्टे—पौन घण्टे में आ जाता हूँ।"

"एक बात ?"

"बोल !"

"तू अमृता से मिलेगा ?"

"सिक्कानगर जा रहा हूँ, उससे ही मिलने। क्यों ?"

"उससे मेरे बारे में कुछ कहना नहीं।"

"तो क्या वह कुछ नहीं जानती ?"

"मैं बहुत समय से उसे नहीं जानता हूँ इसलिए वह मेरे बारे में जानती है या नहीं मुझे कैसे पता चलेगा ? किन्तु अब वह जाने या न जाने कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

"इस बारे में मैं तेरे साथ चर्चा नहीं करूँगा।"

"किन्तु सुनता जा। तू मेरा मित्र हो तो अमृता के साथ की बात-चीत में मेरे नाम का उल्लेख भी नहीं होना चाहिए।"

अनिकेत टेबुल पर बैठ गया।

"रुक क्यों गया ?"

"वह पूछे कि कहाँ ठहरा है तो भी तेरा नाम न दूँ ! झूठ बोलूँ ?"

"अच्छा उसे मेरे बारे में जो कहना हो वह कहना। तथा उसके चेहरे पर इसकी क्या प्रतिक्रिया व्यक्त होती है याद रख कर मुझे बताना। अथवा फिर ऐसा कर उसे यहीं बुला ला। देखूँ कि वह कितनी सुखी है। उसे सुख सद गया या नहीं, देखना है ज़रा। अवश्य बुला लाना।"

"ठीक।"

"एक दूसरी बात !"

"क्या ?"

"मुझे अपनी एक धारणा में सन्देह होने लगा है, ईश्वर सम्बन्धी धारणा में।"

"अर्थात् तू ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारने लगा है ?"

"नहीं। पहले मेरा उसमें विश्वास नहीं था, अब उस विश्वास में भी विश्वास नहीं रहा। अब मैं नास्तिक या आस्तिक नहीं, संशयात्मा हूँ। और तू वह श्लोक जानता है—"संशयात्मा..."

"ऐसा कैसे हुआ ?"

"जापान में परमाणु के बारे में सोचते हुए मुझे ऐसा लगा। छोड़ इस बात

को। ईश्वर हो या न हो इससे कुछ अन्तर नही पड़ता। उसके न होने से तुझे अफ़सोस नही और उसके होने पर मेरा कोई विरोध नही।"

"ईश्वर तो निर्बल का बल है। तुझ-जैसा बलवान् आदमी शायद ईश्वर के बिना निर्वाह कर ले। मैं चलता हूँ, नहीं तो तू कुछ और बोलेगा। आराम कर।"

"जल्दी करना! मैं नहीं जानता कि तेरी अनुपस्थिति में कितनी देर तक जी सकूंगा।"

अनिकेत सिक्कानगर पहुँचा। जल्दी-जल्दी जीना चढ़ा। घण्टी गूँजी। "ताला? वह कब से यहाँ नहीं रहती?" नीचे आ गया। कार नही थी। किससे पूछे? "कही जुहू तो नही चल दी? वहाँ जाऊँ? उदयन ने कहा है उसे लिवा लाना। बुला लाऊँ और वह कुछ कह बैठे तो? लगता है कि अमृता उसे लम्बे अरसे से नहीं मिली। उदयन कुछ स्वस्थ हो जाये उसके बाद ही उसे बुलाना चाहिए।

पड़ोसी के घर जाकर उसने फ़ोन किया। दो डॉक्टरों को एक साथ बुलाना था। समय तय करने में थोड़ी देर लगी। दोपहर में दो बजे के आस-पास दोनों आ सकेंगे।

उसने 'छाया' का भी नम्बर जोड़ा—"अमृता है?" अमृता थी। उसे बुलाया गया। उसने वह सब सुना जो अनिकेत ने कहा। उसे यह सब पता नही था। "कब आ रही हो?" वह बोली, "तुम जब कहो तब।" "तुम—एक बजे तक आ जाओ। दो बजे डॉक्टर आनेवाले हैं।" अमृता ने 'हाँ' कहकर फ़ोन रख दिया।

इसका स्वर बिलकुल निष्कम्प क्यों था?

काफ़ी दूर निकल जाने के बाद उसे टैक्सी रोकने की सूझी। उसका पहले-वाला नौकर एक होटल में काम करता था। वह उस ओर से निकला। उदयन बीमार है यह जानकर वह मैनेजर से छुट्टी ले आया। और आग्रहपूर्वक अनिकेत के साथ हो गया।

उदयन का मुँह दीवार की ओर था। उसने पदरव सुना। दो व्यक्ति थे, किन्तु इनमें अमृता नही। दूसरा कौन है यह देखने के लिए उसने करवट बदली। पहले उसे यह दिखाई दिया कि अमृता नहीं है फिर उसने अनिकेत के नौकर को पहचाना। उदयन को इस हालत में देखकर वह कातर हो उठा।

फल देखते ही उदयन जैसे निराश हो गया। सोचने लगा कि अब अनिकेत खाने के लिए कहेगा, और मुझे खाने पड़ेंगे। वह देखने लगा कौन-कौन-से फल हैं। घास-जैसे लगेंगे या फिर कौन जाने कैसा स्वाद होगा?

नौकर ने आवश्यक सामान जुटाकर चाय बनायी।

चाय के प्रति उसे अधिक लगाव है। फिर भी उसने कोई उत्साह नहीं जतलाया। दो दिन बाद चाय का स्वाद न मालूम कैसा लगेगा!

अनिकेत सामने आकर बैठ गया। पैण्ट की जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला। उदयन की प्रिय सिगरेट।

उदयन के चेहरे की रेखाओं में उत्सुकता जागी। अनिकेत हाथ में ही वह पैकेट घुमाता रहा। सभी ने चाय पी। अनिकेत ने उदयन के मुँह में सिगरेट रखी और जलायी। अपनी भी जलायी। उदयन के होंठ पर हलका स्मित उभरा। मन ही मन सोचने लगा—"मैं जानता हूँ जनाब! आप मेरा साथ देने के लिए अपना मुँह कड़वा कर रहे हैं। वैसे इस जनम में तो आपको सिगरेट पीनी नहीं आयेगी।" अनिकेत के इस प्रयत्न में उसे दिखावे की अपेक्षा गहरा सद्भाव कहीं अधिक लगा।

"अनिकेत यह सिगरेट पीने के लिए मैं ज़िन्दा रहने का दायित्व निभाने को तैयार हो सकता हूँ।"

अनिकेत ने गहरा कश खींचा। उसे खाँसी आ गयी। बिना फूँके वह सिगरेट में से निकलते धुएँ को देखता रहा। आँखों में धुआँ घुसने के कारण ही पानी आ गया था।

कमरे की सफ़ाई हुई। नौकर ने खिड़की के परदे धोने के लिए उतार लिये। कमरे की धूमिलता बाहर चली गयी और उजाला अन्दर आया। वातावरण में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया।

उदयन ने अनिच्छापूर्वक स्नान किया। अनिच्छा के बावजूद स्फूर्ति का अनुभव किया। अशक्ति कम हो गयी हो ऐसा महसूस हुआ। हाँ, नहाते समय गर्म पानी का स्पर्श कुछ अलग ही मालूम देता था। उसने पास में रखी ठण्डे पानी की बालटी में हाथ डाला। ठण्डा पानी अधिक ठण्डा लगा। ठण्डा या गर्म न लगे और पानी मात्र पानी ही लगे वह ऐसी स्थिति खड़ी नहीं कर पाया। बेचैनी का अनुभव करता रहा। "हाँ, मैं बीमार हूँ तो फिर कुछ तो नया-नया लगना ही चाहिए न!" उसे समाधान मिल गया था। वह बाहर आ गया।

पलंग की जगह बदल दी गयी थी। चादर बदल दी गयी थी। उसने वातावरण सूँघकर देखा।

"जो मेरा था वह सब तुम लोगों ने छीन लिया। कहाँ से लाये यह वातावरण?"

अफ़सोस व्यक्त करता हुआ वह पलंग पर बैठा। तब क्षण-भर उसे लगा कि वह ख़ास बीमार नहीं। ऐसा मानने के लिए वह ललचाया है, वस्तुस्थिति उसे तुरन्त प्रतीत हुई। तो भी उसने भ्रम में रहना चाहा।

तीनों ने दोपहर में हलका नाश्ता किया। अनिकेत ने नौकर को छुट्टी दे दी
वह उदयन की सार-सम्हाल रखने की याचना करता हुआ चल दिया। उदय
सो गया।

अनिकेत की आँखें भारी थीं। वह जाग रहा था।

पौने दो बजे। इसके बाद वह घड़ी की सुइयों की ओर देखता रहा। डॉक्ट
टाइम पर आ गये। मूविंग एक्सरे भी लेते आये थे। पैंतीस मिनट तक जाँ
और पूछ-परख चलती रही। बीच-बीच में उदयन के हँसी-मज़ाकपूर्ण उत्त
वातावरण की गम्भीरता को भंग करते रहे। पेशाब, खून आदि की जाँच क
व्यवस्था भी कर ली गयी।

डॉक्टर अनिकेत को साथ ले गये।

उदयन ब्लेड से नाखून काटने बैठा।

अनिकेत दो मिनट बाद वापस लौटा।

"अरे! मैं तुझे कहना ही भूल गया। दवा लेकर आता हूँ।"

"दवा या वसीयत का कागज़ जो भी लाना हो।"

"अपने घर पर व्यंग्य कर सकने की तेरी क्षमता की मैं कद्र करता हूँ।"

"बस अब बके बिना जा।"

"अमृता तीनेक बजे आयेगी। मैं जाऊँ तब तक उसे रोक रखना। मु
उससे बातें करनी हैं।"

"तुझे सामने मिल जाये तो साथ में लेते जाना। अथवा लौटा देना। अ
वह यहाँ न आये तो अच्छा।"

"क्यों सुबह तो उसे बुलाने की तूने छूट दी है। ठीक, मुझे मिलेगी तो
लौटा दूँगा। किन्तु वह यहाँ आ ही जाये तो उसे लौटाने का काम तू मत करना
अतिथि को वापस लौटाना शोभा नहीं देता।"

"तू जा, नीचे डॉक्टर तेरी राह देखते होंगे।"

"अच्छा सो जा।"

उदयन के बारे में डॉक्टरों ने अनिकेत से बहुत-से प्रश्न पूछे। अनिकेत क
ये सारे प्रश्न अनावश्यक-से लगे थे। तब भी खून व पेशाब की जाँच रिपो
मिली तो अनिकेत की उपस्थिति में ही चर्चा हुई।

"एक किडनी लगभग काम नहीं करती, क्षार चिपट गये हैं।"

अनिकेत मानो अपने शरीर के बारे में सुन रहा हो—

"जिसे पथरी कहते हैं...."

"बहुत-सी पथरियाँ चिपट गयी हैं।"

"दूसरी किडनी भी कमज़ोर होने लगी तो बहुत मुश्किल है।"

"किन्तु डॉक्टर, पहले किडनी का उपचार करना है या खून को सुधारने का प्रयत्न कर देखना है ? एक तो किडनी जैसा गम्भीर रोग और उसपर खून के रोग का पता न चलना ।"

"मिस्टर अनिकेत, आपके मित्र खूब लापरवाही से जीते लगते हैं। किडनी इतनी अधिक बिगड़े और उन्हें इसका पता न चले ऐसा हो सकता है ?"

"इस समय मैं उसे उलाहना दे सकूँ यह सम्भव नहीं। अब तो मुझे यही देखना है कि उसके रोग का इलाज अच्छी से अच्छी तरह हो ।"

"प्रयत्न कर देखें ।"

"प्रयत्न कर देखें अर्थात् क्या उसका खून आसानी से नहीं सुधर सकता ?"

"आपने उनकी चमड़ी नहीं देखी ? कितनी फीकी पड़ गयी है ! मेरे इतने वर्षो के कैरियर में यही एक ऐसा रोग है जिसका उपचार करने में मैं इतना हिचकिचा रहा हूँ ।"

दूसरे डॉक्टर ने भी यही कहा, थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ ।

अनिकेत शान्तिपूर्वक उनकी बातें सुनता रहा ।

"यह पेलाग्रा तो नहीं है। ऐसा नहीं है कि केवल सूर्य के तेज के सम्पर्क में आनेवाले भाग काले हो गये हों। यहाँ तो पूरी चमड़ी ही फीकी पड़ गयी है। ऐसा लगता है मानो चमड़ी ऊपर से लगायी गयी हो ।"

"ये हिरोशिमा में काफ़ी रुके थे। इसलिए यह बात ध्यान में रखकर भी हमें विचार करना चाहिए ।"

"मैं भी यही कहने जा रहा था कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि 'रेडियो-एक्टिव' के असर से एग्रेन्युला साइटॉसिस हो जाये ?"

"ऐसा मानना कठिन है। एक क्यूबिक मिलिमीटर में ऐसे बारह हजार जितने श्वेतकणों का प्रमाण देखने पर मुझे तो ल्यूकोसाइटोसिस की शंका होती है ।"

"किन्तु फेफड़े नीरोगी हैं, उसका क्या ?"

"'ऐसा क्यों न करें' रोगी को अस्पताल में दाखिल करके आगे जाँच और प्रायोगिक उपचार चालू करें। इस दरमियान मित्रों से परामर्श कर सकेंगे। विदेश में भी पूछ-ताछ कर लें। आज तो रेडियो-एक्टिव के प्रभाव से होनेवाले रोगों पर काफ़ी शोध-कार्य हो रहा है ।"

"मुझे भी यही एकमात्र उपाय लगता है ।" दूसरा डॉक्टर बोला ।

"अनिकेतजी, आपके मित्र को बड़े अस्पताल में हो सके तो आज ही भर्ती करा दीजिए। हम फ़ोन पर बोल देते हैं। आप जाकर स्पेशल रूम का प्रबन्ध कर लें। छह बजे तक उन्हें वहाँ पहुँचा दीजिए। फ़िलहाल तो किडनी की ओर

ध्यान दिया जाये।"

"अवश्य।"

"यदि यह ल्यूकेमिया के प्रारम्भ की प्रक्रिया हो और बाद में बीमारी बढ़ जाये तो अपने हाथ में कुछ भी नहीं रहेगा।"

"ल्यूकेमिया ?"

"हाँ, यह लगभग प्राणघातक रोग है। खून के श्वेतकण एक क्यूबिक मिलि मीटर में बीस से पचास हजार जितने हो जाते है।"

"जिसे खून का कैन्सर कहते हैं, वही न ?"

"हाँ, रोगी का रेसिस्टेन्स एकदम घट जाता है। जितने समय तक वह जीता है वह भी उसके लिए असह्य हो जाता है। छोटी-छोटी वस्तुएँ उसके लिए कष्टदायक बन जाती है।"

डॉक्टरों की बातचीत अनिकेत के मन में घुमड़ती रहती थी। "किडनी एक भी चालू हो तब तक तो कोई बात नही, किन्तु इस रक्त-रोग को ये लोग नही पहचान सकते ? मैं बहुत देर से आया। मुझे क्या पता था कि इसकी ऐसी हालत हुई होगी ? उसे भरोसा दिलाना भी कठिन है कि वह आसानी से ठीक हो जायेगा। फिर भी प्रयत्न कर देखूँ। इसे लगे कि जिया जा सकता है और वह जीने की कामना का अनुभव करे तभी कुछ आशास्पद परिणाम निकल सकता है। यदि आवश्यक हुआ तो इसे विदेश भी ले जाऊँगा..."

साढ़े पाँच बजे वह पहुँचा। उदयन ने इस बारे में कुछ भी नही पूछा कि डॉक्टरो ने क्या कहा ? अनिकेत सोच नही पा रहा था कि बात किस प्रकार प्रारम्भ करें। आखिर उसने कहा कि बडे अस्पताल मे प्रविष्ट होना है। सुनकर उदयन ने करवट बदल ली।

अनिकेत नजदीक आ गया।

"दूसरा कोई उपाय नही। अस्पताल में आज दाखिल होना ही पड़ेगा ?

"मैं ऐसा मानता था कि तेरे साथ एक-दो दिन शान्ति से गुजरेंगे। जबकि तूने तो मेरे पास की सुरक्षित शेष शान्ति को भी दूर करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये है। सप्ताह पूर्व मैं जनरल अस्पताल के पास से गुजरा था। तब मुझे हिरोशिमा के हॉस्पिटल की याद हो आयी थी। जाने क्यों, किन्तु अब अस्पताल के नाम से ही मेरे श्वास में मृत्यु की गन्ध घुलने लगती है। हॉस्पिटल और तहखाने में रहने के लिए एक-सी सहन-शक्ति अपेक्षित होती है। जिन्दा रहने के लिए यह सब क्या झंझट है ? जाने दे यार, ये सब खट-पट बेकार है। देखें इस शरीर में क्या-क्या परिवर्तन आते है। मृत्यु कौन-से स्वरूप में आती है, कितनी ममता से वह मुझे ले जाती है, ग्रहण करने की उसकी प्रक्रिया क्या है,

यह देखें।"

"यह प्रक्रिया नहीं, परिणाम है और यह तुझसे बहुत दूर है, इतना अधिक दूर है कि मुझे कल्पना में भी नहीं दिखाई देता। थोड़े ही दिनों में तू स्वस्थ हो जायेगा। तो फिर हम लोग तेरे इस कमरे में आराम से बैठेंगे और घण्टों बातें किया करेंगे?"

"मुझे ले ही चलना है? कोई विकल्प नहीं?"

"चलना ही पड़ेगा।"

"तो कल ले चलना। आज तो मुझे यहीं पड़ा रहने दे। मुझे अस्पताल में सब-कुछ पराया-पराया लगता है। और रोगी बनकर जाऊँगा तब तो मुझे पिंजरापोल में दाखिल होने-जैसा अनुभव होगा।"

"स्पेशल रूम की व्यवस्था मिलेगी। जैसा तेरा यह कमरा है वैसा ही वह रूम होगा। बदलेंगी केवल दीवारें। किन्तु उससे क्या? डॉक्टर इलाज करेंगे, नर्सें सेवा करेंगी, तू देखा करना। तू जागता होगा तब तक हम लोग बातें किया करेंगे। तू सोयेगा तब तक मैं जागूँगा।"

"नींद नहीं आती। कल शाम के वक़्त बैठा था। तू आया तब तक मैं वैसे ही बैठा रहा। बैठे-बैठे जो नींद आयी हो बस उतनी ही। सिगरेट खतम हो गयी थी। लेने जाना चाहता था पर पैर रखने की हिम्मत नहीं थी। फिर तो सिगरेट को भूल गया और सोचता-सोचता रात की जुगाली करता रहा। सुबह देखा तो रात बीत गयी थी। और उसके स्थान पर तू आ पहुँचा था। पहले तो मुझे लगा कि तू व्यर्थ ही आया है। फिर लगा कि ठीक हुआ। तेरे साथ बात-चीत भी की जा सकेगी। परन्तु तू तो आते ही डिस्टर्ब करने लग गया। अब घर भी छुड़ाने की तैयारी है। तू मित्र है या दुश्मन?"

"यह सब निश्चित करने का कार्य दूसरों पर छोड़ेंगे। अब तुझे तैयार होना है। साथ क्या-क्या लेना है?"

"इस रूम में से मुझे ले जा रहा है यही क्या कम है, जो अन्य वस्तुएँ भी ले जाकर इसे वीरान बना देना चाहता है।"

"उदयन, तेरे सामने मजबूर हूँ। समय जा रहा है। बता साथ में क्या-क्या लेना है?"

"जो तुझे उचित लगे। अब तू यह मानकर चल कि मैं तेरा शरणार्थी हूँ।"

वह जो मन आया बोलता रहा, खड़ा होने का नाम नहीं ले रहा था अनिकेत नाराज़ होकर खिड़की के बाहर देखने लगा।

उदयन खड़ा हुआ। बाथरूम में गया। हाथ-मुँह धोने के लिए पानी लिया पानी का स्पर्श....ज्ञान तन्तुओं की झन्न-झनाहट...

उसने मुट्ठी बाँधी और नाखूनों में झलकते खून को देखा। कुछ समझ में नही आया। उसने हाथ मोड़कर मांस-पेशी देखी। कुछ समझ में नही आया।

डॉक्टरों ने कहा था यह खून ही अस्वस्थता का कारण है। किन्तु उसे देखा नही जा सकता। इसका रंग कैसा होगा? नये कपड़े पहनकर वह बाल सँवारने लगा। दाढ़ी बढ़ी हुई थी। इन बालों पर बीमारी का असर नही होता। ये तो बढ़ते ही रहते हैं...किन्तु यह खून...बाहर देखने को मिले तो कैसा दिखाई दे? इसका रंग, इसका प्रवाह, इसकी उष्णता...।

"वेरी गुड।" उदयन को पैंन्ट और बुश्शर्ट में सज्ज देखकर अनिकेत बोला—"मैं भी तैयार हो लूँ। सामान तैयार कर दिया है, कपड़े बदल आऊँ।"

वह बाथरूम में पहुँचा। उदयन खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। उसकी दृष्टि एक ब्लेड पर पड़ी। वह पलग पर जाकर लेट गया। खिड़की के पास ही रखी जिल्दवाली एक भारी-भरकम पुस्तक उठायी। उसे विस्तर पर रखा। उसपर ब्लेड खडी की और फिर उसे दाहिने हाथ से पकड़े रहा....। बायाँ हाथ ऊपर उठाया। और मसल्म चढाने का प्रयत्न किया। फिर हाथ को ब्लेड पर रखा। करवट ली। शरीर का वजन ब्लेड पर पड़ा। ब्लेड आधे से अधिक उसके बायें हाथ की नस में घुस गयी। दाँत मीचकर उसने चीख को रोके रखी। मुँह खुल गया पर कोई आवाज़ न हुई। पैताने पड़े शाल को उसने हाथ पर डाला। मुँह ढँक लिया।

- अनिकेत कपड़े बदलते ही बाथरूम के बाहर आया। बाल सँवार लिये।

"क्यो वापस सो गया?"

उदयन कुछ बोला नहीं।

अनिकेत ने शाल खींची।

"यह क्या?"

चादर भीग गयी थी।

"इतना सारा खून!" उसे लगा कि चक्कर आ जायेंगे।

ब्लेड हाथ में घुस गयी थी। अनिकेत ने पकड़कर एक झटके से खीच डाली। उसके साथ खून उछल आया। वेदना से उदयन की चीख निकल गयी।

अनिकेत हतबुद्धि हो गया। क्या करे? कुछ सूझता नही था।

उसने एक पर एक दो रूमाल बाँध दिये। खून का टपकना इसके बावजूद भी बन्द नही हुआ। बाँध के टूटने के बाद प्रवाह को वश में करना अत्यन्त

"यह तूने क्या किया ?"

"मुझे अपने खून का रंग देखना था। इस प्रवाह में कोई रोग तैरता दिखाई दे तो उसे पहचान लेना चाहता था। मुझे बार-बार लग रहा था कि अन्दर जैसे सब कुछ जम गया है। पर वाह, कल्पना से अधिक ही इसका प्रवाह है। वह रहा है तो क्या ? बेकार है। तूने रूमाल क्यों बाँध दिये ? बह जाने दे। इसे बचाने से कोई लाभ नहीं। मैं जानता हूँ कि यह बेकार है।"

"बीमारी में भी तू ऐसा साहस कर बैठा ?"

अनिकेत ने एक सफ़ेद नेपकिन ढूँढ़कर उदयन के घाव पर बाँध दिया। फिर भागा-भागा नीचे गया। टैक्सी रास्ते पर खड़ी रख उदयन को लिवा लाने ऊपर दौड़ा। तीन-तीन चार-चार सीढ़ियाँ एक साथ चढ़ता गया। लिफ़्ट का बटन दबाया।

"उदयन !"

उदयन पट्टी ढीली करने का प्रयास कर रहा था। किन्तु उसकी अँगुलियाँ काम नहीं कर रही थीं। ऊपर बँधा हुआ नेपकिन भी भीग गया था। खून टपक रहा था, काला पड़ता जा रहा था।

अस्पताल में दाखिल होते ही उसे खून बन्द करने का इंजेक्शन दिया गया। पट्टी बाँधी गयी। डॉक्टरों के अनुसार अभी तक पाँच से सात पौण्ड खून बह गया होगा। खून का बहना बन्द करना भी आसान नहीं था। इस विशिष्ट केश की बात अस्पताल में फैल गयी।

विजिट पर आये डॉक्टरों ने चिन्ता-जैसी कोई बात नहीं कहकर सहानुभूति बतायी।

उनका आश्वासन उदयन की अपेक्षा अनिकेत को अधिक उपयोगी रहा।

"खून देना होगा।"

क्या यह नहीं हो सकता कि उदयन का सारा खून निकालकर नया दिया जा सके ? बच्चों के मामलों में तो इस बारे में सफलता मिल गयी है, पर अन्य के बारे में चिकित्सा शास्त्र अभी पीछे है।

उदयन ने देखा कि उसके पैताने पलंग की दायीं ओर कुछ खड़ा किया जा रहा है।

ब्लड ट्रान्सफ़्यूजन सेट।

अनिकेत चाहता था कि जब उदयन को खून दिया जाये तो पहली बोतल उसके खून की हो। वह मैच करता था। किन्तु वह तो सुबह ही ब्लड-बैंक में खून जमा करा सकेगा।

रात अनिकेत ने उदयन के पास अस्पताल में ही बितायी। सुबह उदयन को चाय पिलाकर वह ब्लड-बैंक गया।

"खुशी की बात कि उदयन और मेरे खून के ग्रुप अलग नहीं....तीसरी बॉटल चढ़ायी गयी है। चौथी या पाँचवीं बॉटल मेरे खून की होगी....। अपने स्वास्थ्य की इससे बड़ी क्या सार्थकता हो सकती है कि मित्र या अन्य किसी के लिए वह उपयोगी हो सके...इसकी उपयोगिता तो एक-सी ही होती है....डब्ल्यू कलेन नामक व्यक्ति ने सन् १९४९ में एक सौ तीस बार कुल साठ लिटर खून ब्लड-बैंक में जमा कराया था। एक औसत मनुष्य के शरीर में जितना होता है उससे बारह गुना रक्त उन्होंने एक ही वर्ष में दान में दिया था....छोटे-छोटे आदमी भी कितने बड़े होते हैं! किसी का रक्त किसी अनजान आदमी की जिन्दगी बचा लेने में छोटा-सा योग दे वह भी कितनी बड़ी घटना होती है! सुखी होने के लिए ईश्वर ने कितने अवसर प्रदान किये हैं! उस दिन मुझे कितना आनन्द हुआ था! चार वर्ष हुए। रक्तदान का वह दूसरा प्रसंग था। मैंने चार सौ पचास सी. सी. रक्तदान किया था। ब्लड-बैंक के इंचार्ज डॉक्टर ने कहा था कि चार सौ पचास सी. सी. लेने में हरज तो नहीं, किन्तु हम यहाँ साढ़े तीन सौ सी. सी. से अधिक नहीं लेते...। मैंने आग्रह करके साढ़े चार सौ सी. सी. रक्त दिया था। जो विद्यार्थी दुर्घटना-ग्रस्त हुआ था उसकी माताजी आभार मानने के लिए आयी थीं। इतनी छोटी-सी बात में भी लोग कितनी कृतज्ञता का अनुभव करते हैं!"

आज उसने इंचार्ज डॉक्टर से पाँच सौ चालीस सी. सी. लेने की प्रार्थना की है। डॉक्टर का कहना है—"इतना तो अधिक से अधिक लिया जा सकता है। उन्होंने इतना कभी नहीं लिया और दान में कोई अधिक देता भी नहीं। चार वर्ष पूर्व के रेकार्ड के अनुसार एक प्रोफेसर ने अपने विद्यार्थी के लिए साढ़े चार सौ सी. सी. दिया था। रक्तदान में इससे आगे कोई बढ़ा नहीं। हाँ, बेचनेवाले तो अधिक दे जाते हैं और उनके पास से तो हम भी क्यों पाँच सौ सी. सी. से कम लें?"

अनिकेत को हुआ कि पाँच सौ चालीस से भी थोड़ा अधिक देकर वह विक्रम स्थापित कर सकेगा। किन्तु विक्रम स्थापित करने के लिए तो वह आया नहीं। एक मित्र के लिए आया है। फिर विक्रम स्थापित करना तो छिछले अहं के सन्तोष का साधन है। यह सब तो भूल जाना चाहिए। घटनाएँ भुला दी जायें ...उनकी फलश्रुति के रूप में केवल आनन्द ही शेष रहे....लगता है कि उदयन बच जायेगा।

खून दिया जा रहा था तब उदयन की दृष्टि बार-बार ब्लड ट्रान्सफ्यूजन सेट

की उलटी लटकी वोतल पर पहुँच जाती थी। यह रंग उसे कल विस्तर में फैले रंग तक ले जाता था।

खून देने की क्रिया वहुत धीमी होती है।

उदयन अकुला उठता था। अकुलाहट व्यक्त नहीं करता था। देर रात गये उसे एक क्रूर सनक आयी—"पैर लम्वे कर जोर से लात मारकर औंधी लटकी वोतल को फोड़कर भाग जाऊँ। अनिकेत को जैसे ही नींद का झोंका आये कि तुरन्त मैं निकल भागूँ। भागते-भागते घुस जाऊँ पारसियों के टॉवर ऑफ़ सायलेन्स में। ढूँढ़नेवाले ढूँढ़ते रहें। और वहाँ के पक्षियों को प्राप्त हुआ हो एक जीवित शव....।"

परन्तु उसमें ऐसा करने की शक्ति नहीं, शायद इतना साहस भी नहीं। और यह अनिकेत? इसकी नजर वचाकर हिलना भी मुश्किल है। ज्यों-ज्यों इस आदमी को पास से देखने का अवसर मिलता है यह अधिकाधिक सुन्दर लगता है। और अमृता?...

उसके पलंग को हिलता देख अनिकेत ने पूछा :

"क्या? कोई तकलीफ़?"

"नहीं।"

"सिगरेट पीनी है?"

"तू लाया है?"

"हाँ, जला दूँ?"

"नहीं, चलेगा। इससे राहत मिलती है। लेकिन अव राहत की आवश्यकता नहीं। डॉक्टर या कोई भी आये और देखे तो हँसे—इस आदमी में इतना भी संयम नहीं?"

खून में ही इंजेक्शन मिला दिये जाते थे।

सुवह के चार वजे के क़रीव उदयन ने अनिकेत को सो जाने के लिए कहा था। "आरामकुरसी में पूरा-पूरा आराम मिलता है", कहकर वह उसी में वैठा रहा। उदयन वीच-वीच में आँखें वन्द किये रखता था ताकि अनिकेत को लगे कि वह सो रहा है। किन्तु सोनेवाले की वेहोशी से अनिकेत परिचित है।

अनिकेत के ब्लड-वैंक से लौटने के वाद लगभग साढ़े नौ वजे उदयन को सर्दी महसूस हुई। सर्दी दुस्सह वनती गयी। वाहर का खून अन्दर प्रवेश करने के वाद आसानी से नहीं घुलता। उसकी उष्णता कम थी।

उसकी सहनशक्ति समाप्त हो गयी। वह गठरी वनकर पड़ा रहा। उसका पूरा शरीर काँपने लगा। दो-तीन चादरें ओढ़ायी गयीं। अनिकेत सूईवाला हाथ पकड़े रहा। दो नर्सें भी मदद करने के लिए आ गयी थीं।

इंजेक्शन दिया गया।

उसे लगा मानो खून अन्दर से तपने लगा हो।

पाँचेक मिनट में राहत हो गयी। वह चित्त लेट गया। उसे श्वास चलने लगी थी। वह अब सन्तुलित हुआ।

कुछेक देर ब्लड-ट्रान्सफ्यूज़न सेट के सामने ताकता रहा। बोतल के लटकते मुँह के साथ जुड़ी ट्यूब पर उसने दृष्टि टिकायी। ट्यूब के बीच सफ़ेद पारदर्शी भाग था। उसमें ऊपर से उतरा खून टपक रहा था।

उसके टपकने की आवाज नहीं होती थी। मात्र उसकी बूँदें दिखाई देती थी। "यह खून किसका होगा? मेरे शरीर में इस समय जो प्रविष्ट कर रहा है वह किसका होगा? किसी एक आदमी का होगा या बहुत-से आदमियों का मिलाकर *एक बना हुआ होगा? कैसे होंगे इन आदमियों के चेहरे? कैसे होंगे इन आदमियों* के विचार? क्या इनमें कोई ऐसा नहीं हो सकता कि जिसे मैंने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में कभी मूर्ख कहा हो? सम्भवतः कोई ऐसा भी हो जिसका मैंने तिरस्कार किया हो। और आज उसकी भलाई से जिन्दा रहकर मैं उससे पराजित हो रहा हूँ। यह पराजय है या प्रतीति? मैं अकेला हूँ अब यह किस आधार पर कहा जा सकता है? एक आदमी को जीना ही हो तो कितनों का अवलम्बन स्वीकारना पड़ता है?

ये चेहरे! अपनी सजीव सम्पत्ति का दान करके समष्टि में जाकर घुल जाते ये चेहरे! इन चेहरों को कल्पना के सहारे मैं आकाश में अंकित नहीं कर सकता, *उन्हें धरती पर देख सकता हूँ। किन्तु मैं उन्हें किस दृष्टि से देखता आया हूँ?*

आँखें बन्द कर पड़ा रहता हूँ तो भी इस मानवलोक का गम्भीर कोलाहल मेरे चित्त तक पहुँचता है। अनेक चेहरों की सुर्खी एक होकर मेरी आँखों को अरुणाई से आंजना चाहती है। इन चेहरों की आँखें भिन्न-भिन्न लगती हैं, व्यावर्तक लगती हैं....यह जो टपकता दिखाई देता है इस खून में—इसके एक बिन्दु में कितने लोगों के रक्त के अणुओं का गति-संचार स्थिर रहा हुआ होगा! कितनी ही हृदय-धड़कनों का असर इन शान्त हो गये कणों में होगा!

मैं अकेला हूँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। मेरा एकान्त भी ऐसा नहीं जहाँ अकेला रहा जा सके। वहाँ भी कितना कुछ बह आता है! इस सृष्टि में जो कुछ भी है, सब परस्पर जुड़ा हुआ है—ऐसा कहनेवाला अनिकेत सच्चा निकला।

अनिकेत तू सच्चा निकला। मैं अकेला नहीं। यहाँ कोई अकेला नहीं। सभी परस्पर जुड़े हैं। जैसे-जैसे मैं विचार करता जाता हूँ वैसे-वैसे यह वस्तु नये अर्थ देती जाती है और ये सब अर्थ अस्तित्वाचक हैं। और अनिकेत, ईश्वर हो तो यह

पूरा प्रश्न निर्मल हो जाता है। मैं विचार करूँगा, नहीं केवल विचार नहीं, अपनी संवित्ति को झकझोरूँगा, मेरे समग्र के किसी अंश को भी प्रतीति हो कि ईश्वर है तो...।"

अकेलेपन का भार हलका होने पर उदयन सो गया।

अनिकेत सेलाइन सेट की ओर देख रहा था। रवड़ की ट्यूब के वीच के पारदर्शी भाग में टपकता प्रवाही वेग पकड़ रहा था। उसने खड़े होकर ट्यूब का स्क्रू कसा, बूँदों का प्रवाह नियमित किया। इतने आसान काम के लिए उसने नर्स को वुलाने की आवश्यकता नहीं समझी।

शाम का समय है।

होटल में फ़ोन करके उसने अपने पुराने नौकर को वुला लिया है। वार-वार वाहर जाना पड़ता है। एक आदमी तो यहाँ रहना ही चाहिए।

अमृता आध-पौन घण्टे में आयेगी।

वह ब्लड-बैंक में था तव अमृता उदयन के कमरे में आयी थी। कल विजिट पर आये डॉक्टरों के नाम सुनकर वह इस केस की गम्भीरता समझ गयी थी। तीन वजे मालावार हिल गयी और वहाँ से पाँच वजे लौटी। आज फिर सुवह गयी। कमरे का ताला नहीं लगा था। उसने पास-पड़ोस में पूंछा। अस्पताल गये होंगे ऐसा अनुमान है—उत्तर मिला। कमरा वन्द कर चावी लेकर वह अस्पताल गयी। उसे देखकर उदयन ने आँखें वन्द कर ली थीं। डॉक्टरों से मिलकर कल की घटना और रोग के उपचार के वारे में जाना। अनिकेत के पीछे-पीछे वह भी रक्तदान के लिए पहुँची थी। उसने कहा था—जितना ले सकें उतना ले लें। डॉक्टर ने तीन सौ सी. सी. खून लिया था। अमृता स्वस्थ थी।

वहाँ से वह स्पेशल कमरे के विभाग की ओर जा रही थी। तव एक खम्भे को पकड़कर वह खड़ी रह गयी थी। शरीर में कोई अशक्ति न थी। परन्तु उसे अनुभव हो रहा था जैसे उसकी मनोभूमि पर उदयन की चिता वनायी जा रही है। वह वन गयी और अचानक भभक भी उठी। आँखों के आगे कहीं अँधेरा न छा जाये, इसलिए वह रास्ते से एक ओर खिसककर खम्भे के सहारे खड़ी रह गयी थी।

वहाँ से चलते ही वीता हुआ काल उसके नजदीक आने लगा था। एक वाक्य उसे वार-वार सुनाई देने लगा :—

"अमृता, उदयन की भ्रमण-गति का 'न्यूक्लियस' कौन-सा है, जानती हो ?

सोचना।"

डॉक्टर ने आराम करने को कहा था। उसे लगा कि आराम ज़रूरी है। वह लौट गयी पर सो न सकी। चक्कर काटती रही। छत पर गयी और समुद्र को सुनने लगी।

वहाँ गुलाब का पौधा नहीं था। गमला भी नहीं था। पता भी नहीं लगाना चाहा।

अनिकेत से फ़ोन पर बात की। वहाँ रुक सके ऐसी तैयारी के साथ वह आयेगी।

अनिकेत इंजेक्शन लेने गया है। अभी एक बोतल खून और देना होगा। ब्लड-ट्रान्सफ़्यूज़न सेट चढ़ाया गया है।

अमृता ने कमरे में पैर रखा। दो नर्स और अनिकेत का नौकर उदयन के चारों ओर खड़े थे। उदयन का शरीर काँप रहा था। उसके मुँह से सीत्कार निकल जाती थी। कभी-कभी उसके दाँत बज उठते थे।

अमृता देख नहीं सकी। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह पीछे हटी। दीवार का सहारा ले बैठ गयी। ग्रीवा ऊपर करने का प्रयास भी किया। अभी घुटन कम नहीं हुई थी। दीवार के सहारे फिर खड़ी हुई। बाहर आयी। पूरा गलियारा खाली था, हवा नहीं लगी। वह पश्चिमी सिरे की ओर गयी। शायद बेचैनी कम हुई। सूर्य डूबने को था। सन्ध्या के गेरुए रंगों के नीचे बम्बई नगर के मकानों का रंग पुराने वृक्षों की खुरदरी छाल से मिलान पा रहा था।

उदयन को आराम हो गया था। अनिकेत के आने के थोड़ी देर बाद वह बातें करने लगा। यह अन्तिम सेट है यह जानकर उसने राहत की साँस ली। उसने अनिकेत से 'आज तो तुम्हें भोजन करना ही चाहिए' ऐसा आग्रहपूर्वक कहा। अनिकेत बाहर आया।

सामने से आती अमृता ने प्रणाम किया।

"कैसा है वह? कँपकँपी बन्द हो गयी?"

"हाँ। चलो। लौटकर अभी आते हैं। उसने मुझे आज्ञा दी है कि मुझे भोजन लेना ही होगा। तुम साथ दे सकोगी? एक बार उसके पास हो आओ। मैं यहाँ खड़ा हूँ।"

अमृता पाँचेक मिनट में वापस आयी।

कुछ बोली नहीं।

लिफ़्ट उतर रही थी। उतरनेवालों की आँखें झुकी हुई थी। कार, अस्पताल का दरवाज़ा, सड़क, सन्नाटे की गति।

"मुझे अफ़सोस है अनिकेत, तुमने मुझे बहुत कहा था किन्तु मेरी मर्यादाएँ

मेरे सामने आ गयीं।"

अनिकेत कार के दरवाज़े के काँच में देख रहा था। सामने देखने लगा।

"डेढ़-दो महीने पहले मैंने उदयन को प्रिन्सेस स्ट्रीट में देखा था। किन्तु मैं उससे मिली नहीं।"

"अब भी वहुत विलम्ब नहीं हो गया है। हालाँकि क्या निर्णय किया जाये यह तुम पर निर्भर है।"

"तुम किसी क्रूर शब्द का उच्चारण करोगे तो भी मैं सुन लूँगी।"

"मैं तुम्हारे लिए क्रूर शब्द का उपयोग नहीं कर सकता। यह मेरा अधिकार नहीं, और ऐसा करने से लाभ भी नहीं। मैं तो यह सोच रहा हूँ कि देखते-देखते ही क्या हो गया ?"

"तुम्हें आशा नहीं कि..."

"हाँ ?"

अमृता का प्रश्न सुनकर वह चौंका। उसे लगा कि वह अभी तक तन्द्रावस्था में ही बोला था। अब यह अमृता की ओर मुखातिब होकर वोला ताकि अमृता को विश्वास हो।

"ज़रूर आशा है। आशा क्या विश्वास है। मैं तो जो कुछ हो गया उसकी वात करता था।"

"हाँ, जो वीत जाता है उसी के सम्बन्ध में वात की जा सकती है। उसके वारे में वात करने में खतरा नहीं।"

"अनिकेत, मुझसे ऐसा प्रश्न करते हो ? तुम अपने को ही पूछकर इसका उत्तर प्राप्त कर लो।"

होटल में दोनों आधे घण्टे वैठे। भोजन की इच्छा न थी। हलका नाश्ता और चाय मँगायी।

"वह अपने मन की सृष्टि के वश में है। दवाएँ उसके शरीर को सँभाल लेंगी किन्तु उसका मन मेरे या उसके हाथ में नहीं। जिसके हाथ में है वह उसकी सृष्टि में आज अनुपस्थित है और इस कारण वह विक्षुब्ध है।"

अमृता ने कुरसी का सहारा लिया।

"उसकी इस मान्यता ने कि जिसके साथ उसे जीना हो वह अग्निपरीक्षा में से निकला होना चाहिए, उसे विषम स्थिति में रख दिया है। अभीष्ट से कहीं विपरीत ही परिणाम निकला।"

अमृता ने पानी का गिलास अनिकेत की ओर खिसकाया। दूसरा गिलास हाथ में लिया। होंठों के नज़दीक लाकर पिये बिना ही पकड़े रही।

"वह भावना अथवा वासना को मनुष्य के तत्त्वरूप से अलग मानता है।

तात्विक होने के लिए तटस्थ होना पड़ता है। और उसे लगा कि तुम्हारा आलम्बन है मुग्धता। मुग्धता और समझ को वह परस्पर विरोधी मानता है।"

"हाँ।"

पानी पिये बिना ही अमृता ने गिलास टेबुल पर रख दिया। आवाज हुई।

"तुम उसकी ओर आकर्षित रही तब और उसके बाद, उसके मतानुसार, मेरे बारे में अतिरिक्त भावुक बनती रही। तब भी उसने मान लिया कि तुम तृष्णा से संचालित हो। तुम्हारी संकल्पशक्ति स्वतन्त्र नहीं। मुग्धता है, तब तक स्वतन्त्रता नहीं। और वह तुम्हें स्वतन्त्र देखने को और तुम्हारे स्वतन्त्र बने रूप को प्राप्त करना चाहता था। तुम्हारी ओर उसके व्यवहार की भूमिका यह है।"

"भूमिका समझने से कुछ बना नहीं, अनिकेत! उसने जागृत करके मुझे वैफल्य का अनुभव कराया। उसने मुझे मेरी तुच्छता का भी बोध कराया।"

"तुम्हें उसका व्यवहार कुछ अरुचिकर लगा होगा। यह व्यवहार चाहे कितना ही रूखा हो किन्तु ऐसा मानने की भूल न करना कि यह उसमें रहे प्राणि-स्वभाव की प्रतिक्रिया है। यह तो उसके अस्तित्व की समग्रता की अभिव्यक्ति होगी।"

"पुरुष के पशु स्वभाव की किसी नारी को घिन नहीं हो सकती। तुमने यह नहीं? रहने दो मुझे तुम्हारे उत्तर की राह नहीं देखनी। उदयन के विरुद्ध मुझे कुछ कहना था....।"

"किसी भी मनुष्य के बारे मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु [illegible] के मुख से उदयन के बारे में ऐसा कुछ भी सुनने की मेरी इच्छा नहीं है। अब तो वह है उसी रूप मे उसे स्वीकार चुका हूं। उसे ऐसे करना चाहिए [illegible] करना चाहिए, ऐसे आग्रह रखकर आज तक मैंने उसके साथ [illegible] किया है। मुझे लगता है कि यह मेरी भूल थी। शायद तुम्हारी भी। [illegible] 'बिकमिंग'—'होना' और 'बनना' इन दो में अब मुझे [illegible] है कि [illegible] पर्याप्त है, स्वयं सम्पूर्ण है। कुछ बन बैठना है ही नहीं [illegible]। पिछले चारेक मास से प्रतिदिन मेरे सामने एक शब्द का [illegible] है : निरपेक्षता। आज यों कहने में कोई [illegible] अपने ही किसी अभाव का सूचक है। [illegible] की गवाही देता है।"

"मैं सुनूँगी, तुम बोलो। [illegible] जाता। मैं अपने प्रति पुनर्विचार [illegible]। [illegible] नहीं पड़ेगा, बोलो।"

"तो अब बोलने को कुछ [illegible] है नहीं।"

वे दोनों लौटे तब उदयन सो गया था। दोनों को एक-सा आनन्द हुआ। अनिकेत बाहर आया। दो आमने-सामने के गलियारों के बीच और स्टोररूम तथा नर्सरूम के पास रोगियों की खबर पूछने आनेवालों के लिए बैठने की व्यवस्था है। एक-दो महीनों से लेकर एक-दो वर्ष पुरानी पत्रिकाएँ पड़ी हैं। अनिकेत कई बार वहाँ बैठता है। अमृता आकर सामने बैठ गयी।

"सचमुच ही सोता है या क़दमों की आहट सुनकर सो गया है?"

"मैंने उसके ललाट पर हाथ रखा था। उसे आराम हो ऐसा लगता है।"

अमृता ने देखा : अनिकेत के दाहिने हाथ में जहाँ से खून लिया गया था, पट्टी उखड़ गयी है। उसने वहाँ से गुजरती नर्स को बुलाया। नर्स को वह भाग उभरा हुआ लगा। वह नयी पट्टी बना लायी, लगाकर चली गयी। अमृता को इससे मानो सन्तोष न हुआ हो ऐसे वह खड़ी हुई। उसने पट्टी अच्छी तरह दबायी। छूकर जानने का प्रयास किया कि सूजन है या नहीं। आंशिक सन्तोष के साथ वह अपनी जगह पर जा बैठी। मौन।

तिपाई पर पड़ी पत्रिकाओं में से एक अनिकेत ने उठायी। अब तिपाई पर सबसे ऊपर रखी पत्रिका पर अमृता की दृष्टि स्थिर हुई। कवर सुन्दर था। वह आवरण पृष्ठ था। एक शिशु की अद्‌भुत छवि थी। अमृता ने पत्रिका हाथ में ली। छवि उसके नजदीक आयी। उसे लगा जैसे हूबहू बालक है, चित्र नहीं। चित्र थ्री डाइमेन्शन का नहीं था फिर भी उसकी दृष्टि ने बालक को सभी ओर से देखा। उसकी दृष्टि उछंग बन गयी। एकाएक ऐसे लगा कि अनिकेत कुछ बोलना चाहता है, पत्रिका को गोद में रखकर उसने सामने देखा।

"प्रेम की तृप्ति की तुलना में आदमी की जिन्दगी बचाने के लिए किया हुआ त्याग कहीं अधिक बड़ी उपलब्धि है। तुम्हें क्या लगता है?"

"प्राप्ति या तृप्ति के लिए तो नहीं, किन्तु सम्बन्धों की संगति बनाये रखने के लिए वह जापान गया, उसके पूर्व मैं तैयार हो गयी थी। प्रेम का स्थान मैंने वरण को देने का निश्चय किया था। आज तो लगभग छह महीने होने आये। उसे अति त्रस्त देखकर मैंने उसे कहा था, समुद्र की साक्षी में कहा था कि मैं अब अनिश्चय में से मुक्त हो जाना चाहती हूँ। मैंने अपनी अनुकूल भाषा में उसे अपनी बात बतायी। अपने वरण की भूमिका स्पष्ट की। किन्तु परिणाम विपरीत आया। उसे मेरे शब्द शर्तहीन नहीं लगे। वह मेरी अवहेलना कर चला गया। आज लगता है कि उस दिन उससे क्षमा माँगने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ गयी होती तो कितना अच्छा होता। थोड़ी देर शून्यमनस्क खड़ी रही और अन्त में चली आयी। किन्तु दूसरे ही दिन उसके यहाँ गयी पर वह घर पर नहीं मिला। इसके बाद कभी अपनी अस्मिता को, कभी उसकी उपेक्षा को दोष देती

रही हूँ। बीच में तो एक स्थिति ऐसी आयी थी कि जब मैं तुम्हारे अथवा उदयन के स्मरण से कुछ भी अनुभव नहीं करती थी। शायद वह निर्वेद की नहीं, निराशा की स्थिति थी।"

तो अमृता उदयन को स्वीकारने के लिए तैयार हो गयी थी? खुद भी ऐसा ही चाहता रहा है....तो फिर अमृता का निर्णय जानकर आज आश्चर्य क्यों हुआ?—अनिकेत नवोदित भावनाओं का विश्लेषण करने में लग गया।

"कल तुम्हारे कहे अनुसार तीन बजे मैं गयी। दो घण्टे बैठी रही। वह बोला ही नहीं। कुछ पूछूँ तो इस तरह देखता रहे कि मानो बहरा हो। मैं उसके पास जाकर बैठी। जड़वत् पड़ा रहा। मैं उसके पास हूँ या दूर हूँ, उसके सामने देख रही हूँ या दूर देख रही हूँ, खड़ी हूँ या रूम में चक्कर काट रही हूँ। इस सबसे मानो उसे कोई सरोकार ही नहीं था। मेरी उपस्थिति की ओर उसने लक्ष्य ही नहीं किया। जैसे कि मैं नहीं हूँ यही उसके लिए वास्तविकता हो, ऐसे वह पड़ा रहा।"

एक लम्बी साँस लेकर, अपनी रिस्टवाच की चेन उसने खींचकर छोड़ दी। एक चूड़ी चेन पर से आगे लाती हुई बोली:

"पाँच बजने को आये। मैं टेबुल की दराज में से उसके लेखों की फ़ाइल बाहर निकालकर पन्ने उलटने लगी। मुझे आशा थी कि वह कुछ कहेगा। उसने कुछ न कहा। मैंने उसके सामने देखा। वह मेरी ओर ही देख रहा था। उसकी दृष्टि में मुझे एकदम खालीपन लगा। उसमें शताब्दियों का सन्नाटा स्थिर हुआ लगता था। मैं भी उसके सामने ही देखती रही। उसने आँखें बन्द नहीं कीं। मैं सह न सकी। मेरी आँखों की कोरें भीग गयीं। उसने करवट बदली। दीवार की ओर देखकर आवाज़ में उपेक्षा का व्यंग्य उभारते हुए बोला:

"मेरी तबीयत के बारे में जान लिया हो तो अब तू जा। इसके लिए दो घण्टों का समय कम नहीं होता है। मेरे आभार व्यक्त करने की प्रतीक्षा कर रही हो तो ले, आभार भी मान लेता हूँ। अनिकेत की राह देखती हो तो वह भी आता ही होगा। रास्ते में मिल जायेगा। यहाँ मेरी उपस्थिति में शायद तू उसके साथ उन्मुक्त होकर बात न कर पाये। अनिकेत अच्छा आदमी है। वह मेरा मित्र है इसलिए मैं उसकी प्रशंसा नहीं करता। सचमुच तेरी पसन्द अभिनन्दनीय है। मैं तो अब खोया हुआ आदमी हूँ।"

मैंने कहा कि खोये हुए को ही ढूंढने के लिए निकलना पड़ता है। मैंने वरण कर लिया है और मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा वरण ग़लत हो। तूने नाम बोलने में ग़लती की है।

हँसने का प्रयत्न करते हुए वह बोला:

"देख, कहीं ऐसी उच्छृंखलता न कर बैठना। सौभाग्यतिलक करने से पहले ही विधवा बन बैठेगी। तुझे मालूम नहीं कि आज मैं कितना खुश हूँ। पूर्णाहुति पर आनेवाला भी पूरा प्रसंग जान जाता है। जो तू नहीं जानती वह कथा तुझे अनिकेत कहेगा। मैं तो इतना ही कहूँगा कि मैं आज किस लिए खुश हूँ—अनिकेत का कन्धा मिलेगा इसलिए श्मशान में भी मैं शान से जाऊँगा। मृत्यु के समय अपने को समझनेवाला और चाहनेवाला एक आदमी जब अपने पूरे अस्तित्व के साथ अपने पास आकर खड़ा हो तो इससे विशेष क्या चाहिए ? तूने देखा न ? तेरे बिना मैं आज तक जी सका और अब तेरे बिना मर भी सकूँगा। मैं तेरे ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तेरे अहंकार की रक्षा करे और तू जीती है उसी तरह जीने में तेरी सहायता करे। मैं अपने ईश्वर को पहचानने के लिए अपने में मन्थन कर रहा हूँ किन्तु उसका चेहरा अभी मेरे समक्ष पूर्णरूपेण प्रकट नहीं हुआ। हाँ, तब तक मैं उसे प्रार्थना नहीं करूँगा।"

उसके पास जाकर मैंने उसके हाथ पकड़ लिये। मेरे आँसुओं से जैसे वह झुलस गया हो, हाथ खींचता हुआ बोला :

"मुझे दो रोग हुए हैं। एक लापरवाही से और दूसरा साहस से। पूरी जाँच करके बैठा हूँ। अनिकेत नाहक़ झंझट में पड़ा है।"

वह हँसने का प्रयास कर रहा था। होंठों के खिचने से उसकी बीमारी की गम्भीरता प्रकट होती थी। पाँचेक मिनट तक चुप रहने के बाद वह फिर से हँसा। लगा कि वह रो पड़ेगा ! किन्तु मैंने उसे रोते नहीं देखा। कहने लगा :

"डॉक्टर भी कितने भोले होते हैं ! मेरी उपस्थिति में उन्होंने कोई चर्चा नहीं की। मैं हिरोशिमा में जो देख-दाख आया हूँ इसका उन्हें पता नहीं। इस रोग में तो मैं उन्हें मार्गदर्शन दे सकता हूँ। वे लोग तो आत्मविश्वास का भार लेकर गये। किन्तु मुझे तुझसे कहना चाहिए। हिरोशिमा में मैं इसलिए नहीं रुका था कि मैं भी रेडियो-सक्रियता का शिकार होऊँ। मैं अपनी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के लिए ही रुका था। एक कहानी की सामग्री एकत्र करने का लोभ मन में काम कर रहा था। और विशेषकर वहाँ के उदाहरण के आधार पर आधुनिक विश्व की सिद्धियों पर व्यंग्य करके स्वयं पर आज तक हुए अन्याय का प्रतिकार करना चाहता था। फिर तो जो हुआ वह हुआ। मैं इसे पहले रोक सकता था। किन्तु तू जानती है कि मैं आलसी आदमी हूँ। फिर तो जो देखा था उसमें मन पिरोकर पड़ा रहने लगा। न हुआ पछतावा और न ही अफ़सोस। अब तू जा। वह आ पहुँचेगा तो फिर तुझे यहाँ रोक रखेगा। तू 'छाया' में रहने चली गयी ? हद है, निरी अबला ही रही। अब तू जा। मुझे एकान्त चाहिए। तू होगी तब तक मैं बोले बिना नहीं रह सकता, जा।"

मेरे दरवाजे पर पहुँचने तक वह बोलता ही रहा—जा-जा, जा। अन्त में भर्रायी आवाज में खड़खड़ हँसकर बोला—जा, जा रे जा....मैंने पीछे मुड़कर देखा तो उसके होंठो का स्मित फीका हो गया था। आँखें फटी-फटी और बिलकुल सूनी लगती थी। उसके कपाल की रेखाओं में उसकी सम्पूर्ण शारीरिक अशक्ति अंकित हो उठी थी। मेरे हटने से उसके नज़दीक फैले अवकाश में वह असहाय दिखाई दिया। मुझे लगा कि उसके निकट दौड़ जाऊँ और उठाकर गोद में ले लूँ। उसे पल्लू में ढांक लूँ। मृत्यु की छाया भी उसे दिखाई न दे इस तरह मेरे गोपित मातृत्व की ममता में उसे छुपा लूँ। किन्तु मेरा एक पैर दरवाज़े के बाहर पहुँच चुका था। फिर आऊँगी ऐसा निश्चय कर घर चली गयी...।"

"मैं ज़रा देख आऊँ कि वह सोता है या जाग गया है? अमृता!"

"मैं जितना सोचता था उससे कहो अधिक दृढ और ऊर्जस्वी निकली यह। मैं इसका पथ-प्रदर्शक बनने गया था! जो स्वयं रहस्य-निकेतन है उसे मैं उसकी उपलब्धि और अनुपलब्धि का रहस्य समझाने लगा था। रवीन्द्र बाबू ने उपलब्धि और अनुपलब्धि के विषय में आकाश और पक्षी के रूपक द्वारा उचित ही कहा है कि आकाश को पार नही किया जा सकता।"

नारी-हृदय के मर्मकोष को जाने बिना ही बहुत कुछ कहा गया है।

"वह आये तब उसे कह दूँ अमृता, तू स्वतः प्रकाशित है। मैं तुझे सलाह देकर तो अपने ही सम्भ्रम के आच्छादन को दूर कर रहा था। आज मैं अपना समग्र विश्वास तुझसे निवेदित करता हूँ।"

अमृता आयी।

परिचय के प्रारम्भ में उसके चेहरे पर दिखाई देती थी वैसी तटस्थ गरिमा देखकर अनिकेत को थोड़ा सन्तोष हुआ। हाँ, तब दोनों के बीच औपचारिकता और एक-दूसरे के सामने देखने में अतिरिक्त सजगता रहती थी। उसका स्थान विश्वासजनित सजगता ने लिया हो ऐसा लगा।

अनिकेत को जो दुष्कर लगता था वह अमृता के कारण सहज हो गया। वह सामने जा बैठी, उसके बाद रहस्य-निकेतन का दर्शन हुआ। जो सौन्दर्य काम्य लगा था, वह निगूढ ऐश्वर्य का कारण बना।

अविरत अन्तःसंघर्ष से भी निरपेक्षता दूर-सुदूर रह जाती थी। आज अमृता के प्राजल दृष्टिक्षेप में उसे सन्तर्पक निरपेक्षता का दर्शन हुआ। विनीत आँखों से वह सोचता रहा—"अब मुझे सृष्टि का माया और सत्य के रूप में विभाजन नही करना पड़ेगा। अब सुन्दर को माया रूप में नही, सत्य रूप में देखा जा सकेगा। अमृता के प्रति जागी स्पृहा में से मुक्त होने के लिए ही निरपेक्ष होने

का उद्यम किया था। अब तो समग्र को सौन्दर्य के पर्याय रूप में ही पहचाना जा सकेगा। किसी की उपेक्षा नहीं करनी पड़ेगी। अब विभाजन किये बिना समग्र को एक मानकर अखण्ड प्राप्ति का आनन्द अनुभव करूँगा।"

आँखें मूँदकर पीठ टेके वह बैठा रहा।

अमृता को लगा कि वह आराम कर रहा है। वह फ़ोन करने चली गयी। आते समय घर पर कह आयी थी, फिर भी कह देना चाहती थी कि वह रुकेगी। उदयन ठीक है।

वह वापस आयी। अभी भी अनिकेत की आँखें बन्द थीं। एक ओर बुझे चेहरे पर थकान और सन्तोष की सम्मिश्र झाँकी अंकित हो गयी थी।

वह उदयन के पास गयी। सेलाइन सेट के पास खड़ी रही। फिर उदयन के ललाट पर हाथ रखा। और फिर उसके तकिये के पास बैठ गयी।

डॉक्टर अन्तिम राउण्ड पर आये। उनके साथ की गयी बात-चीत में अमृता की आशा अधिक दृढ़ बनी। डॉक्टर के पीछे-पीछे मेट्रन आयी। उसके जाने के बाद नर्सें उसकी मज़ाक़ उड़ाने लगीं। उनकी मासूम शैतानी देखकर अमृता को सुख हुआ।

आँखें खुलीं तब अनिकेत के होंठों पर ये शब्द थिरक उठे।

"हाँ, वह बहुत दिनों के बाद सो रहा है।"

मध्यरात्रि की शान्ति है। कभी कोई नर्स को बुलाता है। कभी नर्स स्वयं ही चक्कर लगा जाती है। आते-जाते अनिकेत दिखाई पड़ता है।

"यह तुम्हारे मकान की—घर की चाबी।"

"इतने दिनों तक देख-भाल की उसके लिए आभार।"

"ऐसा कहने से तो मुझे दूना आभार मानना पड़ेगा।"

"यह सब तो ठीक है। जहाँ गयी हो वहाँ रुच गया होगा?"

"रुच जायेगा। 'छाया' मेरा घर था और आज भी है। किन्तु 'था' और 'है' के बीच का अवकाश अभी पटा नहीं है। एक ही स्थान का फिर से आश्रय लेने जाने पर जो अपना ही था, नया लगने लगा। पुराने साहचर्य से अपने को जोड़ने में देर लगी। टूटे हुए को जोड़ना पड़ता है। वह एकरूप नहीं हो सकता। बार-बार लगता है कि अकेली हूँ, हारकर लौट आयी हूँ। कभी-कभी ऐसा लगता है कि अपनी भूल अधूरी छोड़कर आयी हूँ। तब शान्ति मिलती है। ज्वार-भाटे के बीच समुद्र की स्थिति देख लेना अच्छा लगता है। गगन का नीला आकाश आँखों को आमन्त्रित करता रहता है। उसके प्रतिबिम्ब को अन्तर्तम में उतार लेती हूँ। अभी तक सागर की गहराइयों के अन्धकार में किसी सीप के हास की कल्पना नहीं की जा सकती थी। अब अपेक्षाओं का बल घट गया है और

आशा है कि कल्पनाओं के बल पर अपनी रिक्तता गगन के नीले विस्तार को सौंप दूँगी। बोलो, मेरी तैयारी कैसी है? पार उतर जाऊँगी या नहीं?"

"निःसन्देह, निःसन्देह।"

"सचमुच?"

उत्तर में अमृता को अनिकेत का स्मित प्राप्त हुआ। सँजोयी हुई अविचलता काँप उठी। दृष्टि को निस्पन्द करने में समय लगा।

"तुम घर आकर आराम करो। मेरा अनुरोध है।"

"क्यों, यहाँ रुकने का मेरा अधिकार स्वीकार नहीं?"

"अब तो अपने अधिकार भी मैंने तुझको सौंप दिये हैं। बात केवल इतनी ही है कि उदयन इस समय सो रहा है। वह जागे और तुझको देखकर कुछ बोलने लगे तो तुम्हें दुःख होगा।"

"नहीं होगा।"

"मुझे अभी-अभी विचार आया है। जब वह तुम्हारी प्रतीक्षा करता हो तब वापस न लौटने के लिए तुम आओ। तब तक मिलती रहो। मैं असहज होने पर भी थोड़ा अभिनय करता रहूँगा और अनुकूल परिस्थिति पैदा करूँगा। यदि वह एक बार प्रतीक्षा करना सीखे....।"

"किन्तु उसकी दृढ़ता तो तुम जानते ही हो। मुझे भय लगता है कि मुझे आती-जाती देखकर उसकी दृढ़ता दृढ़तर होती जायेगी। और देर हो जाने के बाद मैं आऊँ तो उसका क्या अर्थ?"

तो क्या किया जाना चाहिए? तुम ही कहो।"

"जो होना है उसे होने दो। अभिनय की बात छोड़ो। यह सब पकड़ लेने में तो वह निष्णात है। मैं सोचती हूँ कि उदयन के साथ आज तक जो अपना व्यवहार रहा है उसी भूमिका में प्रकट होने दो। सचाई से ही वह प्रभावित होगा। भला, वह मेरी प्रतीक्षा करे—मैं जानती होऊँ और वह मेरी प्रतीक्षा करे ऐसा आयोजन मेरा गौरव तो अवश्य बढ़ायेगा। परन्तु मेरे पक्ष में तो वह दम्भ ही होगा। वह प्रतीक्षा करना सीखे—यह उसके लिए इष्ट हो तो भी। अब तो मुझमें धीरज नहीं। मैं पर्युत्सुक हूँ। मैंने संकल्प कर लिया है। अपने समय को दाँव पर लगाने के लिए मैं तत्पर हूँ।"

अनिकेत खड़ा हुआ—

"मैं उपकृत हुआ, अमृता। तुम कृतार्थ होगी। दृढ़ विश्वास के साथ कहा गया तुम्हारा अन्तिम वाक्य सुनकर मुझे लगता है कि मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। मैं अब निर्विकल्प सजगता के क्षेत्र में प्रवेश करता हूँ। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकारो। जो तुम्हें शून्य रूप में दिखाई दिया हो वह अब अनन्त बनकर तुम्हें

प्राप्त हो। अपना शून्य अनन्त बने। अनन्त का अनुभव मुक्तिदायक है और यही है सच्ची स्वतन्त्रता।"

कई दिनों तक वह टेढ़ा ही देखता रहा। किन्तु उसे खयाल भी न रहा और एक दिन उपेक्षा का दुर्ग ढह गया। वह दिन अनिकेत के बाहर जाने का दिन था। शायद वह दुर्ग न था, परदा था।

उसे अहसास हुआ कि अमृता की उपेक्षा आसानी से नहीं की जा सकती। इसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। अर्थात् यह उपेक्षा स्वयंभू नहीं। अमृता के साथ व्यवहार में सजग रहना उसने छोड़ दिया।

अब अमृता नज़दीक हो तो उसे लगता था कि अमृता नज़दीक है। अमृता आनेवाली हो तो उसे याद रहता था कि अमृता आनेवाली है। अमृता अपने बारे में उदयन के साथ बातें करती रहती है। उदयन सुनता रहता है।

डॉक्टर ने छुट्टी दी उसके तीन दिन बाद अनिकेत जोधपुर के लिए रवाना हो गया। अमृता उसे विदा देने के लिए स्टेशन तक न जा सकी। उदयन जाने को तैयार होने लगा था। अमृता ने उसके मोजे उतारकर फेंक दिये थे और उसे बूट पहनने से रोका था। डॉक्टर द्वारा दी गयी हिदायतों पर पूरा अमल होना चाहिए। डॉक्टर ने सहजता से पर्याप्त समय तक अमृता के साथ चर्चा की थी। उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा था कि खून बह जाने का लाभदायक परिणाम आया। नया खून भरने से अशुद्धियों का घनत्व कम हुआ है और उपचार-इलाज को आसान बनाने में सफलता मिली।

अमृता ने इस बारे में उदयन को बताया। उसने सिगरेट का धुआँ अमृता की ओर छोड़ते हुए कहा : "इसमें तुझे आश्चर्य होता है? यही कुछ हो सकता है, दूसरा क्या हो सकता है? इतना भी नहीं समझती? जिस तरह एक मृत्यु के बाद नया जन्म होता है वैसे ही पुराना खून दूर होने पर नये शुद्ध खून ने प्रवेश किया। इतना तो डॉक्टर के कहे बिना ही समझ लेना चाहिए था।"

"किन्तु इस प्रयोग का पुनरावर्तन न करना।"

"पुनरावर्तन क्यों करूँगा? अब तो इस प्रयोग से आगे निकल जाऊँगा।"

"तुझमें ऐसी विघटनात्मक शक्ति कहाँ से आ गयी है?"

"यह पूरा युग ही विघटन का है अमृता! १९४५ के परमाणु विस्फोट बाद के जगत् में विघटन की शक्ति का ही वर्चस्व है।"

"जहाँ तक मैं जानती हूँ उसके अनुसार तो परमाणु शक्ति विघटन और संयोजन, दोनों ही कर सकती है। 'फिशन' और 'फ़्यूज़न' दोनों, ठीक है न?"

"संयोजन अथवा सायुज्य बाद का क्रम है। उसके पहले विघटन ं
सब कुछ समाप्त हो जाये तो आश्चर्य नहीं।"

"अनिकेत के कहे अनुसार तो तुझमें परिवर्तन आया है। जबकि मैं ं
हूँ कि....।"

"मुझमें परिवर्तन आया है यह जानने के बाद तू मुझपर मेहरबानी
आयी है ?"

अमृता ने उदयन का कान पकड़कर थोड़ा ऐंठा। और लगा जैसे उसे
ही वेदना हुई। उसने देखा कि कान की लौ में एक छेद है जो लगभग
चुका है।

"यह क्या उदयन ?"

"वहाँ भिलोड़ा की ओर छोटे बच्चों के कान बींधे जाते हैं। भील क
मुरकियाँ और बालियाँ पहनते हैं। मैं भी कान में ऐसा कुछ पहनना चाहता
किन्तु छेदे बग़ैर कैसे पहनूँ ? मैंने ज़िद की। पिताजी ने तो डरा-धमका
किन्तु माँ मान गयी। कान बिंध गये। तीन-चार वर्ष तक मैंने उनमें सो
लौंग पहने। एक दिन भिलोड़ा से ईशान की ओर दो-एक मील दूर मित्रों
टुकड़ी के साथ मैं नहाने गया। वहाँ खेलते-खेलते मार-पीट हो गयी। उसमे
लौंग टूट गयी। सभी एक साथ हँस पड़े। मैं व्यग्र हो उठा। दूसरे क
बची हुई लौंग को भी निकालकर फेंक दिया। सभी अवाक्! और मैं सीना
घर चला आया।"

काफ़ी देर तक अमृता कुछ बोली नहीं। उदयन ने देखा कि वह पूरी
उपस्थित नहीं है, डूबी हुई लगती है।

"अमृता !"

"हूँ !" वह चौंक उठी। लगा मानो बोलने में अचकचा रही हो।

"क्यों कुछ बोली नहीं ?"

"क्या बोलूँ ?"

"तू कहने-जैसा कुछ सोच रही है ऐसा लगता है।"

"अनिकेत ने कहा था कि उदयन अगले सप्ताह काम पर जाना चाहता
तभी तक की छुट्टियाँ ली हैं न तूने ?"

"हाँ, क्यों ?"

"तू अभी लम्बी छुट्टी ले ले अथवा नौकरी छोड़ दे तो क्या हरज है ?"

"छुट्टी लेकर क्या करूँ ? पड़ा रहूँ ? मुझे लगता रहे कि मैं बीमार
अमृता, आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं स्वस्थ हो गया हूँ। थोड़े दिनों
कुछ लिखना चाहता हूँ। फिर प्रवास पर जाऊँगा। तू नौकरी छोड़ देने को य

है ? यह नौकरी छोड़ दूँ तो अब मुझे कौन रखे ? मुझ-जैसे कुख्यात आदमी की सेवाओं की किसे आवश्यकता हो सकती है ?"

"मैं नौकरी करती ही हूँ। तेरा खर्च भी निकल जायेगा।"

"तू मुझे क्या समझती है ?"

"सुरक्षित रखने योग्य।"

"उदयन सुरक्षित रहना नहीं जानता। और किसी की मेहरबानी तो उसे नहीं ही खपेगी। वह किसी का आश्रित तो कदापि नहीं बन सकता। यह तो दया हुई। और आर्थिक दया ? ऐसी निकृष्टतम वस्तु मैं स्वीकारूँ ?"

"तेरा स्वास्थ्य पूर्ववत् हो जाये उसके बाद मैं नौकरी छोड़ दूँगी। तब तेरे पास जमा हुई मेरी मेहरबानी को चक्रवृद्धि व्याज सहित चुका देना।"

"ऐसे क़ौल-क़रार मुझे अनुकूल नहीं आते।"

शान्ति। शान्ति अथवा उदास नीरवता।

"तुझे अब जाना चाहिए। देर हो जायेगी।"

"नौकर आ जाये तब जाऊँ।"

"तू उसे नौकर मत कह; अनिकेत से नहीं पूछा कि उसका नाम क्या है ?"

"वह आ जायेगा तब उसी से पूछ लूँगी।"

"अनिकेत कभी-कभी उसे मैनेजर कहता था।"

"अच्छा !"

अमृता हँस पड़ी।

"लम्बे अर्से से मैंने कोई पिक्चर नहीं देखी। तू कम्पनी नहीं देगा उदयन ?"

"सीधी तरह कह न ! तू मुझे कम्पनी देना चाहती है। मुझे पिक्चर दिखा कर मेरा मनोरंजन करना चाहती है।"

"तू कहे वही सही। बता कौन-सा शो अनुकूल रहेगा ?"

"कोई भी। भीड़ कम रहती हो वही शो अधिक ठीक रहेगा। हाँ, को रोने-धोनेवाली फ़िल्म पसन्द मत करना। बनावटी भावुकता से अब उ जाता हूँ।"

अमृता ने तीन-चार फ़िल्मों के नाम दिये। पात्रों के स्थान पर कार्टून चि पर आधारित एक अँगरेजी चित्र देखना उदयन ने पसन्द किया।

"किन्तु यह फ़िल्म बच्चों के लिए तो नहीं होगी ?"

"ऐसा हो तो और भी अच्छा। जवानी को घर छोड़कर जाया जा सक है। अमृता, सच कहूँ ? हम लोगों को बचपन से प्रारम्भ कर नये सिरे से ज शुरू करना है। जो बीत जाता है उसे सुधारा नहीं जा सकता। नये अ लिखने के लिए पूरी स्लेट पोंछनी पड़ती है। मानव-जाति के लिए कुछ र

बाद ऐसा ही करना होगा।"

"जो मिटाया न जा सके उसे रँगा जा सकेगा। अच्छा मैं चलूँ?"

"चौकीदार आ गया है। ठीक है, तू जा। तूने मेरी बहुत सेवा की। आभार मानता हूँ। अच्छा!"

"बस, रहने दे अब।"

"क्यों, नही स्वीकारेगी?"

"नहीं।"

"तो तू जल्दी-जल्दी बीमार हो, मैं तेरी सेवा कर लूँ।"

"जैसी तेरी शुभकामनाएँ। अच्छा, शुभ-रात्रि!"

"............रात्रि!"

अमृता हर रोज देर तक बैठती रही। मानो उठने की इच्छा ही न हो। उदयन आग्रह करके छोड़ आता। इस तरह चलता रहता और सप्ताह बीत जाता। उदयन के कहने पर दोनों आज समुद्र किनारे गये। मरीन ड्राइव के फ़ुटपाथ पर वे चल रहे थे। मर्यादा में बँधा हुआ समुद्र शान्त था। धीरे-धीरे, दूर-दूर और भीतर ही भीतर उसकी आवाज मात्र आ रही थी।

"मैं कल पूना जा रहा हूँ।"

अमृता थम जाती है। उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहती है:

"नही, मैं तुझे नही जाने दूँगी।"

"तुझे सोती छोड़कर चला जाऊँगा। अलबत्ता तू, अपने घर सोती होगी, मैं अपने घर जागता होऊँगा।"

"तुझे नही जाना है।"

"तू जानती है कि कोई जाता हो और उसे इस तरह मना करना अपशकुन कहलाता है।"

"भला तू कब से शकुन-अपशकुन माननेवाला बन बैठा है?"

"किन्तु सुन। नौकरी का सवाल है। और मैंने स्वेच्छा से वहाँ जाना स्वीकारा है। अब एक दिन में मेरी जगह दूसरे किसी को भेजना कैसे सम्भव हो सकता है? मेरी रुचि का सेमिनार है। पत्रकारों का सेमिनार है। मेरी संस्था के प्रतिनिधि को इसमें जाना ही चाहिए। पूना में चारेक दिन ठहरूँगा और वहाँ से मैसूर और आठ-दस दिनों में वापस। समझी?"

"मैंने मैसूर नही देखा, तेरे साथ चलना है।"

"झूठी! वृन्दावन बग़ीचे की तसवीरें कौन खींच लाया था?"

"ओह, मैं भूल गयी थी। फिर भी मुझे तो चलना ही है।"

"तू उस सेमिनार की चर्चा में बोर हो जायेगी। तुझे ठीक नही रहेगा।"

"ओ उदयन ! प्लीज़, ले चल न !"

"तुझे मुझपर विश्वास नहीं ? मैं सच कहता हूँ कि तुझे मजा नहीं आयेगा। तू हमारे पत्रकार मित्रों का स्तर देख कर दुखी-दुखी हो जायेगी। एक आदर्श केशकर्तन कलाकेन्द्र में होती चर्चाओं के स्तर से उनकी चर्चा का स्तर थोड़ा ही ऊँचा होता है। इसके अलावा एक अन्य कारण से भी तू न आये यह हमारे हित में है। तेरे वहाँ होने से शायद सेमिनार की चर्चाएँ उतनी व्यवस्थित भी न चल सकेंगी। तुझ-जैसे श्रोता को देखकर भले ही वक्ताओं को अधिक बोलने का प्रोत्साहन मिले। लेकिन शेष उन्हें न सुनकर तुझे ही देखते रहेंगे।"

"क्यों, पत्रकारों में स्त्रियाँ नहीं होतीं ?"

"होती हैं। उनके दर्शन-मात्र से ही संयम-निग्रह की शक्ति बढ़ने लगती है।"

अमृता हँस पड़ी।

उसकी दन्तपंक्ति की चमक और लालिमायुक्त अधरों की तीव्र मोहकता उदयन को ललचा नहीं पायी। उसने आखिर अनुमति नहीं दी।

दवा और इंजेक्शन के लिए अमृता ने बार-बार कहा। उसने वचन दिया कि वह नियमित रहेगा। पता भी देता गया कि अमृता को विश्वास न रहे तो ट्रंककॉल द्वारा हिदायत भेज सके। दसवें दिन लौट आने को उसने कहा था।

वह सातवें दिन वापस आ गया।

अनिकेत का पत्र आया पड़ा था।

नौकर बाहर जाने को तैयार हो ऐसा लगा।

"कहाँ चले मैनेजर ?"

"अमृता-दी से कहने।"

"मैं वापस आ गया होऊँ और उसे पता न चले ऐसा हो सकता है ? जाओ दोस्त, सिगरेट ले आओ। हम आमने-सामने बैठकर पिएँ।"

मैनेजर को दूसरे दिन उदयन की उक्ति का पता चला। दोपहर में जब उदयन सो रहा था तब वह टैक्सी लेकर अमृता से कहने गया। अमृता छुट्टी लेकर आ पहुँची।

उलाहना देने के लिए वह तमतमा रही थी। किन्तु उसे सोता देख वह ठण्डी हो गयी। उसकी आँखों के खुलने तक वह खामोश रही।

"तुझे जानकर आनन्द होगा कि मैंने त्यागपत्र दे दिया है।

"सचमुच ! बहुत अच्छा किया।"

"डॉक्टरों का कहना है कि............"

"कि ?"

मुझे आराम करना चाहिए। शुष्क हवावाले किसी स्थल पर रहने जाना

ए। इसके अलावा वह मेरा गाँव भी है। मैं वहाँ जाऊँगा।"
"डॉक्टर ने कुछ और तो नहीं कहा न ?"
"कौन से डॉक्टर ने ? हाँ, हाँ और कुछ नही कहा। और कहा भी हो तो याद नहीं। मुझे भी लगता है कि अब विश्राम करना ही होगा।"
अमृता ने मान लिया कि उदयन ने 'आराम' के बदले 'विश्राम' शब्द का से उपयोग किया है।
"तो कब जाना है ? रिजर्वेशन-टिकट ले आऊँ ?"
"जल्दी नहीं, मैं स्टेशन की ओर जाऊँगा तब लेता आऊँगा।"
"तू थका हुआ लगता है, अशक्त लगता है।"
"यह तेरा भ्रम है। जो दिखाई दे वह यथार्थ हो ऐसा नहो। अभी तो तेरा दबा सकूँ इतना पौरुष मुझमें है। परन्तु मैं अशक्त नही—यह साबित के लिए ऐसा करने की आवश्यकता मुझे नही लगती।"
उदयन के कथन का तात्पर्य स्पष्ट होने पर अमृता के हृदय में ज्वालाएँ क उठी।
"तो क्या यह मुझे दूर रखना चाहता है ? मुझे स्वीकार करने में यह मेरा दा समझता है ? मुझे अलग रखने पर ही तुला है ? किन्तु इसे अकेला ूँगी तब न ? देखती हूँ मुझसे कैसे छिटकता है ?"
वह स्टेशन पहुँची। गुजरात मेल में कल का प्रथम श्रेणी का आरक्षण ले ा।
घर फ़ोन पर बात की। फिर पुरातत्त्व-मन्दिर जाकर एक मास के अवकाश लिए आवेदन किया। स्वीकृत न होने की स्थिति मे अपने त्यागपत्र का विनम्र दन भी। बैंक भी हो आयी। उसकी बात न मानकर अनिकेत ने हॉस्पिटल पूरा बिल चुका दिया था। यह उसे रुचा नही था। किन्तु अब उदयन के अनिकेत के खर्च करने का प्रश्न ही नही उठता।
अब वह पूरे समय उदयन के साथ रहेगी। अनिकेत के नौकर को जोधपुर के लिए कह दिया गया।
घर गयी। सबसे मिलना नहीं हो सका। कपड़े तथा और भी आवश्यक ान ले आयी।
उदयन तैयार नहीं होता था। उसके अनुसार दोनों को वहाँ जाने की वश्यकता ही क्या ? और फिर वह जगह किसी बम्बईवासी को अच्छी लगे ी भी नही है।
अमृता के बहुत अनुनय करने पर वह बोला, "या तो तू जा। या मैं ऊँ। तू मेरे साथ शोभा नही देती।"

अमृता ने उसे मूढ़ कहा। हैंगर पर से कपड़े लाकर उसपर फेंके। मोजे कर उसके पैरों पर चढ़ा दिये। बूट पहनाकर ज़ोर से तसमें बाँध दिये। उसका थ पकड़कर दरवाज़े के बाहर ले गयी। ताला लगाया और चाबी अपने पर्स डाल ली।

"मेरे सामने अब तेरी कुछ नहीं चलेगी। समझा! तेरे समय के सूत्र अब रे पास हैं।"

अमृता ने जल्दी न की होती तो गाड़ी चली जाती।

बम्बई पीछे छूटता गया। शान्ताक्रुज स्टेशन का बोर्ड अमृता ने खिड़की के ाँच में से पढ़ लिया। गाड़ी गति पकड़ रही थी।

प्रकाश की एक लकीर उसे आकाश में दिखाई दी।

मोड़ के आने पर उसे दिखाई देता था कि गाड़ी के इंजन की लाइट भाले ी तरह अँधेरे को तेज़ रफ़्तार से वेधकर आगे बढ़ रही है।

उदयन कुछ पढ़ने लग गया।

अमृता ने देखा कि उदयन केवल पुस्तक देख नहीं रहा, पढ़ भी रहा है। ह पढ़ते-पढ़ते सो गया। जब जागा तो गोलियाँ और पानी देकर अमृता ने ोने की पूर्व तैयारी की।

अहमदाबाद में खास रुकना नहीं हुआ।

शामलाजी से बस बदलनी थी। इस बीच पर्याप्त समय था। ग्यारह बजे े। गरमी थी। शरद् ऋतु की धूप से उदयन को सिर-दर्द होता है।

बस में से उतरे हुए यात्री मन्दिर देखने गये। दूसरी बस में सामान रख देया गया। उदयन भी मन्दिर के सामने की पहाड़ी की ओर चल दिया। उसने अमृता से मन्दिर के दर्शन कर आने को कहा। अमृता गदाधारी कृष्ण के मन्दिर के बारे में जानती थी। अतः उसने उदयन से भी साथ चलने का आग्रह किया।

उदयन का उत्तर था कि उसे किसी भी गदाधारी में रुचि नहीं। सभी गदाएँ अब टूट जानी चाहिए।

अमृता अकेली गयी।

उदयन थोड़ी ऊँचाईवाले भाग पर गया। पलास वृक्ष के तने से लगकर एक बड़ा-सा पत्थर पड़ा था। उदयन उसपर जा बैठ तने से टिक गया। पर, वृक्ष पर बैठा एक नाजुक-सा पक्षी उड़ गया।

अमृता क़रीब पन्द्रह मिनट में लौट आयी। मन्दिर कैसा लगा? क्या-क्या देखा? भगवान् को प्रणाम किया कि नहीं? जल्दी क्यों आ गयी? ऐसा-वैसा कोई प्रश्न उदयन ने नहीं पूछा।

अमृता ने भी न बोलकर ही जो कुछ कहना था कहा। वह पास ही खड़ी

थी। ऊपर मध्याह्न का सूर्य तप रहा था। उसके सामने देखना सम्भव नहीं था। इसलिए देखनेवाले ने अमृता की छाया के सामने देखा। यह छाया धरती में समा जाने के लिए जूझ रही थी। इसे खींचकर अपने निकट लाना सम्भव नहीं। अमृता के बैठने से दो छायाओं के बीच का अवकाश संकुचित हो गया। यह अवकाश दो इंच हो या दो सूत किन्तु विलगाव को बनाये रखने में समर्थ है।

"अमृता, यह सर्वविदित बात है कि..."

"अचकचा क्यों रहे हो ? बोलो न !"

"आगे क्या बोलूँ यह सूझा नहीं। शायद मैं अपने से ही कह रहा था। मुँह से तेरा नाम निकल गया। इससे मेरा स्वर टूट गया।"

"चलिए अब रवाना होने का समय हो गया।"

"मुझे छोड़कर यह चल दे और पथ भूलकर मैं यहीं भटकता रहूँ तो कितना अच्छा रहे।"

"चल, ड्राइवर इस ओर देखकर हार्न बजा रहा है।"

उदयन ने बस में बैठकर सिगरेट जला ली। अमृता ने बस में लिखी सूचना की ओर ध्यान खींचा। उसने जवाब दिया कि यह उसकी जन्मभूमि है। यहाँ के नियम वह जानता है, न कि टीन का यह टुकड़ा।"

"देख, यह आदिवासी कन्याएँ जा रही हैं।"

"ये तो अपने-जैसी हैं।"

"अपने-जैसी नहीं, तेरे-जैसी। हालाँकि ऐसा भी कैसे कहा जा सकता है ? मैं कहाँ उन्हें पहचानती हूँ ?"

बाड़हीन खेत, टेकरियों के बीच पथरीला मैदान, साग और पलास वृक्षों से दूर-दूर तक जुड़ी सन्तुष्ट धरती, पत्तों पर पोषण प्राप्त करने की तृप्ति, हवा की अन्तःस्पर्शी उमंग...अमृता को लगा कि यह पूरा का पूरा प्रदेश उसे स्वीकार रहा है।

"उदयन, अपना देश कितना हरा-भरा है।"

"अनिकेत जहाँ गया है वहाँ जाकर देख आ, फिर यह प्रतिपादित करना।"

टीले को चीरकर सड़क बनायी गयी हो ऐसा लगा। दोनों ओर चट्टानों के खुरदरे अवयवों को देखकर उसकी दृष्टि आकाश की ओर निकल भागने का रास्ता ढूँढने लगी। चट्टानों की ऊँचाई रास्ते पर झुक रही थी। उसने दृष्टि नीची कर ली।

फिर से वनराजि, पेड़ों की छाया में जुगाली करते बैल। चिलम पीते किसान और कहीं-कहीं चरती हुई भैंसें।

"यह है हमारी हाथमती नदी।"

"कहाँ ?"

"देखती नहीं, यह बस किस पर होकर गुज़र रही है ?"

अमृता ने देखा कि पुल है। किन्तु नीचे नदी नहीं है, छोटे-छोटे पत्थरों और कंकड़ों से आकीर्ण विस्तार है।

"पानी तो है ही नहीं ? बरसात के दिनों में भी इसमें पानी नहीं टिकता ?"

"पानी है, मैं देख सकता हूँ कि पानी है।"

"तू व्यंग्य में बोल रहा है ?"

"हाँ, मैं पानी देख सकता हूँ कारण कि यह नदी है। अमृता, तुझे पानी नहीं दीखता, मुझे दीखता है कारण कि मैं जानता हूँ कि यह अन्तःस्रोता है।"

अन्तःस्रोता....।

"भिलोड़ा बहुत पुराना गाँव है। और फिर भी यह गाँव ही रहा, शहर नहीं बन सका। क्योंकि इसकी नदी निकट आकर अन्तःस्रोता बन जाती है और कहीं दूर जाकर ही प्रकट होती है।"

अमृता ने भरी दोपहरी में भिलोड़ा में प्रवेश किया।

"हमारे गाँव के पश्चिम में सिवान है। सिवान का कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं है, शायद तुझे सब कुछ बिखरा हुआ लगेगा। यह सीमान्त की धूल, थूहर की वह बाड़, इस ओर अँगरेज़ी स्कूल। सामने पुलिस-स्टेशन। यह गुजराती स्कूल, देख वह जो सामने है उसे आश्रम कहते हैं, इस ओर मुड़ना है, दक्षिण की ओर, अभी घर दूर है।"

फाटक के दरवाज़े पर ताला लटका था।

चाबी ? याद नहीं आता चाबी किसे दी थी ?

"तोड़ो, ताला तोड़ो, घर मेरा है।"

सूटकेस वग़ैरह उठाकर लानेवाले मज़दूरों ने ताला तोड़ने में देर न की। हथौड़ी ले आये, पाना ले आये और धड़...धड़....धड़...। इन धमाकों की प्रतिध्वनि काँपती अमृता की आँखों में होती हुई उसके हृदय की धड़कनों में घुल गयी।

दरवाज़ा खुला। दीवारों के बीच घर के आँगन के बजाय अमृता को घास दिखाई पड़ी। सूखी, हरी घास। घास पूरे आँगन में पसरी हुई थी। उसके ऊपर पैर रखकर चलने से आवाज़ हुई। इतनी नगण्य आवाज़ भी कैसे सुनाई देती है ?

दो चारपाइयाँ खड़ी की हुई थीं। उदयन ने बिछा दीं। और एक पर वह लम्बा हो गया। एक मज़दूर से ऊपर के कमरे की सफ़ाई करके पानी भरकर रख देने को कहा।

शामलाजी से मिलोड़ा के बीच देखे हुए टीले अमृता के चित्त में डोल रहे थे। इन टीलों के बीच का आकाश दोपहर का था। नदी में पत्थर और कंकड़ थे। जल के प्रवाह की उसने कल्पना कर देखी....।

वह थोड़ी देर बैठी फिर खड़ी हो गयी। एक दरवाज़ा ऊपर जाने का था जिसे खोलकर मज़दूर सफ़ाई करने लगे थे। दूसरा दरवाज़ा उसने खोला। नहाने की चौकी, घड़ौंची। घड़ौंची के ऊपर ताक़ में सरस्वती का चित्र। उसके सामने आड़ी पड़ी धूपदानी, ताक़ के ऊपर के भाग में मकड़ी का जाला....वह पीछे के कमरे में गयी। एक चमगादड़ उड़ा और चक्कर काटने लगा। एक बार तो अमृता के कान के निकट से गुज़र गया। उसके कर्कश और डरावने पंख देखकर अमृता की जैसे चीख निकल गयी। वह बाहर भाग आयी। उदयन आँखें बन्द किये पड़ा था।

अमृता चारपाई पर बैठ गयी। दरवाज़े की चौखट की कारीगरी देखने लगी। दृष्टि ऊपर गयी। टोड़े पर चिड़िया का घोंसला था। कितने ही तिनके एक ओर नीचे लटक रहे थे।

उदयन ने आँखें खोलीं। उसकी चारपाई से पायताने पर अलगनी दिखाई दी। वह बैठ गया। बुश्शर्ट उतारकर उसने अलगनी पर फेंकी। अलगनी झूल उठी। झूलती रही। वह देखता रहा। फिर लेट गया और आँखें बन्द कर ली।

अमृता अटारी पर गयी। सामने बारजा था।

दो और कमरे थे। कूड़ा लगभग बुहारा जा चुका था। फिर भी श्वास लेने में कठिनाई हो रही थी। वह जीना उतरने लगी। उसे कुछ अजीब-अजीब-सा लगा।

दो दिन तक उसे ऐसा ही लगता रहा। तब तक सब व्यवस्थित करके रख दिया गया था। उदयन ने पुराना स्टोव ठोक-पीटकर चालू किया तो भी बीच में कभी-कभी भभक उठता था। उसने अमृता को दूर बैठने की चेतावनी दे रखी थी।

मिलोड़ा देखा। देखने की इच्छा थी ही। वर्षों पहले उसने यह इच्छा प्रकट की थी। उसने उदयन से कहा था—वहाँ जाकर वह गरबा करेगी। भील कन्याओं के साथ मिलकर कमर के पीछे हाथ बाँधकर वह नाचेगी। उदयन कितना ही दूर खड़ा होगा तो भी देखकर मोहित हो जायेगा....। आज तो यह इच्छा केवल सनक लगती है। उदयन को इसकी याद दिलाने का कोई अर्थ नहीं। और अब ऐसी किसी सनक या ऐसे किसी प्रसंग की याद न दिलायी जाये यही इष्ट है।

"देखता हूँ इसको उकताने में कितना समय लगता है। अवश्य उकतायेगी.... इसकी उकताहट का ज़रा भी आसार दिखाई दिया कि इसे बस में बिठा

आऊँगा....उकतायेगी, ज़रूर उकतायेगी। इतनी सारी परेशानियाँ इसने अपने जीवन में कभी नहीं भोगी होंगी। भोगना क्या, देखी भी नहीं होंगी, शायद इसने कल्पना भी नहीं की होगी...ज़रूर उकतायेगी। इसे विदा कर आऊँगा।"

"उदयन, तेरा गाँव खूब अच्छा लगा। चारों ओर ये टीले और इनकी आ-मिली अँजुरियों में बसा गाँव! टीले भी कितने गम्भीर और दृढ़ दीखते हैं! मानो परम विजेता के शिविर में तने नीले तम्बू! इस छत पर मैं हर शाम खड़ी रहूँ तो थोड़े ही दिनों में कवयित्री बन बैठूंगी...उदयन! तूने तो कविता लिखी ही होगी।"

"पहले लिखता था, बचपन में, किन्तु उससे कुछ बना नहीं इसलिए छोड़ दी।"

"तू बड़ा संयमी है, वरना ऐसे सौन्दर्य का अनुभव कौन छोड़ दे?"

"ऐ, ज़रा ठीक से बैठ न! मेरे तकिये के पास बैठ जाती है इससे मुझे घुटन होती है।"

अमृता ने जवाब में उदयन का कान खींचा और उसका छोर दबाया। उसने हाथ हटा लिया। उसके बाद भी ललाई कम न हुई। यह देखकर वह बेचैन हो उठी।

दवा देने का समय हो गया था। वह खड़ी हुई।

उदयन दवा लेने में आना-कानी नहीं करता।

एक के बाद एक साँझ बीतती गयी।

कल शाम उदयन माचिस लेकर आ रहा था। रास्ते में वृद्धगति से आतीं दो पड़ोसिनें उसी के बारे में बात कर रही थीं—"लल्ला जोरू तो जोरदार लाया है।" उदयन ने सुना। घर आकर जल्दी-जल्दी मेड़े पर चढ़ा। साँस फूलने लगी थी। लेटकर आराम करने लग गया। थोड़ी देर तक छत की ओर ताकता रहा। खपरैल की एक लाइन गिनकर दूसरी गिनने लगा। गिन चुका तब पहली लाइन में कितने खपरैल थे यह भूल गया था।

आज सुबह से ही वह पढ़ने बैठ गया था। हाल ही उसने पुस्तक चारपाई के नीचे रख दी थी। अमृता पोस्ट-ऑफ़िस गयी थी। आते ही वह उदयन के सामने बैठ गयी और अपने पैर की एड़ी हाथ में लेकर दबाने लगी।

उदयन ने देखा। बोला नहीं।

"काँटा लगा है। यहाँ के कांटे बहुत मज़बूत होते हैं?"

उदयन निरुत्तर।

"चप्पल की किनारी में से होकर नोक चुभ गयी। खींचने पर टूट गयी।"

उदयन ने गरदन घुमाकर दीवार की ओर देखा।

एड़ी दबाने-मसलने से लाल-सुर्ख हो गयी थी।

"उदयन !"

उदयन ने सामने देखा। दृष्टि प्रश्नाकुल लगती थी फिर भी चेहरे में जैसे ठूंस-ठूंसकर मौन भरा था।

अमृता खड़ी हुई। कांटा निकालने के लिए कोई साधन ढूंढने लगी। सुई तो कहाँ होगी ? उदयन के हजामत के सामान में से उसने ब्लेड ली और उसी जगह आकर फिर बैठ गयी।

ब्लेड लगेगी तो पक जायेगा। इसका घाव जहरीला होता है—कहने की इच्छा हुई। किन्तु वह न बोलने में सफल रहा। ब्लेड के कोने से कांटे के नजदीक का भाग दबाया। कांटा अपने-आप बाहर उभर आया।

"ओह !"

"एक बार 'ओह' कह देने से छुटकारा नही मिल जायेगा। यहाँ रहना होगा तो बहुत-से कांटे लगेंगे अमृता ! यह प्रदेश तेरा नही और यहाँ तेरा काम भी नहीं, वापस चली जा।"

"तू जितना डर बतायेगा उतनी ही मेरी हिम्मत बढ़ेगी।"

"तो तुझे डराने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ?"

"जो हो रहा है उसे होने दे। अपने दायित्व का बोझ हलका कर। मुझे लगता है कि तू किसी डर से आक्रान्त है। इसलिए मुझे भी डराना चाहता है। उदयन, तू क्यों भूल जाता है कि तूने मुझे निडर बनाया है।"

"तेरी निडरता सच्ची हो तो मुझे यहाँ छोड़कर चली जा। तेरी उपस्थिति के कारण मुझे सतर्कतापूर्वक जीना पड़ता है, जो मुझे नापसन्द है। तू जा, मुझे अपनी तरह जीने दे।"

"अब क्या जाऊँ ? अब तो मुझे मान लेना पड़ेगा कि मैं तेरे पन्थ की प्रवासिनी हूँ। तेरी दिशा, वही मेरी दिशा।"

"फिर तुझे ऐसा नही लगे कि उदयन ने आगाह नही किया।"

"तू किसे आगाह करने की बात करता है उदयन ? बहुत हो चुका। अब बस कर। तू इतना भी नही समझता कि तर्क-वितर्क से किसी छाया को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता ?"

"किसी को छाया बनाने का दुष्कर्म मैं नही कर सकता।"

वह अन्दर जाकर पिछवाड़े की खिड़की के सींखचे पकड़कर बाहर की सृष्टि को देखती रही। पास की झाड़ियों पर अपराजिता की बेल के नीले रंग के फूल इस तरह छाये थे कि—कि झाड़ियाँ ढँक गयी थीं। दो-दो, एक-एक ऐसे अनेक पुष्पों की ओर बारी-बारी से दृष्टि जाती थी। पत्तों की सघनता से सान्त्वना देते

वृक्ष केवल ऊपर से घिरे हुए लगे। शाखाओं के बीच का अवकाश उसे प्रतीत हुआ। एकाएक उसकी कल्पना में काँप उठा अकेला लटकता किसी पक्षी का कोई खाली घोंसला....वृक्षों की आड़ में आ जाने से अपनी उपस्थिति छुपाती अन्तस्स्रोता हायमती....छोटे-से उस श्मशान का परिचय कराती तृणरहित भूमि....सूरज की धूप में चमकता तालाब का छिछला पानी।

उसे लगा कि उस पार सम्पूर्ण सृष्टि सन्दर्भरहित बन गयी है। एक दृश्य को दूसरे दृश्य के साथ जोड़ा नहीं जा सकता, मानो वहाँ कोई अपरिहार्य विच्छेद है।

याद आया कि ग्यारह बजे तो उदयन को स्कूल में जाना है। उदयन के इनकार के बावजूद आचार्य के आग्रह का समर्थन कर अमृता ने वार्ता-गोष्ठी रखायी थी।

"उदयन, जाना है ?"

"हाँ, जाना है।"

"तैयार हो।"

"मुझसे भी अधिक जल्दी तुझे है ?"

"घड़ी में देख। समय हो गया। कोई बुलाने आता होगा।"

"तू कहाँ जाने की बात कर रही थी ?"

"स्कूल में, तू क्या समझा ?"

"कुछ नहीं ! खैर जाने दे, मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। विद्यार्थियों के लिए [illegible] मैं कुछ नहीं कह पाऊँगा। मेरी माने तो तू चली जा।"

[illegible] साथ [illegible]।"

[illegible] भी परिचय देने लगें और कहीं ऐसा-वैसा कह

[illegible] न्ता करता है। खड़ा हो, तैयार

[illegible] करने की आवश्यकता नहीं

[illegible] दर्शन के अनुसार तैयार

[illegible] कि दो छात्र बुलाने आ

[illegible] लगी।

[illegible] उदयन को जिस गति

[illegible] को यह अच्छा

[illegible] गया। वह बोलने

अमृता

के लिए खड़ा हुआ :

'मित्रो !

तुमसे मिलने का अवसर मिला इसके लिए आभारी हूँ'—ऐसा बोले बिना, जितनी देर में यह बोला जा सके उतनी देर तक वह चुप रहा।

"तुम सुखी हो क्योंकि प्रकृति का बिछोह सहन करना तुम्हारे हिस्से नहीं आया। इससे तुम्हारे चेहरों पर नवजात पल्लवों की सुर्खी है। ऊँची इमारतों की परछाई के नीचे, चारों ओर का कोलाहल स्वीकार कर, टेढ़ी-मेढ़ी गति से चलना और प्रकृति की मुसकराहट आँखों में आँजकर चलना, इन दो स्थितियोंका अन्तर दो दुनियाओं के बीच का अन्तर है। मैं अपने अध्ययनकाल के दौरान इन दोनों स्थितियों में से गुजरा हूँ। एक का मैंने मुकाबला किया है, दूसरी ने मुझे यह मुकाबला करने की शक्ति दी है। यहाँ पढ़ा, शहर में पढ़ा। दूसरे शब्दों में कहूँ तो यहाँ पला, वहाँ की गर्मी में आकार ग्रहण किया। यहाँ का पक्ष लेकर मैं हरगिज ऐसा नहीं कहूँगा कि शहर में विकास करना सम्भव नहीं, परन्तु इतना कहने का अनुभव तो मुझे है कि शहर में प्रलोभनों का पार नहीं और एक-एक प्रलोभन जीवन-भर का बन्धन बन सकता है।

जब मैं पढ़ता था उन दिनों ये पहाड़ियाँ आज की तरह छितरायी हुई नहीं थी। इनमें से कितनी पर तो अभेद जंगलों के कवच थे। उन्हें बेधकर आगे बढ़ने-वाले की साहस-शक्ति विकसित होती थी। ये मैदान भी आज दीख पड़ते हैं उतने खामोश न थे। किसी भी वाहन के लिए तब ये पारदर्शी न थे। पहाड़ी पर चढ़कर तुम दृष्टिपात करो तो तुम्हारी आँखें ठण्डी हो जायँ। इस भरपूर जंगल का पवन भी केवल ऊपरी छेड़-छाड़ कर सकता था। आज तो यहाँ से शामलाजी जाने के लिए पक्की सड़क तैयार है। तब तो पगडण्डी भी जगह-जगह पर घनी झाड़ियों में छुप जाती थी। इसलिए प्रायः हर आदमी को अपना मार्ग बनाकर चलना पड़ता था। और वह बुरा नहीं था। ऐसा करने से राहगीर को खतरा उठाने का बल मिलता था।

मुझे आशा है कि कटे हुए जंगल फिर से घने होंगे। किन्तु तब तक तुम राह देखकर नहीं बैठे रहना। इन मैदानों में, इन पहाड़ियों पर चलना। ठोकर लगने का भय रखे बिना दौड़ना और निर्भीक बनना। शरीर में हो उतना बल क्रिया-शील रहे तो आराम से नींद आती है। और सुबह तड़के आँखें खुलें तब स्फूर्ति का अनुभव होता है। और इस तरह अपने ही पैरों पर अपना भार उठाकर चलने की आदत पड़ती है।

तुम्हारे साथ आदिवासी किशोर पढ़ते हैं यह देखकर मैं आनन्दित हूँ। छेड़ के कोने में अलग और अकेला पर बाँधकर रहने में इनकी निडरता प्रकट होती

पसन्दगी भी स्वयं ही करना और उसके बाद किसी के आश्रित न
तारी बातों का अपना एक गौरव है। नगरवासी निर्भीकता और
भले ही आकर्षक भाषण किया करें, पर वास्तव में उन मूल्यों को
ग हैं। मेरी मानो तो तुम्हारे लिए यहीं रहने-जैसा है। और जो
स्कूल में पढ़ते हैं उनके लिए भी पुनः गाँव की ओर लौटने का
है।

हारे आचार्य ने एक कहानीकार कहा है। तुम्हें पसन्द आये ऐसी
ा अभी मैंने नहीं सीखा। फिर भी देखो प्रयत्न करता हूँ :

ल बालक हमारे गाँव की पश्चिमी पहाड़ी पर शाम होते ही निरुद्देश्य
करता था। हाँ ठीक है, तुम देख रहे हो, इसी पहाड़ी का मैं क़िस्सा
भागवत में कहा गया है कि ईश्वर ने महाकश्यप का रूप धारण
समुद्र-मन्थन के समय मेरु पर्वत को डूबने से बचाने के लिए उसने
लेया था। इस पहाड़ी की पीठ पर आकाश है और यह पहाड़ी भी
भाँति स्थितिस्थापक है, समधारक है। तुम्हें तो इस पहाड़ी के
भाग ही दिखाई देता है। वह भील बालक उस ओर का रहने-
शाम के समय वह इस ओर आकर थोड़ी देर खड़ा रहता था। इस
से आते-जाते किसानों को देखता रहता। काँकरेज बैलों की जोड़ी के
ला किसानों के हाथ से रास छुड़ाकर उछल-कूद किया करता था
की पनिहारियाँ घबरा जाया करती थीं। इस दृश्य को देखने में उसे
ाता था। किन्तु उसे इतने से ही सन्तोष नहीं होता था। वह
ी पर दृष्टि फैलाता। गाँव के ऊँचे-नीचे छप्परों पर नाचती सन्ध्या के
वह अपना स्मित भी जोड़ता। वह सदा खेलता-कूदता ही चलता।
चलता ही रहता। तुम जानते हो कि अपने देश में जिस दिन चाँद
उस दिन तारे ही उजास भरते हैं।

उसे जाने क्या सूझा कि वह चन्द्रोदय होने के बाद भी चलता रहा।
कल गया। रास्ते में पलाश वन पड़ा। वसन्त पंचमी के बाद होने-
परिवर्तन के बारे में वह अनजान था। किन्तु इससे वसन्त ऋतु
रहे ऐसा नहीं हो सकता न! और उस दिन तो चाँद भी पूनम का
ा के रूपहले सरोवर में से चाँदनी की फुहारें उड़ रही थीं। दिन में
लाल चटक पलाश अब गहरा गुलाबी रंग धारण कर निद्रा के
तैर रहे थे। ऊपर चेतना का सरोवर और नीचे विश्रान्ति का
लगता है तुम्हें हैरत हो रही है। किन्तु अब ध्यान से देखना। रात
श्यामल संतोषी भूमि महासागर के जल का रंग धारण करती है।

और इसके ऊपर हवा के स्पर्श से लहरा उठता अन्धकार उस महासागर की लहरों का अनुभव करता है। इस भील बालक को यह अनुभव पहले कभी नहीं हुआ था। इससे आज वह हर्ष से पागल होकर तरंगित हो उठा था। उछलता-कूदता आगे बढ़ रहा था। पहाड़ी के किनारे-किनारे पलाश के जंगल की वसन्ती महिमा देखता-देखता वह आगे बढ़ा। खिरनी के जंगल के बारे में तो वह पहले से ही जानता था। उसमें घुसने के लिए वह ललचाया नहीं। उससे आगे निकल गया। उसने कोई दिशा निश्चित नहीं की थी। इसलिए कहीं ऐसा न मान लेना वह कोई नाक की सीध में आगे बढ़ रहा था।

तुममें से जो खेड़ब्रह्मा से अम्बाजी गये हैं उन्होंने पोशीनापट्टो जरूर देखा होगा। जो नहीं गये उन्होंने भी वहाँ के पारिजात के वन के बारे में अवश्य ही सुना होगा। वह भील बालक ने उस पारिजात के वन में पैर रखा। पारिजात के फूल ओस की तरह सतत झरते रहते हैं। उनके झरने की कोई आवाज नहीं होती। अबोध शिशु की आँखों में ढुलकते आँसू की तरह ये झरते हैं। धरती पर सफ़ेद मखमली ग़लीचा बिछ जाता है। जिस तरह धरती वर्षा के जल को अपने हृदय में समा लेती है वैसे ही पारिजात के पुष्पों में से टपकती सुगन्ध को भी अपने अन्तर में ग्रहण कर लेती है। और तब उसका तन-बदन सुगन्ध से महक उठता है। वह भील बालक पारिजात के वन की इस धरती पर छायी हुई सुगन्धित शुभ्रता का स्पर्श करना चाह रहा था, ललचा रहा था। वह बैठ गया। अपना कपोल नीचे की ओर झुकाया। कपोलों को, हथेलियों को, पैर की एड़ियों को पुष्पों का मृदुल स्पर्श आनन्द देने लगा। आनन्द के क्षण बीतते जाते और वह बालक किशोर बन जाता। इतना ही नहीं उसके होंठ पर युवावस्था की आरम्भिक सुर्खी जाग आयी। वह खड़ा होता। चलने लगता। सामने पड़ी शिला पर चढ़ने के लिए हाथ का सहारा लेता। शिला की शीतल शान्ति उसे बैठने के लिए प्रेरित करती। वह दाहिनी ओर देखकर बैठने ही वाला था कि इतने में क्या देखता है? तुमने नृत्य करती किसी अप्सरा का चित्र देखा है? एक पैर शिला पर और दूसरा उठा हुआ। उसके कोमल हाथ की नाजुक अंगुलियों ने रची थी पूर्वानुराग की कोई मुद्रा, उसके लोचनों में झुक आयी थी स्वप्नलोक के प्रवेश-द्वार के तोरण की चंचलता, उसके कपोल पर स्फुरित हो उठी थी अरुणोदय की आभा, उसके होंठों में बन्द था सुधीर मौन.........।

युवक हतप्रभ हो गया। जिज्ञासु था। सचेत होते ही पूछ बैठा :

"तुम पारिजात के वन में विहार करने आयी कोई परी हो?"

"नहीं।"

"तो क्या कोई महाशिल्पी एकान्तवास का व्रत लेकर अपनी अविरत साधना

का फल यहाँ छोड़ गया है ?"

"नहीं। प्रतिमा तो निष्प्राण होती है।"

"तो फिर हे स्थिर लावण्य ! जो मैं देखता हूँ वह यदि स्वप्न नहीं है तो उत्तर दो।"

"हे पथिक, तुमने क्षण-भर रुककर मुझे लक्ष्य किया उसके लिए कृतज्ञ हूँ। मैं उत्तर की ओर जा रही हूँ। यह मेरी साहजिक गति है। इसका परिचय प्राप्त करने के बजाय तुम तो आश्चर्यचकित हो बैठे।"

"तो दोनों पैर धरती पर रखो। हवा में चलने में मेरा विश्वास नहीं। मैं भूमि-पुत्र हूँ।"

एक आदमी सभागृह के दरवाज़े पर आकर खड़ा था। अमृता ने उसे पहचान लिया। कल कुछ सामान लेने उसने उसे अहमदाबाद भेजा था। फाटक बन्द देखकर वह किसी से पूछकर यहाँ आया था। अमृता चाबी देकर वापस आने के लिए खड़ी हुई। परन्तु ऐसा न कर वह उसके साथ-साथ गयी। लाये हुए सामान की जाँच-पड़ताल कर रखने लगी। काम खतम हो जाने के बाद वह उदयन की राह देखने लगी। घर खुला छोड़कर वह स्कूल की ओर चली गयी। अभी कहानी चल ही रही थी। बाहर खड़ी-खड़ी अकुलाने लगी। आखिर सभागृह में प्रवेश करने को तत्पर हुई और उसी क्षण कहानी पूरी कर उदयन बैठ गया। घर पहुँच कर उसने इस कहानी के बारे में ही पूछने की मन में गाँठ बाँध रखी थी। किन्तु उदयन का रुख देखकर वह पूछना भूल गयी।

उसके बाद कई दिन बीत गये।

अमृता मानती कि उदयन का स्वास्थ्य ठीक है। उदयन कोई शिकायत नहीं करता। बैठा होता है, लेटा होता है, कभी-कभी चहल-क़दमी करता होता है। अब चहल-क़दमी के लिए उसे यह छोटा कमरा या उसके आगेवाली सँकरी छत भी ठीक लगती है।

कभी-कभी उसके कमर के पीछे के भाग में दर्द होने लगता है। तो कभी लगता है कि रुधिराभिसरण स्थगित हो गया है। किन्तु वह जानता है कि ऐसा हो नहीं सकता। हाँ, कमर के नीचे का दर्द आँखों को अन्दर खींच ले जाता है... किन्तु उससे क्या ? यह तो पुराना और परिचित दर्द है। पच गया है। अमृता से इस बारे में क्या कहा जाये ? कहा तो उससे जाता है जिसे पता न चलता हो।

अमृता घर को दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक सजा रही है। क्या किसी उत्सव की तैयारी कर रही है ?

वातावरण में सजीवता मालूम पड़ती है।

अमृता की हर व्यवस्था में बँध जाना उदयन के लिए अनिवार्य हो गया।

तो क्या यह नहीं सकेगी ?

उदयन की धारणाएँ ग़लत होने लगी हैं।

इसे परास्त करने के लिए क्या किया जाये ?

शाम हुई।

"क्यों, तैयार होने लगा ?"

"घर में घुटकर नहीं रहना। घूमने जाना है।"

"किस ओर ?"

"भवनाथ जाने की इच्छा है।"

"वह कहाँ नजदीक है ? चार-पाँच मील दूर है। वहाँ पहुँचकर लौटने में तो अँधेरा हो जायेगा।"

"अँधेरे से डरती क्यों है ? फिर मैं तुझे तो साथ आने के लिए कह नहीं रहा।"

"देखती हूँ तू मुझे छोड़कर कैसे जाता है ?"

"तो चल तुझे भी ले जाऊँ। मैं जीप ले आता हूँ। गाँव में दो जीपें किराये पर चलती हैं।"

"मैं दो मिनट में तैयार होकर आती हूँ।"

वे निकले।

ड्राइवर जीप तैयार करने लगा। पन्द्रह मिनट में ठीक हो जायेगी।

"जा, वो जैन-मन्दिर देख आ। कीर्तिस्तम्भ भी देखने-जैसा है।"

"तू साथ चल।"

"साथ, साथ, साथ। ज़रा तो पीछा छोड़। तू जानती है कि मन्दिर के रूप में आने जाते इन जीर्ण मकानों में मेरी रुचि नहीं है।"

"प्लीज......"

"मन्दिर काफ़ी बड़ा है।"

क़ब्रिस्तान बड़ा हो या छोटा, कुछ फ़र्क नहीं पड़ता।"

"क़ब्रिस्तान ?"

"हाँ, क़ब्रिस्तान। ईश्वर का क़ब्रिस्तान। नित्शे की घोषणा सच लगती है।"

"ईश्वर मनुष्य के विश्वास में जीता है और उसी के साथ वह मन्दिर में प्रवेश करता है। मनुष्य की अनुपस्थिति में तू मन्दिरों को क़ब्रिस्तान कहे तो मेरा विरोध नहीं। चल इस कीर्तिस्तम्भ पर चढ़ें।"

"तू आगे चल।"

प्रवेश-द्वार में पैर रखते ही प्राचीन-जीर्ण अन्धकार ने आलिंगन किया। पहली मंज़िल के बीच के भाग में संख्यातीत चमगादड़ों के डैने फड़फड़ाने लगे। अमृता उस ओर ध्यान नहीं देकर ज़ीना चढ़ने लगी।

उसने नाक दबा ली। भूतकाल की गन्ध अमृता से लिपट पड़ी थी। चारों ओर के अँधेरे में वह आँखें बन्द किये सीढ़ियाँ चढ़े या खुली रखकर पैर उठाये इसमें कोई फ़र्क़ नहीं था। उदयन कुछ भी अनुभव किये बग़ैर पीछे-पीछे आ रहा था।

"यह छत नयी बनायी लगती है।"

"हाँ, पहले यह सात मंज़िल ऊँचा था। आक्रमणकारी सैनिकों से बचने के लिए दो राजकुमारियाँ भिलोड़ा आकर कीर्तिस्तम्भ की आख़िरी मंज़िल पर जाकर छुप गयी थीं। पुरस्कार की घोषणा होने पर सुराग़ मिला। आततायियों को आगे बढ़ता देखकर राजकुमारियाँ ऊपर से कूद पड़ीं और विजेताओं को अपने शव भेंट किये। इसके बाद कोई राजकुमारी ऐसा न करे इस दूरदृष्टि से ग्रामजनों ने इसके ऊपर की मंज़िलें उतार लीं। और बदशक्ल हुए कीर्तिस्तम्भ पर यह गोल छत बनायी है।" गाँव की खपरैल पर एक शून्य फेंकते हुए वह आगे बोला :

"नदी और कीर्तिस्तम्भ—गाँव की दो मुख्य सम्पत्तियाँ अभिशप्त हैं।"

अमृता को गाँव की रचना अच्छी लगी। चारों ओर पहाड़ियाँ और वनश्री, बीच में बसा स्तब्ध गाँव।

"गाँव की आबादी बढ़ती नहीं?"

"घट रही है।"

जीप का हॉर्न बजा।

उदयन ने ड्राइवर को साथ लेने की आवश्यकता नहीं समझी।

अमृता ने स्टियरिंगह्वील पर हाथ रखा :

"रास्ता बताना।"

"यहाँ बहुत रास्ते ही नहीं। पहले पश्चिम में, फिर दक्षिण की ओर।"

सँकरे कच्चे रास्ते पर से गुज़रते समय ड्राइविंग उदयन ने की। उदयन की ओर लक्ष्य रखने के साथ वह सामने आकर पीछे छूट जाते वृक्षों को देख लेती। कोई विशालकाय महुआ, कोई कटी हुई डाली का करंज, कोई घटादार खिरनी, नीम और आम की फूटती फुनगियाँ; झिंगिनी, टिंबरु और आँवले की अपवाद-स्वरूप उपस्थिति, महुए को भी मात देता हुआ अर्जुन सादड़, खेत की मेड़ पर सागौन की कटी डालियों की थप्पियाँ, इन डालियों पर सूखी हुई लम्बी-लम्बी मंजरियाँ....

प्रवेश-द्वार में पैर रखते ही प्राचीन-जीर्ण अन्धकार ने आलिंगन किया। पहली मंज़िल के बीच के भाग में संख्यातीत चमगादड़ों के डैने फड़फड़ाने लगे। अमृता उस ओर ध्यान् नहीं देकर ज़ीना चढ़ने लगी।

उसने नाक दबा ली। भूतकाल की गन्ध अमृता से लिपट पड़ी थी। चारों ओर के अँधेरे में वह आँखें बन्द किये सीढ़ियाँ चढ़े या खुली रखकर पैर उठाये इसमें कोई फ़र्क़ नहीं था। उदयन कुछ भी अनुभव किये बग़ैर पीछे-पीछे आ रहा था।

"यह छत नयी बनायी लगती है।"

"हाँ, पहले यह सात मंज़िल ऊँचा था। आक्रमणकारी सैनिकों से बचने के लिए दो राजकुमारियाँ भिलोड़ा आकर कीर्तिस्तम्भ की आख़िरी मंज़िल पर जाकर छुप गयी थीं। पुरस्कार की घोषणा होने पर सुराग़ मिला। आततायियों को आगे बढ़ता देखकर राजकुमारियाँ ऊपर से कूद पड़ीं और विजेताओं को अपने शव भेंट किये। इसके बाद कोई राजकुमारी ऐसा न करे इस दूरदृष्टि से ग्रामजनों ने इसके ऊपर की मंज़िलें उतार लीं। और बदशक्ल हुए कीर्तिस्तम्भ पर यह गोल छत बनायी है।" गाँव की खपरैल पर एक शून्य फेंकते हुए वह आगे बोला :

"नदी और कीर्तिस्तम्भ—गाँव की दो मुख्य सम्पत्तियाँ अभिशप्त हैं।"

अमृता को गाँव की रचना अच्छी लगी। चारों ओर पहाड़ियाँ और वनश्री, बीच में बसा स्तब्ध गाँव।

"गाँव की आबादी बढ़ती नहीं ?"

"घट रही है।"

जीप का हॉर्न बजा।

उदयन ने ड्राइवर को साथ लेने की आवश्यकता नहीं समझी।

अमृता ने स्टियरिंगह्वील पर हाथ रखा :

"रास्ता बताना।"

"यहाँ बहुत रास्ते ही नहीं। पहले पश्चिम में, फिर दक्षिण की ओर।"

सँकरे कच्चे रास्ते पर से गुज़रते समय ड्राइविंग उदयन ने की। उदयन की ओर लक्ष्य रखने के साथ वह सामने आकर पीछे छूट जाते वृक्षों को देख लेती। कोई विशालकाय महुआ, कोई कटी हुई डाली का करंज, कोई घटादार खिरनी, नीम और आम की फूटती फुनगियाँ; झिंगिनी, टिंबरु और आँवले की अपवाद-स्वरूप उपस्थिति, महुए को भी मात देता हुआ अर्जुन सादड़, खेत की मेड़ पर सागौन की कटी डालियों की थप्पियाँ, इन डालियों पर सूखी हुई लम्बी-लम्बी मंजरियाँ....

मुझे पहुँचाने में तुझे मेरी मदद करनी चाहिए।"

"कृपा करके कुछ मत बोल। चल घर चलें।"

"तू मदद नही करेगी ?"

"मदद तो बहुत छोटी चीज है। तुझे सँभाल कर घर ले जाऊँगी।"

"अमृता, यह योग्य स्थल है। मैं आभारी रहूँगा।"

अमृता ने उसका मुँह दबा दिया।

"मुझे जो दिखाई दे रहा है वह तेरी हथेली की दीवार से दिखाई देना बन्द नही हो जायेगा। अच्छा! मदद नहीं करती तो आज्ञा ही दे बैठ।"

"मुझे तेरी बात में रुचि नही, तू स्वार्थी है।"

"स्वार्थी ?"

"हाँ, आत्मघात स्वार्थ होता है। मैं अपनी समग्रता लिये तेरे पास हूँ फिर भी तुझे आत्महत्या का विचार आता है ?"

"आत्महत्या कैसी ? मनुष्य परिस्थितियों या जगत् के सामने हार जाये और फिर लुका-छिपा बदला लेना चाहे और तब अपने को जगत् से बाहर फेंक दे तो आत्महत्या कहलाये। मैं तो राजी-खुशी से बह जाना चाहता हूँ....आज जिसे मैं जी रहा हूँ उसे तू जीवन कहती है ? यह जड़ता मरण नही तो क्या है ? मैं मरण को ही जी रहा हूँ। मुझे मरण का लेशमात्र मोह नही, पर इस गति-हीनता को मैं बेहद नापसन्द करता हूँ। और इसलिए तुझसे आशा रखता हूँ कि तू मुझे समझने का प्रयत्न करेगी।"

"गति प्राप्त करने के लिए तुझे नदी का आश्रय लेने की आवश्यकता नही। मैं तेरा भार वहन करूँगी। जिस दिन नारी अपने अस्तित्व की निरर्थकता प्रमाणित करती है उस दिन उसकी आँखों में से ऐसी असंख्य नदियों की गति-शील वेदना का उद्भव होने लगता है। तू जो आज तक मेरी उपेक्षा करता आया है वैसी उपेक्षा ही करता रहेगा तो तुझे इस वेदना की सजल गति भी देखने को मिलेगी। हाँ, वह दिन नही आयेगा इसकी मुझे आशा है। मैं अपने निरर्थक मान सकूँ यह सम्भव नही। जिस गति का तू अभाव अनुभव कर है वह तो भ्रम है। तेरे इस भ्रम को मैं दूर कर सकूँगी। तेरे अवकाश में जिन्दगी जोड़कर तुझे गति देने के लिए तेरे साथ आयी हूँ। मुझमें कर उदयन! विश्वास कर। क्या तुझे लगता है कि मेरा प्रायश्चित्त पूरा नही हुआ ?"

"यह तो गौण बात हुई। मेरे सामने मुख्य प्रश्न तुझे मनाने का ही है। होने और दूसरे को मानने के बीच मैं ताल-मेल स्थापित नही कर पाता हूँ। मानूँ तो फिर मेरी अपनी सत्ता का क्या ? निज और अन्य के बीच मैं

"एकदम ताजा खण्डहर।"

"इस खण्डहर की आयु बहुत कम है। यह पानी में डूब जायेगा।"

"सरोवर तो भरेगा तब भरेगा। उसका पानी धरती को पल्लवित भी करेगा परन्तु इस समय तो यह जो खाली हो रहा है....।"

"बहुजनहिताय। अमृता...देख न, देवों को भी खिसकना पड़ता है न !"

"जाने क्यों इस वनश्री के बीच भी आज मुझे बेचैनी हो रही है, सिर दुख रहा है। उदयन, मुझे वापस ले चल। हाथमती तक नहीं जाना।"

उदयन ने जीप स्टार्ट की। पहले यहाँ रास्ता नहीं था। सर्वेक्षण करने आये इंजिनीयरों के कारण यह रास्ता बना था। पलाश और सागौन के पत्तों के पीछे अदृश्य बने पाषाण कभी-कभी दिखाई देते और अमृता की आँखों में प्रतिबिम्बित होते। सागौन के हरे और बड़े-बड़े चाँद-जैसे पत्तों को देखती न देखती वह विवश बन उदयन के पास बैठी थी। उदयन हाथमती की ओर बढ़ रहा था।

"भिलोड़ा में नदी का पाट ऊँचाईवाला है। यहाँ इसे अनुकूल स्थिति मिल जाने पर कैसी बह रही है ! हालाँकि भारी वर्षा होती है तब तो वहाँ भी छलक जाती है।"

जीप को छोड़ उदयन चलता-चलता नदी के किनारे पहुँचा। इस किनारे पर नदी नीची थी। वह बैठा। अमृता खड़ी रही।

"एक प्रस्ताव रखूँ ?"

"क्या ?"

अमृता ने नदी से विमुख होकर उदयन की ओर देखा।

"आ बैठ। तूने कभी न सुनी हो ऐसी बात तुझे बतानी है। धैर्य के साथ सुन। देख, इस नदी में पर्याप्त पानी तो नहीं है, पर जितना भी है वह स्वच्छ है। तेरे शब्दों में कहूँ तो निर्मल है। इसमें बाढ़ के साथ जो कूड़ा-करकट बह आता है उसमें का कुछ भी शेष नहीं है। किसी पक्षी का पंख, किसी स्त्री का अधोवस्त्र, किसी पशु के सींग, किसी पेड़ की जड़ें, किसी किसान के हल की मूठ—कुछ नहीं, इसलिए तू इसे विक्षिप्त हुए बिना देख सकेगी। देख ले। मुझे इसकी गति आकर्षक लगती है। तू आज्ञा दे तो इस समय मैं एकदम थक गया हूँ फिर भी जरा मेहनत करके अपने शरीर को इसके प्रवाह में छोड़ दूँ। ताकि मुझे गति मिले। दिनोंदिन मेरी गति क्षीण होती जा रही है। मुझसे अब शरीर का वजन नहीं ढोया जायेगा। और गतिशून्यता आ ही जायेगी तो मैं किस मुँह से तेरे सामने देख सकूँगा ? तू आज्ञा दे तो इस प्रवाह में बह जाऊँ। अमृता ! अपना सम्बन्ध तो ऐसा है कि तू मुझे आज्ञा दे इतना ही नहीं, उस प्रवाह तक

मुझे पहुँचाने में तुझे मेरी मदद करनी चाहिए।"

"कृपा करके कुछ मत बोल। चल घर चलें।"

"तू मदद नहीं करेगी?"

"मदद तो बहुत छोटी चीज है। तुझे सँभाल कर घर ले जाऊँगी।"

"अमृता, यह योग्य स्थल है। मैं आभारी रहूँगा।"

अमृता ने उसका मुँह दबा दिया।

"मुझे जो दिखाई दे रहा है वह तेरी हथेली की दीवार से दिखाई देना बन्द नहीं हो जायेगा। अच्छा! मदद नहीं करती तो आज्ञा ही दे बैठ।"

"मुझे तेरी बात में रुचि नहीं, तू स्वार्थी है।"

"स्वार्थी?"

"हाँ, आत्मघात स्वार्थ होता है। मैं अपनी समग्रता लिये तेरे पास हूँ फिर भी तुझे आत्महत्या का विचार आता है?"

"आत्महत्या कैसी? मनुष्य परिस्थितियों या जगत् के सामने हार जाये और फिर लुका-छिपा बदला लेना चाहे और तब अपने को जगत् से बाहर फेंक दे तो आत्महत्या कहलाये। मैं तो राजी-खुशी से वह जाना चाहता हूँ....आज जिसे मैं जी रहा हूँ उसे तू जीवन कहती है? यह जडता मरण नहीं तो क्या है? मैं मरण को ही जी रहा हूँ। मुझे मरण का लेशमात्र मोह नहीं, पर इस गति-हीनता को मैं बेहद नापसन्द करता हूँ। और इसलिए तुझसे आशा रखता हूँ कि तू मुझे समझने का प्रयत्न करेगी।"

"गति प्राप्त करने के लिए तुझे नदी का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। मैं तेरा भार वहन करूँगी। जिस दिन नारी अपने अस्तित्व की निरर्थकता प्रमाणित करती है उस दिन उसकी आँखों में से ऐसी असंख्य नदियों की गति-शील वेदना का उद्भव होने लगता है। तू जो आज तक मेरी उपेक्षा करता आया है वैसी उपेक्षा ही करता रहेगा तो तुझे इस वेदना की सजल गति भी देखने को मिलेगी। हाँ, वह दिन नहीं आयेगा इसकी मुझे आशा है। मैं अपने को निरर्थक मान सकूँ यह सम्भव नहीं। जिस गति का तू अभाव अनुभव कर रहा है वह तो भ्रम है। तेरे इस भ्रम को मैं दूर कर सकूँगी। तेरे अवकाश में अपनी जिन्दगी जोड़कर तुझे गति देने के लिए तेरे साथ आयी हूँ। मुझमें विश्वास कर उदयन! विश्वास कर। क्या तुझे लगता है कि मेरा प्रायश्चित्त अब भी पूरा नहीं हुआ?"

"यह तो गौण बात हुई। मेरे सामने मुख्य प्रश्न तुझे मनाने का ही है। अपने होने और दूसरे को मानने के बीच मैं ताल-मेल स्थापित नहीं कर पाता हूँ। दूसरे को मानूँ तो फिर मेरी अपनी सत्ता का क्या? निज और अन्य के बीच मैं

अनहद अवकाश अनुभव कर रहा हूँ।"

"क्या मैं भी तेरे लिए अन्य हूँ ?"

"क्या इसमें तुझे शंका है ?"

"शंका थी तब थी। अब तो कृतसंकल्प हूँ।"

"अपने संकल्प को सिद्ध करने का पुरुषार्थ कर देख। अगर तू मुझपर नियन्त्रण प्राप्त कर सकेगी तो मैं मान लूँगा कि हाँ तेरी संकल्पशक्ति मुझसे बड़ी है।"

"मैं तुझपर नियन्त्रण प्राप्त करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर नहीं आयी। मैंने तो स्वयं अपना नियन्त्रण भी तुझे सौंप दिया है।"

"वह आदान-प्रदान का समय, वह सम्मोहक सन्धिकाल बीत गया है। केवल तेरा और मेरा ही नहीं, समग्र मानव जाति का भी। आज तो विच्छेद के अतिरिक्त अन्य किसी की भी मुझे प्रतीति नहीं। मेरे रक्त के बीजों में निरन्तर विच्छेद की प्रक्रिया चल रही है।"

"आत्म-निरीक्षण करे तो तुझे समझ आये कि तू मेरे साथ कितना निर्मम हो रहा है!"

"निर्मम तो तू है, कि आत्मविलोपन के मेरे अधिकार के बीच आकर खड़ी हो गयी। मेरे साथ दौड़ आयी और मेरी मुक्तता में बाधा डाली।"

"मैं तेरी मुक्ति छीनने के लिए नहीं आयी, तेरा संशय छीनने आयी हूँ।"

"मैं तुझे अपना संशय सौंप देने को तैयार हूँ। अलबत्ता अपनी स्वेच्छा से, तू छीनने आयी इसलिए नहीं। और तू चाहती है उस शर्त पर भी नहीं। तुझ अकेली को भी नहीं। अपने सामने यह जो कुछ दृश्यमान जगत् है उस समग्र को मैं अपना संशय सौंप देने को तैयार हूँ। अर्थात् देहरूप में जाना जाता अपना जीवन सौंप देने को तैयार हूँ। जहाँ तक यह संशय है वहाँ तक मैं हूँ।"

वह उठा और नदी की ओर चला। अमृता के सामने का आकाश मानो नीचे उतर आया। वह भी उठकर उदयन के सामने आकर खड़ी हो गयी।

"यह प्रवाह भले ही दूर रहे। इसके बीच का अन्तर तुझे नहीं काटना है। तुझे जो अन्तर काटना है वह तेरे और मेरे बीच का अन्तर है। तुझे अपनी जिन्दगी का नहीं, अहंनिष्ठा का विलोपन करना है। मरण से तू मुक्त नहीं हो सकेगा, पराभव प्राप्त करेगा। और अब तेरा पराभव तुझ अकेले का पराभव नहीं, मेरा भी है, अनिकेत का भी है। इस वनश्री पर ये बादल स्वर्णमयी आभा बिखेर रहे हैं वह क्या तेरे लिए नगण्य है? इन बादलों के उस पार का नीला आकाश तुझे अनन्त का अनुभव नहीं करा सकता?"

"अनन्त नहीं, शून्य।"

"और तू मानता है कि शून्य अर्थात् जो रिक्त है वह।"

"जो तू कहे वह। शब्दों के बदलने से कुछ फ़र्क नहीं पड़ता। तू जिसे अनन्त कहती है वह रिक्तता नहीं तो और क्या है?"

"और तेरे इन चरणों को रोक रहे ये तृण के अंकुर? घास पर लदे फूलों की वह रंग-भरी झालर, तेरे सामने झुकी यह कदम्ब की डाली और तुझे रोककर साक्षात् खड़ी है जो—क्या यह सब कुछ तेरे लिए अर्थशून्य है?"

"ये सब भले ही रिक्तता का अनुभव न करायें, पारस्परिक बिलगाव सूचित करते हैं। तुझे भले ही ये जीवन-प्रेरक लगें, मेरे लिए तो यह दृश्यमान भ्रम है। वास्तविकता का मिथ्या रूप, सौन्दर्य के रूप में छलना।"

"यह अमृता भी छलना?"

"मुझे लगता है कि ऐसा कहने में कोई भूल नहीं कर रहा हूँ। शायद मैं तो यह भी कह सकता हूँ कि तू केवल मेरे लिए ही छलना है, इतना ही नहीं, तू अपने साथ भी छल कर रही है। तू सहानुभूति से प्रेरित होकर आयी है, अपनी अनिवार्यता से प्रेरित होकर नहीं। और फिर एक मरणोन्मुख मनुष्य के बारे में भला कौन अनिवार्यता प्रमाणित कर सकता है? मुझे सन्देह है कि तू त्याग का गौरव प्राप्त करने के दम्भवश यहाँ आयी है। इससे तो बेहतर था कि तू न आयी होती। तू मुझे चाहती होती तो मुझे इसका अनुभव क्यों न होता, आंशिक प्रतीति भी क्यों नहीं होती? परन्तु मैं जानता हूँ कि इसमें तेरा दोष नहीं। प्रेम है ही कहाँ कि जिसकी अनुभूति हो? जो मात्र कल्पना है उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है? अमृता, मान जा! तेरे प्रयत्नों से हमारे बीच किसी तरह का प्रेम अस्तित्व धारण कर सके यह सम्भव नहीं।"

अमृता की गरदन झुक गयी। उसकी देहयष्टि आधार ढूँढने लगी। हवा के एक मन्द झोंके ने उसके चारों ओर के खालीपन को नजदीक ला दिया। वह बैठ गयी। आकाशी दूरत्व का खालीपन और धरती की उपेक्षित एकलता का सम्मिलित भार उसके सिर आ पड़ा।

उदयन के अर्थशून्य हास्य की गूँज अमृता के कर्णमूल पर आघात कर गयी। वह अमृता से दूर जाकर खड़ा रहा। कमर पर हाथ रख वह पहाड़ी की ओर देखता रहा। वरखड़े का एक ठूँठ पनपने लगा था। किसी ने पिछली गर्मियों में इसकी सभी डालियाँ काट डाली थीं। उसने गिनती कर देखी। काटी गयी डालियाँ सात थीं। जबकि ये नये पनपे अंकुर असंख्य थे।

डूँगर की छाया नदी तक फैली हुई थी। छाया के नीचे बहता पानी और स्वर्णरंगी किरणों से चमकता पानी एक आकर्षक विरोधाभास की रचना कर रहा था। अपने मनोभावों में एकाएक आये परिवर्तन को देखकर उदयन को आश्चर्य

हुआ।

'अमृता हारकर बम्बई चली जाये तो कितना अच्छा हो! इसके जाने के बाद जितना बचा है उसे मैं जी लूँगा। कोई चिन्ता तो नहीं रहेगी। रेडियो-सक्रियता का असर अगर अमृता को हो गया तो...तो मेरी मित्रता की इसके प्रति वफ़ादारी का क्या होगा? कितनी भोली है? अपना बलिदान कर मुझे बचाने को संघर्ष कर रही है। मेरे शरीर की आन्तरिक स्थिति को यह नहीं जानती। भ्रम में जीती है। यह स्वायत्त रह सकती होती तो मैं अपने कोषों में चलते विघटन के बारे में इससे कहता और वस्तुस्थिति से अवगत कराता। ख़ैर, नाराज़ करके भी इसे वापस लौटा सकूं तो कम नहीं। अब तो यह मुझसे दूर रहे इसी में इसका हित है।'

होंठ पर वक्र स्मित लाकर वह अमृता के पास गया—

"क्यों, सत्य का भार न सह सकी?"

मुँह ऊपर उठाकर उसने उदयन की ओर देखा। देखती रही। उदयन ने देखा कि अमृता की आँखें खुली हैं पर खाली नहीं हैं। वे सजल हो उठी हैं।

"जो तू कहे वह क़बूल। तू कहे वही सच। तू जिसे स्वीकारे वही अस्तित्व। तू जिसे नकारे वह शून्य।"

"तेरे मजबूरी का कोई लाभ मुझे नहीं उठाना है। ऐसा लोभ मैंने कभी नहीं रखा।"

"तो तू मुझे क्यों भगा देना चाहता है? तू जो कुछ बोलता है वह सब बोलने के लिए अन्तःकरण से प्रेरित होता है या मुझे दूर करने के लिए बोलता है?"

"मैं जब बोलता हूँ तब सत्य बोल रहा हूँ—यही मानकर बोलता हूँ। पर तुझे यह स्वीकार लेना चाहिए यह मैंने कब कहा? सत् और असत् के मेरे द्वारा किये गये भेद अन्तिम हैं ऐसा दावा करने की मूर्खता मैं नहीं करूँगा। मुझे लगता है कि सत्-असत् को पहचानने की अपेक्षा चलित को सरलता से प्राप्त कर सकता हूँ। चलित के साथ अपना सम्बन्ध मैं जान सकता हूँ। चल, खड़ी हो। अभी तो तू मुझे गति देने की बात करती थी। कहाँ गयी तेरी महेच्छा? तू तो स्थिर भी नहीं रह सकी?"

भीगी पलकें उठाकर वह खड़ी हुई। उदयन के कन्धे पर हाथ रखा। सहारा लिया और दायें हाथ से बेल की तरह उससे लिपट गयी। सिसकी के साथ अश्रु-धारा को वेग मिला। एक भी आँसू व्यर्थ न गया। उदयन की बुश्शर्ट भीग रही थी। कपड़े के ताने-बाने में अश्रुजल घुल गया।

अमृता की पीठ पर पहुँचने के लिए हाथ उठा किन्तु उसने रोक लिया। रुका हुआ हाथ श्रमित लगा। ऐसे पीछे हट गया वह हाथ मानो योजनों का अन्तर

काटना हो और वह उसकी सामर्थ्य के बाहर हो। उदयन अपने उस निष्फल हा
को क्षण-भर देखता रहा। तटस्थ भाव से देख सका। फिर नये सिरे से ह
उठाकर अमृता का मांसल कन्धा पकड़कर उसे निर्वेद स्पर्श दिया। बोला :

"कोई किसी को नहीं बचा सकता। भले ही एक और एक का योग
होता हो किन्तु दो की संख्या होने से प्रत्येक की एकलता में कोई फ़र्क न
पड़ता। सम्भव है, वह द्विगुणित भी हो जाये।"

उत्तर की अपेक्षा रखे बिना वह चलने लगा। अमृता ने उसका अनुसर
किया। स्टियरिंग थामकर बैठे उदयन को उसने एक ओर घसेड़ा। जीप चालू
और उस मौन की स्थिति को तीव्र गति में बदल डाला। हाथमती के किनारे झु
हुई वनराशि पीछे रह गयी। भवनाथ का मन्दिर और च्यवन ऋषि का कु
उसके स्मरण से परे हो गये। इन्द्रासणी का क्षीण प्रवाह जीप के पहिये को दौड़
देखता रहा। कच्चा रास्ता पूरा हुआ। सड़क आ गयी। भिलोड़ा के सिवान त
पहुँचने पर अँधेरा सामने मिला। जीप सौंपकर जब वह उदयन के पीछे-पी
चली तब गाँव की गलियों के अँधेरे का अवकाश उसके साथ-साथ चलता रहा
फाटक के खुलने की चर्राहट से इस अवकाश में दरारें पड़ गयीं किन्तु वह घर
मंज़िल पर पहुँची तब तक तो वह अवकाश जुड़ गया था।

लालटेन जलायी। उसका प्रकाश मद्धिम लगा। चिमनी जलायी। थोड़ा चै
मिला। रसोई की तैयारी करने लगी।

"भूख नहीं है।"

"जानती हूँ।"

"मेरे लिए कुछ न बनाना।"

"उपवास तो नहीं हैं न ?"

"हैं भी और नहीं भी।"

"तो बस। आराम कर। विचार मत कर। आराम कर।"

"तेरा वश चले तो मेरे विचार-चक्र को ताला मारकर चाबी छुपा दे,
न ?"

"आ मेरे पास बैठ। उस दिन विद्यार्थियों से कही थी वैसी कोई कल्पि
कहानी कह। तू बहुत अच्छा कहानीकार है। आधी-पूरी सुना दे। अथवा
आज हमने देखी उस प्रकृति का वर्णन कर। मैं सुनूँगी। यह प्रदेश तेरी मातृभू
हो ऐसा ही लगता है। मैं तो एकाध बार देख जाने के लिए तरसती थी। कैस
सद्भाग्य कि मुझे यहाँ रहने का इतना सुन्दर अवसर मिला!"

जितने दिनों बाद यह दिन आया था, उतने दिन उसके बाद बीत गये।

अँधेरा फीका पड़ गया था क्योंकि अब चन्द्रमा उदित हो रहा था जिसे उस

रोत्तर देर से अस्त होना था।

पानी का गिलास और गोली लेकर अमृता आ खड़ी हुई। उदयन एक पुरानी कुरसी में बैठा था। उसने गोली उठायी और कुरसी के हत्थे पर रखी। उसे पुस्तक से ठोकने लगा। गोली सरककर नीचे गिर गयी। अमृता दूसरी गोली ले आयी। उदयन ने हाथ किया। अमृता ने नहीं दी। उसकी इच्छा गोली उसके मुँह में रखने की थी। उदयन होंठ बन्द किये रहा। अमृता का हाथ आगे बढ़ा। उसकी अँगुलियों के स्पर्श से उदयन के होंठ खुल गये। पानी पीकर उसने अमृता को नखशिख निहारा :

"मैं गोली का आवरण तोड़कर इसके अन्तरतत्त्व को जान लेना चाहता था।"

"मुझे तो तेरे चित्त पर चढ़े व्यामोह के आवरण को तोड़ने की आवश्यकता लगती है।"

"किन्तु तू ऐसा कर नहीं सकती, क्यों ?"

"तुझे नहीं लगता कि इसमें तुझको मेरी सहायता करनी चाहिए ?"

"अमृता, तू तो प्रवाह के विरुद्ध तैरने की बात करती है।"

"मैं ऐसा कर सकती होऊँ तो तुझे क्या एतराज़ है ?"

"एतराज़ क्यों न हो, मैं मनुष्य की शक्तियों की सीमाओं से परिचित हूँ।"

"किन्तु सीमाओं को लक्ष्य में रखकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता।"

"अब मैं तुझे किस तरह वास्तविकता का ज्ञान कराऊँ ? जाने दे, मगर कभी कहूँगा अवश्य। अभी वह सुनने के लिए तू पूरी तरह तैयार नहीं।"

आकाश में से उतर आयी चाँदनी ने बाहर के धुँधलके को उनकी अटारी के दो कमरों तक धकेल दिया। उदयन की आँखों के कोनों में, उसके पैर के नाखूनों में, उसके पेन की अलग पड़ी केप में इस अँधेरे ने जगह ढूँढ़ी। अमृता के वक्ष के साथ वह बहुत पहले से ही धड़कने लग गया था।

उसने दीवार की खूँटी पर लटकती लालटेन उतारी। दियासलाई ले आयी और देहलीज पर बैठ गयी। लालटेन का शीशा निकाला, साफ़ किया।

दियासलाई जलायी और शीशा चढ़ाया। लालटेन जली उसके बाद थोड़े क्षणों तक उसका उजाला बढ़ता गया। अमृता ने उसकी बत्ती ठीक की। लालटेन भभकने लगी। उसने बत्ती ऊँची की। लालटेन भभकती रही। इतना ही नहीं, बत्ती के नीचे का पूरा भाग सुलगने लगा।

"यह क्यों भभक रही है ?"

अमृता ने उदयन से इस तरह पूछा मानो उसके भभकने का कोई कारण वह न समझ सकी हो।

"उसे छूना मत। वैसे ही रहने दे। देखें क्या होता है? कितनी अधीरता से भभकती है? मधुरम् आसां दर्शनम्!"

अमृता तो व्यग्र हो उठी। वह लालटेन को फूँकने लगी। उसकी फूँक का कुछ भी असर नहीं हुआ।

उदयन खाँसता हो ऐसी आवाज में हँसता हुआ खड़ा हुआ:

"इश्क़ से तबीयत ने जिस्म का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्द ना दवा पाया।"

उसने एक लम्बी-सी फूँक मारी। लालटेन नही बुझी। उसने लालटेन नीचे रख दी और घड़ौंची के पास रखी बालटी ले आया। लालटेन पर औंधी ढँक दी। वह बुझे इसके पहले ही कमरे में अँधेरा छा गया। लालटेन जब भभक रही थी तब कमरे में अँधेरा और उजाला एक-दूसरे पर अधिकार जमाने के लिए छटपटा रहे थे। 'आटापाटा' का खेल चल रहा था।

"तूने देखा न! खनिज तेल में कितनी आग छुपी होती है!"

अमृता ने उदयन के कन्धे पर हाथ रखा। इतना ही नहीं, वह उसके पास खिसक आयी। उदयन ने जेब से लाइटर निकाला। सिगरेट जलायी और फिर लम्बा कश खींचकर अमृता के मुँह को धुएँ से ढँक दिया। अपने और अमृता के बीच धुएँ को छोड़कर वह छत की ओर बढ़ गया। उसके हाथ में सुलगती सिगरेट अँधेरे में एकदम अलग दिखाई पड़ती थी। अँधेरे अवकाश में वह एक चिनगारी बन ध्यान खींचती थी।

अमृता ने चिमनी जलायी। उसके बाद साफ़ करके लालटेन जलायी। थोड़ी देर तक एकटक दृष्टि से उसे देखती रही।

निष्क्रिय रहने का दण्ड भोगता कोई किसान, अरण्य के बीच एकदण्डिये महल पर गुप्तवास भोगती कोई राजकुमारी, पूरे उपवन में अलगाव भोगती सोनचम्पा की मुकुलित कली, अविरल बहती शून्यता को टिकाये रखते दो किनारे, साग की सूखी मंजरी, शिरीषपुष्प के मिसे तन्तु, हवा में उड़ते पतिंगे के पंख....अमृता के मानस-पटल पर क्या-क्या अंकित हो गया? कुछ भी टिका नहीं। जैसे हवा में अँगुलियों की छाप....शून्य शेष सृष्टि का क्षणिक अभिसार। गति और विरति।

वह उदयन के पास जाकर खड़ी रही।

उदयन को क्या सूझा था कि वह आज बार-बार ग़ालिब की पंक्तियाँ गहरी आवाज़ में बोले जा रहा था:

"शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक।"

वह खड़ा हुआ, अन्दर गया। खाट पर बैठ गया। उसमें इस तरह धँस

मानो रेत का कोई मकान ढह गया हो। आँखें बन्द कर लेने से थोड़ी नींद । उठने के बाद ताक़ में पड़ा अनिकेत का पत्र लेकर पढ़ने लगा। पढ़ते- नीचे लिखे अनिकेत के नाम तक पहुँचे, उसके पहले ही उसके अनिश्चय-भरे ने वह पत्र फाड़ डाला।

अमृता खड़ी थी, उसी जगह पर जहाँ पहले खड़ी थी। मानो उसके पैर जड़ ये थे।

उदयन ने छत की ओर नजर डाली। खाली खड़ी अमृता की पीठ दिखाई देखता रहा। उसे हुआ कि उसकी आँखों को क्यों न कुछ हो गया होता? अब भी वह अमृता को पहचान सकता है?

वह लेट गया। अमृता खड़ी है। दूर-दूर से आती कुत्तों के भौंकने की धीमी जें...घर के आँगन में एकदम सूख गये तिनके....चाँदनी में काली लकीरें ो चमगादड़ों के डैने ..श्मशान के पासवाली इमली की डाली पर से वरण में फैलती उल्लू की गहरी ध्वनि....सेमल की रुई के उड़ते रेशे....

उदयन जिसमें बैठा था उस कुरसी में वह बैठ गयी। उसका चेहरा आकाश ओर उठा। गाँव के ईशान कोने पर टूटते तारे का बुझ जाना....

वह खड़ी हुई और अपने बिस्तर में न जाकर उदयन की खाट की ओर । सो गया होगा ऐसा मानकर वह धीमे से उसके पायताने बैठ गयी। धानी से दीवार तक सरकी और सहारा लिया।

उसने उदयन के पैर गोद में ले लिये। लालटेन के प्रकाश में ऊपर चिपके के अपरिचित कण देखे। अपने पल्लू से उन पैरों को साफ़ किया। एकाएक के पास पड़े कागज के टुकड़े दीख पड़े। एक छोटा टुकड़ा उठाया। अक्षर— निकेत का प्रणाम!' पुराना पत्र आज पढ़ने का मन उदयन को क्यों हुआ ा?

दीवार का सम्पूर्ण सहारा लेकर उसने पलकें बन्द कर लीं।

उदयन के पैर हटकर दूर हो गये। वह चौंक उठी। उसने ऐसा झटका ुभव किया मानो कोई स्वप्न टूट गया हो। उसने देखा—उदयन हाथ का ारा लेकर बैठ गया है। उसने आँखें बन्द कर लीं। ऐसी स्थिति में बैठे उदयन अमृता को कभी नहीं देखा था। अमृता के चेहरे पर आ लटकी एक लट को ाकर वह सम्पूर्ण चेहरा देखता रहा।

निमीलित नयनों से अमृता ने अनुभव किया कि एक वीणा के तार युगों से ाते आनेवाले की अँगुलियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उदयन इस सम्पूर्ण चेहरे को देखता रहा। विश्व की कोई अपूर्णता इस हरे के पास नहीं फटक सकती।

समर्पण...एकत्व...प्रेम। कहते हैं कि प्रेम मृत्यु को जीत जाता है। अमृता है फिर भी मैं प्रेम को नकारता हूँ। उसने अमृता की चिबुक पकड़कर चेहरे को अपनी ओर किया। उसे लगा कि उसकी उष्ण साँस से इस चेहरे का सौन्दर्य मुरझा जायेगा।

दुबारा वह चारपाई में धँस गया।

अमृता की आँखें खुल गयीं। उसने देखा कि चन्द्रमा की किरणें खिड़की के बाहर विगलित होकर चाँदनी के रूप में छिटक गयी हैं। जैसे कि इन किरणों और चन्द्रमा का धरती के साथ एक-सा सम्बन्ध है।

उदयन करवट लेकर लेटा हुआ था। पास में जगह थी। उसे यहाँ से अपने बिस्तर तक पहुँचाना दूभर लगा। उदयन के बगलवाली जगह उसे अपनी लगी, केवल अपनी ही नहीं, एक साथ दोनों की अथवा दोनों की एक जगह।

करवट बदलना उसे एक ऊँचे पर्वत को लाँघकर उस पार जाने-जैसा लगा। परन्तु उसने साहस किया। उसने अपनी विमुखता दूर की। उसने देखा—इस अमृता को तो उसने देखा ही नहीं था। अमृता मिथ्या नहीं, सौन्दर्य है। शरीर नहीं, प्रेम है। यदि प्रेम न हो तो ऐसा दूसरा कौन-सा विधेयात्मक तत्त्व जगत् के क्रम को मातत्य दे सकता है? प्रेम के बदले अन्य किसी संज्ञा का प्रयोग करके भी इस तत्त्व को तो स्वीकारना ही पड़ेगा।

अमृता सौन्दर्य है।

वह पहचान नहीं पाया था।

अमृता प्रेम है।

आज वह जान सका है।

उसने अमृता का हाथ पकड़ा और अपने कान पर उसकी हथेली दबायी। भौंकते कुत्तों और उल्लुओं की आवाज में घुटा हुआ भय उसे सुनाई न दे, इसलिए उसने अमृता की हथेली से अपना कान दबाये रखा। उसे लगा कि समग्र कोलाहल मिट गया है और निष्ठुर समय भी उसकी शरण में आ गया है।

अमृता के हृदय की धड़कन में सहजता नहीं थी। उदयन के शिथिल हाथ में नया बल प्रकट हुआ और उसने अमृता को वक्ष के निकट खींच लिया। उसके चित्त के शून्य गगन में वसन्त के अन्तिम दिन की प्रातःकालीन अरुणिमा छलक उठी। अमृता को बाहुपाश में जकड़ लिया। अमृता अपने को भूल गयी: सूर्योदय के बाद जैसे अरुणिमा स्वयं अपने को भूल जाती है....।

किन्तु यह क्यों?

उदयन ने करवट बदल ली। उठ खड़ा हुआ। ताक में रखी अधूरी कहानी के कागज व्यवस्थित किये। और आगे लिखा:

वेदना को भी कुछ जानता हूँ। देखना कहीं तेरी सतर्कता से अवरुद्ध होकर वह
असमर्पिता न रह जाये। उसकी उपस्थिति में जो कुछ होता हो होने दे। तेरी
सतर्कता और तेरे दर्द को, तेरे दर्द की सजगता को और सतर्कता के बोझ को
विराट में विस्तृत होने दे। निष्क्रिय रहकर सक्रियता सिद्ध करने का एकमात्र
मार्ग है विजेता बनने की अभीप्सा छोड़कर, अपने विशिष्ट स्वातन्त्र्य का हठ
छोड़कर, समग्र के योग को स्वीकार लेना क्योंकि तृप्ति सीमित स्वातन्त्र्य में नहीं
वरन् निःशेष मिलन में है। इस मिलन-इच्छा का प्रारम्भ उसी से होता है जो
अपने निकट होता है।

मानता हूँ कि नयापन प्राप्त करने के लिए तू भिलोड़ा गया है। तेरा अपन
पूर्वपरिचित भिलोड़ा ममता और ताजगी से भरपूर। तेरे गाँव की वनश्री को
देख पाने का मुझे दुःख है। वहाँ दौड़ आने को मन होता है। यहाँ रेगिस्तान
सरहद पर जीनेवाला तेरी पहाड़ियों की नैसर्गिक सुषमा को देखने के लिए
तो तू उसकी मुग्धता को क्षमा करना। वैसे भी तू जानता है कि अपनी सं
का स्रोत वन से ही प्रकट हुआ है। अपने महान् देश का हृदय वनश्री की
में ही पोषित हुआ है। मुझे अच्छी तरह याद है, तूने कहा था, भिलोड़ा
मऊ गाँव में च्यवन ऋषि का आश्रम है। शायद यह भी कि आज जो
वहीं पहले कण्व ऋषि का आश्रम था। चलो यह भी आनन्द की बात है।
ऋषि-तपस्वी वनवासी थे। वनों ने भारत को क्या-क्या दिया है।
इससे भी सन्तोष है कि भिलोड़ा की वनश्री ने हमें एक वीर्यवान्
दिया है!

मैं अपने बारे में कुछ न लिखूं तो तुझे पत्र अधूरा लगेगा।
नाम जो लिखा है उसमें मैं भी समाहित हूँ। फिर भी अलग से प्रयत्न
यह मकान रखे काफी समय हो गया। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शर
कितनी ऋतुएँ बीत गयी! परन्तु इस मकान के पश्चिमी आँग
विकसते एक वृक्ष को मैंने आज ही पहचाना। यह रुद्राक्ष है, जिसके
जाने पर साधु लोग माला बनाकर पहनते हैं। मैंने इसको सींचने
चारों ओर एक क्यारी बनायी। पानी उंडेलकर इस छलकती क्या
रहा। लैला को तू जानता होगा। बहुत नटखट पक्षी है, किसी से
कौन जाने कहाँ से ये उड़ आये और चोंच भर-भर के पानी पी
गये। फिर तो जल-बिन्दु को चोंच में भरकर नीचे छोड़ने
बिन्दु फिर से पानी बन जा रहे थे। मानो इस क्रीड़ा से
इसलिए पानी में कूद पड़े। पंख भिगोकर पाल पर आये औ
कर उठें। पंख फड़फड़ायें। मैं तो काम-काज भूलकर उन्हें दे

उन्हें उड़ा देना अपने वश का नहीं। हम तो रहे प्रेमी आदमी। प्रेम के माध्यम से प्राण तक और प्राण के परिचय से सत्य तक की यात्रा करने के अभिलाषी जीवन को तो ऐसी छलछलाती क्यारी, उसकी पाल पर क्रीड़ा करती लैला की खुशी, वृक्ष की छुपी डाली पर फूट पड़ती कोंपलें, पवन से संचरित हुई तरु-लता की मुकुलित कलियाँ, शाम के समय खजूरी के पत्तों की श्रमित मर्मर ध्वनि, ऊषा की नित्य नूतन अरुणिमा, दूरवासी विहंग-वैतालिक का उत्साही स्वर, मुझे पौधा समझकर मेरे कन्धे पर बैठा भोला पतिंगा, रत्नगुंजा की सूखी फली के चटकने पर उसके बीज का चिकना रक्तिम वर्ण....सब कुछ सन्तर्पक बन जाता है।

बार-बार कोई अनाहत स्वर मेरे अन्त स्तल में जागकर इंगित कर जाता है कि यह सारी सृष्टि मेरा नीड़ है। मैं अपने इस नीड़ को छोटा नहीं बनने देना चाहता। निजत्व को बृहद् में भावित करने के नये-नये माध्यम तलाश कर रहा हूँ। उसकी पूर्व शर्त के रूप में निर्वेद और आनन्द के बीच समाधान पा लिया है।"

यह पत्र अमृता ने भी पढ़ा था। उसने अनिकेत को सूचित किया था कि उदयन यहाँ अनिश्चित समय तक रुकना चाहता है। उसकी तबीयत तो ठीक मालूम पड़ती है किन्तु उसके मन की गति को नहीं पकड़ पा रही है।

"क्या उत्तर दिया जाये ? गत पत्र में लिखा है उससे अलग तो कुछ कहने को है नहीं और अब मैं कह ही क्या सकता हूँ।"

गीत की कोई पंक्ति अभी इसके कण्ठ में जागी नहीं। स्वरतन्त्रियों की प्रकृति बदल गयी लगती है। हवा सूखी और विरल है जिसमें सर्दी सांगोपांग घुल गयी है। अब इसका असर बढ़ेगा।

जोधपुर के जिन स्थानों की यात्रा उसने उदयन के साथ की थी वहाँ जाने पर बरबस उसकी स्मृति हो आती थी। ऐसा क्या है कि उदयन ऐसे याद आता है ?

उसने डॉक्टरों को बम्बई पत्र लिखा। वे लोग अपने मित्रों से पूछनेवाले थे उसका क्या हुआ ? किसी भी प्रकार की क्षति उसके शरीर में नहीं रह जाये। आवश्यक हो तो विदेश भी ले जाया जाये।

अनिकेत की वाणी का स्वभाव बदल गया था। वह आजकल गीत की लय में नहीं ढल पाती थी। कोई सहकर्मी आता था तो उसे साहब का सद्भाव कम हो जाने का वहम हो जाता था।

अनिकेत को लगा कि यह सब ऊष्मा का अतिरेक था।

समय को रँगा नहीं जा सकता। जो रंग होते हैं वे तो बादलों के हैं...

वह का समय, शाम का समय, इनका समय....समय तो किसी का नहीं। और सके भेद नहीं किये जा सकते। सुबह और शाम में यहाँ क्या फ़र्क है? पास के ेत में खेजड़े की डाल पर लटकता बया का घोंसला सदा एक-सा दीखता है। इस घोंसले को पास में खड़े होकर लम्बे समय तक देखा जा सकता। घोंसले में शान्ति है। मात्र शान्ति और कुछ नहीं। इस घोंसले की रिक्त शान्ति के साधर्म्य-वाली एक शान्ति उसकी आँखों में स्थिर हो आयी थी। धूल के बवण्डर में उड़ आता कोई कान्तिहीन पंख ध्यान खींचे बिना ही उसे स्पर्श कर सरक गया था।

देर रात तक मकान के पिछवाड़े से एक शराबी पुरानी फ़िल्मों के गीत गाता-गुनगुनाता गुज़र रहा था। अनिकेत मानता कि नज़दीक आकर वह बिलकुल धीमे और लापरवाही से चल रहा है। उसकी आवाज़ में विफलता के दर्द का नशा है। अनिकेत उठकर उसे सुनने के लिए खिड़की के निकट गया।

कभी-कभी रात के बाद उसे सीधा शाम का ही अनुभव होता। और तब समय से पीछे न रह जाये इसलिए वह मंडोर की ओर घूमने निकल जाता। रास्ते के दोनों ओर पेड़ों के तनों के काले-सफ़ेद पट्टे उसका ध्यान आकर्षित करते।

वहाँ ऐसा कोई नियम नहीं कि किसी निश्चित स्थल तक जाकर वापस होना है। कई बार वह दूर तक निकल जाता।

उसका काम-काज बिलकुल ठीक चल रहा था। उसने अपने शोध-निबन्ध के तीन प्रकरण लिख डाले थे। परिस्थिति का यथातथ्य आलेखन करने तक व पहुँच चुका था। अब समस्याओं का स्वरूप समझ रहा था।

"बम्बई लिखे गये पत्रों का उत्तर नहीं। दो में से एक भी डॉक्टर ने उ नहीं दिया। उन्हें फिर से लिखूँ? या फिर मैं ही हिरोशिमा के डॉक्टर से देखूँ तो क्या बुरा है? मेरा वर्णन एकदम गलत तो नहीं ही होगा। किस प्र का हुआ है और अब उसका क्या उपाय है इतना जानने को मिले तो उ जल्दी शुरू किया जा सकता है।"

उसने पत्र लिखा : "उदयन ठीक हो जाये। ये लोग सुखी रहें। फिर तो मैं हूँ और मरुभूमि है। बहुत विशाल प्रदेश है। फिरता रहूँगा रहूँगा, लिखने-जैसा लिखूँगा। काम पूरा होता जायेगा वैसे-वैसे उन्मु अनुभव करता जाऊँगा। बस यह बच जाये। डॉक्टर कहते थे कि सक्रियता का अमुक व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ेगा और क्या परिणाम इस बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। शरीर की सू प्रक्रिया का ज्ञान प्रस्तुत करने के बावजूद विज्ञान यह बताने में अ

मानव पर रेडियो-सक्रियता का प्रभाव केवल इस प्रकार ही हो सकता है। परिणाम प्रक्रिया से आगे निकल गया।"

अनिकेत को उदयन के साथ एक वर्ष तक नौकरी करने का अवसर प्राप्त हुआ था। दूसरे वर्ष उसी के कारण अमृता का परिचय हुआ। उदयन के नौकरी छोड़ने का कारण कोई समझने को तैयार न था। उदयन पीरियड में था। आचार्य यों ही राउण्ड लेने निकले थे। उदयन की क्लास के पास से गुजरते समय खिड़की में से उन्होंने अपनी भीतर पैठी हुई आँखों से एक विद्यार्थी को आराम से बैठा देख लिया था। पीरियड पूरा होने पर उन्होंने विद्यार्थी को बुलाया था और उसपर जुर्माना किया था। किसी विद्यार्थी ने यह समाचार उदयन को जा सुनाया। उदयन ने उस विद्यार्थी को बुलाकर कहा, 'तू जुर्माना नहीं भरना। कहना कि वह पीरियड जिनका था उन्हें विद्यार्थी आराम से बैठें इसपर कोई एतराज़ नहीं था।' बात आगे बढ़ गयी थी। विद्यार्थी ने कहा था : 'साहब, आप क्यों झगड़ा मोल लेते हैं? मैं जुर्माना भर दूँगा।' परन्तु उदयन अपनी बात पर दृढ़ था। उसने जुर्माना माफ़ करने के लिए साफ़-साफ़ शब्दों में आचार्य से जा कहा था। आचार्य माने नहीं थे। परिणामस्वरूप संघर्ष हुआ। इतना ही नहीं, आचार्य की जिज्ञासा न होने पर भी उदयन उन्हें समझाने बैठा था। उसने कहा था : 'क्लास का सम्पूर्ण दायित्व अध्यापक का है। बाहर का कोई तत्त्व अध्यापक की अनुमति के बिना प्रवेश नहीं कर सकता। तो फिर बाहर घूमनेवाला क्लास में बैठे विद्यार्थी पर जुर्माना कैसे कर सकता है? प्रत्येक आदमी को अपना-अपना कार्य-क्षेत्र समझ लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त जुर्माना करना शत-प्रतिशत एक अशैक्षणिक प्रवृत्ति है। विद्यार्थी के विकास में इस प्रवृत्ति का कोई योग नहीं हो सकता। आचार्य के विकास में भी नहीं। भय कदापि शिक्षण का साधन नहीं बन सकता। विद्यार्थी बोला हुआ ग्रहण करता है तो फिर वह तनकर बैठे या बेंच पर पैर रखकर बैठे इसके साथ अध्यापक का कुछ लेना-देना नहीं है...' इस चर्चा ने उग्र रूप ग्रहण कर लिया था और कुछ अध्यापकों ने आचार्य से मिलकर उदयन की उद्दण्डता के विषय में अभिप्राय भी दिया था। कला विभाग का तो एक भी अध्यापक उदयन से सहमत नहीं था। विज्ञान विभाग का एक अध्यापक इस प्रश्न पर आचार्य से मिला था और सविनय कहा था : 'श्रीमान्, इस मुद्दे पर कोई अध्यापक त्यागपत्र दे यह कॉलेज के लिए गौरवप्रद नहीं है। उदयन के अध्यापन की प्रशंसा की जाती है, वह प्रतिभाशाली सर्जक है। वह दोषी नहीं है और मानो कि वह दोषी हो तो भी ऐसा आदमी खोना संस्था के हित में नहीं है।' आचार्य ने विद्यार्थी का जुर्माना माफ़ कर दिया था।

अमृता लिखती है :

"उदयन अपनी ओर कोई लक्ष्य नहीं देता। मेरी तो मानता ही नहीं। तुम आओ या कुछ लिखो। अब इसके उपचार में विलम्ब नहीं होना चाहिए।"

"उफ़्!"

बैठक में जाकर वह सोफ़े पर गिर पड़ा।

"वह हमारे प्रयत्नों के विरुद्ध ही हो तो क्या हो पायेगा? इन प्रयत्नों में हमें निष्फल बनाकर बदला लेना चाहता है? सम्भव है, अमृता का तिरस्कार भी करता हो। अमृता सफल होगी ऐसा विश्वास तो है किन्तु उदयन को केवल अमृता से ही विरोध नहीं होगा। उसका शरीर जिसका भोग बना है उस घटना के बारे में वह निरन्तर सोचा करता होगा। उसका विद्रोह होगा मानवजाति के आसन्न भूतकाल के सामने, रचे जा रहे इतिहास के सामने।

यह युद्ध मानव की भूल थी। अनिवार्यता प्रमाणित किये बिना ही यह खेला गया था। इसलिये यह 'युद्ध' नहीं था, भूल थी। भूल का परिणाम भूल करने-वाले नहीं, निर्दोष भोगेंगे। आधुनिक जगत् में युयुत्सु वृत्ति को प्रबल बनाने में नित्शे का कम योग नहीं। किन्तु कभी उदयन नित्शे के विषय में ख़राब बोला है? अब इस बारे में उदयन से चर्चा करने का अवसर नहीं रहा।

अमृता के कहने का अर्थ यह हुआ कि उदयन आत्महत्या की ओर........तो वह मेरा मित्र नहीं। जो मनुष्य स्वयं का भी मित्र नहीं उसे उसका मित्र कैसे बचा सकता है? उसने बम्बई किस लिए छोड़ा? वहाँ भिलोड़ा में क्या रखा है? मैंने भी भूल की। मुझे भी उसके साथ ही रहना चाहिए था। मैं उसमें जीवन की ममता जगाकर यहाँ आया होता तो अधिक अच्छा रहता।

........यहाँ रहकर भी यह तो हो सकता है। वह यदि ऐसा मानता हो कि अमृता सहानुभूति से प्रेरित होकर आयी है तो? उसे पराभव की प्रतीति हुई हो तो? सम्भव है कि वह शरीर के प्रति लापरवाह बने। शरीर! शरीर की हिफ़ाजत के बिना अन्य किसी की हिफ़ाजत करना सम्भव नहीं। शरीर हो तब ही अन्य अनेक अशरीरी अस्तित्वों का अनुभव हो सकता है। शरीर मात्र माध्यम नहीं। केवल आत्मा को ही नहीं जीना है। शरीर को भी ज़िन्दा रहना है। आत्मा तो है ही, वह तो अनादि और अनन्त है। उसे केवल होना होता है। जीना तो होता है केवल शरीर को। आत्मा को शरीर के जीवन के लिए निमित्त बनना होता है....क्यों आज विचारों का प्रवाह उलटी दिशा में बह रहा है। अथवा वहाँ दिशाओं का प्रश्न ही नहीं। केन्द्र है और त्रिज्याओं का विस्तार है। इसका वर्तुल जितना बड़ा, उस केन्द्रीय सत्त्व का विश्व उतना ही विशाल।

उदयन को क्या लिखूँ? मेरा उद्देश्य यदि वह भाँप गया तो? ऐसा नहीं

होगा इसका क्या विश्वास ? तो मैं उसके लिए उपयोगी नही हो सकता ? तो
जैसा कि वह कहता रहा है वह सचमुच अकेला है ? नही, अमृता भी है और अब
वे दो नही, दो नही रहकर एक बन गये हैं। 'अकेला' भी एक बन सकता है...
लिख देखूं। लिख पाता हूं या नहीं, मेरी कुशलता की कसौटी परख डालूं :

"प्रिय बन्धु,

जो काम लेकर बैठा हूं उसमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।
तू बार-बार याद आता है। तेरी सलाह लेने दौड़ आने का मन हो आता है।
सहकर्मियों में दो तो ऐसे है जिनका कार्यक्षेत्र अलग ही है। सोचता हूं कि इनके
साथ थोड़ा प्रवास करूँ। उनको समझने का थोडा विशेष प्रयास करूँ।

एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि जिसमें 'विल टु पावर' हो ऐसे पुरुष को स्त्री
विशेष चाहती है। तेरे और अमृता के संयोग का रहस्य मैं इस कथन में देख
सकता हूं। मैं बम्बई से रवाना हुआ उस दिन अमृता ने कहा था, 'सूर्यमण्डल में से
सूर्य को निकाला नही जा सकता। मेरे विश्व का सूर्य यह है, यहीं था।' प्रतीति
होने में विलम्ब हुआ। हां, उसका भी लाभ मिला कि आज समग्र रूप में प्रतीति
हुई।

मैं तो मूलत: भावुक ही रहा हूं। तेरी तुलना में साहित्य और कलाओं क
मेरा परिचय नहीवत् ही है, फिर भी इस बारे में बोलता ही रहा हूं। आज मु
अपनी ये चेष्टाएं बचकानी लगती है। बचपन से ही प्रकृति से प्रेम। और इसलि
वनस्पतिशास्त्र की ओर मुड़ा। फिर अन्य विज्ञानों और उनके तत्त्वज्ञान को
लक्ष्य रहा। परन्तु गहरे उतरे बिना ही वापस लौट आया। विज्ञान अधूरे
है ऐसा मैंने पहले कहा था। आज कहता हूं कि मेरी सामर्थ्य कम रही है। मै
से ही भावुक रहा हूं। वापस लौटा। भावुकता को मैं श्रद्धा मानने लगा
श्रद्धा से मनुष्य किसी बात को भी मान बैठता है, और संशयवृत्ति से ही
विकता को जान पाता है। मुझे लगता है कि अपने दो के अभिगमों में तेर
गम बलवान् और ठोस है। आज देर से ही सही किन्तु मैं तेरा अभिवा
हूं.... ......।"

अनिकेत अटक गया।

ऐसी बनावट ? भले ही उदयन को इससे कितना ही लाभ हो
किन्तु असत्य का आश्रय नही लिया जा सकता। उदयन के जिस चि
उसने अभी तक नही स्वीकारा, वह आज उसे प्रसन्न करने के लि
ऐसी खुशामद उदयन पचा भी सकेगा ? नही, ऐसा व्यवहार नही हो
उसने पत्र फाडकर टुकड़े-टुकडे कर दिया। इतने छोटे-छोटे
कि कागज का अस्तित्व भी था या नही यह विचार ही न उठे

अमृता लिखती है :

"उदयन अपनी ओर कोई लक्ष्य नहीं देता । मेरी तो मानता ही नहीं । तुम आओ या कुछ लिखो । अब इसके उपचार में विलम्ब नहीं होना चाहिए ।"

"उफ़् !"

बैठक में जाकर वह सोफ़े पर गिर पड़ा ।

"वह हमारे प्रयत्नों के विरुद्ध ही हो तो क्या हो पायेगा ? इन प्रयत्नों में हमें निष्फल बनाकर बदला लेना चाहता है ? सम्भव है, अमृता क तिरस्कार भी करता हो । अमृता सफल होगी ऐसा विश्वास तो है किन्तु उदयन को केवल अमृता से ही विरोध नहीं होगा । उसका शरीर जिसका भोग बना है उस घटना के बारे में वह निरन्तर सोचा करता होगा । उसका विद्रोह होग मानवजाति के आसन्न भूतकाल के सामने, रचे जा रहे इतिहास के सामने ।

यह युद्ध मानव की भूल थी । अनिवार्यता प्रमाणित किये बिना ही यह खेल गया था । इसलिये यह 'युद्ध' नहीं था, भूल थी । भूल का परिणाम भूल करने वाले नहीं, निर्दोष भोगेंगे । आधुनिक जगत् में युयुत्सु वृत्ति को प्रबल बनाने में नित्शे का कम योग नहीं । किन्तु कभी उदयन नित्शे के विषय में खराब बोला है अब इस बारे में उदयन से चर्चा करने का अवसर नहीं रहा ।

अमृता के कहने का अर्थ यह हुआ कि उदयन आत्महत्या की ओर........त वह मेरा मित्र नहीं । जो मनुष्य स्वयं का भी मित्र नहीं उसे उसका मित्र कैसे बचा सकता है ? उसने बम्बई किस लिए छोड़ा ? वहाँ भिलोड़ा में क्या र है ? मैंने भी भूल की । मुझे भी उसके साथ ही रहना चाहिए था । मैं उ जीवन की ममता जगाकर यहाँ आया होता तो अधिक अच्छा रहता ।

........यहाँ रहकर भी यह तो हो सकता है । वह यदि ऐसा मानत अमृता सहानुभूति से प्रेरित होकर आयी है तो ? उसे पराभव की प्रती तो ? सम्भव है कि वह शरीर के प्रति लापरवाह बने । शरीर ! हिफ़ाजत के बिना अन्य किसी की हिफ़ाज़त करना सम्भव नहीं । ही अन्य अनेक अशरीरी अस्तित्वों का अनुभव हो सकता है । शरी नहीं । केवल आत्मा को ही नहीं जीना है । शरीर को भी जिन्दा तो है ही, वह तो अनादि और अनन्त है । उसे केवल होना होता है केवल शरीर को । आत्मा को शरीर के जीवन के होता है....क्यों आज विचारों का प्रवाह उलटी दिशा में ब दिशाओं का प्रश्न ही नहीं । केन्द्र है और त्रिज्याओं का जितना बड़ा, उस केन्द्रीय सत्त्व का विश्व उतना ही वि

उदयन को क्या लिखूं ? मेरा उद्देश्य यदि वह

इस श्वास का मदिर सौरभ, उसके स्पर्श की वशीकरण शक्ति, उसके आश्लेषण का दृढ़ नियन्त्रण....।

उसकी बन्द पलकें मानो प्रलय के प्रवाह में पाल ओढ़े तैरती दो नौकाएँ...।

दो उदयन का सायुज्य सिद्ध होने के क्षण आज तक विद्रोह करते अटक गये कोषों में नव जागृति आ जाती थी। समग्र जीवैषणा का तीव्र वेग से रूपान्तरण शुरू होने लगा था। किन्तु वहाँ एक उदयन की एक प्रतिरोधक शक्ति सफल होती थी। और एक क्षण दूसरे क्षण में कोई इतिहास रचे बग़ैर विलीन हो जाता था।

आज तक जिसे स्वप्न की तरह सँजोया था, उसे धधकती चिता का सौभाग्य सौंपना असह्य है। जो कल तक दृढ़ थी वह पारिजात के पुष्प की भाँति सहज ही झर जाने को तैयार हुई है। किस लिए? पतिंगा जिसके लिए भस्म हो जाने के लिए तैयार है वह तो है मिट्टी का एक दीया। वह क्यों भस्म हो? उसके लि तो आनेवाला कल है।

तो फिर वह वासन्ती उन्माद से छलकता वातावरण अनजिये ही जायेगा? इसे जीने में कोई स्खलन नहीं था - मिलन था। उसे यह अभीष्ट तो फिर एक उदयन किस लिए दो बनकर संघर्ष किया करे? और ये उदयन वस्तुतः तो एक हैं।

तो फिर कामना और निर्णय का संघर्ष क्यों? संघर्ष में भोगनी यातना किस लिए?

अमृता के वक्ष की ऊष्मा ग्रहण कर रही उसकी उत्तप्त आँखों को एक चित्र दिखाई दिया। स्मरण में वह चित्र पूर्णतः सुरक्षित था। हि हॉस्पिटल के डॉक्टर ने उस चित्र का परिचय दिया था। डॉक्टर अपने से बोल रहा था: यह चित्र एक बालक का है। जो एक युवा माँ जनमा था। जन्म लेने के बाद लम्बे समय तक वह श्वास लेता रहा हाथ नहीं थे, पैर नहीं थे। वह मात्र एक विच्छिन्न आकार का था सिरे पर थोड़ा अलग उठा हुआ भाग था। यह भाग मस्तक का थ वहाँ पास-पास दो छोटे-छोटे छेद थे। उन छिद्रों द्वारा वह श्वास हो दिखाई दे, परन्तु हक़ीक़त में तो वह निर्जीव मांस का लौंद बालक था। डॉक्टर ने परिचय पूरा करते हुए कहा था: मिस्ट बालक का चित्र है। उदयन के गले बात नहीं उतरती थी। यदि डॉक्टर उपहास कर रहे हों। किन्तु डॉक्टर के पास उ समय न था। उनकी देख-रेख में बहुत-से मरीज़ थे और ज ही मर्ज़ थे। उन्होंने थोड़े शब्दों में उदयन की शंका का वह बच्चा माँ के गर्भ में था तभी रेडियो-सक्रियता क

मिट जाये ।

हाँ, प्रश्न भूतकाल को मिटाने का ही है ।

"अमृता ने तार किया इसका कारण कोई छोटा नहीं होगा । उसे यदि विमु
ही रहना है तो अमृता की अब क्या स्थिति ? वह कृतसंकल्पा है । इस सव
दोष मेरा ही है । इस विषचक्र का केन्द्र मैं हूँ । मेरा जीवन अन्य के साथ कित
जुड़ा हुआ है ? उदयन अकेला हो बना रहेगा ? यह उसका हठ है । उसके हठ
तोड़ने का साहस अमृता में नहीं ? मुझमें भी नहीं ? भिलोड़ा जाऊँ ? उसे भरो
करा आऊँ कि अकेलेपन से मुक्ति का अनुभव नहीं होगा । इस द्विधा में से बा
आ । तेरा अकेलापन स्वयंसर्जित द्विधा में से ही जनमा है । इसमें से बाहर आ
यह तो जड़ता है । आस-पास दृष्टि डाल । तू ऐसा करेगा तो मैं मानूँगा कि
नास्तिक है, स्वार्थी है । अमृता ने तेरे लिए जो त्याग किया है उसका मू
समझ ।

मैं सोचता हूँ इस सबके पीछे कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे अमृता के प्र
पक्षपात हो ? और उसके प्रति मुझको सूक्ष्म असन्तोष ?

क्या अभी भी इसके लिए—इनके लिए मुझे कुछ त्याग करना शेष है ? व
भी कुछ शेष रह गया होगा तो उसका भी त्याग करूँगा ।

आज ही भिलोड़ा के लिए रवाना हो जाऊँ ?

या फिर हिरोशिमा लिखे पत्र की राह देखूँ ? एक-दो दिन राह देख लूँ ।'

दो ओर से पवन बह रहा था । अथवा दो पवन थे । ये एक-दूसरे का स
करते हुए बह रहे थे । निस्तब्धता नहीं थी । संघर्ष था ।

उदयन दो थे : एक निर्णय एक देह ।

यह कुरुक्षेत्र था ।

अमृता इस कुरुक्षेत्र का मैदान, दिशाएँ और आकाश थी ।

अमृता एक और अखण्ड थी ।

उदयन दो थे । इन दोनों में से एक भी केन्द्रित नहीं था । दोनों वि
हुए थे । इतना ही नहीं, दोनों के अंश एक-दूसरे में घुल रहे थे । किस क्षण
दोनों एक बन जायेंगे यह कहना सम्भव नहीं था । ऐसा हो सकता था क्यो
अमृता थी ।

अमृता मात्र निमित्त नहीं थी, काम्य परिणाम भी थी ।

हर पहाड़ी पर दावाग्नि जल रही थी । जल की बूँद-बूँद में बड़वानल प्र
हुआ था । उच्छ्वास की वाष्प में विद्युत् के प्राकट्य की सम्भावना थी ।

इस श्वास का मदिर सौरभ, उसके स्पर्श की वशीकरण शक्ति, उसके आश्लेषण का दृढ़ नियन्त्रण....।

उसकी बन्द पलकें मानो प्रलय के प्रवाह में पाल ओढे तैरती दो नौकाएँ...। दो उदयन का सायुज्य सिद्ध होने के क्षण आज तक विद्रोह करते अटक गये कोषों में नव जागृति आ जाती थी। समग्र जीवैषणा का तीव्र वेग से रूपान्तरण शुरू होने लगा था। किन्तु वहाँ एक उदयन की एक प्रतिरोधक शक्ति सफल होती थी। और एक क्षण दूसरे क्षण में कोई इतिहास रचे बग़ैर विलीन हो जाता था।

आज तक जिसे स्वप्न की तरह सँजोया था, उसे धधकती चिता का सौभाग्य सौंपना असह्य है। जो कल तक दृढ़ थी वह पारिजात के पुष्प की भाँति सहज ही झर जाने को तैयार हुई है। किस लिए? पतिंगा जिसके लिए भस्म हो जाने के लिए तैयार है वह तो है मिट्टी का एक दीया। वह क्यों भस्म हो? उसके लिए तो आनेवाला कल है।

तो फिर वह वासन्ती उन्माद से छलकता वातावरण अनजिये ही बीत जायेगा? इसे जीने में कोई स्खलन नहीं था - मिलन था। उसे यह अभीष्ट था तो फिर एक उदयन किस लिए दो बनकर संघर्ष किया करे? और ये दो उदयन वस्तुतः तो एक है।

तो फिर कामना और निर्णय का संघर्ष क्यों? संघर्ष में भोगनी प यातना किस लिए?

अमृता के पक्ष की ऊष्मा ग्रहण कर रही उसकी उत्तप्त आँखों को ए एक चित्र दिखाई दिया। स्मरण में वह चित्र पूर्णतः सुरक्षित था। हिरोशि हॉस्पिटल के डॉक्टर ने उस चित्र का परिचय दिया था। डॉक्टर अपने अ से बोल रहा था : यह चित्र एक बालक का है। जो एक युवा माँ की जनमा था। जन्म लेने के बाद लम्बे समय तक वह श्वास लेता रहा था हाथ नहीं थे, पैर नहीं थे। वह मात्र एक विच्छिन्न आकार का था। सिरे पर थोड़ा अलग उठा हुआ भाग था। यह भाग मस्तक का था। वहाँ पास-पास दो छोटे-छोटे छेद थे। उन छिद्रों द्वारा वह श्वास लेत हो दिखाई दे, परन्तु हकीक़त में तो वह निर्जीव मांस का लौंदा न बालक था। डॉक्टर ने परिचय पूरा करते हुए कहा था : मिस्टर उ बालक का चित्र है। उदयन के गले बात नहीं उतरती थी। वि यदि डॉक्टर उपहास कर रहे हों! किन्तु डॉक्टर के पास उपहा समय न था। उनकी देख-रेख में बहुत-से मरीज थे और जितने ही मर्ज थे। उन्होंने थोड़े शब्दों में उदयन की शंका का समा वह बच्चा माँ के गर्भ में था तभी रेडियो-सक्रियता का

पृथ्वी पर आने से पहले ही यह मनुष्य की सिद्धियों की विरासत लेकर आया था। कारण कि विरासत तो माँगे विना भी मिल जाती है।

वह चित्र देखते समय जैसा दिखाई दिया था उससे भी अधिक स्पष्ट और सुरेख बनकर इस समय दिखाई दिया था। उस देहधारी का बल टूट गया था और निर्णय ने करवट बदल ली थी। उदयन एक बनकर खड़ा हुआ।

अभिनिष्क्रमण।

अवान्तर स्थिति तक वह पहुँच सका।

कोष-कोष में निष्पन्न स्पन्द का उसे नये रूप में परिचय हुआ। और एक जीवनशून्य भविष्य की छाया में उसने चैन की साँस ली। अन्तिम कहानी पूरी करके वह मुक्त हुआ। चेतना का संचार अब केवल नाभि में ही सिमट आया था। उसकी अनुभूति परमाणु की प्रक्रिया के लिए तद्रूप बन गयी न्यूट्रोन और प्रोटोन। धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों की समतुला। केन्द्र के चारों ओर घूमते इलेक्ट्रॉन...पदार्थ का शक्ति में रूपान्तरण और विस्फोट..."नहीं, मैं अमृता का विनाश नहीं करूँगा। उसे असम्पृक्त रखने में मैं अपनी समग्र शक्ति लगा दूँगा।"

"तुझसे भले ही विलम्ब हुआ, अमृता। मैं विलम्ब नहीं करूँगा।"

परसों पीठ में असह्य दर्द जागा था। चलने की ताक़त न होने के बावजूद आँगन में टहलता रहा। इसलिए? डॉक्टर कहते थे कि किडनी यदि इन दवाओं से नहीं सुधरे तो ऑपरेशन से तो अवश्य ही सुधर जायेगी। किन्तु लहू सुधर सकता है? ल्यूकेमिया के बारे में मैंने जो कुछ जाना था वह सब मैं अनुभव कर रहा हूँ। चार सौ 'रोएँटजन' शरीर में प्रवेश कर जायें तो आशा क्षीण। मेरे शरीर में तो और अधिक ने प्रवेश किया होना चाहिए। अनिकेत ने लिखा कि डॉक्टरों तथा उसने स्वयं तद्विदों से पुछवाया है। किन्तु इन डॉक्टरों के वर्णन से कोई विदेशी तद्विद सच्चा निदान कर सकेगा? इस चमड़ी को उसकी चमक वापस मिलेगी? इन भुजाओं को अपना बल वापस मिलेगा? सर्दी-गर्मी के सामान्य परिवर्तन को न सह सकनेवाला शरीर अब दिशाहीन मंजिल प्राप्त कर सकने की शक्ति प्राप्त कर सकेगा?

"नहीं।"

एक और सप्ताह के बाद उसने अपने-आपसे अधिक विश्वास के साथ कहा नहीं।

"मैं रुग्ण हूँ।"

अमृता भले ही हक़ीक़त को न स्वीकारे।

जो सामने है उसे अदेखा करने से परिस्थिति कोई बदल नहीं जाती।

मैं रुग्ण हूँ।

अब सब जानेंगे। जो कोई जानेगा उसके मन में करुणा पैदा होगी। खेत में ढल पड़े घूहे को देखकर जागते मनोभाव मुझे लोगों की आँखों में देखने को मिलेंगे।

अमृता नहीं गयी।

उसे कितनी बार कहा कि दूर रह, दूर रह। किन्तु हर बार भूल जाती है। इस रोग के बारे में उसे जिस तरह मैंने बताया या वर्णन किया उससे तो किसी भी स्वजन के चित्त में आतंक छा सकता है। माँ भी हो तो शायद वह भी घबरा जाये। परन्तु इस नारी ने तो मातृत्व की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर दिया। यह इतनी अधिक निर्भय कब से हो गयी? जो मजाक़-मजाक़ में कई बार पारसियों के 'टॉवर ऑफ़ सायलेन्स' का नाम सुनते ही भय से प्रकम्पित हो जाया करती थी वह मेरे वातावरण में प्राणवायु बनकर घुल गयी है। यह मेरे साथ न होती तो दो-चार दिन तक अँधेरे मकान में चमगादड़ उड़ते रहते और उसकी संख्या में एक प्रेत की वृद्धि हो जाती।"

अनिकेत के पत्र का एक वाक्य उसने दो बार पढ़ा—'प्रेम मृत्यु को जीत जाता है।'

प्रेम!

"इच्छा होती है कि इसकी गोद में सिर रखकर रो लूँ। उसे समझे बिन जो अवहेलना कर बैठा उसके लिए प्रायश्चित्त कर लूँ। किन्तु कहाँ है विदाई दसों दिशाओं में प्रेम बनकर वह व्याप गयी है।

इसे धोखा देकर खिसक जाना सम्भव नहीं।

अब तो संकुचित होते-होते केन्द्र में पहुँचकर सूख जाऊँगा।

अनिकेत न आये तो अच्छा।

अथवा वह भले ही आये। उसके पैरों की आहट सुनाई दे, उसके पा तो...नहीं, मुझसे यह नहीं हो सकता। अमृता की उपस्थिति का अनादर मु नहीं हो सकता। मृत्यु का भी मोह क्यों? वह भले ही मन्थर गति से आ शायद अमृता की सत्ता को उखाड़कर आगे बढ़ने की उसमें शक्ति नहीं। प्रे मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है—श्री अरविन्द कहें या अनिकेत, अ के मौन में इससे भी ऊँचे सूत्र घुमड़ रहे हैं।

पीठ को कुतर खाती वेदना को सहता हुआ पड़ा होता हूँ और एक-एक में मुर्गों के दर्द के पिरामिड आँखों के आगे झूलते देख रहा होता हूँ व सामने आकर खड़ी हो जाती है। उसका अपरिवर्तनशील स्मित काले अन्धा विद्युत् गति से चीर डालता है।

मैंने दवा फेंक दी वह कुछ बोली नहीं। एक ही दिन में उसने अहमदाबाद से दवा मँगा ली।

कुछ बोलती नहीं। सामने आकर खड़ी रहती है। हाथ लम्बा करती है।

बार-बार करवट बदलने की इच्छा होती है मानो चमड़ी घिस गयी है। अब चमड़ी की अन्दरवाली तह बाहर आयेगी? और रिसने लगेगी? कोहनी के ऊपरी भाग पर यह क्या हुआ है?

अब पूरे समय शर्ट पहने रखता हूँ। एक दर्द शरीर पर जगह-जगह व्यक्त होने लगा है। दूसरा तो सद गया है। सरौता बन किडनी को कुतर रहा होगा। अच्छा है ऑपरेशन नहीं करना पड़ेगा। समय आने पर प्रश्न स्वयं हल हो जायेगा।

समय, स्थल और अमृता।

समय स्थल को भुला देता है।

अमृता स्थल और समय दोनों से विमुख करा देती है।

और यह दर्द? समग्र को, अमृता को छोड़ शेष समग्र को। परन्तु आज तो अमृता ही समग्र बन गयी है। इसलिए समग्र को भुलाने के लिए जूझती है। दर्द और समग्र को आश्रय देकर बैठी हुई अमृता के बीच संघर्ष है।

दर्द और अमृता।

अमृता और समग्र।

स्थल और समय।

स्थिति और गति।

गति और विरति।

विरति और विलयन।

शून्य से महाशून्य की ओर...

"सुबह तक तीव्र वेदना उसे मर्माहत करती रही। यह वेदना अतृप्त लालसा की वेदना थी। जहाँ लालसा हो वहाँ वेदना नहीं हो सकती, दुःख होता है। यह दुःख नहीं था। रात के जागरण से उसकी प्रलम्ब आँखों के अपांगों में जो रंग उभर आया था वह वेदना का था।

इस अन्तिम प्रयास को भी इसने निष्फल बना दिया?

तो अब इसको समर्पित करने के लिए मेरे पास क्या शेष रह गया है?"

अनिकेत सौरभ की बात करता था।

उदयन पूरे फूल को पहचानता था।

कहाँ गयी वह लालसा ?

"क्या वह नहीं जानता कि प्रत्येक पुष्प अपनी पत्तियाँ और अपने सौरभ को विगलित करके स्वयं के सौन्दर्य को फलित हुआ देखना चाहता है ? क्या वह नहीं जानता कि अमृता को केवल स्वीकृति से सन्तोष नहीं है ? क्या मुझे उससे कहना पड़ेगा कि नारी तृप्त होना चाहती है, वह आधान चाहती है....

अब भी वह मानता होगा कि मैं वापस लौटूँगी। और मुझे दिशा सूझ गयी है यह बम्बई से पत्र आया है। अब मजे में हैं। मैं यहाँ सुखी हूँ यह जानकर उन्हें जानकर वे आश्वस्त हुए हों ऐसा लगता है। इतना है आनन्द हुआ है। आनन्द क्यों न हो ? स्वजन हैं।

पुरातत्वमन्दिर के नियामक ने अधिक छुट्टियाँ भी मान्य रखीं। उनके नहीं, अनिश्चित समय तक छुट्टी पर रहने की उन्होंने छूट भी दे दी। उनकी उदारता और सद्भाव मैं जानती हूँ। अध्यवसायियों की कमी है इसलिए उन संस्था छोड़ जाऊँ यह उन्हें पसन्द नहीं। परन्तु अब मैं उदयन को अकेला छोड़ एक क्षण के लिए भी दूर जाने को तैयार नहीं। यह सब इसे किस समझाऊँ ?"

उदयन आजकल घर से बाहर नहीं निकलता। खटिया पर पड़ा रहता वित्त। कभी गठरी बनकर खुली आँखों पड़ा रहता है। उसकी निर्जन कोने में खींच ले गये। बहुत ढूँढ़ी तब मिली। उसे कुतरकर गये। जगह-जगह दाँत गड़ा दिये थे।

रात को वह सो गया होता और कोई चूहा दौड़ते हुए अमृता की गुजरता है तो वह व्याकुल हो जाती। फिर उसे नींद नहीं आती। दाँत की कट-कट और घड़ी की मशीन की टिक-टिक उसे एक-जैसी चूहे को काल का प्रतीक माननेवाले ने सौजन्य दिखाया है। चूहे के दाँ ही क्रूर होते हैं।

आज बड़े सबेरे उदयन ने खटिया की पाटी पर हाथ पछाड़ा। पास दौड़ी आयी। चूहे ने उदयन के कान पर दाँत गड़ाये थे।

इस समय वह चूहे पकड़ने का पिंजरा लेकर आ रही थी। चूहों द्वारा मचा रखे इस उत्पात के बारे में सोचती रही। उन उनके दाँत...

काल को भी पिंजरे में कैद करना पड़ेगा। उदयन की दी हो जाने तब तक समय रुक जाये तो...यह कैसे सम्भव हो ? कहाँ है ? पानी तो किसी का प्रतिबिम्ब भी झेलता है, उसे को पहुँचाने का काम करता है...किन्तु यह समय ? पहले के

नहीं खपता।

किसी भी पदार्थ को कुतरते चूहे के दाँत...आज इस पिंजरे में क़ैद हो जायेंगे ?

गाँव के मुख्य मार्ग से वह गली की ओर मुड़ी। बाजरे के पौधे की एक सूखी पत्ती हवा के साथ आयी और अमृता के पैर पर पड़ी। उसकी अवगणना कर अमृता आगे बढ़ी। पीछे मुड़कर देखा कि उस पत्ती को एक और झोंका लगा और उछल गयी। रेत पर से हवा में और हवा में से रेत पर। पत्ती उड़ती, टकराती, रुकती एवं झोंके खाती जा रही थी।

बायीं ओर के घर के आँगन में पड़े कोयले के थैलों की थप्पी पर दृष्टि पड़ी। सबसे ऊपरवाले थैले का मुँह सुतली से सिला हुआ था पर वह टूट गयी थी। कोयले बाहर निकल पड़े थे। इनका काला किरकिरा रंग अमृता की पुतलियों में आ चुभा। वह आगे बढ़ी।

उसके दाहिने पैर की चप्पल की एक पट्टी टूट गयी थी। सँभलकर चलने लगी। धूल के कारण उसकी एड़ियों की चमक धूमिल हो गयी थी।

अस्त होते सूर्य की किरणें ऊँचे-नीचे मकानों के असमान छप्परों पर अन्तिम क्षण भोग रही थीं।

धूल-भरी साँझ हवा में उड़ रही थी। सूर्य की किरणों ने अपनी आखिरी झाईं से रजकणों को रँग डाला था।

खिड़की के पत्थर की खुरदरी चौखट पर एक भैंस अपनी स्थूल गरदन रगड़ रही थी। उसके सींग दरवाज़ों से टकरा जाते। आवाज़ होती। अमृता रुक जाती। एक लड़का आकर भैंस को लकड़ी मारता। भैंस आलस्य झाड़कर आगे बढ़ती। अमृता आकर दरवाजा खोलती। वह चुपके-से प्रवेश करती। सूखकर दब गयी आँगन की घास पर चलने से अब उसका पूर्ववत् हाहाकार सुनाई नहीं देता। घास अपनी स्थिति समझ गयी थी। अब मिट्टी में मिलने को हो गयी थी।

आँगन की दाहिनी दीवार की आलमारी में लगी लकड़ी की चौखट को दीमक लग गयी थी।

सीढ़ी पर चढ़ते पैर मानो अपनी आवाज़ से डरते हों ऐसे सँभलकर आगे बढ़ रहे थे।

...

कहाँ गया उदयन ? खाट तो खाली पड़ी है। व्याकुल होकर वह छत की ओर गयी। उदयन जल्दी से शर्ट पहनने लगा। क्या करता था वह ? उसके नज़दीक दर्पण पड़ा था।

वह शर्ट पहने इसके पहले अमृता को एक काला दाग़ उदयन की पीठ पर

दायी ओर दीख पड़ा। दर्पण की सहायता से वह अपने उन घावों को देख रहा था?

उदयन उसके सामने देखने लगा। वह झेंप गयी।

लालटेन जलायी। लालटेन का शीशा चटका हुआ था। अतः उसे सावधानी से जलाया।

उदयन खाट तक पहुँचकर उसमें जा गिरा। उसने अमृता से कह दिया कि इस देह का भार अब नही उठा पाता।

दवा लेने वह आलमारी के पास पहुँची। हाथ लम्बा किया। कुछ नही था। फेंक दी होगी? अब इसे क्या कहा जाये?

और इसके शरीर पर पड़ा वह घाव? इसकी आँखों पर सूजन आ गयी है। होंठ काले पडने लगे हैं।

उदयन ने दोपहर में भी नहीं खाया था। अमृता ने चाय बनायी थी। वैठ की इच्छा न थी। किन्तु अमृता पकड़कर बिठायेगी इस डर से वह बड़ी कठि से बैठ गया। और फिर चाय पीकर लेट गया। अमृता सिगरेट ले आयी थ पर उसने सिगरेट फेंक दी थी। अमृता कुछ भी नही समझ सकी थी।

भरी दुपहरी में वह छत पर खडी थी। आस-पास के मकान देखकर खाली होने के बारे में सोचती रही थी: "इस गाँव की बस्ती बढ़ती नही, जातो हैं। लोग बम्बई और अहमदाबाद-जैसे शहरों में चले जाते हैं। जो भी पढ़ा-लिखा है वह तो लौटता ही नही। दोनों ओर के घर खाली है फिर ये सब उदयन के तो नही हैं? इसने बेचे हों। तो फिर इनमें को क्यों नहीं? या फिर जिन्हें रहने की आवश्यकता नही वे लोग ही ख शक्ति रखते हैं? जो भी हो, किन्तु उदयन ने बेचे हों तो कोई तो इस रहना चाहिए। ये सब इसी के मकान होंगे। हर एक की खपरैल भ है। हर एक समान रूप से खाली है। हाँ, इस एक मकान में हम हालांकि इससे भी खालीपन में कोई अन्तर नही पड़ा होगा...

उस दिन रात के अँधेरे में वह कहाँ गया था? मैंने उससे तो अच्छा होता। उसने कैसा जवाब दिया—'अमृता, मैं अपने महँगा। तू चाहती है उसी तरह महँगा। तू इतनी दूर तक आय ल्दी खतम हो जाये यह ठीक नही। तेरी और अनिकेत की एक नि मान ली है। मैं भविष्य को मानने लगा हूँ। उसकी प्रत शुरु कर दिया है। अपने भविष्य को अपनी मृत्यु को पहचानने बढ़ा हूँ। अब मैं इसे प्राप्त करने का प्रयत्न न करूँ तो भी वह विश्वास है।'

इतना बोलकर उसने आँखें मूँद ली थीं। मुट्ठी बन्द कर अँगुलियों के नाखूनों का रंग देख रहा था। एक लम्बा मौन पसरा हुआ था वहाँ। लगता था कि वह आज भी कुछ नहीं बोलेगा।

थोड़े बिस्कुट डालकर उसने पिंजड़े को देहलीज पर रखा। उदयन की खाट के पास बिस्तर बिछाकर वह सो गयी।

इन दिनों उसने कुछ पढ़ा नहीं।

सुबह—उदयन, शाम—उदयन, रात—उदयन।

समय और उदयन अथवा समय भी नहीं, मात्र उदयन। उसकी आँखों में खण्डहरों के इतिहास की परछाइयों का आवागमन, अमुखर होंठ, होंठ पर काली उदासी....।

गाँव के लोगों की दीवाली पूरी हो गयी। किन्तु सिवान में से अब भी आदिवासी युवतियों के समूहगीत हवा के पंखों पर तैरकर यहाँ तक आ पहुँच रहे थे :

"चाँद के उजवाले मैं हरियाला लेने गयी थी रे
चांद के उजवाले मुझे तो दीखा काला नाग रे
चल रे पाह्या चल..."

करवटें बदलती और प्रहर बदलते।

उदयन भी जागता होगा। कुछ भी बोलता नहीं। वह करवट नहीं बदलता।

अमृता बिस्तर से उठ बैठी। अपना बिस्तर ठीक उदयन की खाट से सटा दिया। उदयन इस तरह साँस ले रहा था मानो सो गया था...।

छह

वह किसी भी बात का विरोध नहीं करता। इसलिए उसे क्या रुचेगा और
या नहीं अमृता इसका ध्यान रख रही थी। अमृता की सावधानी के प्रति वह
ख़बर था, उदासीन था। उसकी रुचि-अरुचि शमित हो गयी थी। प्रत्यक्ष-
त्यक्ष, सत्य-मिथ्या, अस्तित्व-अनस्तित्व किसी के भी विशेषत्व का उसे
भव नहीं होता क्योंकि वह ऐसा करना नहीं चाहता। भेद-रेखाओं को वह
टा देना चाहता था।

मुँह पोंछती-पोंछती अमृता उदयन के पास गयी। उसकी आँखें बन्द थीं।

अमृता को लगा कि वह कुछ सोच रहा है। दाढ़ी बढ़ गयी थी। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि विषाद बढ़ आया। उसके चित्त में विषाद को झेल सके ऐसा कोई केन्द्र सक्रिय नहीं। अपने को नहींवत् मानकर जो कुछ है उसकी शरणागति उसने स्वीकार ली थी।

अमृता के चले जाने के बाद उसे अपने संवेदन की पड़ताल करने का मन हुआ। निष्क्रियता का सातत्य छोड़कर कुछ क्रियात्मकता अनुभव करने की बहुत दिनों बाद आज उसमें लालसा जागी। लोप हो गयी भेद-रेखा जागी। और उसने बायें हाथ की कलाई पर से एक बाल पकड़कर खींचा। वह जड़ के साथ उखड़ गया। दूसरा बाल खींचा।

अमृता आयी।

"यह क्या करता है?"

"मुझे लगा कि इस तरह बिल्कुल निष्क्रिय होकर समय में घुल जाऊँ यह मेरे उपद्रवी स्वभाव के अनुरूप नहीं। मुझे कुछ करना चाहिए। जमे हुए इस दर्द का मैं अभ्यस्त हो गया हूँ। बाल खींचने पर मैं एक भिन्न प्रकार के दर्द का अनुभव करता हूँ। मेरे दो मुख्य दर्दों से यह छोटा है, नगण्य होने पर भी अलग प्रकार का है। अनजाना है। इसलिए मैं इसका अनुभव कर सकता हूँ। अनजाने से मिलने में आनन्द होता है।"

"मेरी एक बात मानेगा?"

"तेरा क्या नहीं माना? बता।"

"मुझसे अब एक दिन भी और यहाँ नहीं रहा जा सकता। तुझे इस स्थिति में देखते रहने की मुझमें सहनशक्ति नहीं। चल हम बम्बई चलें।"

"बम्बई बहुत दूर है, अमृता। अपना देश इतना विशाल है कि उसमें जो दूर है वह भी दूर नहीं लगता, नजदीक लगता है। किन्तु [illegible] मानव को तो जो दूर हो वह दूर ही लगे, नजदीक हो वही नजदीक लगे। संवेदना के अभाव में वह किसकी मदद से दीर्घ अवकाश को [illegible] का जोड़ सकता है?"

"उदयन!"

"तू मुझे यहाँ से ले जाना चाहती थी। बम्बई जाने में [illegible] नहीं। और [illegible] का मोह भी किस लिए? [illegible] है। [illegible] है। तुझमें शक्ति हो तो मुझे बम्बई तक पहुँचा। किन्तु [illegible] बीच ही...।"

उदयन के होंठ पर [illegible] हँसना चाहता [illegible]।

"इस तरह [illegible] क्यों खड़ी है? देख, मेरी [illegible]

आकार और रंग उभरने लगे हैं। तेरे विधाता की सृष्टि सच ही अद्भुत है, अमृता !"

अमृता खड़ी नहीं रह सकी। दोनों हाथों से मुँह दबाकर खाट की पाटी पर ढल पड़ी। उदयन ने शक्ति संचित कर पाँव खींच लिये। सिसकी लिये बिना अमृता रोने की अभ्यस्त हो चुकी थी। पर आज इस आघात पर नियन्त्रण नहीं रख सकी। सिसकियाँ सुनकर जाग उठता इस निर्जन घर का सन्नाटा उसे भयावह लगता था। किन्तु आज वह सब भूल गयी। भले ही, शापित सृष्टि की समग्र भयानकता आकर उससे चिपट जाये, उसे होश नहीं रहा।

"बस, यही तेरा अन्तिम उपाय है ? चल मान जाता हूँ।"

"सच ?"

"हाँ, तेरी इच्छा है तो अभी थोड़ी और दवा खाऊँगा। जा पहले भी तू जिसे दो बार बुला लायी थी उस डॉक्टर को बुला ला। उन्हें अपने विषय का थोड़ा-बहुत भी ज्ञान होगा तो मैं मानता हूँ कि वह मुझे यहाँ से ले जाने की जरूरत नहीं समझेंगे।"

"तुझे अब नहीं बोलना है।"

"तुझ-जैसी अनुभवहीन कन्या को सम्बोधित कर बोलना भी बेकार है। तूने कभी किसी मरते आदमी को देखा है ?"

"मुझे मात्र जीवन का ही अनुभव है।"

"यह पर्याप्त नहीं अमृता, जरा ध्यान से देख। यू आर फेसिंग माई डेथ।"

"आई नो इट सिंस लांग एण्ड माई फेथ विल टर्न इट इन टु लाइफ़।"

"बीइंग योर फ़्रेण्ड आई मस्ट गिव यु एडवांस कन्सोलेशन।"

"आपका तार है।" पोस्टमैन की आवाज़।

अमृता तार ले आयी।

"सुन्दर समाचार। जापान जाना है। अपने खर्च पर वे बुलाते हैं। प्रवास की व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील हूँ। उदयन प्रसन्न होगा। अनिकेत का प्रणाम।"

उसने उदयन को तार सुनाया और नीचे देखे बिना उत्साह से चलने लगी।

जीप रवाना हुई। अमृता ने देखा वह अधिक देर बैठ नहीं पायेगा।

"देख अपना पैर सँभाल। वह जो काँच की किरच पड़ी है उसे उठाकर फेंक दे। अब मैं उसकी ओर नहीं देखते रहना चाहता।"

अमृता को इस बात की चिन्ता नहीं हुई कि उसे काँच का एकाध टुकड़ा लग सकता है। उसने देहलीज में रखा चूहों का पिंजरा भी वैसे ही रहने

दिया। जिस वेप में थी उसी में के लिए कह आयी और डॉक्टर को बुला लायी। डॉक्टर ने जाँच की। रोगी को जल्दी ही किसी अच्छे अस्पताल में दाखिल करने की बात से वे सहमत हुए। वे भी अहमदाबाद आने को तैयार हो गये।

घर खाली करते देर न लगी।

उदयन ने जीप में बैठने के बाद एक बार घर की खपरैल की ओर देख लिया। *वह इतना ऊँचा न देख पाया कि उसकी दृष्टि मुँडेर तक पहुँच सके।*

"अब आँखें पीछे की ओर रहेंगी, ठीक है। तू सुन है।"

ड्राइवर सावधानी से जीप चला रहा था। फिर भी अमृता सूचना दिये बग़ैर नहीं रह सकी।

उदयन को याद आया। बचपन में वह कुतूहल-भरी आँखों से देखता रहता—दागी गाँव के सिवान में आकर अर्थी का मुँह बदलते हैं ताकि कोई ममता न रह जाये।

"मैं कितना भाग्यशील हूँ। अपनी आँखों से अपनी अर्थी गुज़रते देख रहा हूँ। किन्तु जिसे देखना चाहिए उसकी अभी तक तैयारी नहीं है।"

बायीं ओर की सीट पर अमृता बैठी। सूर्य उसकी ओर था। उसकी छाया काँच में से आते प्रकाश के कारण उदयन की ओर झुकी हुई थी। पर वहाँ तक ठीक-ठीक नहीं पहुँच सकी।

जीप थरथराने लगती। पास की सीट पर बैठे डॉक्टर के पूछने पर ड्राइवर ने कहा: "विब्रेशन होता है। तीसेक मील से आगे गति बढ़ जाती है तो यह थरथराना बन्द हो जाता है। मोड़ पर गति धीमी करनी पड़ती है इससे विब्रेशन शुरू हो जाते हैं।"

उतार-चढ़ाव, धक्के, हिचकोले और उस कम्पन के समय कई बार तो उदयन को देख कर अमृता का हृदय जाल में फँसकर खिंचती मछली की तरह ऊपर उठ आता था।

उदयन के पास की काँच की खिड़की के बाहर की प्रकृति पर धूप छा रही थी। कोई घटादार वृक्ष, कोई पहाड़ी, मुख्य रास्ते की ओर बढ़ी आती कोई पगडण्डी, किसी खेत की मेंड़ पर खड़ा बैल, *तालाब में बैठी भैंसें,* सड़क के निकट चरता कोई गधा, आकाश में उड़ जाती कबूतरों की टोली....जो कुछ दिखाई दे जाता था। पलक बिन्दु बनकर उसकी पुतली में समाया रहता। और फिर आँखों की अचंचल श्वेतता में पसर जाता। एक आकाश ही ऐसा था जो बिन्दु बनकर आँख में नहीं समा सका। वह दूर ही दूर रहता था।

आकाश आज निरभ्र था, रिक्त था। उसकी रिक्तता उष्ण थी। कई बार

सूर्य की किरणें काँच में से होकर उदयन के शरीर पर ओढ़ायी चाद
चमकता धब्बा बनातीं। उदयन को यह नहीं रुचता। पर उसकी
व्यक्त नहीं होती। अमृता अनजान रह जाती। अपनी स्वतः सूझ
कई बार किरणों की गरमी को अपने कन्धों पर झेल लेती थी।
की दिशाएँ बार-बार घूमती रहती थीं। मोड़ आते ही जीप में क
लगता था।

उदयन ने अमृता के सामने देखा। अपना स्थान छोड़कर वह
सीट के पास नीचे ह्वील पर बैठ गयी। अभी जो धूप का धब्बा पड़
नहीं रुचता था। अब इस धूप को रोकती अमृता की छाया पड़ रही
भी उसे पसन्द नहीं। धूप या छाया उसे कुछ भी सहन नहीं होता।

जीप से उतरकर तलैया के किनारे बरगद की छाया में बैठने का
ऐसा किया जा सके तो बहुत दिनों से रुकी हुई नींद आ जाये। परन्तु
किया जा सकता था। इतना ही नहीं ऐसा करने की इच्छा भी
की जा सकती थी। अमृता मान बैठेगी कि वह उसके सामने विघ
रहा है।

दहेगाम पहुँचने पर अमृता को लगा कि मंज़िल आ गयी। उर
को कुछ सूचनाएँ दीं। डॉक्टर ने अस्पताल में जगह दिलाने में मदद की

तीसरी मंज़िल पर नये स्पेशल रूम में उदयन को पहुँचा दिया गय
शरीर कोई दूसरा उठाये यह उसको अजीब लगा।

चिकित्सा शुरू हुई। कपड़े बदले गये। नर्स ने कपड़े धोबी को
डॉक्टर के देखने के लिए रख दिये।

उदयन ने पानी माँगा। अमृता ने ला दिया।

"जीप में बहुत कष्ट हुआ। अब तो आराम हुआ होगा!"

"थकान का अनुभव हो सकता हो तभी तो आराम का अनुभव हो

आगे क्या बोले कुछ सूझा नहीं। समय पर डॉक्टर आये। जाँ
कर चले गये। फिर उदयन से बोलकर वह बम्बई और जोधपु
अर्जेण्ट फ़ोन बुक कर आयी। बड़े भाई विमान से आ जायें। पैसे
अथवा यहाँ अपने किसी व्यापारी मित्र के पास से लेकर दे दें।
जापान जाने को कहता है। विदेशी मुद्रा का क्या होगा? शायद एयर
के लिए भी वह प्रयत्न कर रहा हो, उसे भी ट्रंक-काल कर लूँ। व
भिलोड़ा जायेगा तो समय खराब होगा।

अमृता आयी तब उदयन उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पाँचेक
लिए वह दूर गयी थी। उदयन को अमृता की अनुपस्थिति का अह

और उसे लगा कि वह संवेदनशून्य तो. नहीं हो गया। उसने देखा कि बार-बार पोंछने से उसके नाक की सोनचम्पक त्वचा गुलाबी बन गयी है। "यह सम्पन्न परिवार की कन्या, विचार और संवेदना में भी सम्पन्न। मुझ-जैसे एक खानाबदोश के खातिर मर-मिट जाने के लिए तैयार हो गयी है! मेरी कृतक उपेक्षा से यह हतप्रभ नहीं हुई और अन्त में उसने ऐसे क्षण पर लाकर छोड़ दिया है कि मुझे इसकी अनुपस्थिति महसूस हुई। मैंने इसकी प्रतीक्षा की और प्रतीक्षा करना अर्थात् जीवन की कामना करना। मुझे प्रसन्नता है कि मैं इसे बचा सका हूँ। क्योंकि इसके प्रेम की मुझे प्रतीति हुई है। अमृता!"

उसने हाथ ऊपर उठाया। अमृता उसके लिए निकट सरक आयी।

"मैं तेरा अभिवादन करता हूँ अमृता! अभिनन्दन! तेरी विजय हो गयी!"

"मैं क्या देख रही हूँ? उदयन की आँखों में आँसू?"

"सचमुच? तो, तो अभिनन्दन मुझे मिलना चाहिए।"

"मिलेगा, जरूर मिलेगा। तू थोड़े दिनों में ठीक होकर एक प्रसंग पर अनेकों के अभिनन्दन का अधिकारी होगा।"

"यह तो ठीक है। अनिकेत के आने में कितना समय लगेगा?"

"ट्रंक-काल के लिए मैं नम्बर बुक कर आयी हूँ।"

"नम्बर मिले तो उसे कहना कि जल्दी आये। मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"जल्दी आयेगा। जापान के लिए बुकिंग प्राप्त करने में पड़ा होगा।"

"तो उसे कह देना कि जापान तो मैंने देख लिया है। आज भी मेरे स्मरण में वहाँ की सारी दृश्यावली ताजी है। अब वहाँ जाने की जरूरत नहीं।"

"तेरे उपचार के बहाने हमें जापान देखने को मिलेगा। वहाँ के लोगों का परिचय इससे ही मिल जाता है कि उन्होंने लिखा—हमारे खर्च पर भेजो।"

"मुझे लगता है कि अभी तूने डॉक्टरों की बातें नहीं सुनीं।"

"कौन-सी?"

"ल्यूकेमिया। और अब किडनी का काम-काज बन्द!"

अमृता विश्वास नहीं कर सकी। वह प्रमुख डॉक्टर की केबिन की ओर भागी। डॉक्टर ने बड़ी सद्भावना से उससे बातचीत की। उसने कहा कि किडनी काम करने लग जाये तो जापान ले जाने से अन्य विकृतियों का इलाज शायद हो सकता है। अमृता ने फिर से जाँच करने को कहा। डॉक्टर ने

अनिच्छा होने पर भी एक्सरे मशीन भी मँगायी। आधे घण्टे तक जाँच की।

अमृता को लगा कि उदयन की दाढ़ी बढ़ गयी है। शेव हो जाये तो उसका चेहरा फ्रेश लगे। उदासी धुल जाये।

डॉक्टर ने इंजेक्शन लिख दिये। इससे पहले जो इंजेक्शन अस्पताल में से दिये थे वे भी मँगाये। पर्स लेकर अमृता बाजार जाने को तैयार हुई थी कि भिलोड़ा के डॉक्टर आये। वापस लौटने से पहले उदयन के समाचार जानने की इच्छा हुई थी। उन्होंने अमृता का हाथ बँटाया। सेलाइन सेट लगाया गया। उसमें इंजेक्शन डाले गये। उदयन के प्रति शुभ-कामनाएँ व्यक्त कर उन्होंने अमृता से बिदा ली।

रात को दस बजे उसे मालूम हुआ कि जोधपुर में फ़ोन 'रिसीव' नहीं कर रहा है। बम्बई का फ़ोन जल्दी लग गया था। भाभी ने आश्वासन दिया था कि बड़े भाई के घर आते ही उन्हें तुरन्त अहमदाबाद भेज दिया जायेगा।

डॉक्टर अन्तिम विजिट पर आये तब अमृता उनसे वही प्रश्न पूछ बैठी जो उसने पहले पूछे थे। डॉक्टर ने टालते हुए कहा—कई बार किडनी स्वतः ही चालू हो जाती है। ईश्वर इन्हें बचा ले ऐसी मेरी प्रार्थना है।

अमृता ने इंजेक्शन के लिए पूछा और कहा कि शहर के किसी मित्र डॉक्टर को कन्सल्ट करना हो तो किया जा सकता है। उसे मुँह माँगी फ़ीस दी जा सकती है।

डॉक्टर ने खून की जाँच-रिपोर्ट पढ़ी। उस बारे में कुछ बोले नहीं। उन्होंने उदयन से दुबारा एक प्रश्न पूछा :

"अन्तिम बार कब पेशाब हुआ था ?"

"सुबह बैठा था।"

"कितना हुआ था ?"

"हुआ था या नहीं मुझे याद नहीं। बहुत दिनों से यह पूरा विभाग अनियमित हो गया है। इसलिए मैं इस ओर से एकदम उदासीन हो गया हूँ।"

डॉक्टर मरीज़ की ओर देखते रह गये। उन्होंने रिपोर्ट में लिखी जन्म तारीख देखी :

"मैं तुम्हारे लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।"

"किन्तु मेरा ईश्वर है या नहीं इसका मुझे पता नहीं। फिर भी सम्भव है कि प्रार्थना के प्रभाव से ईश्वर का जन्म हो। आभार, डॉक्टर आपके प्रेम के लिए आभार। सुबह हम अवश्य मिलेंगे।"

नर्स से डॉक्टर ने ब्लड प्रेशर नापने का यन्त्र माँगा।

नोट किया। अमृता को दूसरे इंजेक्शन लाने को कहा। दो मिनट में लौट-

कर आये। उन्हें ध्यान आया कि यह युवती अकेली है और रात के समय खुली रहनेवाली दवा की दुकान बहुत दूर है। अमृता से कहा, "मैं किसी अन्य को भेज देता हूँ। वह ले आयेगा। आप यहीं रुकिए। मैं रात को दो बजे आ जाऊँगा।"

डॉक्टर चले गये।

अमृता खड़ी थी। उसका मुँह लटक गया था। सेलाइन सेट की ट्यूब में से दवा टपक रही थी।

उदयन ने इशारे से कुरसी बतायी।

अमृता बैठ गयी। पचीस वर्ष की थकान ने एक साथ उसकी चेतना को ढँक लिया।

"अमृता!"

उदयन की स्फीत आवाज़ में भी उसे अपनी थकान का अहसास हुआ। वह खड़ी हुई और उसके पास गयी।

"तेरे पास कागज़ होगा?"

"डायरी है।"

"ला।"

अमृता ने डायरी ढूँढ डाली।

"मैं क्या करूँगा? अपने हाथ में ही रख। वह कुरसी मेरे नज़दीक खींचकर बैठ। अब तुझे मेरे एकदम नज़दीक रहना होगा क्योंकि तू सुन सके उतनी ही आवाज़ से मैं बोल सकूँगा। दो वाक्य बोलते-बोलते साँस चढ़ जाती है। इस बारे में कुछ लिखना नहीं। उच्चारण अस्पष्ट रह जाये तो भी मुझे विश्वास है कि तू उसे शुद्ध रूप में लिख सकेगी। तेरी समझ के प्रति मुझे पूरा भरोसा है। तो चल लिख।"

"किन्तु....तुझे आराम करना है।"

"बाद में आराम करूँगा और यह जो कुछ लिखा रहा हूँ वह भी आराम के लिए ही है।"

"क्या लिखवाना है?"

"वसीयतनामा।"

अज्ञात भविष्य का भार उसके सिर पर झूल गया। वह केवल भार नहीं था, उसमें भविष्यहीनता का आभास भी था।

उसने शून्य दृष्टि से पेन खोला। लिखना शुरू किया:

"मैं इकरार करता हूँ कि मैंने अपने समय को जिया है। इस बारे में मुझे कुछ भी असन्तोष नहीं। क्योंकि मैंने असन्तोष को जिया है। मैं अपने युग से

कभी अलग नहीं पड़ा। उसने मुझे सम्पूर्ण साथ दिया है।"

एक क्षण आराम कर वह आगे बोला :

"मैं प्रत्यक्ष विश्व को माननेवाला था। परन्तु आँखें बन्द करना सीखने बाद मैंने अनेक विश्व देखे। मेरे दृश्यमान विश्व का विस्तार हुआ। जिन प्रसं को मैं अन्यायकर्ता मानता था वे मेरे स्मरण पट पर काले बिन्दु बनकर अंकि हो गये थे। एक दूसरे अस्तित्व के सान्निध्य में वे काले बिन्दु पिघल गये हैं। जिस प्रत्यक्ष जगत् को मैं सामने रखकर चलता था वह दो बार बदला। अथ प्रत्यक्ष जगत् सम्बन्धी मेरी धारणा में दो बार परिवर्तन हुआ है। जो बदलता वह जगत् नहीं, मेरी धारणा हो तो जगत् ने मेरे साथ अन्याय किया है यह हक़ीक़त नहीं, मेरा विचार है। अन्ततः जिसकी बात सच निकली वह मेरा मि है यह मेरे लिए कम गौरव की बात नहीं। उसने कहा था कि सच्चा विश्व मेरे अन्दर बसता है। जो बाहर दिखाई देता है वह तो वास्तव में उस अन्तर्नि का बिम्ब है। आज मैं प्रत्यक्ष होनेवाले का नहीं, वरन् दृष्टि का भरो करता हूँ।"

नर्स आयी। उसने 'सेलाइन सेट' की ओर देखा। उदयन के सिर पर ह रखा और चली गयी।

"यन्त्रों के विरुद्ध मैं प्रायः मन की भँडास निकालता रहा हूँ। आज देखता हूँ कि यन्त्र मेरा उपचार कर रहे हैं। मेरे सामने जो लटक रहा है वह मुझे बचाने के लिए है। यन्त्र निर्दोष हैं। इन्होंने अपनी कोई अलग संस्कृ नहीं रची। जो कुछ रचा गया है वह मेरा—मनुष्य का काम है। यदि मैं स को सँभाल सकूँ तो यन्त्र या इनके नाम पर आरोपित संस्कृति मेरा क्या लेनेवाली थी?

मैं मानता था कि ईश्वर नहीं है। न जाने क्यों यह ईश्वर इन दिनों बार-बार याद आता है। ज्यों-ज्यों मैं इसे नकारता गया वह अधिकाधिक निकट आता गया। अन्त में अमृता के रूप में आया। आज ईश्वर सम्बन्धी अ सभी मान्यताओं को मैं पुरानी घोषित करता हूँ। इनके बारे में मैं संशयग्रस्त ईश्वर के अस्तित्व के बारे में मेरे अग्रज संशयग्रस्त हुए थे। उन्होंने कह दिया कि ईश्वर नहीं है। मुझे उनकी विरासत मिली। मुझे लगता है कि ई नहीं है इस धारणा के प्रति सशंक होने का समय अब आ गया है।

परमाणु की प्रक्रिया को समझते समय मेरे मन में प्रश्न उठा—यह किसकी? इस संचेतना का रहस्य क्या? यह एक भौतिक घटना है। ऐसे उ की अपेक्षा मुझे थी। किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। बुद्धि और तर्क सन्तोष नहीं दे सके। अपनी इन्द्रियों से अनुभव न किया जा सके ऐसा भी

बहुत कुछ होगा, होगा ही। इस अनभोगी सम्पत्ति की विरासत आप सबके लिए अभुक्त छोड़कर जा रहा हूँ।''

उदयन अचकचाया। अमृता ने उसके सामने देखा। अभी विरासत पूरी नहीं हुई है। यह सूचित करने के लिए उदयन ने स्मित करने का प्रयास किया। पर अमृता उसे देख नहीं पायी। वह आगे बढ़ा :

"जब मैंने कहा था प्रेम नहीं है तब मुझे लगा कि अमृता नहीं, इसका निजत्वपूर्ण कोई अस्तित्व नहीं, इसलिए वह संख्यातीत मनुष्यों की भाँति अस्तित्व भोग रही है। ऐसा मानकर मैं अपने ही अस्तित्व से दूर था। जागृत नहीं था, भ्रमित था। मैं जिसे 'प्रेम' कहता था वह 'प्रेम' न था, प्रेम का भ्रम था। प्रेम के भ्रम में भी प्रेम का आंशिक स्वीकार है। शायद प्रेम को समग्रतः स्वीकार करना दुष्कर है। वह तो किसी अनिकेत या किसी अमृता से ही हो सकता है। मुझ-जैसे नेतिवाचक बन चुके मनुष्य का यह काम नहीं। परन्तु जैसे सफलता का अनुभव होता है वैसे निष्फलता का भी अनुभव होता है। शायद वह अधिक निविड़ होता है। इसी आधार पर कह सकता हूँ कि प्रेम के अभाव से प्रेम का भ्रम अच्छा। क्योंकि भ्रम नकारात्मक नहीं है। भ्रम था इसलिए मैं प्रेम तक पहुँचा।''

अमृता के हृदय में शेष अभिलाषा जगी : "उषा बनकर इसकी आँखों में उग आऊँ और इसके चित्त को अरुण आलोक से भर दूँ। इसके अंगों के अणु-अणु को अभिनव तेज से छलका दूँ...अपना स्वास्थ्य इसको दे सकी होती तो.... शायद साधना कम रही...

"आज मुझे किसी से विरोध नहीं। परन्तु आभार तो मैं दो व्यक्तियों का मानूँगा ही। एक अनिकेत का, जिसने मुझे समझने का प्रयत्न किया। मैं उसे मित्र कहूँगा। दूसरा आभार अमृता का, जिसके कारण मैंने अपने को समझने का प्रयास किया, जिसने मेरे समग्र विरोधों को अपनी अतुल सहनशीलता द्वारा विलीन कर दिया। उपेक्षा दूर कर जिसने मुझमें अपेक्षा को जन्म दिया। जिसकी उपस्थिति में मुझे अननुभूत जागृति प्राप्त हुई। और इसी कारण मरण की शरण हो जिन्दगी के विरुद्ध अन्तिम विद्रोह कर लेने की कामना बुझ गयी। मुझे यह सब कहना पड़ता है, यह एक विवशता है। समय मिला होता तो मैं जीकर बताता। किन्तु अब जीकर बताने का असन्तोष भी किस लिए? अमृता के समुदार सान्निध्य में मैं एक सम्पूर्ण जिन्दगी जिया हूँ। मैं इसे क्या कहूँ? मित्र? नहीं, क्योंकि मुझे जो अभिप्रेत है उस अर्थ की सम्पूर्णता इस शब्द में व्यक्त नहीं होगी। मैं इसे अमृता कहूँगा....अमृता!

मृत्यु के पश्चात् किसी भी रूप में अपने अस्तित्व को टिकाये रखने में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। हो तो वह उचित भी नहीं। मृत्यु के साथ मेरा दायित्व

पूरा होता है फिर भी मेरा यह शरीर, जिसे तब सभी शव कहेंगे, यदि चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थियों के काम लगे तो अच्छा। अग्निदाह द्वारा पंचभूत में घुलकर महाशून्य में एकरूप हो जाना मेरे लिए आवश्यक नहीं। इस मृत शरीर के कुछ अवयव प्रदर्शन में रखे जायें तो इसका भी मुझे विरोध नहीं। उस समय रोगग्रस्त मनुष्य पर दया दिखाते दर्शकों को देखकर अकुलाने के लिए मैं नहीं होऊँगा। आज से पहले ही मेरी अकुलाहट क्षीण हो गयी है।

मैंने जो कुछ लिखा वह प्रकाशित होनेपर सार्वजनिक हो गया। इसलिए अपने किसी लेखन को रद्द करने में मैं असमर्थ हूँ। और इसे रद्द करने का मोह किस लिए? परन्तु हाँ, इन रचनाओं को इकट्ठा करके, इन्हें सजाकर मेरा स्मारक बनाने का प्रयत्न न किया जाये। कीर्ति द्वारा अमर होकर किसी के स्मरण का मैं बोझ नहीं बनना चाहता। इसका अधिक स्पष्टीकरण कर दूँ—

रेडियो-सक्रियता का शिकार बनकर मैंने द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त को जिया है। हिरोशिमा जिसका शिकार हुआ वह तो शायद युद्ध भी न था, कपट था। वहाँ के लक्षातीत मनुष्य आज भी इस कपट का परिणाम भुगत रहे हैं। रुग्ण होने के बाद मैं इन बनजाने-अनदेखे बन्धुओं के साथ एकात्मकता अनुभव कर सका हूँ। इतने सारे बन्धुओं के साथ मैं आत्मीयता अनुभव कर सका हूँ। इससे मुझे जीवन की समग्रता प्राप्त हुई है।

जो लोग मानव जाति के इतिहास में पराजित रूप में पहचाने जाते हैं, जिनके विनाश की बातें देखने को मिलती हैं, उन तक भी मैं हिरोशिमा के अनुभव के बाद फैला हूँ। आज भी ये परमाणु-विस्फोट के प्रयोग चल रहे हैं। इन दायित्वहीन विस्फोटों के परिणामस्वरूप ऊँचे आकाश में बनते स्थिर अश्लील बादलों को देखकर कविता के द्वारा तिरस्कार व्यक्त करनेवाले, रूढ़िवादियों द्वारा असामाजिक और बेवकूफ़ कहे जानेवाले कवियों को मैंने सराहा है। मैं इनके आक्रोश को जानता हूँ। किन्तु बीमार पड़ने के बाद मैंने युद्धखोर कहे जानेवाले किसी पर कड़वे और तीखे व्यंग्य नहीं किये। मैं किसी का निविड़ भाव से तिरस्कार नहीं कर सका। मैंने देखा कि समय अनन्त है। और समय के सन्दर्भ में जिन्हें बहुत बड़ा माना था वे घटनाएँ बिलकुल छोटी दिखाई दी हैं। मनुष्य भविष्य में मानने लगे तो भविष्य इतना विशाल है कि अन्य कुछ भी उसे सन्तप्त नहीं कर सकता। मैं जिनका तिरस्कार करता था उनमें और मुझमें बहुत कुछ समानता थी। वे भी मनुष्य ही थे। मनुष्य का मनुष्य के साथ का सम्बन्ध उद्वेगरहित होकर समझना ही पड़ेगा। ऐसा करनेवाला कभी अकेला नहीं रहेगा। जो मनुष्य अपने को अकेला मानता है उसके भीतर भी कम से कम एक विश्व तो बसता ही है।"

अनिकेत से कहना कि...क्या ?....अमृता इस वाक्य के उत्तरार्द्ध में शब्द सँजोने लगी। किन्तु शब्दों का तालमेल नहीं बैठता था।

दूर सीढ़ी पर तेज़ी से चढ़ते क़दमों की आवाज़ सुनाई दी। अनिकेत होगा? तेजी तो ठीक किन्तु यह आवाज़...फिर भी उसने दरवाज़े के बाहर जाकर देखा। अखबारवाला।

अखबार देखते-देखते डॉक्टर आये। उसमें उदयन का समाचार छपा था। प्रसिद्ध कहानीकार, विद्वान् और पत्रकार...बीमारी का समाचार....ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे।

डॉक्टर ने समाचार-पत्र अमृता को दिया। रक्तचाप नापा। उन्होंने 'रेकार्ड' देखा। पहले नोट किया गया अंक क्रमशः घट रहा था। किन्तु इस हद तक अंक गिर जाये और रोगी जीवित रहे यह चिकित्साशास्त्र के नियमों के एकदम विपरीत था। प्रत्यक्ष न देखा होता तो इस घटना पर वे कभी विश्वास न करते। साठ, पचपन, चालीस...यह क्या ?

शरीर बहुत ठण्डा पड़ गया है। खून में से ज़हर को अलग करने की क्रिया अब शुरू नहीं की जा सकती। डॉक्टर वापस लौटे। दो वृद्ध साहित्यकार सामने मिले। डॉक्टर ने 'गुडमार्निंग' कहा। उनके साथ डॉक्टर वापस आये। उदयन ने उन्हें प्रणाम करने का प्रयास किया।

दोनों वृद्ध भग्न गति से लौट गये और दरवाज़े के बाहर जाकर खड़े रहे। उनके हाथ में लटकती बेतें स्थिर थीं...वह...प्रश्न...सीढ़ियों पर दृढ़ क़दमों की ठोस आवाज़....

वह भिलोड़ा पहुँचा तो प्रभात हो चुका था। उदयन का घर ढूँढ़ने में देर न लगी। खिड़की खुली थी। सब दरवाज़े खुले थे। वह सीढ़ी चढ़ गया था। देहलीज़ में औंधे पड़े पिंजरे में एक चूहा दौड़-धाम कर रहा था...अनिकेत वापस लौट गया था। गाँव के चारों ओर विश्रान्त पहाड़ियों पर छाया हुआ हँसता उजालाउसे दिखाई नहीं दिया था। उसे जानने को मिला 'कल अहमदाबाद गये'। स्पीडोमीटर टूट गया तो? उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं। उतार-चढ़ाव आने पर भी गति कम नहीं होती थी। लहरों पर उछलती नाव की तरह जीप चढ़ाई को लाँघ जाती थी। मोड़ पर सड़क की सीमा को पहिये मिटा देते थे। आस-पास की रमणीय सृष्टि उसे दिखाई नहीं देती थी। जीप के काँच में भी उसका प्रतिबिम्ब पकड़ना सम्भव नहीं था। अनिकेत को मात्र अपनी दिशा ही दिखाई देती थी।

नये डॉक्टर ड्यूटी पर आये। नब्ज़ पकड़ में नहीं आती थी। रक्तचाप तीस था। अमृता खिड़की के पास गयी और उसने अपनी डबडबायी आँखें पोंछीं फिर उदयन के बायीं ओर जाकर खड़ी हो गयी। डॉक्टर ने फिर रक्तचाप नापा। नयी मशीन मँगायी। फिर नापा। अट्ठाईस....उन्होंने आश्चर्य से नर्स की ओर देखा।

हिचकी, पहली....पाँचवीं....सातवीं....वह प्रश्न...

सीढ़ी पर जो दृढ़ कदमों की आवाज़ सुनाई देती थी वह दरवाज़े तक आयी। डॉक्टर स्तब्ध हो गये। यह कौन संज्ञाहीन पागल की तरह घुस पड़ा?

उदयन के हाँफते लेकिन निर्विकार चेहरे पर एकाएक ग़ज़ब की चमक दौड़ पड़ी। उसका सिर ऊँचा उठा और साथ में हाथ भी उठे और... , और... अनिकेत क्षुब्ध होकर एक कदम पीछे हट गया।

सेलाइन सेट की ट्यूब के पारदर्शी हिस्से में टपकती हुई औषधि अटक गयी।

इस तरह उस दिन सुबह के साढ़े आठ बजे अमृता, अनिकेत और कुछ अनजाने चेहरों की निष्क्रिय उपस्थिति में उदयन का अवसान हो गया।

उसके बाद तो—

तीन फ़ुट चौड़ी खाट के दोनों ओर आमने-सामने परन्तु दृष्टिशून्य हो इस तरह अनिकेत और अमृता खड़े थे। इनके बीच जो अवकाश था वहाँ एक ज़िन्दगी शव बनकर पड़ी थी।

हमारे अन्य उपन्यास

शब्दों के पींजरे में	असीम रॉय	२०.००
छिन्नपत्र	सुरेश ह. जोशी	१२.००
स्वामी	रणजित् देसाई	३०.००
बकुलकथा (द्वि. सं.)	श्रीमती आशापूर्णा देवी	३१.००
मूकज्जी (पुरस्कृत)	शिवराम कारन्त	२०.००
सुवर्णलता (द्वि. सं.)	आशापूर्णा देवी	३५.००
बनवार वरिहाम	डॉ. विवेकरंजन भट्टाचार्य	१०.००
धर्मभंग	डॉ. देवेश ठाकुर	१३.००
जय पराजय	सुमंगल प्रकाश	२६.००
मुट्ठी भर कांकर	जगदीशचन्द्र	१५.००
कगार की आग	हिमांशु जोशी	६.००
पुरुष पुराण	डॉ. विवेकीराय	८.००
माटीमटाल भाग १ (पुर., द्वि. सं.)	गोपीनाथ महान्ती	२०.००
माटीमटाल भाग २ (पुर., द्वि. सं.)	,, ,,	२०.००
देवेश : एक जीवनी	सत्यपाल विद्यालंकार	१५.००
धूप और दरिया	जगजीत बराड़	६.५०
समुद्र संगम	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१७.००
मृत्युंजय (तृ. संस्करण)	शिवाजी सावंत	६०.००
छाया मत छूना मन (द्वि. सं.)	हिमांशु जोशी	१२.००
पूर्वापार (द्वि. सं.)	मन्मथनाथ गुप्त	३५.००
शब्द और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	२०.००
...परे आस्थाओं के	सं. शि. भैरप्पा	९.००
...जा पुत्र (द्वि. सं.)	जगदीशचन्द्र	१४.००
...क का पुतला सागर में (द्वि. सं.)	धनंजय वैरागी	१८.००
...त प्रसंग	लक्ष्मीकान्त वर्मा	१२.५०

टेराकोटा (द्वि. सं.)	लक्ष्मीकान्त वर्मा	
शाईने अकेले हैं	कृश्नचन्दर	५.००
कहीं कुछ और	डॉ. गंगाप्रसाद विमल	७.००
मेरी आँखों में प्यास	वाणी राय	१०.००
विपात्र (च. सं.)	ग. मा. मुक्तिबोध	५.००
सहस्रफण (द्वि. सं.)	विश्वनाथ सत्यनारायण	१६.००
रणांगण	विश्राम बेडेकर	३.५०
कृष्णकली (प. सं.)	शिवानी { पेपर बैंक / लायब्रेरी सं०	१३.०० / १८.००
हँसली बाँक की उपकथा (द्वि. सं.)	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	२५.००
गणदेवता (पुर., पं. सं.)	"	३५.००
अस्तंगता (द्वि. सं.)	'भिक्खु'	९.००
…हाश्रमण सुनें ! (द्वि. सं.)	"	४.००
अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	४.५०
जुलूस (पं. सं.)	फणीश्वरनाथ 'रेणु' { पेपर बैंक / लायब्रेरी सं.	८.०० / १२.००
…तो (द्वि. सं.)	डॉ. प्रभाकर माचवे	४.००
…नाहों का देवता (सत्रहवाँ सं.)	डॉ. धर्मवीर भारती	१४.००
…रज का सातवाँ घोड़ा (नौवाँ सं.)	"	३.५०
…ले गुलाब की आत्मा (द्वि. सं.)	विश्वम्भर 'मानव'	६.००
…ने-अपने अजनबी (सातवाँ सं.)	'अज्ञेय'	३.५०
…सी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	५.००
…ह सपनों का देश (द्वि. सं.)	सम्पा. : लक्ष्मीचन्द्र जैन	७.००
…ी	देवेशदास, आई. सी. एस.	५.००
…राग (द्वि. सं.)	"	५.००
…के मोहरे (पुर., चौथा सं.)	अमृतलाल नागर	१२.००
…नेत्र (द्वि. सं.)	आनन्दप्रकाश जैन	४.५०
… (पुर., च. सं.)	वीरेन्द्रकुमार जैन	१३.००

□